की आत्मा पवित्र होजाती है इस तीर्थ के आगे गायत्री का स्थान है जो तीनों लोकों में पूजित है २८ वहां तीन रात्रि बसने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है इस गायत्री के माहात्म्य का प्रत्यक्ष प्रमाण ब्राह्मण हैं जो उसके पाठ करने के प्रभाव से कैसी सामर्थ्य रखते हैं और जो अब्राह्मण अथवा वर्णसंकर इसका पाठ करता है उसका वह पाठ करना फलीभूत नहीं होता है किंतु ग्राम के गीतगाने की समान होता है इस स्थान से चलकर संवर्त्त नामी ब्रह्मर्षिकी दुर्लभ बावड़ी को जाय वहां जाने से मनुष्य स्वरूपवान् और ऐश्वर्यवान् हो जाता है इसके आगे वेणानामी तीर्थ है जहां तीनरात्रि वास करने से २९। ३२ मनुष्य को मोर और हंस पक्षियों से युक्त विमान मिलता है वहां से फिर गोदावरी की यात्रा करे जहां सिद्ध लोग सदा रहा करते हैं ३३ वहां स्नान करने से मनुष्य गोमेध यज्ञ करने का फल और वासुकिलोक पाता है और वेणा के संगम में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से जाकर वरदा के संगम में स्नान करे जिसके करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है वहां से आगे ब्रह्मस्थान है वहां तीनरात्रि बसने से ३४।३५ मनुष्य को स्वर्गलोक और सहस्र गोदान करने का फल मिलता है उसके पीछे कुशप्लव तीर्थ की यात्रा करे और ब्रह्मचर्य से रहकर स्नान करे और तीनरात्रि रहे ऐसा करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है वहां से यात्री देवह्रद नाम वनको जाय और कृष्णा और वेणा नादयों के जल से भरे हुए जातिस्मर नाम कुण्ड में स्नान करे ऐसा करने से मनुष्य जातिस्मर अर्थात् पूर्व जन्म का स्मरण करनेवाला होजाता है इसी स्थान पर इन्द्र सौ यज्ञ करके स्वर्गलोक को गया था इससे वहां जाने से ही मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है इसके उपरान्त यात्री सर्वह्रद तीर्थ में जाकर स्नान करे जिसके करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ३६। ३९ वहां से देवता और पितरों के पूजन में प्रीति रखनेवाले मनुष्य को श्रेष्ठ पुण्यद पयोष्णिी नाम नदी में स्नान करना चाहिये जिसके करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ४० और वहां से चलकर दण्डकारण्य नामी तीर्थ की यात्रा करे जहां स्नानमात्र करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ४१ उसके आगे शरभंगनामी महात्मा शुकदेवजी का तीर्थ है उसमें स्नान करनेसे मनुष्य का कुल पवित्र होजाता है और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसकी दुर्गति नहीं होती है ४२ वहां से शूर्पारकनामी तीर्थ की यात्रा करे जहां परशुरामजी सदा रहा करते हैं वहां रामतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को बहुतसा सुवर्ण मिलता है ४३ उसके आगे सप्त गोदावरी तीर्थ है जहां स्नान करने से जितेन्द्रिय व नियताहारी मनुष्य को बहुत पुण्य प्राप्त होता है और उसके आगे देवपथतीर्थ है वहां जाने से मनुष्य को देवसत्रयज्ञ करने का पुण्य मिलता है ४४।४५ इसके उपरान्त यात्री तुङ्गकारण्यतीर्थ की यात्राकरे जहांपर सारस्वतनामी ऋषिने वेदों की शिक्षा की थी और जहां वेदों के लोप होजाने पर अङ्गिराऋषिके पुत्र के ऋषियों के उत्तरीय वस्त्रपर बैठने से वे वेद सब ऋषियों को स्वर और प्रणवके साथ जैसा जिसने पहिले अभ्यास किया था यथावत् उपस्थित हो गये थे ४६।४८ उसी स्थानपर ऋषि, देवता, वरुण, अग्नि, प्रजापति, नारायण, हरि, महादेव और भगवान् ब्रह्माजी ने भृगुजी को यज्ञ कराने की आज्ञा दी थी और भृगुजी के विधिपूर्वक यज्ञ करा देने पर सब ऋषि और देवता अपने अपने स्थानों को चले गये सो इस तुङ्गकारण्य में प्रवेश करते ही स्त्री और पुरुषों के सब पाप दूर होजाते हैं और जो कोई वहां ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रिय होकर एक महीने वास करता है उसके कुल का उद्धार हो जाता है और वह ब्रह्मलोक को जाता है ४६।५४ वहां से मेधाविकतीर्थ को जाय जहां स्नान और पितर व देवताओं का तर्पण करनेसे मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है और उसकी बुद्धि तीव्र और स्मृति दृढ़ होजाती है ५५ वहीं कालिञ्जर नाम तीनों लोक में विख्यात पर्वत है वहां जाकर देवकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ५६ और जो मनुष्य इस कालिञ्जर पर्वत पर स्नान करके तपस्या करता है वह निस्संदेह स्वर्गलोक को जाता है ५७ वहां से चित्रकूट नामी उत्तम पर्वत की यात्रा करे और गङ्गाजी में स्नान और देव पितरों का तर्पण करे ऐसा करने से मनुष्य परमगति और अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है।५८।५६ वहां से भरतजी के उत्तम स्थान को जाय जहां स्वामिकार्त्तिकजी सदा रहा करते हैं वहां जाने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है और वहीं कोटि तीर्थ भी है जिसमें स्नान करने से सहस्र गोदान करने का फल मिलता है ६०।६१ यात्री वहां से परिक्रम करता हुआ ज्येष्ठ स्थान को जाय जहां शिवजी की पूजा करने से मनुष्य की कान्ति चन्द्रमा की सी हो जाती है ६२ वहीं एक कूप भी है जिसमें चारों समुद्रों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

का होना सुना जाता है उसमें जो देव और पितृभक्त मनुष्य स्नान करता है वह पवित्र होकर परमगति पाता है ६३। ६४ हे राजेन्द्र! वहां से शृङ्गवेर-नामी नगर को जाय जहां पहिले समय में दशरथ के पुत्र रामचन्द्र गङ्गाके पार उतरे थे वहां ब्रह्मचर्य से गङ्गा में स्नान करने से मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं और वह वाजपेय यज्ञ करने का फल पाता है वहां से मुञ्जवटनामी तीर्थ की यात्रा करे जहां शिवजी का आराधन और परिक्रमा करने से मनुष्य महादेवजी का गण बनताहै ६५।६८ और गङ्गामें स्नान करने से सब पापोंसे मक्त हो जाताहै इसके पीछे प्रयागतीर्थ को जाय जिसकी प्रशंसा सब ऋषिलोग करते हैं ६६ इस तीर्थ में ब्रह्मादिक देवता, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमऋषि, अङ्गिरा आदि ब्रह्मऋषि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, सूर्य आदि चक्रचर, नदी, सागर, गन्धर्व, अप्सरा और भगवान् हरिजी रहा करते हैं वहां तीन अग्निकुण्ड हैं जिनके बीच में होकर श्रीगङ्गाजी जिनके आगे सब तीर्थ रहते हैं बड़े वेग से बहती हैं और लोकपावनी तीनों लोकों में विख्यात सूर्य की पुत्री यमुना का वहीं गङ्गाजी से संगम हुआ है इस गङ्गा और यमुना के मध्य की भूमि को लोग पृथ्वी का जघन अर्थात् नाभि के नीचे का भाग बताते हैं और ऋषिलोग इस प्रयाग को जो जघन स्थान में है सब तीर्थों के उत्पन्न होने का स्थान जानते हैं और कहते हैं कि यह सबका प्रतिष्ठान है इसमें कम्बल और अश्वतर नाग भी रहते हैं और इसी में भोगवती तीर्थ भी है यह प्रयाग ब्रह्माजी की वेदी है सब तपस्वी ऋषि और वेद यज्ञस्वरूप धारण किये हुए यहां ब्रह्माजी की सेवा करते हैं और देवता और चक्रवर्ती राजालोग यज्ञ करते हैं ७०।७८ इन कारणों से यह प्रयाग तीर्थ तीनोंलोकों में सब तीर्थोंसे अधिक और पुण्य-तम है ७६ इसमें जाने अथवा इसकी प्रशंसा या इसका स्मरण करनेसे मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ८० और लोकविख्यात संगम में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के करने का फल मिलताहै ८१ यह तीर्थ देवताओं की यज्ञभूमि है इससे इस तीर्थपर थोड़ासा दियाहुआ दानभी बहुतसा फल देता है ८२ जो मनुष्यके हृदय में प्रयाग में प्राण छोड़ने की बुद्धि उपजे तो उस बुद्धि को वेद और लोक के वचनों से भी फेरना उचित नहीं है, क्योंकि इस प्रयाग में साठिकोटि और दश सहस्र तीर्थ रहते हैं ८३। ८४ चारों विद्याओं के अभ्यास और सत्य बोलने से जो पुण्य मिलताहै वह केवल इसगङ्गा और यमुनाके संगम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

में स्नान करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ८५ और वहां जो भोगवतीनाम वासुकि का उत्तमरूप तीर्थ है उसमें स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है ८६ और वहीं गङ्गाजी में हंसप्रतपन और दशाश्वमेधिक नाम तीर्थ भी हैं जो तीनों लोकों में विख्यात हैं ८७ इस गङ्गा में किसी स्थानपर स्नान करने से कुरुक्षेत्र के समान फल मिलता है परंतु कनखल में विशेष और प्रयाग में महाफल प्राप्त होता है ८८ जो मनुष्य-सौ काम छोड़कर गङ्गा में स्नान करता है उसके सब पाप इस प्रकार से भस्म हो जाते हैं जैसे ईंधन का ढेर अग्नि से भस्म हो जाता है ८९ सतयुग में सबतीर्थों में स्नान करने से पुण्य होता है और त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में गङ्गाजी पुण्यरूपी कही हैं ९० पुष्कर में तप, महालय में दान, मलयाचलपर अग्नितपना, भृगुतुङ्ग पर्वतपर रहकर अनशन व्रत करना और पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गङ्गा और मगधदेश के तीर्थों में स्नान करना परम पुण्यदायक है ऐसा करने से मनुष्य को सात सात पीढ़ी अगली और पिछली तर जाती हैं ९१ । ९२ और गङ्गाजी की स्तुति करने से पाप दूर हो जाते हैं दर्शन करने से कल्याण होता है और स्नान, पान करने से सात पीढ़ियां मनुष्य की पवित्र होजाती हैं ९३ और जब तक गङ्गाजी में मनुष्य के हाड़ रहते हैं तब तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में इस प्रकार से प्रतिष्ठित रहता है जैसे पुण्यतीर्थ और पुण्य देवस्थानों की उपासना करने के पुण्य से मनुष्य अमरलोक पाने का भागी होजाता है ९४ । ९५ देखो ब्रह्माजी ने आप यह कहा है कि गङ्गाजी के समान तीर्थ, केशव के समान देवता और ब्राह्मणों से बड़ा कोई नहीं है ९६ जिस देश में गङ्गा हैं वही देश तपोवन है और जो गङ्गातट की पृथ्वी है वही सिद्धक्षेत्र भूमि है ९७ इस सत्यकथा को ब्राह्मण, साधु, सुहृद्, पुत्र और आज्ञाकारी शिष्यों से कान में कहना उचित है ९८ यह कथा धन्य, पवित्र, स्वर्गदाता, उत्तम, पुण्यरूपी, रम्य, पावन, धर्मरूपी, सब पापों को दूर करनेवाली और बड़े बड़े ऋषियों की गुप्त बात है इसको ब्राह्मणों के बीच में पढ़ने से मनुष्य निर्मल होकर स्वर्गलोक पाता है ९९ । १०० इन तीर्थों को कीर्तन करना स्वर्गदाता, पुण्यरूपी, शत्रुनाशक, आनन्ददाता, मेधाबुद्धिका उत्पन्न करनेवाला और श्रेष्ठ है १ और इसको नित्य सुनने से अपुत्र को पुत्र, निर्धन को धन, राजा को विजय, वैश्य को अर्थलाभ, शूद्र को ईप्सित कामना

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और ब्राह्मण को विद्या का पार प्राप्त होता है २। ३ इस तीर्थकीर्तन को नित्य पाठकरनेवाला स्वर्गलोक पाता है और उसको पूर्वजन्मों का हाल विदित होजाता है हे भीष्म! हमने तुमसे सब तीर्थ जहां मनुष्य जा सक्ता है और जहां नहीं जा सक्ता है वर्णन किये हैं इनमें से अगम्य तीर्थों में मानसिक वृत्ति से जाना उचितहै क्योंकि ये तीर्थ केवल देव ऋषियों के ही साध्य हैं जो आकाश-मार्ग से जाकर उनमें स्नान करते हैं ये सब तीर्थ अष्टवसु, साध्यगण, द्वादश सूर्य, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार आदि देवताओं की तुल्य हैं और शुभकर्म करनेवाले ऋषिलोग इनमें स्नान करते हैं तुमभी इन तीर्थोंकी यात्रा करो और अपने पुण्य को तीर्थयात्रा के पुण्य से बढ़ाओ पहिले समय में इन तीर्थों का सेवन शुद्धइन्द्रिय और शास्त्र जाननेवाले सत्पुरुषों ने आस्तिकता और श्रुति-यों के ज्ञान से किया था जो मनुष्य अव्रती, अजितचित्त अर्थात् जिसने अपना चित्त अपने वशमें नहीं किया है अपवित्र, चोर और कुबुद्धि होता है वह तीर्थों में स्नान नहीं करता है तुम तो श्रेष्ठ व्रत करनेवाले और धर्मार्थदर्शी हो ४। ९ हे भीष्म! तुमने अपने धर्म से पिता, पितामह, प्रपितामह, ब्रह्मादिक देवता और ऋषियों को तृप्त किया है तुमको वसुओं का लोक मिलेगा और संसार में तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी १०। ११ इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! भगवान् पुलस्त्यजी भीष्म से उक्तप्रकार से कहकर प्रसन्नतापूर्वक वहीं अन्तर्धान होगये और शास्त्र के तत्त्वार्थ देखनेवाले भीष्म ने पृथ्वीपर भ्रमण करके तीर्थयात्रा की अब यह पापोंके दूर करनेवाली और महापुण्य देने-वाली कथा समाप्तहुई—जो मनुष्य तीर्थयात्रा के लिये पृथ्वीपर घूमता है उसको सौ अश्वमेध यज्ञ करने के फल से अठगुणा अधिक फल मिलता है जैसा कि पहिले भीष्मजी पाचुके हैं १२। १६ हे भरतवंशिन्! तुम जो ऋषियों को साथ लेजाकर यह यात्रा करोगे तो तुमको उसका अठगुणा फल मिलेगा इस तीर्थ-यात्रा में राक्षसों के गण के गण मिला करते हैं इससे तुम सरीखे राजा के सिवाय दूसरे राजा तीर्थयात्रा नहीं करसक्ते हैं १७ इस तीर्थकथन के देवऋषि-चरित को जो कोई प्रातःकाल उठकर पढ़ेगा वह सब पापों से छूट जायगा १८ हे युधिष्ठिर! तुम्हारे साथ बाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, गालव, भरद्वाज, वसिष्ठ, उद्दालक, शौनक, पुत्रसहित व्यासजी, दुर्वासा और जाबालि आदि मुख्य मुख्य बड़े बड़े तपस्वी ऋषि हैं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हे महाराज! तुम उन सबको साथ लेकर तीर्थयात्रा करो और जो यह लोमश-नामी बड़े तेजस्वी महर्षि तुम्हारे पास चले आ रहे हैं इनको भी साथ लेते जाओ १६।२३ और मेरे साथ भी तुम तीर्थयात्रा करना तुमको राजा महाभिष की सी कीर्ति मिलेगी २४ हे राजाधिराज! जिसप्रकारसे धर्मात्मा राजा ययाति, पुरूरवा, भगीरथ, रामचन्द्र, मनु, इक्ष्वाकु, पुरु और वैन्य आदि तीनोंलोकों में अपने धर्म के कारण से विख्यात हैं उसी प्रकार से तुम भी सूर्य की तुल्य उनसे अधिक कीर्तिमान् और विख्यात होगे २५।२७ और जैसे वृत्रासुर दैत्य के मारनेवाले इन्द्रने अपने सर्वशत्रुओं को मारकर और चिन्तारहित होकर तीनों लोकों का पालन किया था उसी प्रकार से तुम भी अपने वैरियों को मारकर प्रजाका पालन करोगे और अपने धर्म से पृथ्वी को जीतकर कार्तवीर्यार्जुन की समान कीर्ति पाओगे २८।३० इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! देवर्षि भगवान् नारदजी युधिष्ठिर को उक्तप्रकार से धैर्य देकर वहीं अन्तर्धान होगये ३१ और धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उस अर्थ को विचार कर तीर्थयात्रा करने का पुण्य ऋषियों से कह सुनाया॥ १३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

छियासीवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का धौम्यऋषि से अर्जुन के वियोग का वृत्तान्त कहकर अन्यत्र जाने की इच्छा से पवित्र तीर्थों का वृत्तान्त पूछना।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर अपने भाई और बुद्धिमान् नारदजी के मत को विचारकर ब्रह्मा के समान धौम्यऋषि से कहने लगे १ कि मैंने पुरुषोत्तम, सत्यपराक्रमी, धैर्यवान्, महाबाहु, समर्थ, तपोधन और वीर अर्जुन को अस्त्रविद्या सीखने के लिये परदेश में भेजा है यद्यपि वह अस्त्रविद्या में श्रीकृष्णजी की समान विचक्षण है मैं और प्रतापी व्यासजी इन दोनों पराक्रमी और शत्रुओं के नाश करनेवालों को जानते हैं २।४ ये दोनों अर्थात् श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण और तीनों युगों में अवतार लेनेवाले हैं नारदजी भी इन दोनों को ऐसा ही बताते हैं उन्होंने बहुधा मुझसे यह संवाद कहा है ५ और मैंने भी उस अर्जुन को इन्द्र का पुत्र और इन्द्र की तुल्य समझकर देवराज इन्द्र को देखने और उससे अस्त्रविद्या सीखने की कामना से प्रदेश में भेज दियाहै ६।७ क्योंकि भीष्म और द्रोणाचार्य जिनको

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जीतना बहुत कठिन है और कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि बड़े बड़े महारथी धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिलेहुए हैं और सबके सब वेदपाठी, शूरवीर और अस्त्रवेत्ता हैं और अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा रखते हैं और इनके सिवाय सूत का बेटा कर्ण भी महारथी और सब दिव्य अस्त्रों का जाननेवाला है ८।९ उसके अस्त्र चलाने का वेग वायु के वेग की समान है बाण उसके अग्निकी सदृश हैं और क्रोध धुयें की समान है सो वह कर्ण युग के अन्त में महाकाल से छोड़ी हुई अग्नि के समान दुर्योधनरूपी वायु से प्रेरितहोकर मेरी सेनारूपी तृणके वन को निस्संदेह भस्म कर डालेगा १०।११ समर में उस कर्णरूपी प्रज्वालित अग्नि को मेघरूपी अर्जुन कृष्णरूपी वायु से प्रेरित होकर बाणरूपी जलधारा छोड़कर शान्त करेगा और वह अर्जुनरूपी मेघ बलाकारूपी श्वेत घोड़े गाण्डीवरूपी इन्द्रधनुष और अस्त्ररूपी बिजली से सुशोभित होगा १२।१३ मैं जानता हूं कि वह अर्जुन इन्द्र से सब दिव्य अस्त्र सीख आवेगा और इन सबको जीत सकेगा परंतु विना अर्जुन के इन शत्रुओं को जीतने का कोई उपाय नहीं है १४।१५ हे महाराज! ऐसा दिन कौनसा होगा जिस दिन हम उस अस्त्र सीखे हुए अर्जुन को, जो बोझ को उठाकर दुःखी नहीं होता है, देखेंगे उसके विना द्रौपदीसहित हम सबका चित्त इस वन में स्वस्थ नहीं रहता है १६।१७ आप और कोई ऐसा वन बताइये जहां अन्न और फल बहुत मिलें और पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्य रहते हों और स्थान भी जहां का पुण्य और पवित्र होवे १८ जिससे हम लोग वहां बसकर वीर अर्जुन के आने की बाट इस प्रकार से देखें जैसे मनुष्य बादलों की राह वर्षाऋतुमें देखा करते हैं १९ अब इस काम्यकवन में हमारा मन नहीं लगता है हम लोगों की इच्छा किसी और दिशा के जाने की है सो आप ब्राह्मणों से सुने हुए अनेक आश्रम, सरोवर, नदी और रमणीक पर्वतों का वृत्तान्त हमको सुनाइये कि हम लोग उसी ओर की यात्रा करें॥ २०।२१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

सत्तासीवाँ अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर से पूर्वदिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! धौम्यऋषि पाण्डवों को दुःखी चित्त और घबड़ाये हुए देखकर धैर्य देकर बृहस्पति की समान इस प्रकार से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कहनेलगे १ कि हे युधिष्ठिर ! तुम अपने भाई और द्रौपदीसहित पुण्य आश्रम, दिशा, तीर्थ और पर्वतों का वृत्तान्त सुनो जिसके सुनने से तुमको पुण्य होगा और शोक से छूट जाओगे और जो उनमें स्नानों को जाओगे तो सौगुणा पुण्य पाओगे अब पहिले मैं तुमसे अपने स्मरण के अनुसार पूर्वदिशा के तीर्थों का वृत्तान्त कहता हूं जहां राजऋषियों के समूह के समूह रहते हैं २।५ हे भरत-वंशिन् ! इस देवर्षियों के रहनेवाली दिशा में पहिले नैमिष तीर्थ है उसमें पृथक् पृथक् देवताओं के पृथक् पृथक् पुण्य तीर्थ हैं ६ और वहीं गोमती नाम पुण्य नदी भी है जो बड़ी रमणीक और देवर्षियों से सेवित है यह नैमिषतीर्थ देवताओं की यज्ञभूमि और यमराज का शामित्र है ७ उसके आगे गय नाम पुण्यद पर्वत है जिसमें ब्रह्मसार नामी एक कल्याणरूपी तीर्थ है जहां देवता और ऋषि रहा करते हैं ८ हे पुरुषोत्तम ! पुराने लोगों ने इसी तीर्थ के कारण से यह कहा है कि मनुष्य के बहुत से पुत्र हों तो अच्छाहै क्योंकि जो बहुतसे पुत्र होंगे तो कोई तो उनमें से जाकर गया करेगा अथवा अश्वमेधयज्ञ या नीलावृषभ छोड़ेगा क्योंकि यह कर्म दश अगले और दश पिछले पुरखाओं को तारता है ९।१० और वहीं गयाशिर और फल्गूनामी महानदी और अक्षयकरणवट भी है जहां पर पितरों का श्राद्ध करने से पितरों को दिया हुआ पदार्थ अक्षय बना रहताहै ११।१२ उसके आगे कौशिकीनदी है जहां विश्वामित्रऋषि ने ब्राह्मणत्व पाया था इस नदी पर मूल और फल बहुत मिलते हैं १३ और इसी दिशा में गङ्गानाम पुण्य नदी भी है जिसके तट पर भगीरथ ने बहुतसे बड़े बड़े यज्ञ किये थे १४ वहीं उत्पला वन तीर्थ भी है जो पाञ्चालदेश में गिना जाता है वहां विश्वामित्र ने पुत्रसहित यज्ञ किया था और परशुरामजी ने उनके ऐश्वर्य को देखकर उनके वंशकी प्रशंसा की थी १५।१६ और कान्यकुब्ज देशमें विश्वामित्रने इन्द्रके साथ सोमपान किया था और क्षत्रियधर्मको छोड़कर यह कहा था कि मैं ब्राह्मण हूं १७ इसके आगे गङ्गा और यमुना नदियों का संगम है जो पवित्र पाप-नाशक, धर्मका बढ़ानेवाला उत्तम तीनों लोकों में विख्यात है जहां ऋषिलोग रहा करते हैं वहां पहिले समय में भूतात्मा ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था उसीकारण से उस स्थानका नाम प्रयाग विख्यात हुआ है १८।१९ उसके आगे तपोवन में अगस्त्यजी का श्रेष्ठ आश्रम है जहां तपस्वीलोग रहते हैं २० उसके आगे कालिञ्जरपर्वत में हिरण्यबिन्दु नामी तीर्थ है और वहीं श्रेष्ठधर्म को बढ़ानेवाला

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और जीविका देंगे और जो न दें तो तुम सब लोग पाञ्चाल देश में राजा द्रुपद के पास चले जाना राजा द्रुपद हमारी प्रीति के कारण से तुम सबको जीविका देंगे २१ । २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर बहुत से पुरवासी, वेदपाठी ब्राह्मण और यती दुःखी होकर हस्तिनापुर को लौटकर चले गये २५ अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर की प्रीति के कारण से उन सबको प्रीतिपूर्वक अपने पास रखलिया और सबको धन देकर तृप्त करदिया २६ उसके पीछे युधिष्ठिर ने उनके चले जाने पर लोमशऋषि और थोड़े ब्राह्मणों सहित उस वन में तीन रात्रि वास किया ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ अध्याय ।

वनवासी ब्राह्मणों को साथ लेकर युधिष्ठिर का पूर्वदिशा को चल देना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब राजा युधिष्ठिर तीर्थयात्रा करने के लिये चलने को हुए तब वनवासी ब्राह्मण उनके पास आकर कहने लगे कि महाराज ! आप तीर्थयात्रा करने को अपने भाई और महात्मा लोमशऋषि के साथ जाते हैं हम लोगों को भी लेते चलिये विना आपके हम लोग अकेले उन तीर्थों में नहीं जा सक्ते हैं १।३ क्योंकि वे तीर्थ श्वापदों से पूर्ण होकर दुर्ग और विषम हैं इसलिये अल्पपुरुष वहां नहीं जासक्ते हैं ४ आप सब भाई शूरवीर और धनुषधारियों में श्रेष्ठ हैं आपकी रक्षा में रहकर हम लोग भी तीर्थ कर आवेंगे ५ और आपकी प्रसन्नता से सुखपूर्वक तीर्थ और वनों की यात्रा का फल पावेंगे ६ और तीर्थों का दर्शन और स्नान करके शुद्ध और निष्पाप होजायँगे ७ और आपको भी तीर्थों में स्नान करने से निश्चय वे दुष्प्राप्य लोक मिलेंगे जो राजा कार्त्तवीर्य राजऋषि अष्टक, लोमपाद और राजा भरत को मिले हैं ८ । ९ हम लोग भी आपके साथ चलकर प्रभास आदि तीर्थ, महेन्द्र आदि पर्वत, गंगा आदि नदियों और प्लक्ष आदि वनस्पतियों को देखना चाहते हैं जो आपको ब्राह्मणों की भक्ति लेशमात्र भी है तो हम लोगों के कहने को मान लीजिये इस में आपका भी कल्याण होगा तीर्थों में बहुधा तप के विघ्न करनेवाले राक्षस बिचरा करते हैं आप हमलोगों की उनसे रक्षा कीजिये और जो जो तीर्थ नारद जी, धौम्यऋषि और तपस्वी देवऋषि लोमशजी ने वर्णन किये हैं उन सबकी विधिपूर्वक यात्रा कीजिये १० । १४ उन ब्राह्मणों की उक्त बात को सुनकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

युधिष्ठिर ने आँखों में आनन्द के आंसू भरकर सब भाइयों के बीच में कहा कि बहुत अच्छा आप जैसा कहते हैं हम वैसाही करेंगे १५। १६ इसके पीछे युधिष्ठिर ने भाइयों सहित लोमशऋषि और धौम्य पुरोहित की पूजा की और द्रौपदीसहित तीर्थयात्रा करने का विचार किया उसी समय वहां काम्यकवन में पाण्डवों को देखने के लिये महाभाग मनीषी व्यासजी, नारद और पर्वत ऋषि आये युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक उन तीनों की पूजा की और वे तीनों सत्कार पाकर उनसे कहने लगे १७। १८ कि हे युधिष्ठिर! हे नकुल! हे सहदेव! हे भीमसेन! तुम चारों भाई ऋजुता को ग्रहण करो और मन को शुद्ध करके तीर्थयात्रा करो। ब्राह्मणलोग कहते हैं कि शरीर से नियम का साधना मानुषव्रत और मन को शुद्ध करना दैवव्रत कहलाते हैं २०। २१ परंतु हे नरेन्द्र! शौच के लिये मन का निर्दोष होना ही पर्याप्त है इससे तुम सब शरीर और मन के नियमों का साधन और व्रत करके शुद्ध ही हो अब दैवव्रत को धारण करके आपस में मित्रता रखकर तीर्थयात्रा करो तुमको तीर्थयात्रा का फल यथोक्त मिलेगा २२। २३ यह सुनकर पाण्डवों ने द्रौपदीसहित वह व्रत स्वीकार किया और अगहन की पूनो के पीछे पुष्यनक्षत्र में मृगछाला और जटा धारण किये हुए और अभेद्य कवच अर्थात् बख़्तर पहिरे हुए लोमश ऋषि, व्यासजी, नारद और पर्वत ऋषि के चरणों को छूकर मुनियों से स्वस्त्ययन कराके उन सब वनवासी ब्राह्मणों और धौम्यपुरोहित सहित चल दिये २४। २७ हे जनमेजय! इन्द्रसेन आदि भृत्य पन्द्रह रथों को लिये हुए वह सेवक जो साथ जाने के योग्य थे उनके साथ होलिये और वे वीर पाण्डव अपने अपने आयुध अर्थात् हथियारों समेत तलवारों और सबाण तर्कसों को बांधे हुए पूर्वदिशा को चल दिये ॥ २८। २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चौरानबेवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का लोमशऋषि से धर्मात्माओं के दुःखी और अधर्मियों के सुखी होने का कारण पूछना और लोमशऋषि का समाधान करना।

मार्ग में युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! जितने उत्तम गुण हैं उनसे मैं अपने को शून्य नहीं जानता हूं और यह भी समझता हूं कि हमारे शत्रु लोग गुण और धर्म दोनों से हीन हैं परंतु यह क्या कारण है जो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मैं तो ऐसा दुःखी होरहा हूं कि ऐसा कोई नहीं होगा और हमारे शत्रुओं की दिन प्रति बढ़ोतरी होती जाती है १। २ यह सुनकर लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर! अधर्मी पुरुषों को अधर्म करनेपर भी बढ़ते हुए देखकर तुमको दुःखी होना उचित नहीं है, हां ऐसा अवश्य होता है कि अधर्म करनेपर भी मनुष्य की वृद्धि और कल्याण होता है और शत्रुओं को भी जीत लेता है परंतु अन्त में मूलसहित धूल में मिल जाता है ३। ४ मैंने देखा है कि दैत्य और दानवों ने अधर्म करके बड़ी वृद्धि पाई परन्तु अन्त में जड़-पेंड़ से नाश होगये और देवयुग में मैंने यह भी देखा था कि देवताओं ने धर्म में रुचि की और दैत्यों ने धर्म का त्याग किया सो धर्म करने के कारण से देवता तीर्थ में प्रवेश होगये और दैत्य नहीं होने पाये क्योंकि उनके मन में अधर्म से उत्पन्न गर्व प्रवेश होरहा था ५। ७ उस गर्व से मान और क्रोध की अधिकता हुई और क्रोध से खोटे कर्म करने लगे और लज्जा जाती रही इस प्रकार से उनका व्रत नष्ट हो गया ८ इसके पीछे जब दैत्य व्रतहीन और निर्लज्ज होगये तब क्षमा, लक्ष्मी और धर्म ने उनको परित्याग करदिया ६ और इन तीनों के न होने पर उन दैत्य-दानवों के हृदय में जिनका चित्त गर्व से नष्ट होरहा था कलि ने प्रवेश किया इस प्रकार दरिद्रता से आविष्ट, कलि से हत और घमण्ड से तिरस्कृत होने के कारण उन क्रियाहीन, निर्बुद्धि और मानी दैत्य-दानवों का नाश होगया १०। १२ और देवतालोग जो धर्मात्मा और शीलवान् थे सागर, नदी, सरोवर आदि पुण्यस्थानों में चले गये और वहां उन्होंने तप, यज्ञ और दान कर करके अपने सब पाप दूर कर दिये और कल्याण प्राप्त किया सो हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से नियमपूर्वक तीर्थयात्रा करने के कारण से देवताओं को परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था तुमभी इसीप्रकार से अपने छोटे भाइयोंसहित इन तीर्थों में स्नान करके १३। १६ फिर अपनी लक्ष्मी पाओगे यह सनातन धर्म है। देखो राजा नृग, शिबि, औशीनर, भगीरथ, वसुमना, गय, पुरु और राजा पुरूरवा ने तीर्थयात्रा, तपस्या और महात्माओं के दर्शन करने से ही पुण्य, यश और द्रव्य पाये थे तुमको भी इसीप्रकार से लक्ष्मी मिलेगी और तुम्हारा पुण्य और तुम्हारी कीर्त्ति राजा इक्ष्वाकु, राजा मुचुकुन्द, राजा मान्धाता और राजा मरुत्त की सी होगी; तुमको लक्ष्मी और सब ऐश्वर्य उसीप्रकार से मिलेंगे जैसे देवता और देवर्षियोंको तपस्या करनेसे मिले थे और ये धृतराष्ट्र के पुत्र जो मोह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के वशमें होरहे हैं थोड़ेही दिनों में दैत्यों की तरह नाश होजायँगे ॥१७।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का नैमिषआदि तीर्थों की यात्रा करना और गयशिर पर्वत पर पहुँचकर राजा गय के यज्ञ करने का इतिहास सुनना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे वीर पाण्डव उक्त प्रकार से अनेक प्रकार की बातचीत करते हुए और क्रमपूर्वक अनेक स्थानों में टिकते हुए सब साथियोंसहित नैमिषवन में पहुँचे और गोमती के अनेक तीर्थों में स्नान करके गोदान और धनदान देते भये १।२ और उन्होंने कन्यातीर्थ, अश्वतीर्थ और गौओं के तीर्थ में विधिपूर्वक देवता, पितर और ब्राह्मणों को तृप्त करके कालकोटि और विषप्रस्थ पर्वतों पर वास किया ३ इसके पीछे बाहुदा तीर्थ में जाकर सबों ने स्नान किये और वहां से प्रयाग को जो देवताओं के यज्ञ का स्थान है गये वहां जाकर कुछ काल वास करके तपस्या की और गङ्गा और यमुना के संगमपर ब्राह्मणों को धन का दान दिया इसके उपरान्त वे पाण्डव सब ब्राह्मणों सहित ब्रह्माजी की वेदी को गये और वहां रहकर कुछ काल तपस्या की ४।७ वहां नित्य वनफल लाकर ब्राह्मणों को भोजन कराते थे ब्रह्माजी की वेदी से चलकर गयशिरनाम पर्वतपर गये जो गयनामी पुण्यात्मा और धर्मज्ञ राजऋषि से संस्कार किया हुआ है और बड़ा पवित्र और दिव्य है वहीं एक महानदी बड़ी रमणीक है जिसके तट वानीरवृक्ष और पुलिन अर्थात् बालू के टापुओं से सुशोभित होरहे थे ८।१० उसी स्थान पर ब्रह्मसरनामी तीर्थ भी है जहां ऋषियों के अनेक स्थान हैं और जहां भगवान् अगस्त्यजी यमराज के पास गये थे इसी स्थान पर सब नदियों का आविर्भाव अर्थात् प्रकट होने की जगह है और सनातनरूप यमराज ने भी वहीं वास किया था ११।१२ यहीं पिनाकधारी शिवजी भी सदा वास करते हैं पाण्डवों ने वहां जाकर चातुर्मास्य और ऋषियज्ञ किये और वहां जो अक्षयवट है जहां यज्ञ करने से यज्ञ का फल अक्षय बना रहता है उसके नीचे वास करके पाण्डवों ने उपवास किये वहां पाण्डवों के यज्ञ में सैकड़ों तपस्वी, विद्वान्, वेदपारग और महात्मा ब्राह्मण लोग भी आये। वे सभा में बैठ कर अनेक पुण्यरूपी कथा कहने लगे उनमें से शमठनामी ऋषि जो विद्यावान्, व्रती और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्रह्मचारी थे राजा गय का इतिहास कहने लगे और बोले हे भरतवंशी, युधिष्ठिर! तुमसे अमूर्तरयस के गयनामी पुत्र का इतिहास कहता हूं जो राजऋषियों में उत्तम और पुण्यकर्म करनेवाला था १३। १८ इस राजा ने इस स्थान पर ऐसा यज्ञ किया था कि उसमें अनन्त दक्षिणा खर्च हुई थी, उस राजा ने अन्न की सैकड़ों हज़ारों ढेरियां पर्वत की समान लगवा दी थीं और घी वा दही की सैकड़ों नदियां भरवा दी थीं और मांगनेवालों के लिये व्यञ्जनों के सहस्रों प्रवाह कर रक्खे थे अर्थात् याचकों को भोजन मिलने के लिये सहस्रों स्थान नियत कर दिये थे और जो ब्राह्मण याचक न थे उनको अच्छे प्रकार से बने हुए भोजन कराये जाते थे १६। २१ जिस समय दक्षिणा के बटने का समय होता था उस समय ऐसी वेदध्वनि होती थी कि आकाश गूंजने लगता था और कोई किसीकी बात को सुन नहीं सकता था २२ और पुण्याहवाचन के शब्द से सब पृथ्वी, दिशा और आकाश पूर्ण होजाता था वह समय बड़ा अद्भुत जानपड़ता था २३ हे भरतर्षभ! उस राजा के यज्ञ में प्राणी तृप्त होने के कारण से देश देश में उसके यश को गाते हैं। भला जिसके यज्ञ में पच्चीस पर्वत भोजनशेष बच रहे उसके यज्ञ में ऐसा कौन होगा जो विना भोजन पाये हुए रह गया हो हे युधिष्ठिर! राजा गय का सा यज्ञ तो न किसीने पहिले किया है और न कोई अब करेगा २४। २६ और देवता भी उसके दिये हुए हविष से अतितृप्त होने के कारण से दूसरे के दिये हुए हविष को न लेसकेंगे और जो दक्षिणा गय के यज्ञ में दीगई थी उसकी संख्या होना इस प्रकार से असंभव है जैसे वर्षा की बूंदों, बालू के कणों और आकाश के तारागणों को गिनना संभव नहीं है सो हे युधिष्ठिर! राजा गय ने ऐसे अनेक यज्ञ इसी नदी के तट पर किये थे॥ २७। २६

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ६५॥

छानबेवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का अगस्त्यजी के आश्रम को जाना और लोमशऋषिका वातापी दैत्य के मारेजाने की कथा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर उस तीर्थ पर दान देकर सब ब्राह्मणोंसहित अगस्त्यजी के आश्रम को गया और वहां दुर्जयापुरी में वास किया। उस समय बोलनेवालों में वरिष्ठ युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! अगस्त्यजी ने वातापी को किसलिये मारा था, क्यों उसपर क्रोध किया था? और वह दैत्य कैसा प्रभाव रखता था १। ३ लोमशऋषि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बोले कि हे युधिष्ठिर! अगले समय में मणिमती पुरी में इल्वलनाम एक दैत्य रहता था उस दैत्य के छोटे भाई का नाम वातापी था ४ एक दिन उस दैत्य ने एक तपस्वी ब्राह्मण से कहा कि महाराज! मुझको एक ऐसा पुत्र दीजिये जो इन्द्रकी तुल्य हो। उस ब्राह्मण ने ऐसा पुत्र देने से निषेध किया तब वह इल्वल दैत्य महाक्रोधित होगया और ब्राह्मणमात्र से वैर मानकर ब्राह्मणों को मारने लगा। वह दैत्य बड़ा मायावी था और उसको ऐसी विद्या थी कि जिस मरे हुए को वह बुलाता था वह फिर शरीर पाकर उसके समीप चला आता था निदान उस दैत्य ने यह उपाय रचा कि अपने छोटे भाई वातापी को वह माया से बकरा बना देता और उसको मारकर उसके मांस को बनाता और ब्राह्मण को नौतकर वह मांस उसे भोजन कराता जब वह ब्राह्मण भोजन कर चुकता तब वह इल्वल दैत्य उस वातापी को बुलाता और वह वातापी ब्राह्मण के पेट को फाड़कर हँसता हुआ बाहर निकल आता इस प्रकार से उस दुर्मति इल्वल दैत्य ने अनेकानेक ब्राह्मण मारडाले ५। १३ इसी अवसर में अगस्त्यजी ने अपने पितरों को एक गढ़े में नीचे को मुख किये लटके हुए देखा उनको देखकर अगस्त्य जी ने पूछा कि आप कौन हैं और इस गढ़े में लटके हुए क्यों कँप रहे हैं? वे बोले कि हम तेरे पितर हैं संतान के न होने के कारण से इस गढ़े में लटके हुए हैं जो तू एक पुत्र उत्पन्न करे तो हमलोगों की इस नरक से मोक्ष होजाय और तू भी मोक्ष पावे १४। १७ यह सुनकर अगस्त्यजी जो तेजस्वी, सत्यवादी और धर्मपरायण थे कहने लगे कि हे पितरलोगो! मैं आप की कामना पूरी करूंगा आप अपने मन की चिन्ता को छोड़ दीजिये १८ यह कहकर अगस्त्यजी वहां से चलदिये और संतान उत्पन्न करने के लिये अपनी सदृश स्त्री ढूंढ़ने लगे जब कोई स्त्री अपने सदृश न पाई तब उन्होंने सब संसारी जीवों के उत्तम उत्तम अङ्गों को ग्रहण किया और उन अङ्गों से एक परम सुन्दरी स्त्री निर्माण की और अपने तपोबल से उसको राजा विदर्भ की रानी के गर्भ में प्रवेश करा दिया राजा विदर्भ उन दिनों में संतान होने के निमित्त तप करता था १६। २१ थोड़े ही काल में वह बिजली की समान चमकती हुई कन्यारूप से उस राजा की रानी के गर्भ से प्रकट हुई, शरीर उस कन्या का प्रकाशमान और कला बढ़ती हुई थी, राजा विदर्भ ने उसके उत्पन्न होते ही बड़े हर्ष से उसे ब्राह्मणों को दिखलाया, ब्राह्मणों ने उसको आशीर्वाद दिया और उसका

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नाम लोपामुद्रा रक्खा २२ । २४ हे महाराज ! वह कन्या दिन दिन बढ़ने लगी और थोड़े ही काल में इस प्रकार से बड़ी होगई जैसे जल में कमलिनी और अग्नि लगने पर अग्नि की ज्वाला शीघ्र बढ़जाती है । राजा ने उसके पास सौ कन्या अच्छा शृङ्गार किये हुए और सौ दासियां आज्ञाकारी नियत करदीं २५ । २६ उन दासियों और कन्याओं के बीच में वह लोपामुद्रा ऐसी शोभा देती थी मानो स्वर्ग में रोहिणी प्रकाश कर रही है २७ यद्यपि वह कन्या बड़ी शीलवती और युवती थी परन्तु महात्मा अगस्त्यजी के भयसे उसे किसी राजा ने नहीं मांगा और उस कन्या ने जो स्वरूप में अप्सराओं को भी उल्लं-घन करती थी अपनी शीलता से अपने पिता और सुजनों को प्रसन्न किया उस समय उसके पिता ने उसे योग्य और युवती देख कर यह विचार किया कि मैं इस कन्या का विवाह किस के साथ करदूं ॥ २८ । ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सत्तानबेवाँ अध्याय ।

राजकन्या लोपामुद्रा के साथ अगस्त्यजी का विवाह होना ।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! जब अगस्त्यजी ने देखा कि वह कन्या अब घर का काम काज करने के योग्य है तब वे राजा विदर्भ के पास गये और कहने लगे कि हे राजन् ! मैं संतान उत्पन्न करने के लिये अपना विवाह करना चाहता हूं इससे मैं लोपामुद्रा को मांगता हूं तुम उसको मुझे देदो १ । २ यह सुनकर राजा अचेत सा होगया और कुछ उत्तर न देसका किन्तु कन्या को न देने की इच्छा से अपनी रानी के पास जाकर कहने लगा कि यह महाऋषि बड़ा बलवान् है क्रोधित होने पर सबको जलाकर भस्म कर देगा अब क्या करना चाहिये ? लोपामुद्रा उन अपने माता और पिता को इस प्रकार से दुःखी देखकर उनके पास जाकर कहने लगी ३ । ५ कि हे पिताजी ! मेरे कारण से आप दुःख न उठाइये मुझे अगस्त्यजी को दे दीजिये और मेरे द्वारा अपनी रक्षा कीजिये ६ यह सुनकर राजा ने उस कन्या को विधिपूर्वक अगस्त्यजी को देदिया, अगस्त्यजी उसे पाकर उससे कहने लगे कि हे सुन्दरि ! इन बड़े मोल के वस्त्रों और गहनों को उतार डाल ७ । ८ यह सुनकर लोपामुद्रा ने जिसकी आंखें कमलसी और जांघें कदली के सदृश थीं वे दर्शनीय वस्त्र उतार डाले और बल्कलचीर और मृगछाला पहिरकर अग-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

स्त्यजी की समान व्रत धारण कर लिया ६ । १० अगस्त्यजी वहां से चलकर गङ्गाद्वार पर चले आये और अपनी आज्ञाकारिणी स्त्रीसहित तप करने लगे ११ उस स्त्री ने प्रसन्नता से अगस्त्यजी की बड़ी सेवा की और अगस्त्यजी उसकी सेवा से उसपर बड़ी प्रीति करनेलगे १२ बहुत दिनों के पीछे उस तपसे प्रकाशमान लोपामुद्रा ने ऋतुस्नान किया तब अगस्त्यजी ने उसे उसकी सेवा, शुद्धता, दम, शोभा और स्वरूप से प्रसन्न होकर मैथुन करने के लिये बुलाया १३।१४ यह सुनकर लोपामुद्रा ने लज्जित होकर हाथ जोड़े हुए नम्रता से विनय की कि महाराज ! निस्सन्देह स्त्री सन्तान ही उत्पन्न करने के निमित्त होती है, परंतु आप ऐसा कीजिये जिससे रति में मेरी आपके साथ प्रीति उत्पन्न हो, मैं चाहती हूं कि जैसे वस्त्र और गहने मैं अपने पिता के घर धारण किये हुई थी वैसेही वस्त्र और गहने धारण करूं और आप भी सुन्दर माला और भूषण धारण कर लें फिर मेरा आपका संगम प्रीतिपूर्वक वैसी ही शय्या पर होवे जैसी शय्या मेरे पिताके घर थी इसके विपरीत इन चीर और काषायवस्त्रोंको पहिरकर रतिकरनेको चित्त नहीं चाहताहै ये भूषण किसी अवस्था में अपवित्र नहीं होते हैं १५।१६ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हे कल्याणि ! मेरे पास तेरे पिता की समान धन नहीं है २० लोपामुद्रा बोली कि इससंसार में जो कुछ धनहै उस सबको आप अपने तपोबलसे एकक्षणभरमें प्राप्त करसक्ते हैं २१ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि तू सत्य कहती है परंतु ऐसा करने से तप नष्ट होताहै इससे ऐसा कर जिससे तप नष्ट न होवे २२ लोपामुद्रा बोली कि महाराज ! मेरे ऋतुका थोड़ासा समय रह गयाहै मैं और किसी प्रकार से आपके पास नहीं आना चाहती हूं और न यह चाहती हूं कि आपके धर्म का किसीप्रकार से लोप होवे आप जैसे उचित समझें वैसे ही मेरी कामना को पूरा करें २३।२४ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि जो तैंने ऐसा ही विचार कर लिया है तो हम तेरे लिये धन लेने जाते हैं तू यहां ही रहकर इच्छानुसार पदार्थ भोग ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय ।

अगस्त्यजीका धन मांगने के लिये राजाश्रुतुर्वाण, राजा ब्रध्नश्व और राजा त्रसद्दस्युके पास जाना और उनसे धन न मिलने पर उन तीनों राजाओं को साथ लेकर इल्वल दैत्यके पासजाना ।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! इसके पीछे अगस्त्यजी धन मांगने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की इच्छा से राजा श्रुतर्वाण के पास गये जिसको वे सब राजाओं से अधिक धनवान् जानते थे १ वह राजा उन महाऋषि को अपने देशकी सीमा पर आया हुआ जान कर मन्त्रियों सहित आगे गया और आदरपूर्वक अपने घर लिवा लाया और विधिपूर्वक अर्घ देकर कहने लगा कि महाराज ! आपका आना किस कारण से हुआ है २। ३ अगस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! मैं तेरे पास धन मांगने आया हूं तू मुझको यथाशक्ति अपने अधिक धन में से धन दे जिसमें किसी दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ४ यह सुनकर उस राजा ने कहा कि महाराज ! मेरा लाभ और व्यय बराबर है इससे जो कुछ आप अधिक समझें सो ले लीजिये। अगस्त्यजी ने उसके आय व्यय को बराबर देखकर विचार किया कि इससे धन लेने में प्राणियों को पीड़ा होगी यह विचार कर उन्होंने उस राजा से धन नहीं लिया और उसे साथ लेकर राजा ब्रध्नश्व के पास गये। उस राजा ने भी अगस्त्यजी को अपने देश की सीमा पर जाकर लिया और बड़े आदर से घर लाकर अर्घ पाद्य देकर आने का कारण पूछा ५।८ अगस्त्यजी बोले कि हम दोनों तेरे पास धन मांगने आये हैं तू अपने अधिक धन में से हमको भी यथाशक्ति धन दे जिससे किसी दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ६ उस राजा ने भी कहा कि महाराज ! मेरा लाभ और व्यय बराबर है जो कुछ आप अधिक समझें सो लेलें। अगस्त्यजी ने यह सुनकर उसके लाभ और व्यय को बराबर होने पर, धन लेने में प्राणियों को दुःख होना विचार कर धन नहीं लिया और उसको भी साथ लेकर तीनों राजा त्रसद्दस्यु के पास गये। उस राजा ने भी अगस्त्यजी और उन दोनों राजाओं को अपने देश की सीमा पर जाकर लिया और बड़े आदर से घर लाकर सबकी यथायोग्य विधि-पूर्वक पूजा करके तीनों से आने का कारण पूछा १० । १४ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हम तीनों धन मांगने को आये हैं तू अपने अधिक धन में से हमको धन दे जिससे किसी दूसरे को दुःख न पहुँचे १५ यह सुनकर उस राजा ने भी कहा कि महाराज ! मेरा आय व्यय अर्थात् आमद और खर्च बराबरहै आप जो कुछ अधिक समझें सो लेलें १६ यह सुनकर अगस्त्यजीने विचारा कि इस राजा का लाभ और व्यय बराबर है इससे धन लेने में जीवों को पीड़ा होगी यह विचार कर उन्होंने धन नहीं लिया इसके पीछे वे तीनों राजा आपस में विचार कर अगस्त्यजी से कहने लगे कि महाराज ! यहां जो इल्वल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दैत्य रहता है वह बड़ा धनवान् है चलिये हम सब उसके पास जाकर उससे धन मांगें १७। १६ यह सुनकर अगस्त्यजी ने इल्वल से धन मांगना उचित समझा और वे चारों धन मांगने के लिये उस दैत्य के पास गये ॥ २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

निन्नानबेवाँ अध्याय।

अगस्त्यजी का वातापी के मांस को खाकर पचा जाना और इल्वल दैत्य से धन लेकर अपने आश्रमको लौट आना और लोमशऋषि का युधिष्ठिर से वधूसरा तीर्थ का माहात्म्य कहना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! इल्वल दैत्य अगस्त्यजी को तीनों राजाओं सहित अपने राज्य की सीमा पर आये हुए जानकर वहां गया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके घर पर लिवा लाया और अपने भाई वातापी के मांस को अच्छी तरह बनाकर उनका आतिथ्य किया। वे राजा लोग मेषरूपी वातापी के मांसको जानकर व्याकुल और अचेत से होगये। उस समय अगस्त्यजी ने उनसे कहा कि तुमलोग चिन्ता मत करो मैं वातापी को पचा जाऊंगा १।४ हे राजन्! इसके पीछे इल्वल ने आसन पर बैठाकर वातापी का मांस अगस्त्यजी के आगे परोस दिया अगस्त्यजी अकेले उसके मांस को खागये। जब भोजन कर चुके तब इल्वल ने वातापी को पुकारा उसके पुकारने पर महात्मा अगस्त्यजी की गुदा से अपान वायु मेघ की समान गर्जती हुई निकली उसको सुनकर इल्वल बारबार पुकारने लगा हे वातापी! निकल, हे वातापी! निकल, तब अगस्त्यजी ने हँसकर कहा कि वातापी कहां से निकले उसको तो हम पचा गये यह सुनकर वह महाव्याकुल होगया ५। ६ और अपने मन्त्रियों सहित अगस्त्यजी से हाथ जोड़कर कहने लगा कि महाराज! आप किस काम के लिये पधारे हैं? और मैं आपका क्या काम करूं? १० यह सुनकर अगस्त्यजीने हँसकर कहा कि मुझको बहुत से धन की इच्छा है ये राजा लोग धनवान् नहीं हैं, तुमको हम धन का स्वामी और समर्थ जानते हैं सो तू अपने अधिक धन में से हमको धन दे जिससे दूसरे को पीड़ा न पहुँचे ११। १२ यह सुनकर इल्वल ने अगस्त्यजी को दण्डवत् की और कहा कि आप जितना धन चाहते हैं मैं आपको उससे अधिक धन दूंगा आप कहिये क्या चाहते हैं? अगस्त्यजी बोले कि हे दैत्येन्द्र! तू इन प्रत्येक राजाओं को दश दश सहस्र गौ और इतना ही इतना सुवर्ण दे और मुझको इससे दुगुना धन, एक सुनहरा रथ और दो घोड़े जिनका वेग मन की समान हो दे १३। १५ यह सुनकर उस दैत्य ने उन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सबको कहने से भी कुछ अधिक अधिक धन दिया और अगस्त्यजी को उनकी इच्छा के अनुसार एक सुनहरा रथ भी दिया जिसमें विराव और सुराव्रनामी दो घोड़े जुते हुए थे। अगस्त्यजी उस रथ में उन राजाओं और इल्वल के दिये हुए धनसहित बैठकर चल दिये और शीघ्र अपने आश्रम में जा पहुँचे इसके पीछे वे राजालोग अगस्त्यजी की आज्ञा पाकर अपने अपने देश को चले गये और अगस्त्यजी ने लोपामुद्रा की मनोकामना पूरीकी १६।१८ इसके उपरान्त लोपामुद्रा ने अगस्त्यजी से कहा कि महाराज ! आपने मेरी सब मनो-कामना पूरी की अब एक बलवान् पुत्र मुझे और दीजिये १९ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि हे सुन्दरि ! मैं तेरे व्रत से प्रसन्न हूं तू बता कि कैसा पुत्र चाहती है ? तू कहे तो तेरे सहस्रपुत्र हों अथवा उन सहस्र की तुल्य सौ पुत्र हों अथवा सौ की बराबर दश पुत्र हों या इन सबको जीतनेवाला एक ही पुत्र होवे २०।२१ यह सुनकर लोपामुद्रा बोली कि मैं सहस्रपुत्रों की तुल्य एक ही पुत्र चाहती हूं क्योंकि विद्वान् और साधु पुत्र एक ही होना बहुत से असाधुपुत्रों से श्रेष्ठ होता है २२ लोमशजी बोले हे युधिष्ठिर ! यह सुनकर अगस्त्यजी ने कहा 'तथास्तु' अर्थात् ऐसाही हो और समय के आने पर उस समानशील रखनेवाली लोपा-मुद्रा के साथ संगम किया २३ लोपामुद्रा के गर्भ रह गया अगस्त्यजी गर्भ धारण कराके वन को चले गये और वह गर्भ उनके पीछे सात वर्ष तक बढ़ा किया २४ जब सातवां वर्ष व्यतीत हुआ तब एक बालक बड़ा तपस्वी और ज्वलनस्वरूप वेदों के अङ्गों और उपनिषदों सहित पढ़ता हुआ गर्भ से उत्पन्न हुआ मुनि ने उसका नाम दृढ़स्यु रक्खा परंतु इसके पीछे जब वह बालअवस्था में इंधन का बोझ उठाकर आश्रम में ले आया तबसे अगस्त्यजी ने उसका नाम इध्मवाह रक्खा २५।२७ अगस्त्यजी ने इस प्रकार से संतान उत्पन्न की और उस संतान को वेद आदि के पाठ में तत्पर देखकर आप अत्यन्त प्रसन्न रहने लगे तबसे यह आश्रम अगस्त्यजी का कहलाता है संतान के उत्पन्न होने से अगस्त्यजी के पितरों को इच्छानुसार लोक मिल गये २८।२९ हे युधिष्ठिर ! अगस्त्यजी ने वातापी को उक्त रीति से नष्ट किया था यह रमणीक और गुण-युक्त आश्रम उन्हीं का है ३० और यह भागीरथी गङ्गा है जिसके तट पर देवता और गन्धर्व वास करते हैं देखो इसकी धारा कैसी बह रही है मानो वायु से प्रेरित पताका उड़ रही है और पहाड़ के शिखरों और शिलाओं के नीचे होकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कैसी निकली हुई जारही है मानो सर्पिणी है। यही गङ्गा दक्षिण दिशा के देशों को माता की समान पानी देती हुई गई है और शिवजी की जटा से निकल कर समुद्र की पटरानी बनी है। हे युधिष्ठिर! इस पवित्र नदी में तुम स्नान करो ३१। ३३ हे युधिष्ठिर! देखो यह तीनों लोकों में विख्यात भृगुतीर्थ है जिसमें महर्षि रहते हैं ३४ परशुरामजी ने इसी तीर्थ में स्नान करके अपने गये हुए तेज को पाया था तुमभी अपने भाई और द्रौपदी सहित इसमें स्नान करो इसमें स्नान करने से परशुरामजी की भांति तुमभी दुर्योधन से हारे हुए अपने तेज को फिर पावोगे ३५। ३६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों सहित उस तीर्थ में स्नान करके देवता और पितरों का तर्पण किया ३७ उसमें स्नान करने से युधिष्ठिर का स्वरूप दीप्त से भी दीप्त अर्थात् प्रकाशमान और उसके शत्रुओं का रूप अदृश्यतर होगया ३८ इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने लोमशऋषि से पूछा कि महाराज! मुझको यह सुनाइये कि परशुरामजी का तेज किसलिये हर लिया गया था और फिर क्योंकर मिला ३९ यह सुनकर लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर! मैं तुमको भार्गव परशुरामजी के चरित्र को सुनाताहूं। पहिले समय में श्रीविष्णुभगवान् ने रावण को मारने के लिये अयोध्यापुरी में राजा दशरथ के यहां रामचन्द्र के नाम से अवतार लिया था। हमने भी उस समय अयोध्या में रामचन्द्रजी के दर्शन किये थे ४०। ४१ हे राजेन्द्र! ऋचीक और रेणुका के पुत्र परशुरामजी उन दशरथनन्दन रामचन्द्र के अक्लिष्ट कर्मों को सुनकर उनके पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये बड़े आश्चर्य के साथ क्षत्रियों के नाश करनेवाले दिव्य धनुष को लिये हुए अयोध्यापुरी को गये राजा दशरथ ने अपने देशकी सीमापर परशुरामजी को आया हुआ सुनकर अपने पुत्र रामचन्द्र को उनके पास भेजा। जब रामचन्द्र परशुरामजी के पास पहुँचे तब परशुरामजी ने उनसे हँसकर कहा कि देखो मैंने इस धनुष से क्षत्रियों को काल के तुल्य मारा है ४२। ४६ हे भगवन्! जो तुम अपने को समर्थ जानते हो तो लो इस धनुष को चढ़ाओ। यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि महाराज! मुझको आपका अनादर करना उचित नहीं है, मैं क्षत्रियों के धर्म में अधम नहीं हूं, मैं जानता हूं कि ब्राह्मणों के निमित्त में क्षत्रियों का क्या धर्म है और इसके सिवाय इक्ष्वाकुवंशी राजालोग कभी अपने पराक्रम की श्लाघा नहीं करते हैं ४७।४८ यह सुनकर परशुरामजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बोले कि हे राघव! यह बात मत कहो और धनुष को लेकर चढ़ाओ। यह सुनकर दशरथनन्दन रामचन्द्र ने क्रोधित होकर परशुरामजी के हाथ से वह क्षत्रियों का नाश करनेवाला दिव्य धनुष लेलिया ४९। ५० और मन्द मन्द मुसकराकर इस प्रकार से उस धनुष को चढ़ाकर टंकोरा जैसे कोई बालक खेलते खेलते कोई काम कर डाले। उसके वज्र के समान टंकोरने के शब्द से सब प्राणी डर गये और रामचन्द्रजी ने परशुरामजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! मैंने धनुष आपके कहनेसे चढ़ादिया अब आप और क्या चाहते हैं? यह सुनकर परशुरामजी ने एक दिव्य बाण रामचन्द्रजीको दिया और कहा कि इसको धनुषपर चढ़ाकर धनुष को कानतक खींचो ५१।५३ तब रामचन्द्रजी ने कहा कि हे भार्गवजी! हमने जो यह सुना था कि आप बड़े घमण्डी हैं सो सत्यहै इस पर भी आपकी बात हम क्षमा ही करते हैं आपने ब्रह्माजीकी कृपा से क्षत्रियोंसे अधिक तेज पाया है इसी कारण से आप मेरी निन्दा करते हैं ५४।५५ अब तुम मेरे निज स्वरूपको देखो मैं तुमको दिव्यदृष्टि देता हूं इसके उपरान्त परशुरामजी ने रामचन्द्रजी के शरीर में बारहोंसूर्य, आठोंवसु, ग्यारहोंरुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, पितर, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, ब्रह्मरूपी सनातन, बालखिल्यऋषि, देवऋषि, समुद्र, पर्वत, वषट्कार, यज्ञ, वेद, उपनिषद्, साममन्त्र, धनुर्वेद, मेघ, चारों प्रकार के वर्ष और बिजलियां देखीं ५६। ६० उसी समय रामचन्द्रजी ने उस बाण को खींचकर छोड़दिया छोड़ते ही पृथ्वी शुष्क होगई उल्का गिरे धूल और मेह की वर्षा हुई पृथ्वी कांपनेलगी और दिशाओं में विना बजाये शब्द होने लगा और वह ज्वलित बाण परशुरामजी के तेज को खींचकर उन्हें विह्वल करके रामचन्द्रजी के पास लौट आया ६१। ६३ इसके पीछे जब परशुरामजी की विह्वलता दूर होगई तब उन्होंने प्राणों को फिर पाकर विष्णुभगवान् के तेज को प्रणाम किया और रामचन्द्रजी की आज्ञा के अनुकूल आप महेन्द्र पर्वत पर चलेगये और वहां भयभीत व लज्जित होकर रहनेलगे ६४। ६५ जब एकवर्ष इसी प्रकार से व्यतीत होगया तब परशुरामजी के पितरों ने उन्हें दुःखी और तेजरहित देखकर कहा कि हे पुत्र! तुमने विष्णुभगवान् को पाकर जो उनका अपमान किया था वह अच्छा नहीं किया क्योंकि विष्णुभगवान् तीनों लोकों में मान्य और पूज्य हैं ६६। ६७ अब तू वधूसरा नामी नदी को चलाजा वहांके तीर्थों में स्नान करने से तेरा तेज फिर ज्यों का त्यों होजायगा ६८ उस

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तीर्थ को दीसोद भी कहते हैं जहां तेरे प्रपितामह अर्थात् बाबा ने बड़ी तपस्या की थी ६९ सो हे युधिष्ठिर! परशुरामजी ने पितरों की आज्ञा से यहां आकर इस तीर्थ में स्नान किये थे और फिर अपने तेज को पाया था ७० परशुरामजी विष्णुभगवान् से मिलकर इस प्रकार से इस तीर्थ को आये थे ॥ ७१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सौवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से इन्द्र के वज्र के निर्माण होने की कथा कहना।

इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजवर्य, लोमशजी! मैं उन बुद्धिमान् महर्षि अगस्त्यजी के कर्मों को फिर विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ यह सुनकर लोमशजी बोले अच्छा हम अगस्त्यजी की दिव्य अद्भुत और अतिअमानुष कथा और उनके प्रभाव का व्याख्यान कहते हैं तुम सुनो २ सत-युग में कालकेय नामी दानवों का जत्था बड़ाघोर, दुर्मद और दारुण होगया था उन्होंने वृत्रासुर को आगे करके नानाप्रकार के अस्त्र शस्त्र उठालिये और इन्द्रादिक देवताओं से युद्ध करने को उद्यत होगये ३ । ४ देवता उन्हें देखकर वृत्रासुर के मारने का यत्न करनेलगे और इन्द्र को आगे करके ब्रह्माजी के पासगये ५ ब्रह्माजी उन हाथ जोड़े हुए देवताओं को देखकर कहनेलगे कि तुमलोगों के काम को मैं अच्छीतरह जानता हूं अब मैं तुमसे वृत्रासुर के मारने का उपाय कहता हूं पृथ्वी पर दधीचि नामी एक बड़े उदार महर्षि हैं ६ । ७ तुम सबलोग उनके पास चले जाओ और उनसे वर मांगो वे तुम लोगों को अपने अन्तःकरण से वरदान देंगे ८ तुम सबलोग उनसे यही कहना आप तीनोंलोकों का हित करने के लिये अपने हाड़ हमलोगों को दीजिये ९ तुम्हारे ऐसा कहने से वे ऋषि अपना शरीर त्यागकर तुमको अपने हाड़ दे देंगे उनसे तुमलोग एक बड़ा घोर और दृढ़ वज्र बनाना १० वह वज्र छः कोने रखनेवाला और भया-नक शब्द करनेवाला होवेगा इन्द्र उस वज्र से वृत्रासुर को मार सकेगा ११ इससे तुम सब अब जाकर इस यत्न को करो यह सुनकर सब देवता ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर और विष्णुभगवान् को आगे करके दधीचिऋषि के आश्रम को आये जो सरस्वती नदी के तट पर था वह आश्रम नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से घिरा हुआ था १२ । १३ भौंरे उसमें गूंज रहे थे कोकिला आदि पक्षी मधुर मधुर बोलियां बोल रहे थे, छोटे छोटे जीव जहां तहां नाद कर रहे थे, भैंसे, वाराह,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सूमर और चमर आदि पशु सिंह के भय को छोड़कर बिचर रहे थे १४।१५ सुन्दर सरोवरों में मतवाले हाथी और हथिनियां स्नान और क्रीड़ा कर रहे थे और सिंह-व्याघ्र और गुहा कन्दराओं में रहनेवाले जीव गर्ज गर्ज कर फिर रहे थे निदान उस आश्रम की शोभा स्वर्ग के तुल्य थी देवताओं ने उस आश्रम में जाकर दधीचिऋषि को देखा जो सूर्य की तुल्य तेजस्वी और अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे और इसप्रकार से विराजमान थे मानो ब्राह्मलक्ष्मी से शोभित ब्रह्माजी हैं १६।१९ उनको देखकर सब देवताओं ने उनके चरणों में नमस्कार किया और ब्रह्माजी के कहने के अनुसार उनसे वरदान मांगा २० इसके उपरान्त दधीचिऋषि ने प्रसन्न होकर कहा कि हे देवताओ! मैं तुम्हारे हित के लिये अब अपने प्राण छोड़ता हूं यह कहकर उस जितेन्द्रिय ऋषिने अकस्मात् अपने प्राण छोड़ दिये और देवताओं ने दशरीति के अनुसार उस ऋषि की हड्डियां ले लीं २१।२२ और जय चाहनेकी इच्छासे प्रसन्नहोकर त्वष्टा देवता के पास चलेआये और उसको वे हड्डियां देकर उससे अपना प्रयोजन कह सुनाया त्वष्टादेवता ने उनकी बात सुनकर प्रसन्नता से यत्नपूर्वक उन हड्डियों का एक बड़ा उग्ररूप वज्र बनाया और हर्ष से उसे इन्द्र को देकर कहने लगा कि आप इस वज्र से उस उग्र असुर को मारकर भस्म कीजिये और स्वस्थ होकर सुख से स्वर्ग का राज्य कीजिये यह सुनकर इन्द्र ने प्रसन्न होकर वह वज्र ले लिया ॥ २३।२५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकसौ एक का अध्याय ।

इन्द्र का वृत्रासुर को मारना और दैत्यों का सब जगत् को नाशकरने की सलाह करना ।

लोमशजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे वज्रधारी इन्द्र बलवान् देवताओं से रक्षित होकर वृत्रासुर दैत्य से युद्ध करने को सम्मुख गया जो पृथ्वी और आकाश को रोकेहुए था और जिसके चारोंओर कालकेय नामी असुर जिनके शरीर पर्वतों के तुल्य थे अस्त्र शस्त्र लिये व खड़ेहुए रक्षा कर रहे थे १।२ दो घड़ी तक उन दोनों का ऐसा युद्ध हुआ कि लोकों को बड़ा भय होगया उन दोनों के परस्पर खड्गों के प्रहार करने का शब्द बड़ा भयानक होता था और उन दैत्यों के आकाश से कटकर गिरे हुए शिर पृथ्वी पर ऐसे दीखते थे मानों ताड़ के पेड़ में से ताड़ के फल गिरकर फैले हुए हैं ३।५ इसके उपरान्त काल-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

केय दैत्यों ने जो सुनहरी कवच धारण कियेहुए थे देवताओं पर दावानल से जलतेहुए वृक्षों की तुल्य परिघ नामी शस्त्रों की वर्षा की ६ देवता उन अभिमानी दैत्यों के वेग को न सह सके और घायल हो होकर भागे इन्द्र उनको इस प्रकारसे भागते हुए और वृत्रासुर को अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर मोहित होगया ७।८ और उसने कालकेय दैत्यों से भयभीत होकर भागकर नारायण की शरण ली ६ विष्णु भगवान् ने इन्द्र को इस प्रकार से भागा हुआ और मोहाविष्ट हुआ देखकर अपना तेज दिया और उसके पराक्रम को बढ़ा दिया उस समय इन्द्र को विष्णु से रक्षित देखकर सब देवता और ब्रह्मऋषियों ने भी अपना अपना तेज उसमें धारण करदिया १०।११ और इन्द्र उन सबके तेज को पाकर बलवान् होगया उस समय वृत्रासुर इन्द्र को अपनेसे बलवान् देखकर गर्जनेलगा उसकी गर्जना से पृथ्वी आकाश स्वर्ग और पर्वत डामाडोल होगये और इन्द्र ने उसको सुनकर और भयभीत होकर वृत्रासुर के मारने के लिये अपना वज्र छोड़दिया १२।१४ वज्र के लगते ही वह सोने की माला धारण करनेवाला दैत्य इसप्रकार से गिरपड़ा जैसे अगले समय में मन्दराचल पर्वत विष्णुभगवान् के हाथ से गिरा था १५ उसके मरने पर इन्द्र डरकर सरोवर में छिपनेको दौड़ा और उसने यह नहीं जाना कि वज्र मेरे हाथ से छुटा है और वह दैत्य मारागया है १६ सब देवता और इन्द्र की स्तुति करनेवाले महाऋषि बहुत प्रसन्न हुए और सब देवता शीघ्रता से सर्व दैत्यों को मारनेलगे १७ तब दैत्य देवताओंसे भयभीत होकर समुद्रमें भागकर जा छिपे और वहां छिपकर आश्चर्य करके तीनोंलोकों को नाशकरनेकी इच्छासे आपस में अनेक उपाय कहकहकर विचार करनेलगे कि प्रथम हमको विद्यावान् और तपस्वियों को मारना उचित है क्योंकि सबलोकों का जीवन केवल तपही से है इससे तपको क्षयकरने के लिये हमें तपस्वी,धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञानियोंको मारना उचितहै उनके मरनेपर यहजगत शीघ्र नष्ट होजायगा वे दैत्य जगत् को नाश करने की इच्छासे इसप्रकार की आपस में सलाहकरके उस समुद्र में रहनेलगे जो दुर्ग और रत्नों की आकर है॥ १८।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥

एकसौ दो का अध्याय।

कालकेय दैत्यों का तपस्वियों को भक्षण करना और देवताओं का नारायण से विनय करना।

लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! कालकेय दैत्य उक्त प्रकार से वरुण के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

स्थान और जल के निधि समुद्र में रहकर तीनों लोकों का नाश करनेलगे १ वे दैत्य महाक्रोधित हुए दिन में तो समुद्र में रहते थे और रात्रि में समुद्र से निकलकर पुण्यस्थान और आश्रमों में जाकर मुनियोंको भक्षण करते थे २ वशिष्ठजी के आश्रम में इन दुरात्मा दैत्यों ने जाकर आठसहस्र और सत्रह तपस्वी ब्राह्मण भक्षण कर लिये ३ और च्यवनऋषि के आश्रम में ऐसे सौ मुनियों को मारकर खागये जो केवल फल का आहार करनेवाले थे ४ और भरद्वाज के आश्रम में बीस तपस्वी नष्ट करडाले ये तपस्वी ब्रह्मचारी, वायुभक्षी और जलाधारी थे हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से उन कालकेय दैत्यों ने जो मृत्यु से ग्रस्त बल से मतवाले और ब्राह्मणों को मारनेवाले थे उन्होंने मुनियों के सब आश्रमों को नष्ट करदिया ५।७ दैत्यों के इस हाल को किसी मनुष्य ने नहीं जान पाया जब प्रातःकाल होता तब लोग उन मुनियों के आश्रमों को आकर देखते कि उनमें वे तपस्वी लोग मरे हुए इस प्रकार से पड़े हैं कि उनमें न मांस है न लोहू है मज्जा और आंतें भी नहीं हैं हड्डियां जहां तहां फैलरही हैं स्रुवे कलश टूटे हुए पड़े हैं और अग्निहोत्र की आग फैली हुई पड़ी है ८।११ इस प्रकार से कालकेय असुरों के भय से वेदपाठ और यज्ञोत्सव बन्दहो जाने के कारण से जगत् निरुत्साह होगया १२ और मनुष्य भयभीत होकर अपनी अपनी रक्षा के लिये दिशा और विदिशाओं में भागने लगे बहुत से पहाड़ों की कन्दराओं में जा छिपे बहुतसे झरनों में घुसगये और बहुतों ने भय से अपने प्राण छोड़ दिये १३।१४ उस समय जो जो बड़े बड़े शूरवीर और बाणैत थे उन्होंने उन दैत्यों के मारने के लिये बड़े बड़े यत्न किये और बड़ा परिश्रम किया परन्तु उन समुद्रमें रहनेवाले दैत्योंका पता नहीं पाया अन्त में कोई घर लौट आये और कोई उसी यत्नके करने में मरगये १५।१६ हे युधिष्ठिर! इसके पीछे यज्ञ और क्रियाओं के बन्द होजाने के कारण जगत् के नष्ट होजाने से देवताओं को बड़ा दुःख हुआ १७ और वे इन्द्रसहित मन्त्रकरके वैकुण्ठधाम में उन श्रीनारायण के पास गये जो अजन्मा, शरणरूप, समर्थ और अपराजित हैं और उनको नमस्कार करके कहने लगे १८।१९ कि महाराज! आप इस जगत् के और हम सबके रचनेवाले और विश्व के नाश करनेवाले हैं २० हे कञ्जलोचन! पहिले समय में आपही ने वाराहरूप धरकर जगत् का हित करने के लिये इस पृथ्वी को जो समुद्र में नष्ट हुई जाती

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

थी ऊपर उठालिया था २१ आपने ही नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु नाम बड़े पराक्रमी दैत्य को मारा था और वामनरूप धरकर बलि नामी महा असुर को जो सब जीवों से अवध्य था तीनोंलोकों के राज्य से भ्रष्ट किया था २२। २३ और क्रूरजम्भ नामी दैत्य को भी जो बड़ा बाणैत और यज्ञ का विध्वंस करनेवाला था आपने मारा था २४ हे महाराज! आपने इसीप्रकार से अनेक काम किये हैं हम उनकी गिनती कहांतक करें अब इस समय में हम भय से डरेहुओं की आपही शरण हैं २५ हे देवाधिदेव! हमलोग लोक के अर्थ से आपकी प्रार्थना करते हैं कि आप इस बड़ेभय से इन सब लोकोंसमेत देवताओं की और इन्द्र की रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौ तीन का अध्याय।

देवताओं का नारायण की स्तुति करना और उनकी आज्ञा से अगस्त्यजी के पास जाकर उनकी स्तुति करना।

देवता बोले हे नारायण! आपकी कृपा से संसार में चारों प्रकार की प्रजा बढ़ती जाती है और वह प्रजा हव्य और कव्य से देवता और पितरों को तृप्त करती है १ और आपसेरक्षित रहने से निर्भय बसती है परन्तु अब यह बड़ा भारी भय प्राप्त हुआ है हम नहीं जानते हैं कि रात्रि में कौन ब्राह्मणों को आकर मारजाता है सो जो ब्राह्मण क्षय होजायँगे तो पृथ्वी का नाश होजा-यगा और पृथ्वी के नाश होने से स्वर्ग भी न रहेगा २। ४ हे जगत्पते! जो आपही रक्षा करेंगे तो आपकी कृपा से सबलोकों का नाश न होगा ५ यह सुनकर विष्णुभगवान् बोले कि हे देवताओ! मैं इस प्रजा के क्षय होने का कारण जो जानता हूं तुम भी सुनो तुमसे भी कहता हूं ६ कालकेय नामी दैत्यों ने जिन्हों ने वृत्रासुर के आश्रय होकर सब जगत् को नष्ट किया था उन्होंने वृत्रासुर के—इन्द्र के हाथ से—मारेजानेपर अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये महासमुद्र में वास किया है वे ही दैत्य अपने मन में सब लोकों को नाश करना विचार कर रात्रि में ऋषियों को मारते हैं ७। ६ सो समुद्र में रहने के कारण से तुमलोग उन दैत्यों को नहीं मारसकते हो, इससे ऐसा उपाय करो कि समुद्र न रहे १० समुद्र को विना सुखाये दूसरे उपाय से ये दैत्य नहीं मरेंगे और समुद्र को सुखानेवाला अगस्त्यजी के सिवाय दूसरा सामर्थ्य नहीं रखता है ११ यह सुनकर सब देवता ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर अगस्त्यजी के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आश्रम को गये और वहां उन्होंने अगस्त्यजी को जो मैत्रावरुण के पुत्र और दीप्त तेजधारी थे ऋषियों के बीच में इसप्रकार से बैठा हुआ देखा मानों देवताओं के बीच में ब्रह्माजी बैठे हैं १२ । १३ उन महात्मा, तपोराशि और अच्युत को देखकर देवता स्तुति करनेलगे कि हे अगस्त्यजी! पहिले समय में जब जगत्‌को नहुष ने दुःख दिया था तब आपही लोकों की शरण हुए थे और आपने ही उस लोक के कण्टकरूप नहुष को स्वर्ग से भ्रष्ट किया था १४।१५ और जब विन्ध्याचल पर्वत सूर्यपर क्रोध करके सूर्य का रथ रोकने के लिये बढ़ा था तब भी आपने ही उसके बढ़नेको रोका था कि वह फिर न बढ़सका १६ और जब सब संसार में अंधेरा फैलगया था और प्रजा मृत्यु से बड़ी पीड़ित हुई थी, तब भी आपही की रक्षा से जगत् को सुख मिला था १७ सो हे भगवन्! हम सबलोग भय से डरे हुए हैं और आपकी शरण हैं, आपसे हम वर मांगते हैं, कृपा करके हमको वरदान दीजिये ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

एकसौ चार का अध्याय ।

लोमशऋषि का युधिष्ठिर से विन्ध्याचल के बढ़ने का कारण कहना और देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्यजी का समुद्र के पास जाना ।

उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे लोमशजी ! विन्ध्याचल पर्वत किस कारण से क्रोध करके मूर्च्छित होकर अकस्मात् ऊंचा होगया था मैं इस कारण को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ लोमशजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि उदय और अस्त होनेवाले सूर्य ने पर्वतों के राजा कनक पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा की थी, उसको देखकर विन्ध्याचल पर्वत ने सूर्य से कहा कि जैसे आप सुमेरु पर्वत के चारों ओर घूम कर उसकी प्रदक्षिणा करते हैं, हे भास्कर ! उसी प्रकार से मेरी प्रदक्षिणा भी कीजिये; यह सुनकर सूर्य ने उत्तर दिया २ । ४ कि मैं मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा अपनी इच्छासे नहीं करताहूं; किन्तु यह मार्ग मेरे घूमनेके लिये उसने नियत कर दियाहै; जो इस विश्व का रचनेवालाहै ५ यह सुनकर विन्ध्याचलपर्वत सूर्य और चन्द्रमा के मार्गको रोकने के लिये अकस्मात् ऊंचा होनेलगा ६ उस समय सब देवताओंने आकर विन्ध्याचल पर्वतको अनेक उपायों से बढ़ने से रोकना चाहा, परंतु विन्ध्याचल ने उनकी बात नहीं मानी ७ तब सब देवता अगस्त्य मुनि के पासगये जो बड़े धर्मधारी, तपस्वी और अपने आश्रम में विराजमान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

थे और उनसे अपने चित्तकी वृत्ति कहकर ८ बोले कि महाराज! यह शैलराज विन्ध्याचल क्रोध के कारण से सूर्य चन्द्रमा के मार्ग और नक्षत्रों की गति को रोकना चाहताहै ९ अब हे द्विजोत्तम! आपके सिवाय कोई इसको बढ़नेसे नहीं रोकसकता है, इससे आपही इसको रोकिये १० अगस्त्यजी देवताओं का यह वचन सुनकर अपनी स्त्रीसहित विन्ध्याचलके पासगये औरउससे कहनेलगे ११ कि हे पर्वतों में उत्तम! मैं किसी कामके लिये दक्षिणदिशाको जाना चाहताहूं, तू मुझको जानेको राहदे १२ हे शैलेन्द्र! जबतक मैं लौटकर आऊं, तबतक मेरी बाट देखियो, मेरे लौट आनेपर तू इच्छा के अनुसार बढ़ियो, सो हे युधिष्ठिर! अगस्त्यजी विन्ध्याचल से इस प्रकार नियम करके दक्षिण दिशा को चले गये और वहांसे अभीतक नहीं लौटे हैं १३ । १४ सो अगस्त्यजी ने इस प्रकार विन्ध्याचल को बढ़ने से रोका था यह कथा जो तुमने हमसे पूछी थी समाप्त हुई अब मैं तुमसे अगस्त्यजीका दूसरा वृत्तान्त कहता हूं जिसमें देवताओंने अगस्त्यजी से वरदान पाकर कालकेय दैत्योंको मारा था १५।१६ अगस्त्यजी देवताओं की बात को सुनकर बोले कि तुमलोग किसकारण आये हो और मुझसे क्या वरदान चाहते हो? यह सुनकर देवता मुनिजी से बोले १७ कि हे महात्मन्! हम चाहते हैं कि आप इस महासमुद्र को पीजायँ जिससे हम लोग उन देवद्रोही कालकेय दैत्यों को उनके साथियों सहित मारसकें १८ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि मैं ऐसा करके तुम्हारी मनोकामना पूरी करूंगा और लोकों को बड़ा सुखदूंगा १९ हे सुव्रत! यहकहकर अगस्त्यजी देवता तपस्वी सिद्ध और ऋषियों को साथ लियेहुए नदियों के स्वामी समुद्रकेपास गये २० और उस आश्चर्यकी बातको देखने के लिये मनुष्य, उरग, गन्धर्व, यक्ष और किंपुरुष भी उन महात्मा के पीछेपीछे चलेगये २१ थोड़ेही कालमें सबको साथ लियेहुए उस भीमनादकारी समुद्रके तटपर जा पहुँचे. जिसका शब्द बड़ा भयानक था और लहरोंसे नाचता हुआ वायुसे हिलतेहुए फेनसे हँसताहुआ सो दिखाई देताथा, उसमें अनेकप्रकार के ग्राहरहतेथे और नानाप्रकारके पक्षी उसके तटपर वास कररहेथे॥ २२।२४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

एकसौपाँचवाँ अध्याय।

अगस्त्यजी का समुद्र को पीना देवताओं का दैत्यों को मारना।

जब समुद्र के तटपर पहुँच गये, तब मित्रावरुण के पुत्र भगवान् अगस्त्यजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ने सब साथी देवताओं व ऋषियों से कहा कि मैं लोकों का हित करने के लिये समुद्र को पियेलेता हूं, तुम्हें जो कुछ करना हो सो करो यह कहकर अगस्त्यजी ने सबलोकों के देखते देखते समुद्र को पीलिया १।३ यह देखकर इन्द्रादिक देवता चकित होगये और अगस्त्यजी की स्तुति करनेलगे ४ कि हे लोकभावन! आप हमारे रक्षक और लोकों के विधाता हैं आपकी कृपा से सब देवता और सब जगत् बच गया ५ उससमय गन्धर्वों के सब प्रकार के बाजे बजाने देवताओं के पूजन और फूलों की वर्षा करनेपर अगस्त्यजी ने समुद्र का सबजल सुखादिया ६ तब सब पराक्रमी देवता समुद्र को सूखा हुआ देखकर बड़े प्रसन्न हुए और दिव्य और उत्तम आयुध ले ले कर दैत्यों को मारनेलगे, उस समय वे दैत्य उन महाबली और वेगवान् देवताओं के वेग को न सहसके ७।८ परन्तु हे भरतसत्तम! उन्होंने भयानक शब्द कर कर के दो घड़ीतक देवताओं से बड़ा भयानक तुमुल युद्ध किया ९ और अन्त में शुद्ध अन्तःकरण मुनियों के तप से शापित होने के कारण मारेगये और रणभूमि में सुनहरी कुण्डल और बाजूबन्द आदि आभरण धारण किये पड़ेहुए ऐसे दीखते थे मानों टेसू के वृक्ष फूलेहुए हैं १०।११ उस समय हे मनुजाधिप! बहुत से दैत्य, जोकि मारने से बचगये थे वे भयभीत होकर पृथ्वी को फाड़कर पाताललोक को चलेगये १२ और देवता उनको इस प्रकार से मरेहुए और पराजित देखकर नानाप्रकार के वाक्यों से मुनिनायक अगस्त्यजी को प्रसन्नकरतेहुए बोले १३ कि महाराज! आपकी कृपा से लोकों को बड़ा सुख मिला और आपके ही तेज से ये पराक्रमी दैत्य मारेगये अब आप कृपा करके समुद्र को फिर पूर्ण करदीजिये और जो जल आपने पीलिया है, उसको इसमें फिर छोड़ दीजिये १४।१५ यह सुनकर अगस्त्यजी बोले कि मैं समुद्र के पानी को पीकर पचागया, अब तुम सबको समुद्र के पूर्ण करने के लिये दूसरा उपाय करना उचित है, यह महर्षि का वचन सुनकर १६।१७ सब देवता विस्मित और व्याकुल होगये, हे महाराज! उस समय सब प्रजा के लोग परस्पर आज्ञा मांग व मुनिनायक अगस्त्यजी को प्रणाम कर करके अपने अपने स्थानों को चलेगये और देवता विष्णु भगवान् को लेकर ब्रह्माजी के पासगये १८।१९ फिर समुद्र के पूर्ण करने की सलाह करके हाथ जोड़कर कहने लगे कि समुद्र के पूर्ण होने का यत्न कीजिये॥२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ छठवाँ अध्याय।

लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से समुद्र के पूर्णहोने में राजासगर के संतति होने की कथा कहना।

लोमशजी बोले कि हे राजन्! लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओं की उक्त बात को सुनकर बोले कि हे देवताओ! तुमसब अपनी इच्छा के अनुसार अभी जाओ, अब से बहुत दिनों के पीछे भगीरथ नामी राजा होगा, वह अपनी जाति वाले मनुष्यों के कारण से समुद्र को ज्यों का त्यों करदेगा १। २ यह विधाता का वचन सुनकर सब देवता अपने अपने लोकोंको चलेगये और उससमय के आने की बाट देखनेलगे ३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज! जातिवाले मनुष्य इसमें क्यों और किसप्रकारसे कारणहुए और समुद्र महाराजा भगीरथ के सम्बन्ध से किस प्रकार से पूर्ण हुआ ४ हे विप्रजी! मैं इन राजा के उत्तम चरित्र को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं ५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! महात्मा, धर्मराज, युधिष्ठिर की बात सुनकर लोमश ऋषि महात्मा सगर का माहात्म्य वर्णन करने लगे ६ कि इक्ष्वाकु के वंश में एक सगर नाम का राजा बड़ा बलवान्, रूपवान्, सत्यवादी और प्रतापी हुआ था, परंतु उसके कोई पुत्र न था ७ इस राजा ने हैहय और तालजंघ देशों को जीतकर उन देशों के राजाओं को अपने वश में करलिया था ८ उसके वैदर्भी और शैव्यानाम की युवती व बड़ी स्वरूपवती दो रानियां थीं ९ उस राजा ने पुत्र की कामना से अपनी दोनों स्त्रियों सहित कैलास पर्वतपर जाकर बड़ी तपस्या की १० उससे वह शिवजी महाराज, जो महात्मा, तीन नेत्रधारी, त्रिपुर के मारनेवाले, आनन्दकर्त्ता, ईशान, पिनाक धनुष्धारी, शूल धारण करनेवाले, उग्रेश, उमापति और अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, प्रसन्न हुए; और उन्होंने उनको अपने दर्शन दिये ११। १२ उस समय उस महाभुजशाली राजा ने उन वरदायक को देखते ही रानियों सहित उठकर दण्डवत् की, और पुत्र मिलने की प्रार्थना की १३ तब शिवजी ने कहा कि हे राजन्! जिस मुहूर्त्त में तैंने हमसे वरदान मांगा है उस मुहूर्त्त के फल के कारण से तेरे एक स्त्री से साठ सहस्र पुत्र बड़े शूरवीर और घमण्डी होंगे, और वे सब एक साथ ही नाश होजायँगे। परंतु दूसरी स्त्री के एक पुत्र बड़ा शूरवीर और तेरे बंश का चलानेवाला होगा १४। १६ यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये और राजा सगर भी अपने स्थान को चला आया १७ और बड़ी प्रसन्नता से उसने अपनी स्त्रियों सहित घर में प्रवेश

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

किया, थोड़े काल में उसकी कमललोचना वैदर्भी और शैव्या, दोनों स्त्रियां गर्भवती होगईं और गर्भ के समय के बीतने पर वैदर्भी के एक तोंबा-सा उत्पन्न हुआ, और शैव्या के एक देवरूपी पुत्र हुआ, राजा ने उस तोंबे को त्याग करने का विचार किया १८ । २० परंतु उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे राजन्! तू ऐसा साहस मत करे, तुझे पुत्रों को त्यागना उचित नहीं है । अब तू इस तोंबे के भीतर से बीजों को निकाल ले और एक एक बीज को एक एक घृत के भरे हुए पात्र में रखवा कर उनकी रक्षा कर, ऐसा करने से कुछ दिनों में तेरे साठ सहस्र पुत्र होंगे, महादेवजी ने तेरे पुत्रों के होने का इसप्रकार से उपाय रचा है, तू अपनी बुद्धि को इसके विपरीत मत करे ॥ २१ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौ सातवाँ अध्याय ।

राजा सगर की अश्वमेधयज्ञ का वृत्तान्त और उनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रों की कथा ।

लोमशजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! नरनायक, राजाधिराज, राजा सगर ने आकाशवाणी सुनकर उस बात में श्रद्धा की, और उस तोंबे के भीतर के बीज निकाल कर एक एक बीज को एक एक घी से भरे हुए घड़े में रखदिया और एक एक घड़े पर एक एक धात्री रक्षा के लिये नियत कर दी, जब बहुत-सा काल व्यतीत हो गया; तब उन घड़ों से क्रमपूर्वक एक एक पुत्र निकला, इस प्रकार से शिवजी की कृपा से उस असमान तेजधारी राजा सगर के साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए, वे सब घोर, क्रूरकर्मी, आकाश में चलनेवाले, देवताओं को भी अपने सामने कुछ न गिननेवाले, बड़े योद्धा और शूरवीर हुए १ । ५ उन मन्दबुद्धियों ने सब लोक, देवता, गन्धर्व, राक्षस और अन्यान्य प्राणियों को बड़ी पीड़ा पहुँचाई, उनसे दुःखी होकर सब लोक और देवता ब्रह्माजी की शरण गए ६ । ७ महाभाग, सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी ने उन सबसे कहा कि तुम लोग अपने अपने स्थानों को जाओ ८ सगर के सब पुत्र अपने घोर कर्मों के कारण से थोड़े ही काल में नाश हो जायँगे ९ हे मनुजेश्वर! यह सुनकर सब देवता और सब लोक ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर अपने अपने स्थानों को चले आये १० जब बहुत दिन बीतगये, तब राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षा ली ११ और उसके पुत्रों से रक्षित यज्ञका घोड़ा बड़े यत्नसे पृथ्वीपर घुमाया गया, जब घूमते घूमते वह घोड़ा जलरहित भीम दर्शनवाले समुद्र में

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पहुँचा तब अकस्मात् अन्तर्धान होगया, राजा सगर के पुत्रों ने उस घोड़े को हरा हुआ जानकर अपने पिता से उसके अदृश्य होजाने का वृत्तान्त कह सुनाया, तब राजा ने उन पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम सबलोग चारों दिशाओं में जाकर घोड़े को ढूंढ़ो १२ । १४ हे महाराज! पिता की आज्ञा से उन पुत्रों ने सब पृथ्वी और चारों दिशाओं में घोड़े को ढूंढ़ा, परंतु न वह घोड़ा ही मिला न उसके लेजानेवाले का पता लगा १५ । १६ तब वे पुत्र लौटकर राजा के पास आए और उन्होंने सम्मुख हाथ जोड़ खड़े होकर कहा कि महाराज! हम सब पृथ्वी, समुद्र, वन, पर्वत, द्वीप, नदी, कन्दरा, वन और देशों में घोड़े को ढूंढ़ आए, कहीं घोड़े अथवा उसके लेजानेवाले का पता नहीं मिलता है, यह सुनकर राजा सगर क्रोध से मूर्च्छित सा होगया १७ । १६ और भावी के वश होकर सब पुत्रों को आज्ञा दी कि हे पुत्रो! तुमलोग जाकर फिर उस यज्ञ के घोड़े को ढूंढ़ो और जब तक वह न मिले, तब तक हमारे पास लौटकर मत आओ; यह सुनकर उन पुत्रों ने पिता की आज्ञा अङ्गीकार की, और पृथ्वी पर घोड़े को ढूंढ़ना आरम्भ किया, एक स्थान पर ढूंढ़ते ढूंढ़ते उनको पृथ्वी फटी हुई दिखाई दी २० । २२ उसे देखकर उन्होंने कुदालियां और फावड़े लेकर उस समुद्र की पृथ्वी को खोदना प्रारम्भ किया, उससे समुद्र को बड़ी पीड़ा हुई और उसमें जो असुर, उरग, राक्षस और नाना प्रकार के जीव रहते थे, वे ताड़ित होने से महादुःखी होकर चिल्लाने, पुकारने लगे २३ । २५ उस समय सैकड़ों व सहस्रों प्राणियों के शिर कट गये, सैकड़ों के धड़ गिर गये और सैकड़ों की त्वचा, हाड़ और मांस भिन्न भिन्न होकर बिखर गये २६ इसप्रकार से उन सगर के पुत्रों ने बहुत दिनोंतक समुद्र को खोदा, परंतु घोड़े का कुछ पता नहीं मिला २७ तब उन्होंने क्रोध करके समुद्र के पूर्व और उत्तर के देशों को यहांतक खोदा कि पृथ्वी को पातालतक भेदन किया, जब पाताल में पहुँचे, तब उन्होंने उस घोड़े को वहां फिरते हुए और कपिल मुनि को, जो अपने तेजसे ऐसे दीप्त हो रहे थे, मानो अग्नि प्रज्वलित होरही है, बैठे हुए देखा २८ । २६ घोड़े को देखकर उनका रोम रोम प्रसन्न होगया और वे काल से प्रेरित होने के कारण कपिलजी का अनादर कर क्रोधित होकर घोड़े के पकड़ने को दौड़े, यह देखकर कपिलजी जिनको वासुदेव कहते हैं क्रोधित होगए और उन्होंने अपने एक नेत्र को खोलकर उन सगर के पुत्रों पर अपने तप के तेज को डाल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से करदे, जो सोने की माला पहिरेहुए है १३ जब हम सभा में जाकर परिडतों से शास्त्रार्थ करेंगे और विवाद में बन्दी को जीत लेंगे तब तुझको जानपड़ेगा कि कौन छोटा और कौन बड़ा है १४ और राजा को भी सब समाज सहित उसी समय छुटाई बड़ाई देखपड़ेगी १५ द्वारपाल बोला कि अभी दशवर्ष की तुम्हारी आयु है, तुम वृद्ध और, ज्ञानी परिडतों के बीच में नहीं जा सकते हो, परंतु मैं तुम्हारे भीतर जाने का यह उपाय करता हूं कि मैं द्वार छोड़कर जाता हूं तुम मेरे पीछे भीतर घुसकर राजा के पास चलेजाना; इसके पीछे अष्टावक्र ने वैसाही किया और राजा के पास पहुँचकर कहने लगा १६ कि आप सब पृथ्वी के राजा हैं, सब प्रकार की ऋद्धि भी आपके पास है और राजाययाति के समान यज्ञ भी आपने किये हैं, मैं आपके पास ब्राह्मणों से यह सुनकर आया हूं कि आपके यहां एकनिर्भय बन्दीनामी परिडत है वह शास्त्रार्थ करनेवालों को हारजानेपर आपकी आज्ञा से आपके आदमियों से पकड़वाकर जल में डुबवा देता है, मैं अद्वैत ब्रह्म का वर्णन करूंगा मुझे बताइये कि वह बन्दी कहां है ? मैं उसको इस प्रकार से नाश किया चाहता हूं जैसे सूर्य के उदय होने पर सब तारागण छिपजाते हैं १७ । १८ यह सुनकर राजा बोला कि तुम दूसरे के बल को न जानने के कारण से बन्दी के जीतने को कहते हो, बन्दी बड़ा परिडत है, उस से वेदपारग ब्राह्मण शास्त्रार्थ नहीं कर सकते हैं, तुमको उसके विषयमें ऐसा कहना कब योग्य है ? तुम अभी बन्दी को जानते नहीं हो, उससे ऐसा कहते हो, तुमसे पहिले भी बहुत से ब्राह्मण उस बन्दी से मिले, परंतु वे सब उसके सम्मुख इसप्रकार से अस्त होगये जैसे सूर्य के सम्मुख तारागण अस्त होजाते हैं बहुत से ब्राह्मण अनेक बातें कहते हुए विज्ञान में मतवाले होकर बन्दी को जीतने की इच्छा से शास्त्रार्थ करने आये परंतु सब परास्त होगये २० । २२ यह सुनकर अष्टावक्र बोले कि हे राजन् ! बन्दी को अभी हमसा वादी नहीं मिला है, इस कारण से वह सिंहरूप होकर भय छोड़कर वाद करता है; अब मुझसे शास्त्रार्थ करने पर वह इस प्रकार से प्राणरहित होगा जैसे राहमें पहिये टूटजाने पर छकड़ा पड़ा रहता है २३ यह सुनकर राजा बोला कि तीसकला, बारहअंश, चौबीस पर्व और तीनसौ साठ अरा अर्थात् वह कालचक्र जिसमें सूर्य और चन्द्रमा आदि नक्षत्र घूमाकरते हैं और उनके घूमने से तीनप्रकार के वर्ष होते हैं एक सावन जो तीनसौ साठ दिन का होता है, दूसरा सौर जिनमें तीनसौ पैंसठ दिन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और पन्द्रह घड़ी होती हैं और तीसरा चान्द्र जो तीनसौ चौवन दिन का होता है इनके होने के प्रयोजन को जो जानता है वही बड़ा पण्डित है २४ अष्टावक्र बोले कि वह चौबीस पर्व, छै नाभि, बारह प्रधि और तीनसौ साठ अरा रखनेवाला और निरन्तर घूमनेवाला कालचक्र तुम्हारी रक्षा करे अर्थात् यह कालचक्र इस प्रयोजन से निर्माण हुआ है कि इसकी गति से उक्त तीन प्रकार के संवत्सर होते हैं उन तीनों संवत्सरोंमें जो यज्ञादिक कर्म जिस संवत्सरमें कहेहैं उसीमें करना चाहिये अन्यथा करने से उसका फल पूरा पूरा नहीं मिलता है, जैसे चान्द्रवर्ष में व्रतादिक, सौर वर्ष मे सोलहों संस्कार और सावन वर्ष में यज्ञादिक कर्म करना कहा है, सो इन तीनों वर्षों में किए हुए उचितकर्म तुम्हारी रक्षा करें २५ तब राजा बोला कि शरीररूपी रथ में घोड़ों के समान कौन जुते हुए हैं? जिनका आना अकस्मात् श्येन पक्षी अर्थात् बाज के गिरने के सदृश होता है और उनको कौन गर्भ में रखता है और गर्भ में रखने से कौन उत्पन्न होता है २६ अष्टावक्र बोले कि वे दोनों ईश्वर करे तुम्हारे न हों किन्तु तुम्हारे शत्रुओं के घरमें भी न आवें, वे दुःख और मृत्यु हैं, जो इस शरीररूपी रथ में घोड़ों के समान लगे हुए हैं और जिनका आना अकस्मात् श्येन पक्षी के गिरने के समान होता है उन दोनों का गर्भ में रखनेवाला मन है और उनको गर्भ में रखने से मन ही उत्पन्न होता है अर्थात् दुःख और मृत्यु का कष्ट मन ही को होता है और उस कष्ट में वह मन दूसरी प्रकार का हो जाता है २७ राजा बोला कि वह कौन है जो आंखें बन्द करके नहीं सोता है और उत्पन्न होने पर वह कौन है जो चलता नहीं और हृदय किसके नहीं होता है और वेग से कौन बढ़ता है? २८ अष्टावक्र बोले कि मत्स्य अर्थात् मछली आंख बन्द करके नहीं सोती है और अण्डा उत्पन्न होने पर चलता नहीं है और पत्थर के हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ती है २६ राजा बोला कि महाराज! आप तो मनुष्य नहीं दीखते हैं, आप के वचनों से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आप के समान दूसरा मनुष्य नहीं है, इस कारण से मैं द्वार खोले देता हूं देखिये वहां यह बन्दी बैठा हुआ है ॥३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शताधिकत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ १३३॥

एकसौ चौंतीसवाँ अध्याय।

राजाजनकके यज्ञमें अष्टावक्र और बन्दीका शास्त्रार्थद्वारा बन्दीको हराना और समुद्रमें डुबवादेना।

अष्टावक्र बोले हे राजाजनक! इस उग्रसेन के तुल्य राजाओं की सभा में

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उस बन्दी को जो वादियों में श्रेष्ठ है नहीं जान सकता हूं कि जिसको जानकर मैं इस प्रकार से उसका ग्रास करूं जैसे महा जल में बगुला मत्स्यों को ग्रास करता है; वह बड़ा शास्त्रार्थ का करनेवाला और मानी बन्दी मेरे सम्मुख आवे, सम्मुख आने पर कुछ न बोल सकेगा और इसप्रकार से सूख जायगा जैसे अग्नि से नदियों का वेग जाता रहता है, हे बन्दी ! तू मुझ से वाद करके इस प्रकार से नहीं बचेगा जैसे सोते हुए व्याघ्र को जगाकर और बैठे हुए विषधर सर्प के ऊपर पैर रखकर कोई मनुष्य बच नहीं सक्ता है १ । ३ तेरी गति मुझ से सम्भाषण करने पर वैसी ही होगी जैसी उस मनुष्य की होती है जो दुर्बल होकर अपने अहंकार के कारण से पहाड़ को फोड़ने की इच्छा से उसे ताड़ना करता है अर्थात् पहाड़ को कुछ जान भी नहीं परता और ताड़ना करनेवाले ही के चोट लगती ४ सो हे राजा जनक ! आप मैनाक पर्वत के तुल्य सब राजाओं में बड़े हैं, आपके सम्मुख सब राजा बैल और बछड़ों के समान छोटे छोटे हैं और उन सब में आप इसप्रकार से श्रेष्ठ हैं जैसे देवताओं में इन्द्र और नदियों में गङ्गाजी उत्तम हैं; आप उस बन्दी पण्डित को मेरे सम्मुख कर दीजिये ५ । ६ लोमशऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! जब अष्टावक्र ने क्रोध करके उक्तप्रकार से गरज गरज कर बातें कहीं तब बन्दी बोला कि अच्छा मेरी बात का तुम उत्तर दो और तुम्हारी बात का मैं उत्तर दूंगा ७ यह कहकर बोला कि हमारा यह निश्चय है कि अग्नि एक ही है यद्यपि वह बहुत प्रकार से बढ़ती है और एक ही सूर्य सब जगत् में प्रकाश करता है और शत्रुओं का मारनेवाला एक ही देवराज है और पितरों का राजा यम भी एक ही है अर्थात् एक जीवात्मा ही है परमात्मा नहीं है तुम्हारा उत्तर इस विषय में क्या है, अष्टावक्र बोले कि नहीं इन्द्र और अग्नि दो सखा हैं और नारद और पर्वत दो ऋषि हैं और रथ के दोही चक्र हैं अश्विनीकुमार दो हैं और ब्रह्मा ने स्त्री और पुरुष भी दो ही उत्पन्न किये हैं अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा दोनों हैं क्योंकि परमात्मा के विना जीवात्मा की ज्ञानशक्ति नहीं हो सकती है ६ तब बन्दी बोला कि यह प्रजा कर्म से तीनप्रकार की उत्पन्न होती है अर्थात् पुण्य से देवता, पुण्य और पाप से मनुष्य और पाप से सर्पादिक जीव, जो तिरछे होकर चलते हैं और तीन वेद सिद्धान्त से युक्त वाजपेय अर्थात् तीन आश्रमों के कर्म तीन ही सिद्धान्तों से कियेजाते हैं और यज्ञ करानेवाले तीन ही कर्म करते हैं अर्थात् देवयज्ञ, पितृयज्ञ और ऋषियज्ञ और लोक भी तीन हैं अर्थात् स्वर्ग, नरक और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पृथ्वी और ज्योति भी तीन ही हैं आपका इसमें क्या उत्तर है १० अष्टावक्र बोले कि ब्रह्मज्ञानियों का स्थान चौथी संख्या रखनेवाला मोक्ष आश्रम है जो तीनों आश्रमों से परे है इसी ज्ञानरूपी यज्ञ को चारों वर्ण करते हैं और ब्रह्म की अवस्था भी चारही हैं विराट् १ सूत्र २ अन्तर्यामी ३ और तुर्या ४ और वर्ण भी चार प्रकारके हैं अकार १ इकार २ उकार ३ और अर्द्धमात्रा ४ और वाणी भी चार प्रकारकी हैं वैखरी १ मध्यमा २ पश्यन्ती ३ और पराख्या ४। ११ तब बन्दी आत्मा को कर्ता निश्चय करके कहनेलगा कि अग्नि पांच हैं अर्थात् गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि आदि और छन्द भी पांच पद का है और पूर्णमास आदि यज्ञ भी पांच ही हैं और इन्द्रिय भी पांच हैं और वेद में भी पांच चूड़ा रखनेवाली अप्सरा अर्थात् जीव के पीछे चलनेवाली चिति नाम माया जिसके प्रमाण १ विपर्यय २ विकल्प ३ निद्रा ४ और स्मृति ५ रूपी पांच चोटियां लिखी हैं और लोक में पांचही नद अर्थात् विषयों के स्थान हैं इसके उत्तरमें आप क्या कहते हैं १२ अष्टावक्र बोले कि हमने वेद में देखाहै कि किसी यज्ञ में दक्षिणा को छः कहा है और कालचक्र में छःऋतु और छःही इन्द्रियां हैं अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन और छःही कृत्तिका नक्षत्र हैं और साद्यस्कनाम यज्ञभी छः हैं अर्थात् पांचों इन्द्रियां और मन, नक्षत्र, ऋतु और यज्ञों के तुल्य विषयों को अनुभव करनेवाले हैं और आत्मा इन सबसे अलग साक्षी और अकर्तारूप है १३ इसके पीछे बन्दी आत्मा को कर्ता और भोक्ता सिद्ध करने के लिये बोला कि सात पशु अर्थात् पांच कर्म इन्द्रिय और मन तथा बुद्धि कर्म करनेवाले को अपने अपने सात विषय जिनमें लिप्त होने से परमात्मा नहीं दीखता है इसलोक और परलोक दोनों में प्राप्त कराते हैं और सातही ऋषि अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि हैं और उनके सात ही पूजनीय सुख हैं और वीणा में भी सात ही तार होते हैं अर्थात् जैसे वीणा के सात तार बजानेसे एक ही शब्द निकलता है और न बजाने से कोई शब्द नहीं होता है, इसी प्रकार से वीणा बजानेवाले की भांति आत्मा इस वीणारूपी शरीर को सात ताररूपी ज्ञान और कर्म इन्द्रिय और मन और बुद्धि के द्वारा शब्द रूपी सुख का अनुभव कराता है और सुषुप्तावस्थामें न बजाई हुई वीणा की तरह किसी प्रकार का सुख नहीं भोगता, इससे आत्मा अकर्ता नहीं है किन्तु आत्मा ही कर्ता है, तुम्हारा क्या उत्तर है १४ अष्टावक्र बोले कि इन्द्रियों के प्रवेश योग्य विषय आठ हैं और वे आठों विषय अनन्त

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रकार के हैं और इन्द्रियादि नाम अष्टपदवाला आनन्दस्वरूप ब्रह्म, द्वैत का नाश करनेवाला अर्थात् अद्वैत है और विषयों के भोगनेवाले वासना के देवता अष्टवसु नाम सुने जाते हैं और सर्वयज्ञ अर्थात् ज्ञानयज्ञ में यूप अर्थात् अज्ञानी को मोहने वाला अज्ञान भी अष्टकोण अर्थात् आठ रूपवाली माया से सम्भव कहा है १५ यह सुनकर बन्दी बोला कि जैसे पितृयज्ञ में एक ऋचा को तीन बार पढ़ने से प्रत्येकबार तीन तीन समधि के योग्य होती है अर्थात् एक ऋचा नव समधि के योग्य होती हैं इसी प्रकार से एक प्रकृतिके तीनों गुणों के न्यूनाधिक भागों को मिलाने से वे गुण नव प्रकारके होते हैं और उनसे नव ही प्रकार की उत्पत्ति कही है और जैसे नव नव अक्षर के चार पदों को मिलाने से बृहती छन्द बनजाता है और ९ अङ्कों को अर्थात् एक दो तीन आदि को क्रमभेद से रखने से जितनी चाहो उतनी ही संख्या होजाती है इसी प्रकार से माया के पूर्वोक्त नवगुण अनेकरूप धारण करते हैं इससे द्वैत सत्य है १६ अष्टावक्र बोले कि लोक में मनुष्य की दश दिशा कही हैं अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच उनके देवता और ये दशों दश विषयों के रूप को प्रकट करनेवाले हैं और ब्रह्म को भी दश सैकड़ा अर्थात् सहस्र प्रकार का कहा है और स्त्री भी गर्भ को दश ही महीने धारण करती है इसी प्रकार से माया में भी अहंकारसे चिदात्मा ब्रह्म का संग है और तत्त्व के उपदेशक और तत्त्व के धारण करनेवाले और अधिकारी भी दश ही दश हैं जिनको पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच देवता कहचुके हैं १७ तब बन्दी बोला कि पशुओं की ग्यारहों इन्द्रियों के शब्द आदि ग्यारह विषय हैं और ग्यारह ही यूप अर्थात् बन्धन करनेवाले राग आदि हैं और ग्यारह ही प्राणियों के विकार हैं जिनको हर्ष और विषाद आदि कहते हैं और देवताओं में ग्यारह ही रुद्र कहे हैं अर्थात् हर्ष और विषाद आदि ग्यारहो विकार कुछ मनुष्य ही को नहीं किन्तु देवताओं को भी प्राप्त होते हैं १८ यह सुनकर अष्टावक्र बोले कि वर्षसंज्ञा बारह ही मास की है और जगतीछन्द का एक चरण भी बारह ही अक्षर का होता है और प्राकृतयज्ञ भी बारह दिन का होता है और इसलोक में ध्यानी और योगी लोग बारह ही आदित्य बताते हैं आदित्य का अर्थ खैंचने-वाला है सो वे बारहों खैंचनेवाले अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग करनेवाले ये हैं धर्म १ सत्य २ दम ३ तप ४ अमात्सर्य ५ लज्जा ६ तितिक्षा ७ अनसूया ८ यज्ञ ९ दान १० धृति ११ और यम १२ प्रयोजन यह है कि जैसे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बारह मास और एक वर्ष कहने से एक ही काल प्रतीत होता है और जगतीछन्द अथवा बारह बारह अक्षर के चार चरण रखनेवाला छन्द कहने से एक ही छन्द जाना जाता है इसी प्रकार से ब्रह्म और जगत् एक ही है हां जो ज्ञानी और बारहों आदित्यों का आचरण करते हैं उनको ब्रह्म अपरोक्ष है और जो इसके विपरीत हैं उनको परोक्ष है १६ इसके उपरान्त बन्दी बोला कि त्रयोदशी तिथि उत्तम कही है और पृथ्वी के द्वीप भी तेरह ही हैं अर्थात् चित्त की शुद्धि होना देश और काल से सम्बन्ध रखती है; लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! बन्दी उक्तप्रकार से आधा श्लोक कहकर चुप होरहा और अष्टावक्र ने उसके आगे का आधा श्लोक इस प्रकार से कह सुनाया कि केशी अर्थात् अग्नि वायु और सूर्य के तुल्य आत्मा ने दश इन्द्रियां और मन बुद्धि और अहंकार इन तेरहों के विषय और भोगरूप यज्ञों को प्राप्त किया, जो आत्मा को छिपानेवाले हैं, इनको उल्लंघन करनेवाले बारह आदित्य हैं जिनको पहिले कहचुके हैं सो हम इन बुद्धि आदि के निवृत्त होने पर अद्वैत ब्रह्म को कहने को आये हैं २०।२१ इसके पीछे बन्दी को चुपका और नीचे को शिर झुकाये हुए कुछ ध्यानसा करता और अष्टावक्र को बोलता देखकर बड़ा शब्द हुआ २२ उस कोलाहल में राजा जनक के यज्ञ के सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर अंजली बांधे हुए अष्टावक्र के समीप चले गए और उनकी बहुतसी प्रशंसा की २३ उस समय अष्टावक्र बोले इस बन्दी ने पहिले बहुत से पण्डित शास्त्रार्थ में हारजाने के कारण से जल में डुबवा दिये हैं इससे अब इसकी भी वही गति होनी चाहिए, इसको जल्दी लेजाकर जल में डुबो दो २४ यह सुनकर बन्दी बोला कि मैं राजा वरुण का पुत्र हूं मेरे पिता के यहां बारह वर्ष में समाप्त होनेवाला सत्र यज्ञ हो रहा है आपके पिता और दूसरे ब्राह्मणों को मैंने वहीं भिजवा दिया है सो वे सब यज्ञ देखने को गए हैं, आतेही होंगे और मैं अब इन पूजनीय अष्टावक्र की पूजा करूंगा जिनके कारण से अब मुझको पिता के दर्शन मिलेंगे २५।२६ तब अष्टावक्र बोले कि जिस वाणी और बुद्धि से जीते जाने के कारण से ब्राह्मण लोग समुद्र में डुबाये गये हैं उस वाचा और बुद्धि को हमने जीत लिया है परंतु सन्त लोग हमारे वचन का आदर नहीं करते हैं, देखो अच्छे और खोटे पुरुषों के वृत्तान्त को जाननेवाले अग्निदेव अपने स्वभाव से जलने पर सत्पुरुषों को अपने तेज से नहीं जलाते हैं और इसी प्रकार से सन्त लोग बालकों की कुत्सित वाणी को सुनकर मन में कुछ ध्यान नहीं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करते हैं, सो हे राजा जनक! यही बात हम को यहां भी जान पड़ती है अर्थात् हमको बालक समझ कर हमारी बात पर कोई ध्यान नहीं देता है आश्चर्य है कि तुमसे ज्ञानी की भी ऐसी खोटी बुद्धि होवे और तेज जाता रहे, तुम अपनी स्तुति सुनकर मतवाले से होरहे हो और हाथी के समान मदमत्त होकर मेरे कहे को नहीं सुनते हो २७। २८ यह सुनकर राजा जनक बोला कि मैं आपके अमानुष वचनों को सुनता हूं, आप साक्षात् दिव्यरूप हैं, जो आपने शास्त्रार्थ में बन्दी को जीतलिया है; अब यह बन्दी यहां आपके सम्मुख स्थित है जो कुछ आपकी इच्छा हो सो किया जाय २९ अष्टावक्र बोले कि इस जीते हुए बन्दी से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है जो इसका पिता वरुण है तो भी इसको समुद्र में डुबवादो ३० यह सुनकर बन्दी बोला कि मैं निस्संदेह वरुण का पुत्र हूं मुझको जल में डूबने से कुछ भय नहीं है और ये अष्टावक्र अपने पिता कहोड़क को, जो बहुत दिनों से नष्ट होगये हैं, देखेंगे ३१ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे वे ब्राह्मण जिनको बन्दी ने समुद्र में डुबवा दिया था, वरुण से पूजित होकर समुद्र से निकले और राजा जनक के समीप चले आये ३२ उस समय कहोड़क ने राजा जनक से कहा कि संसार में मनुष्य पुत्र की इच्छा इसी प्रयोजन से किया करते हैं, देखिये, जो काम मैं न कर सका था, उसको मेरे पुत्र ने किया ३३ संसार में निर्बल का पुत्र बलवान्, मूर्ख का पण्डित और अज्ञानी का ज्ञानी उत्पन्न होता है ३४ हे राजन्! आपका कल्याण हो यमराज ने आपके शत्रुओं के शिर अपने तीक्ष्ण परशु से काटे हैं ३५ आपके इस यज्ञ में औक्थ्य नाम सामवेद का मन्त्र, जो गाने के योग्य है, गाया जाता है और सोम अर्थात् अमृत भी भले प्रकार से पिलाया जाता है और सब देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने पवित्र भागों को ग्रहण किया है ३६ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके उपरान्त बन्दी ने राजा जनक की आज्ञा से समुद्र के जल में प्रवेश किया और अष्टावक्र अपने मामा के साथ साथ सब ब्राह्मणों से पूजित होकर अपने पिता को पूजकर और बन्दी को जीतकर अपने आश्रम को चले आये ३७। ३८ वहां उनके पिता ने उनकी माता के समीप जाकर उनसे कहा कि इस नदी में तुम प्रवेश करो, अष्टावक्र ने वैसाही किया और नदी से बाहर निकलने पर उनके सब अंग समान होगये ३९ तब से इस नदी का नाम समंगा विख्यात होगया, हे युधिष्ठिर! इसमें स्नान करने से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मनुष्य पापों से छूटजाता है, तुम भी अपनी स्त्री और अपने भाइयोंसहित इस नदी में स्नान करो और इसका जल पियो और सब समाजसहित यहां एक रात्रि बसकर हमारे साथ और तीर्थों को चलो ॥ ४० । ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

एकसौ पैंतीसवाँ अध्याय।

लोमशऋषि का अनेक तीर्थों में स्नान करने का माहात्म्य और भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत का वरदान वर्णन करना ॥

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यह मधुबिला नाम नदी जिसका दूसरा नाम समंगा हुआ है, बह रही है और यह कर्दमिला नाम स्थान है जहां राजा भरत का अभिषेक हुआ था १ वृत्रासुर को मारकर इन्द्र इसी समंगा नदी में स्नान करने से पापमुक्त हुआ था २ देखो, मैनाक पर्वत में यह विनशन नामी तीर्थ है, जहां अगले समय में अदिति ने पुत्र मिलने की इच्छा से अन्नपाक दिया था ३ इस पर्वत पर चढ़ने से तुम्हारी अयश करनेवाली अलक्ष्मी दूर होजायगी ४ हे राजा युधिष्ठिर ! देखो, आगे यह ऋषियों का प्यारा कनखल पहाड़ है और वह देखो, महानदी गङ्गा जा रही है ५ अगले समय में यहां भगवान् सनत्कुमार ने सिद्धि पाई थी, इसमें स्नान करने से तुम्हारे सब पाप दूर होजायँगे ६ इसके आगे वह भृगुतुङ्ग पर्वत पर पुण्यजल से भराहुआ सरोवर है जिसको उष्णी गङ्गा कहते हैं, उसमें भी मन्त्रियों के साथ चलकर स्नान करो ७ और वह देखो, स्थूलशिरा मुनि का रमणीक आश्रम है, वहां मान और क्रोध को छोड़कर चलना ८ और उसके आगे वह रैभ्यऋषि का श्रीमान् आश्रम है जहां भरद्वाज का पुत्र यवक्रीत नामी मारागया था ९ हे पाण्डवेय ! यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज ! प्रतापी भरद्वाज ऋषि कैसे योगी हुए थे और उनका पुत्र यवक्रीत किस कारण से मारागया १० मैं इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं, मुझको देवताओं के तुल्य ऋषियों के कर्मों के सुनने से बड़ी प्रसन्नता होती है ११ यह सुनकर लोमश ऋषि बोले कि भरद्वाज और रैभ्यऋषि दोनों परम मित्र थे, और आपस में परस्पर प्रीति रखकर यहीं रहा करतेथे १२ रैभ्य ऋषि के दो पुत्र थे, एक का नाम अर्वावसु और दूसरे का नाम परावसु था और भरद्वाज के यवक्रीत नामी एक पुत्र था १३ रैभ्यऋषितपस्वी और विद्वान् थे और अपने पुत्र और शिष्यों को वेदाध्ययन कराया करते थे,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उनके पुत्रों की कीर्ति वेदाध्ययन के कारण से बाल्यावस्था ही से अतुल होगई थी, यवक्रीत अपने पिता को असत्कृत और तप में वर्तमान और रैभ्य ऋषि को पुत्रसहित ब्राह्मणों से सत्कृत देखकर महाक्रोधित और दुःखी हुआ और अपने चारों ओर अग्नि जलाकर विना पढ़े वेद का ज्ञान होने के लिये तपस्या करने लगा, उसके तप को देखकर इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ १४।१७ हे युधिष्ठिर! उसने यवक्रीत के पास आकर पूछा कि तुम ऐसा घोर तप किस प्रयोजन से करते हो १८ यवक्रीत बोला कि महाराज! मैं चाहता हूं कि ब्राह्मण और गुरु से विना पढ़े सब वेद और शास्त्र मुझको आजावें, क्योंकि गुरु के पास जाकर पढ़ने में बहुत काल व्यतीत होता है इससे मैंने यह श्रेष्ठ यत्न विचारा है १६।२१ यह सुनकर इन्द्र बोला कि यह मार्ग ठीक नहीं है, जिसको तुम कर रहे हो, वृथा कष्ट करने से कुछ लाभ नहीं होगा जाओ, गुरु से जो विद्या चाहो सो पढ़ो २२ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्र उक्त प्रकार से कहकर चला गया परंतु यवक्रीत उसकी बात को न मानकर तपस्या करने लगा २३ हमने सुना है कि उसने ऐसी घोर तपस्या की कि इन्द्र उसके तप से अत्यन्त तपित हो गया और फिर यवक्रीत के पास आकर उसे तपस्या करने से निषेध करके कहने लगा २४।२५ कि तुमने ऐसे काम के लिये तपस्या का आरम्भ किया जो हो नहीं सकता है, यह बात बुद्धिमानी की नहीं है, इस प्रकार से तुमको या तुम्हारे पिता को वेद नहीं आसकते हैं २६ यह सुनकर यवक्रीत बोला कि हे मघवन्! जो आप मेरी मनोकामना को पूरी नहीं करेंगे तो मैं बड़े नियम से अति घोर तपस्या करूंगा और अपने शरीर को काट काट कर होम दूंगा २७।२८ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे इन्द्र ने महात्मा यवक्रीत के निश्चय को जानकर उसे तपस्या करने से रोकने के लिये बुद्धि से विचारकर अपना स्वरूप एक तपस्वी ब्राह्मण का सा जिसकी आयु सैकड़ों वर्ष की और शरीर अतिदुर्बल और यक्ष्मा रोग से ग्रसित दीखता था बना लिया और गङ्गा तट पर जहां यवक्रीत स्नान करने को जाया करता था, जा बैठा और गङ्गा में रेत की मुट्ठी भर भर के इस प्रयोजन से डालने लगा कि यवक्रीत को यह बात ज्ञात होवे कि वह वृद्ध ब्राह्मण गङ्गा का पुल बांधना चाहता है २६।३३ इसके पीछे जब यवक्रीत स्नान करने को गया तब उसने उस वृद्ध ब्राह्मण को बालू से पुल बांधने में उद्यत देखकर हँसकर कहा ३४ कि हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? इस कार्य में तुम्हारा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यत्न और परिश्रम निरर्थक है ३५ यह सुनकर वह वृद्ध ब्राह्मण बोला कि मनुष्यों को गङ्गा के पार जाने में बड़ा क्लेश होता है इसलिये मैं पुल बांधना चाहता हूं जिससे यह मार्ग सुखदायी हो जाय ३६ यवक्रीत बोला कि गङ्गा का प्रवाह बहुत है इसमें इस प्रकार से पुल नहीं बँध सकता है, इससे तुम इस असम्भव कार्य को छोड़कर ऐसा काम करो, जिसका होना सम्भव हो ३७ वृद्ध ब्राह्मण बोला कि वेदों को विना पढ़े जानने के लिये आपका भी तप करना निरर्थक है, सो जैसे आप अशक्य पदार्थ को प्राप्त करने के लिये परिश्रम कर रहे हैं उसी प्रकार से मैंने भी यह भार अपने ऊपर उठा लिया है ३८ यवक्रीत बोला कि आप इन्द्र हैं जो आप मेरे परिश्रम को भी अपने परिश्रम की भांति निष्फल समझते हैं, तो जो बात सम्भव हो वह कीजिये अर्थात् और कोई वरदान दीजिये जिससे मैं दूसरे मनुष्यों को नांघकर प्रतिष्ठा पाऊं ३९।४० लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे इन्द्रने उसे वरदान दिया कि जो तुझे और तेरे पिता जैसे चाहेंगे वैसे ही वेद आ जायँगे और जो कुछ तू और इच्छा करेगा वह भी पूरी होगी, इस प्रकार से वर पाकर यवक्रीत अपने पिता के पास आया और कहने लगा ४१।४२ कि आपको और मुझको दोनों को वेद इच्छा के अनुसार आ जायँगे और हमारी आपकी दूसरे मनुष्यों से अधिक प्रतिष्ठा होगी मुझे इन्द्र ने ऐसा ही वरदान दिया है ४३ यह सुनकर भरद्वाज बोले कि हे पुत्र! तैंने अपनी इच्छा के अनुसार वरदान पाया है इससे तुझको अभिमान होगा और अभिमान के कारण से तेरा शीघ्र नाश हो जायगा ४४ देख इस विषय में मैं तुझको देवताओं की कही हुई एक कथा सुनाता हूं; अगले समय में एक बालधि नाम बड़े पराक्रमी मुनि हुए थे ४५ उन्होंने पुत्र के शोक में बड़ी कठिन तपस्या की, इस प्रयोजन से कि मेरा पुत्र अमर होजाय, देवता उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए और उसे यह वरदान दिया कि संसारी जीव अमर नहीं हो सकते हैं और न देवताओं के समान हो सकते हैं हां, तेरे पुत्र के निमित्त आयु हो सकती है ४६।४७ तब बालधि ने कहा कि बहुत श्रेष्ठ यह पर्वत निरन्तर स्थित है इस को निमित्त मानकर मेरे पुत्र की आयु कर दीजिये अर्थात् जब तक यह पर्वत रहे तब तक मेरा पुत्र न मरे ४८ भरद्वाज बोले हे यवक्रीत! इसके पीछे उस मुनि के एक क्रोधी पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसकी शास्त्रों में बड़ी धारणा बुद्धि थी, वह उस वरदान को सुनकर अभिमान करके ऋषियों का अपमान करने लगा ४९

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एक समय वह पृथ्वी पर घूमते घूमते और ऋषियों का अपमान करते महाबलशाली, बुद्धिमान् धनुषाक्ष नाम ऋषि के पास पहुँचा ५० और उस ऋषि का भी उसने अपमान किया, उस ऋषि ने अपमान के कारण से शाप दिया कि तू भस्म होजा परंतु वह भस्म नहीं हुआ ५१ तब धनुषाक्ष ने उसके निमित्त पर्वतों को भैंसाओं से खण्ड खण्ड कराडाला उन निमित्त पर्वतों के नष्ट होने से वह बालधि का पुत्र अकस्मात् मरगया तब उसका पिता उस मृतक को लेकर विलाप करने लगा ५२।५३ उसके विलाप को देखकर वेदपाठी ऋषियों ने यह कहा कि मनुष्य किसी अवस्था में दैव की रची हुई बात को उल्लंघन नहीं कर सकता है, देखो, धनुषाक्ष ने भैंसाओं से पर्वतों को गिरवा दिया ५४।५५ सो हे यवक्रीत ! जिस प्रकार से बालक तपस्वी लोग वरदान पाकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार से तू नष्ट मत हो जाइयो ५६ देखिये रैभ्य ऋषि और इसके दोनों पुत्र बड़े पराक्रमी हैं, तू सावधानी से रहियो और इनसे किसी प्रकार से मत भिड़ियो ५७ यह रैभ्य ऋषि बड़ा क्रोधी है और पीड़ा देने की सामर्थ्य रखता है क्योंकि वह तपोबल रखता है ५८ यह सुनकर यवक्रीत बोला कि बहुत अच्छा, आप चिन्ता न कीजिये; मैं ऐसा ही करूंगा, रैभ्य ऋषि भी मेरे उसी प्रकार से मान्य हैं जैसे आप हैं ५९ लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यवक्रीत उक्त प्रकार से अपने पिता से मीठी मीठी बातें कहकर निर्भयता के साथ दूसरे ऋषियों का अपमान करता हुआ आनन्दपूर्वक विचरने लगा ॥ ६० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय ।

यवक्रीत का रैभ्य ऋषि की पुत्रवधू से भोग करना, रैभ्य ऋषि के क्रोध से उत्पन्न राक्षस एक स्त्री-पुरुष द्वारा यवक्रीत का मारा जाना ।

लोमश ऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर ! थोड़े दिनों में एक समय वैशाख के महीने में यवक्रीत घूमता हुआ रैभ्य ऋषि के आश्रम में गया १ हे भरतवंशिन् ! वहां के रमणीक स्थान और फूले हुए वृक्षों में रैभ्य ऋषि की पुत्रवधू को किन्नरी के समान घूमते हुए देखकर कामासक्त होगया और लज्जा छोड़कर उस लज्जित स्त्री से बोला कि मेरे पास खड़ी रह २।३ वह स्त्री उसके स्वभाव को जानकर और शाप से डरकर रैभ्य ऋषि के तेज को समझ कर 'तथास्तु' कहकर उसके पास चली गई ४ हे युधिष्ठिर ! तब यवक्रीत उसको एकान्त स्थान में ले गया और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसको शोकरूपी समुद्र में डुबाकर चला आया जब रैभ्य ऋषि अपने आश्रम में आये और उन्होंने अपने परावसु पुत्र की स्त्री को दुःखी देखा तब उन्होंने उसे धैर्य देकर शोक करने का कारण पूछा ५।६ उस स्त्रीने यवक्रीत की सब व्यवस्था कह सुनाई, उसको सुनकर रैभ्य ऋषि के हृदय में अग्नि के समान महान् क्रोध हो आया ७।८ और उसके आवेश में उन तपस्वी, कोपशाली ने अपनी जटा का एक बाल उखाड़ कर मन्त्र से अग्नि में होम दिया, उससे तत्काल एक स्त्री प्रकट हो गई तब रैभ्य ऋषि ने दूसरा बाल उखाड़ कर उक्त प्रकार से होमा और उससे एक घोर नेत्र और भयानक स्वरूप रखनेवाला राक्षस प्रकट होगया, वे दोनों रैभ्य ऋषि से बोले कि महाराज! हमको क्या आज्ञा है ९।११ रैभ्य ऋषि ने क्रोधित होकर कहा कि तुम दोनों यवक्रीत को मारडालो, यह सुनकर वे दोनों 'तथास्तु' कहकर चल दिये और वहां गये जहां यवक्रीत था १२ हे भारत! तब उस कृत्या स्त्री ने अपने स्वरूप से यवक्रीत को मोहित करके उसका जल का कमण्डलु ले लिया और वह राक्षस उस जूंठे मुख और कमण्डलुरहित यवक्रीत को त्रिशूल लेकर मारने को दौड़ा १३।१४ हे राजन्! यवक्रीत उस दैत्य को मारने को उद्यत देखकर सरोवर की ओर दौड़ा और सरोवर को सूखा हुआ देखकर और और नदियों पर गया परंतु जहां गया तहां नदियां सूखी पाईं तब वह भयभीत होकर अपने पिता की अग्निहोत्रशाला की ओर दौड़ा और जब उस शाला में घुसने लगा तब उसको एक अन्धे शूद्र ने जो अग्निहोत्रशाला के द्वार पर रक्षा करने को नियत था पकड़कर रोक लिया १५।१८ उसी समय वह राक्षस भी पीछे पीछे दौड़ता हुआ वहां आ पहुँचा और उसने यवक्रीत को द्वार पर ही त्रिशूल से मारकर गिरा दिया १९ उसको मारकर वह राक्षस रैभ्य ऋषि के समीप चला गया और उनकी आज्ञा पाकर उस स्त्रीसहित रहने लगा ॥२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३६॥

एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय।

भरद्वाज ऋषि का पुत्रशोक में विलाप करना, रैभ्य ऋषि को शाप देना और अपने प्राण त्यागना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! यवक्रीत के मारेजाने के पीछे उसके पिता भरद्वाज संध्या आदि करके, होम करने को लकड़ियां लिये हुए अपने आश्रम को आये १ पहिले जब कभी भरद्वाज आते थे, तब अग्नि उनको देख-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कर प्रज्वलित हो जाया करती थी, उस दिन भरद्वाज के आने पर अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई २ यह देखकर भरद्वाज ने उस अन्धे शूद्र से जिसको वे रखवाली करने को छोड़ गये थे पूछा कि भाई! आज अग्नि मुझे देखकर क्यों प्रसन्न नहीं होती है और तू भी उदास सा क्यों बैठा है? यह तो बता कि हमारे आश्रम में क्षेम कुशल है या नहीं? कहीं हमारा अल्पबुद्धि पुत्र रैभ्य के आश्रम में तो नहीं गया था? ये सब बातें मुझसे जल्दी कह मेरा मन शुद्ध नहीं होता है ३।५ यह सुनकर वह शूद्र बोला कि हां, महाराज! आपका यह पुत्र जोकि मूढ़ मनवाला था वह रैभ्य ऋषि के आश्रम में गया था और बलवान् राक्षस से मारा हुआ यहां पड़ा सोता है ६ मैंने उस जूंठ मुख और जल चाहनेवाले आपके पुत्र को अग्निहोत्रशाला के द्वार पर भुजाओं से रोक लिया था और राक्षस त्रिशूल हाथ में लिये हुए उसके पीछे पीछे भागा हुआ आता था, मेरे रोकने पर उस राक्षस ने यहां आकर उसको त्रिशूल से पेट फाड़ मारकर गिरादिया ७।८ भरद्वाज उस शूद्र से अप्रिय बात सुनकर महादुःखी हुए और उस मृतक पुत्र को लेकर विलाप करने लगे ९ कि हे पुत्र! तैंने ब्राह्मणों का हित करने के लिये इस संकल्प से तपस्या की थी कि मुझे वेद विना पढ़े आजावें १० सो महात्मा ब्राह्मणों में कल्याणशील स्वभाव और निष्पाप होकर तैंने सर्वप्राणियों में अपना स्वभाव कुटिल कर लिया ११ हे तात! मैंने तुझे मना किया था कि तू रैभ्य ऋषि के आश्रम में मत जाइयो परंतु तैंने नहीं माना, उस काल और यमराजरूपी आश्रम में चला ही गया १२ जिसके कारण से वह तपस्वी परम दुर्मति रैभ्य मुझ वृद्ध के इकलौते पुत्र को जानने पर भी क्रोध के वश में हो गया १३ हाय! यह पुत्रशोक मुझको रैभ्य के कर्मरूप कारण से प्राप्त हुआ है, अब मैं ब्राह्मणों को छोड़ दूँगा और अपने शरीर को भी त्याग करूंगा और जैसे मैं पुत्र के शोक में मरता हूँ, इसीप्रकार से अनपराधी रैभ्य को उसका बड़ा पुत्र वेग ही मार डालेगा १४।१५ संसार में वे ही प्राणी सुखी हैं जिनके पुत्र नहीं हैं, क्योंकि वे पुत्रशोक न पाकर सुखपूर्वक बिचरते हैं १६ हाय! मुझसे अधिक पापी कौन होगा, जो मैं पुत्रशोक से दुःखी होकर अपने मित्र को शाप देता हूँ १७ मैंने अपने पुत्र को अपनी आंख से मरा हुआ देखा और अपने मुख से अपने मित्र को शाप दिया ऐसा दुःख दूसरा कौन भोगेगा १८ लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर! भरद्वाज ऋषि ने उक्त प्रकार से विलाप करके अपने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पुत्र की दाह क्रिया की और आप भी जलती हुई अग्नि में प्रवेश होकर स्वर्गवासी हुए ॥ १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

एकसौ अड़तीसवाँ अध्याय।

राजा बृहद्द्युम्न का यज्ञ कराने के लिए रैभ्य के दोनों पुत्रों को बुलाना, रैभ्य का ज्येष्ठ पुत्र के हाथ से मारा जाना और रैभ्य के छोटे पुत्र का तपस्या करना और वरदान से भरद्वाज, यवक्रीत और रैभ्य ऋषि का जी उठना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! इसी अवसर में राजा बृहद्द्युम्न ने जो रैभ्य ऋषि का यजमान था यज्ञ रचा १ और उस बुद्धिमान् उक्त राजा ने रैभ्य ऋषि के दोनों पुत्र अर्वावसु और परावसु और परावसु को यज्ञ कराने के लिए बुलाया २ हे कौन्तेय ! वे दोनों पिता की आज्ञा पाकर वहां गए और आश्रम में केवल रैभ्य ऋषि और परावसु की स्त्री ये दो रह गए ३ इसके पीछे परावसु अकेला अपनी स्त्री को देखने के लिए लौटकर आया और उसने वन में अपने पिता को जो काले मृग का चर्म ओढ़े हुए थे देखा ४ और नींद के आवेश में थोड़ी रात्रि रहे अँधेरे में उनको वन में फिरता हुआ देखकर अनुमान किया कि यह मृग है और अपने प्राण की रक्षा करने और सवारी न होने के कारण उसने उन्हें मारडाला ५।६ हे भरतवंशिन् ! इस के उपरान्त परावसु ने अपने पिता का प्रेतकर्म किया और उस कर्म से निश्चिन्त होकर यज्ञ में आया और अपने भाई से बोला ७ कि भाई! मैंने पिता को मृग समझकर मारडाला है, मुझको ब्रह्महत्या लगी है, इससे तू जाकर ऐसा व्रत कर जिससे मेरी ब्रह्महत्या दूर होजाय और मैं राजा को यज्ञ कराऊँगा क्योंकि मैं अकेला इस काम को कर सक्ता हूँ और तेरी सामर्थ्य अकेले यज्ञ कराने की नहीं है ८।९ यह सुनकर अर्वावसु बोला कि बहुत अच्छा आप बुद्धिमान् राजा बृहद्द्युम्न को यज्ञ कराइये मैं जाकर ब्रह्महत्या दूर होनेवाले व्रत को करूँगा १० लोमश ऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे अर्वावसु चला गया और उस ब्रह्महत्या दूर होनेवाले व्रत को समाप्त करके फिर यज्ञ में चला आया ११ परावसु भाई उसका उस को यज्ञ में आया हुआ देखकर राजा से कहने लगा कि इस ब्रह्महत्यारे को अपने यज्ञ में न आने दो इसको देखने से भी तुमको पीड़ा होगी। १२। १३ यह सुनकर उस राजा ने अनुचरों को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आज्ञा दी कि अर्वावसु को यज्ञशाला से निकाल दो, उन्होंने वैसाही किया, उस समय अर्वावसु वारंवार यह कहता रहा कि मैंने ब्रह्महत्या नहीं की है, मेरे भाई ने की है और मैंने उसको उस हत्या से छुड़ाया है परंतु अनुचरों के धक्का देने और वारंवार हे ब्रह्महन् ! हे ब्रह्महन्! कहने के कारण से उसको यह नहीं जान पड़ा कि मैंने कौनसी ब्रह्महत्या की है ? इसके उपरान्त वह तपस्वी अर्वावसु चुप होकर वहां से वन को चला गया और सूर्यप्रकाशक वेद के मन्त्र को जपकर बड़ी भक्ति से सूर्य की उग्र तपस्या करने लगा १४।१८ तब उन सूर्यदेव ने जो अविनाशी और यज्ञ में सब से पहिले भाग पानेवाले हैं, मूर्ति धारण करके उसको अपना दर्शन दिया और सब देवता और अग्नि-देव ने उसके कर्म से प्रसन्न होकर यज्ञ कराने के लिए उसका वरण किया और परावसु को यज्ञशाला से निकाल दिया तदन्तर देवता और अग्निदेव ने उससे कहा कि तू वरदान माँग १६।२० तब अर्वावसु ने कहा कि मरा हुआ पिता जीजाय और उसको यह स्मरण न रहे कि मैं मारा गया था और मेरे भाई का पाप दूर हो जाय और भरद्वाज और यवक्रीत ये दोनों भी जी उठें और मुझे सौरवेद अच्छी तरह आजाय यह सुनकर देवताओं ने उसको सब वरदान दिए और उसके प्रभाव से वे सब जी उठे और वहीं प्रकट हो गए उस समय अग्नि आदि देवताओं से यवक्रीत ने पूछा कि महाराज ! मैंने वेदों को उत्तम प्रकार से पढ़ा था और व्रत भी अनेक किये थे फिर मुझ वेदपाठी और तपस्वी को रैभ्य ऋषि उस प्रकार से क्योंकर मरवाने को समर्थ हुए २१।२४ यह सुनकर देवता बोले कि तुमने वैसा कहाँ किया था जैसा कहते हो तुमने तो वेदों को विना गुरु के सुखपूर्वक पाया है और इस रैभ्य ने बड़े दुःख से बहुत काल में गुरुओं को प्रसन्न करके वेद पढ़े हैं २५।२६ लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वे देवता उन सबको सजीव करके और यवक्रीत को उक्त प्रकार से उत्तर देकर स्वर्ग को चले गए २७ यह पवित्र आश्रम जिसमें फूले फले वृक्ष लगे हुए हैं उसी ऋषि का है, यहाँ वास करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ उनतालीसवाँ अध्याय।

लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से अनेक पर्वतीय तीर्थों का व्याख्यान करना और युधिष्ठिर का भीमसेन को द्रौपदी की रक्षा करने की आज्ञा देना।

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब आगे उशीरबीज, मैनाक, श्वेतगिरि और काल नाम पर्वतों को नाँघकर सात प्रकार की गङ्गा मिलेंगी यह स्थान रजोगुण से रहित और पवित्र है, यहां अग्नि सदैव प्रज्वलित बनी रहती है १। २ अब मनुष्य इस स्थान को आये इसके तीर्थों को देख नहीं सक्ता है परंतु तुम सावधानी से समाधि लगाओ, तुमको ये तीर्थ भी दिखाई देंगे ३ और यह जो देवताओं का क्रीड़ा करने का स्थान दिखाई देता है, यहां उन देवताओं के आने जाने के चरणों के चिह्न बने हुए हैं, इसको और काल नाम पर्वत को उलंघन करना पड़ेगा ४ अब तुम श्वेत और मन्दिर नाम पर्वतों में प्रवेश कर रहे हो जहां के अधिपति मणिभद्र यक्ष और यक्षों के राजा कुबेर हैं हे युधिष्ठर! उस मणिभद्र नाम यक्षों के इन्द्र की उपासना अट्ठासी सहस्र गन्धर्व और इतने ही किंपुरुष और इससे चौगुने यक्ष नाना प्रकार के अस्त्र लिये हुए किया करते हैं ५। ७ यहां उनको बड़ी संपत्ति है और वे वायु की-सी गति रखते हैं और ऐसे प्रबल हैं कि एकबेर इन्द्र को भी डिगमिगा देने की सामर्थ्य रखते हैं ८ हे युधिष्ठिर! ये सब पूर्वोक्त पर्वत यातुधान नामी राक्षसों से रक्षित और दुर्गम हैं इससे तुम समाधि करो और इसी ओर कुबेर के सखा रहते हैं जिनके स्वरूप उग्र और सौम्य हैं, उनसे मिलने के लिए पराक्रम सहित तैयार रहो ९। १० इसके आगे साठि योजन ऊँचा कैलास नामी पर्वत है और वह विशाल बदरी नाम आश्रम है जहां देवता आया करते हैं ११ वहीं कुबेर पुरी में असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, सुपर्ण और गन्धर्व रहते हैं १२ हे युधिष्ठिर! अब इन स्थानों को मेरे और भीमसेन के बल से रक्षित होकर अपने तप और दम के द्वारा मस्क्ताओ; वरुण, यमराज, गङ्गा, यमुना, पर्वत, अश्विनीकुमार मरुद्गण, नदियां, सरोवर, देवता, असुर और अष्टवसु तुम्हारा कल्याण करें १३। १५ हे देवि, गङ्गे! मैं तेरी अति मनोहर धड़धड़ाहट को सुमेरु पर्वत से सुन रहा हूँ हे सुभगे! तू इस अजमीढ़वंशी राजा युधिष्ठिर की पर्वतों से रक्षा कर यह राजा पर्वतों में प्रवेश करना चाहता है, हे शैलपुत्री! इसका कल्याण कर, इस प्रकार से आशीर्वाद देकर लोमशऋषि ने युधिष्ठिर से कहा कि अब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सावधान होकर रहो १६। १७ तब युधिष्ठिर ने कहा कि भाइयो! लोमशजी ने ये अपूर्व भय की बातें कही हैं और इस देश को वे कहते हैं कि बड़ा दुर्गतम है अर्थात् जाने के योग्य नहीं है इससे प्रमाद को छोड़कर परम शौच अर्थात् मन आदि की शुद्धि और द्रौपदी की रक्षा करो १८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई द्रौपदी की रक्षा बड़ी सावधानी से करो यह द्रौपदी भय के प्राप्त होने पर अर्जुन के वियोग में तुम्हारा ही स्मरण यहां करती है १९ यह सुन कर युधिष्ठिर नकुल और सहदेव के पास गया और प्यार से उन के मस्तक को सूंघकर उनसे कहने लगा कि तुम दोनों भी सावधानी से चलो किसी बात का भय मत करो॥२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३९॥

एकसौ चालीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर और भीमसेन का आपस में पर्वतीय तीर्थों की यात्रा करने के लिये यह सलाह करना कि कौन चलने के योग्य है और कौन नहीं है और फिर गन्धमादन पर्वत की यात्रा करना।

युधिष्ठिर बोले हे भीमसेन! यहां पर बड़े बड़े बलवान् प्राणी गुप्त बिचरा करते हैं, इससे अब अग्नि को साथ लेकर पवित्रता से चलना चाहिये १ और तुम भीमसेन अपने बल के आश्रय से भूंख और प्यास की चिन्ता को दूर करो ऐसा करने से ही तुम्हारा बल और तुम्हारी चतुरता बनी रहेगी २ हे भीमसेन! तुम लोमशऋषि के मुख से कैलास पर्वत का हाल सुनही चुके हो, अब बुद्धि से यह विचारो कि वहां द्रौपदी कैसे चल सक्ती है ३ हमारी समझ में तो यह आता है कि तुम सहदेव, द्रौपदी और सब भृत्यगण अर्थात् नौकर चाकर और ब्राह्मण लोग जो कठिन राह के क्लेश को सह नहीं सकते हैं लौट जाओ और हम और तपस्वी लोमशऋषि और नकुल तीनों थोड़ा आहार करनेवाले चले जायँ ४।६ तुम द्रौपदी की रक्षा करते हुए सब समाज सहित हमारे लौटने तक हरिद्वार में रहना ७ यह सुनकर भीमसेन बोले कि महाराज! यह हारी थकी द्रौपदी अर्जुन को देखने की इच्छा से जाती है ८ कि जिस महात्मा और युद्ध में मुख न मोड़नेवाले अर्जुन को विना देखे आपको भी महादुःख हो रहा है ९ जब आप मुझको द्रौपदी को और सहदेव को न देखेंगे तब आपको और भी दुःख होगा इससे चाहे सब ब्राह्मण और नौकर चाकर लोग और जिस किसी और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को आप चाहें लौटा देवें परंतु मैं इन राक्षसों से व्याप्त पर्वत और कठिन स्थानों में आपको अकेला छोड़ना नहीं चाहता हूं और यह बड़भागिनी पतिव्रता द्रौपदी भी १०। १२ आपके विना न लौटेगी और सहदेव भी आपका परम भक्त है, मैं इसके चित्त की वृत्ति को जानता हूं, यह भी आपको छोड़कर न लौटेगा; सिवाय इस बात के हम सब ही अर्जुन को देखने की लालसा रखते हैं, इससे हम सब आपके साथ ही चलेंगे और जो वहां रथ न जा सकेंगे तो हम सब पैदल भी चलेंगे, आप द्रौपदी की ओर से चिन्ता न कीजिये, मैं उस को जहाँ जहाँ वह न चल सकेगी गोदी में उठाकर ले चलूँगा १३। १६ हे राजन्! इसी प्रकार से कठिन कठिन स्थानों में नकुल और सहदेव को भी उठाकर पार करूंगा, आप किसी बात की चिन्ता न कीजिये १७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि तुम्हारे पराक्रम की वृद्धि होय, जो तुम इस प्रकार का साहस करने को कहते हो कि मैं द्रौपदी, नकुल और सहदेव को गोदी में उठा उठा कर दुर्गस्थानों में पार करूंगा तुम्हारा कल्याण हो यह बात हमने दूसरे मनुष्य में नहीं देखी ईश्वर करे तुम्हारा यश, धर्म और कीर्ति बढ़े १८। १९ और तुम ग्लानिरहित होकर पराभव अर्थात् नाश न पाओ २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे द्रौपदी ने हँसकर कहा कि महाराज ! मैं सुखपूर्वक चलूंगी, आप मेरी ओर की चिन्ता न कीजिये २१ लोमश ऋषि बोले कि इस गन्धमादन पर्वतपर विना तप का तेज रखनेवाला नहीं चढ़ सकता है इससे हम सबको नियम करके भय से युक्त होना चाहिये वहां जाने पर हम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेन अर्जुन को देख सकेंगे २२। २३ वैशंपायनजी बोले–हे राजा जनमेजय ! पाण्डव उक्तप्रकार से प्रसन्नतापूर्वक बातें करते हुए राजा सुबाहु के देश में पहुँचे, जो बहुत से हाथी और घोड़ों से युक्त था ४२ और जहां हिमालय पर्वत के निकट बहुत से किरात, तङ्गण और पुलिन्द जाति के मनुष्य रहते थे उस देश का राजा सुबाहु पाण्डवों को अपने देश की सीमापर आये हुए सुनकर आदर सहित लिवालेगया और वे उसके यहां उससे पूजित होकर रात्रि को सुख से बसे २५। २६ सूर्योदय होते ही उन्होंने इन्द्रसेन आदि नौकर रसोइये और द्रौपदी के दासों को राजा पुलिन्द को रक्षा के लिए सौंपदिया और आप सब द्रौपदी सहित अर्जुन के देखने की इच्छा से पैदल होकर धीरे धीरे प्रसन्नता से हिमालय पर्वत की ओर चल दिये ॥ २७ । ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ इकतालीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का गन्धमादन पर्वत पर जाने की यात्रा करना और राह में अर्जुन के वियोग में अनेक प्रकार की बातें कहकर दुःखी होना।

राह में चलकर युधिष्ठिर बोला कि हे भीमसेन! हे नकुल! हे सहदेव! हे द्रौपदि! मेरी बात समझो और निश्चय जानो कि पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का नाश नहीं होसक्ता है, देखो हम सब वनचारी और दुर्बल कैसे क्लेशित हैं और असमर्थ होनेपर भी अर्जुन को देखने की लालसा से एक दूसरे को उठा उठाकर चलरहे हैं १। २ अर्जुन के वियोग के कारण से मेरे सब अङ्ग इस प्रकार से दग्ध होरहे हैं जैसे रुई की राशि में अग्नि लग जानेपर सुलगा करती है ३ और इस क्लेशपर भी मैं छोटे भाइयों सहित वनवासी और अर्जुन के देखने का प्यासा हो रहा हूं द्रौपदी के बाल पकड़े जाने का दुःख और भी सताता है ४ हे भीमसेन! मेरे दुःख का कारण केवल यही है कि मैं अपने पास उस नकुल से बड़े भाई अर्जुन को जो अजेय, महातेजस्वी और उग्र धनुर्धारी है नहीं देखता हूं ५ उसी को देखने के लिए मैं तुम सबको लियेहुए वन तीर्थ और सरोवरों पर फिर रहा हूं ६ हे भीमसेन! मैं उस वीर और सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन को न देखने के कारण दुःखी हूं ७ मेरे शोक का कारण यही है कि मैं अपने पास उस श्याम, सिंहविक्रान्तगामी और महाबाहु अर्जुन को नहीं देखता हूं ८ हे भीमसेन! मुझे उस अस्त्रज्ञ, युद्ध में निपुण और धनुर्द्धारियों में अप्रमित अर्जुन के देखे विना चैन नहीं पड़ती है ९ मेरे जीव को पीड़ा इसीसे है कि मैं अपने निकट उस अर्जुन को नहीं देखता हूं जो समय पर शत्रुओं के बीच में यमराज के तुल्य घूमनेवाला, क्रोधित होनेपर मतवाले हाथी के समान, सिंहस्कन्ध इन्द्र के समान पराक्रमी, सहदेव से बड़ा भाई श्वेत घोड़े रखनेवाला, कुन्ती का पुत्र, अजेय और उग्र धनुर्द्धारीहै १०। ११ हे वृकोदर! वह अर्जुन ऐसा क्षमावान् और शीलस्वभाव है कि छोटे मनुष्य से भी खोटे वचन सुनकर सीधे मार्ग पर चलनेपर उसे अभय करदेता है १३ पराक्रम उसका ऐसा है कि जो इन्द्र भी उसे कुटिलता और छल से मारना चाहे तो वह उसके लिए भी काल और विषरूप होजाता है १४ और बड़ा बुद्धिमान्, महाबली, दयावान्, प्रतापी, शरणागत शत्रु को अभय करनेवाला, हम सबका, आश्रय, रण में शत्रुओं को मारने वाला, सब रत्नों का लानेवाला और हम सबका सुखदायी है १५। १६ देखो,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वही पहिले मेरेलिए दिव्य और अनेक प्रकार के रत्न अपने पराक्रम से लाया था, जो अब दुर्योधन के पास हैं १७ हे पाण्डुनन्दन! उसीकी भुजा के बल से मेरी रत्नजटित सभा बनी थी, जो तीनोंलोकों में विख्यात है १८ शूरवीरता में वह वासुदेवजी के तुल्य और युद्ध में कार्तवीर्य के समान अजेय है, मैं उसको अब अपने निकट नहीं देखता हूं १९ हे भीमसेन! वह शत्रु का मारनेवाला अपने पराक्रम से महापराक्रमी बलदेवजी श्रीकृष्णजी और तुम्हारे पीछे चलनेवाला हुआ था, उसका प्रभाव और भुजाबल इन्द्र के तुल्य, वेग वायु का सा, शोभा चन्द्रमा की-सी और क्रोध मृत्यु के समान है २०। २१ अब हम सब उस अर्जुन को देखने के लिए गन्धमादन पर्वत पर जायँगे जहां श्रीनारायण का विशाल बदरी नाम आश्रम है और उस उत्तम पर्वत को देखेंगे, जिस पर यक्ष सदैव रहा करते हैं २२। २३ और वहां से तप करते हुए पैदल ही कुबेर देवता की पुष्करणी की यात्रा करेंगे, जो बड़ी रमणीक है और जहां राक्षस रहा करते हैं २४ हे भीमसेन! उस देश में लोभी, दयाहीन और अशान्त पुरुष नहीं जासक्ते हैं परंतु हम सब खड्ग आदि आयुध लिये हुए इन महाव्रती ब्राह्मणोंसहित वहां जायँगे २५।२६ जो मनुष्य अपवित्र होता है, उसको वहां जानेपर मक्षिका, दंश, मच्छर, सिंह, व्याघ्र और सर्प मिलते हैं और जितेन्द्रिय मनुष्य को ये नहीं दिखाई देते हैं २७ इससे हम सबको अर्जुन के देखने की इच्छा से शुद्ध अन्तःकरण और नियतात्मा होकर गन्धमादन पर्वत पर चलना चाहिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

एकसौबयालीसवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का अनेक तीर्थोंपर होतेहुए गन्धमादन पर्वत की यात्रा करना और लोमश ऋषि का युधिष्ठिर से नरकासुर दैत्य के मारेजाने और विष्णु के वाराह अवतार लेकर पृथ्वी के उठाने की कथा वर्णन करना ॥

लोमश ऋषि बोले हे राजा युधिष्ठिर! तुम सब पहाड़, नदी, पुर, कानन बन और श्रीमान् तीर्थों को देखना चाहतेहो, इससे विधिपूर्वक आचमन करके चलो १ हे पाण्डवो! देखो, यह राह मन्दर नाम पर्वत को गई है, अब तुम सब उद्वेग छोड़कर सावधान होजाओ २ इस पर्वतपर देवता और पुण्यकर्मा दिव्य ऋषियों का निवास है, इससे तुमको वहां पवित्रता से चलना चाहिये, देखो यह शिवजला और पुण्यरूपा महानदी जो बदरी से उत्पन्न हुई है और जिसपर देव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ऋषि रहाकरते हैं, जारही है ३।४ आकाशचारी महात्मा बालखिल्य ऋषि और गन्धर्व लोग इस नदी को पूजते हैं और अपने मनकी कामना को सिद्ध करने के लिए इसकी प्रार्थना करते हैं यहां पवित्र ध्वनि वाले सामवेदी ब्राह्मण और मरीचि, पुलह, भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषि लोग सामवेद के मन्त्रों को गाया करते हैं ५।६ यहीं पर इन्द्र मरुद्गणों को लेकर अपना नित्यकर्म करते हैं और उस समय साध्यगण और दोनों अश्विनीकुमार उनकी सेवा करते हैं ७ और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारागण इस महानदी पर कोई रात्रि और कोई दिन में आया करते हैं ८ गङ्गाद्वार पर इस महानदी के जल को शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया था जिनसे ये संपूर्ण लोक स्थित हैं ९ सो हे युधिष्ठिर! तुम सब सावधान होकर इस भगवती देवी गङ्गा के सम्मुख जावो और दण्डवत करो १० यह उन महात्मा लोमशजी का वचन सुनकर युधिष्ठिर ने सब भाइयों सहित गङ्गाजी को दण्तवत् की और वहांसे प्रसन्नतापूर्वक सब ऋषिगणों के साथ आगे को चलदिये ११।१२ थोड़ी दूर पर जाकर उन नरनायकों ने दूर से चमकते हुए पाण्डुवर्ण के मेरु के समान चारों दिशाओं में फैले हुए पहाड़ से देखे १३ देखकर पाण्डवों ने लोमशऋषि से उनका वृत्तान्त पूछना चाहा परंतु उसको लोमशऋषि उनके चित्त की वृत्ति को जानगये और कहनेलगे कि हे पाण्डवो! १४ ये जो कैलास पर्वत की चोटी के समान फैले हुए सुशोभित पहाड़ से दिखाई दे रहे हैं ये नरक नामी दैत्य के हाड़ हैं, पहाड़ के ऊपर पड़े होने के कारण से पर्वतरूपी दिखाई दे रहे हैं १५।१६ वह दैत्य पुरातन पुरुष श्रीविष्णु भगवान् के हाथ से, जो परमात्मा और इन्द्र का हित चाहनेवाले हैं, मारागया था १७ उसने दशसहस्र वर्ष तपस्या करके इन्द्र का इन्द्रासन लेना चाहता था और अपने पराक्रम और तपोबल के कारण से निर्भय रहता था और दूसरे लोग उससे भयभीत रहते थे १८।१९ हे निष्पाप! जब इन्द्र उसके बल और धर्म व्रत को जानकर भय से दुःखी और व्याकुल हुआ, उस समय उसने अपने मन में सर्वव्यापी और अविनाशी विष्णु भगवान् का ध्यान किया, ध्यान करते ही विष्णु भगवान् वहां आन पहुँचे और इन्द्र के सम्मुख खड़े होगये २०।२१ देवता और ऋषियों ने उन की स्तुति की और उनके प्रज्वलित तेज से अग्निदेव का तेज नष्ट होगया इस के पीछे इन्द्र ने उन वरदाता विष्णु को देखकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया और नम्रता से विनय पूर्वक अपना तत्त्व वचन अर्थात् प्रयोजन निवेदन किया, जिस

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के कारण से वह भयभीत होरहा था २२।२४ विष्णुभगवान् उसकी प्रार्थना को सुनकर बोले कि मैं जानता हूं कि तुमको नरकासुरका भय होरहा है, जो तपस्या करके इन्द्रलोक लेना चाहता है २५ सो हे देवेन्द्र! मैं तुम्हारी प्रीति के कारण से उस दैत्य को एक मुहूर्त्त में ही मारेडालता हूं यद्यपि उसने तप से सिद्धि प्राप्त करली है २६ यह कहकर विष्णु भगवान् नरकासुर दैत्य के पास गए और उसके प्राणों को थप्पड़ मार मार कर हरलिया तब वह दैत्य निर्जीव होकर पहाड़ के समान पृथ्वीपर गिरपड़ा २७ सो हे युधिष्ठिर! यह समूह उसी दैत्य के हाड़ों का है और विष्णु भगवान् ने दूसरा उत्तम काम यह किया था कि इस पृथ्वी के पाताल में डूब जाने पर अपना एक सींगवाला वाराहरूप धारण करके इसको उसी सींगपर उठा लिया था २८।२६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! इस कथा को विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये विष्णु भगवान् ने इस पृथ्वी को सौ योजन ऊंचा क्योंकर उठाया था और यह अबला जगत् को धारण करनेवाली कल्याणरूपा सब प्रकार की खेती की उपजानेवाली पृथ्वी देवी सौ योजन नीचे को कैसे और किसके प्रभाव से चली गई थी और परमात्मा विष्णु भगवान् के इस चरित्र को किसने देखा था? इन सब बातों को आप कृपा करके विस्तारपूर्वक सुनाइये क्योंकि आप इस कथा को अच्छीतरह जानते हैं ३०।३३ यह सुनकर लोमश ऋषि बोले कि हे युधिष्ठिर! अच्छा, हम इस कथा को विस्तारपूर्वक कहते हैं सुनो ३४ जिन दिनों में अभयकर्ता सत्ययुग वर्तमान था, उन दिनों में यमराज का काम श्रीदेवदेवेश आदिदेव अच्युत विष्णु भगवान् किया करते थे; उस समय संसार में जीवउत्पन्न तो होतेथे परंतु मरता कोई न था ३५। ३६ इस कारण से सब पक्षी, मेढ़ा, गौ, घोड़ा, मृग आदि पशु मांसाहारी जीव और मनुष्य दिनप्रति जल की भांति बढ़ते चले जाते थे ३७।३८ थोड़े ही दिनों में इतने बढ़गये कि उनके बोझ से पृथ्वी सौ योजन नीचे को चलीगई ३९ और अत्यन्तदुःखी और बोझे से अचेत होकर उसने सुरनायक श्रीनारायण की शरण ली ४० और विनय करने लगी कि महाराज! जो आप कृपा करें तो मैं यहां बहुत दिनों तक ठहरूं, मैं अब बोझे के कारण से स्थित नहीं रहसक्ती हूं ४१ आप समर्थ हैं, मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैं आपकी शरण हूं, आप मेरे इस बोझे को दूर कीजिये ४२ अविनाशी सर्वशक्तिमान् नारायण उसके विनययुक्त वचनों को सुनकर बोले ४३ कि हे पृथिवि! हे वसुधे! तू बोझे के कारण से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दुःखी मत हो ! मैं तुझे हलका करने का उपाय करता हूं ४४ ऐसा कहकर नारायण ने उस पर्वतरूप कुण्डलधारी पृथ्वी को बिदा किया और अपना स्वरूप वाराह का जिसके एक सींग था, धारण किया ४५ और उसी स्थान पर अपने प्रकाशित रक्तनेत्रधारी और भयानक शरीर को धूम्र के तोम के समान बड़ा किया ४६ इसके उपरान्त भगवान् ने अपने सींग पर उस पृथ्वी को उठाकर सौ योजन ऊंचा कर दिया ४७ उठाने के समय पृथ्वी ऐसी डगमगाई कि सब देवता और तपस्वी, ऋषि उसके डगमगाहट से व्याकुल हो गये ४८ और स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर हाहाकार मच गया, उससमय किसी मनुष्य को सावधानी नहीं रही ४९ इसके उपरान्त सब देवता और ऋषि ब्रह्माजी के पास गये और उनसे हाथ जोड़कर विनय की ५० । ५१ कि महाराज ! सब लोक और समुद्र क्षोभित हो रहे हैं और सब चर-अचर जीव व्याकुल हैं, इस पृथ्वी को किसने और किसके प्रभाव से सौ योजन ऊंचा उठाया है और यह बात क्या है ? जो सब जगत व्याकुल हो रहा है, हम सब भी इसको देख कर अचेत से हो रहे हैं, आप इसका कारण शीघ्र हम लोगों से कहिये ५२।५३ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओ ! तुम डरो मत और न असुरों का भय करो पृथ्वी के डगमगाने का कारण यह है सुनिये, जो वह श्रीमान् वेदात्मा भगवान् सर्वत्रगामी होकर टिका रहता है उसी के प्रभाव से स्वर्लोक का हिलना हुआ है ५४ । ५५ कि यह पृथ्वी सौ योजन नीचे को चली गई थी; अब उसको सर्वव्यापी वाराह भगवान् ने जो परमात्मा विष्णु का स्वरूप हैं ऊपर को उठाया है उसी से यह पृथ्वी डगमगा रही है तुमलोग अपने संदेह को दूर करो ५६ । ५७ यह सुनकर देवता बोले कि महाराज ! वह देश कहां है जहां आदिपुरुष विष्णु ने पृथ्वी को उठाया है ? हमलोग भी वहां जाना चाहते हैं ५८ ब्रह्माजी बोले कि यह बड़े हर्ष की बात है, जाओ तुम्हारा कल्याण हो और नन्दनवन में वाराह भगवान् के दर्शन करो वहां गरुड़जी उपस्थित हैं और विष्णुभगवान् वाराह रूप से पृथ्वी को उठाये हुए कालाग्नि के समान प्रकाशित हो रहे हैं ५९ । ६० उनकी छाती पर श्रीवत्सचिह्न शोभा दे रहा है तुम सब देवता वहां जाकर उस अविनाशी स्वरूप के दर्शन करो ६१ लोमशऋषि बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे सब देवता वाराह भगवान् के दर्शन करके ब्रह्मा जी सहित अपने अपने लोकों को चले गये ६२ वैशंपायनजी बोले हे राजा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जनमेजय! पाण्डव उक्त कथा को सुनकर लोमश ऋषि की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक आगे को शीघ्रता के साथ चलने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

एकसौतेतालीसवां अध्याय।

पाण्डवों का अनेक पर्वत और नदी आदि को देखते हुए गन्धमादन पर्वत के समीप पहुँचना और वहां बड़ी आँधी और मेह का आना।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! इसके पीछे वे धनुषधारी, शूरवीर, पाण्डव धनुष, तरकस, बाण और खड्ग बांधे हुए गोधांगुलित्र अर्थात् चमड़े के हस्तत्राण पहिरे हुए द्रौपदी-सहित सब ब्राह्मणों को साथ लिये हुए गन्धमादन पर्वत की ओर चले १। २ और पहाड़ों के ऊपर सरोवर, नदी, वन और छाया दार वृक्षों को देखते हुए आत्मा में अपना मन लगाकर फल-मूल भोजन करते हुए फूले फले वृक्षों से युक्त देश और नाना प्रकार के नीचे ऊंचे कठिन स्थान और अनेक प्रकार के मृगों को अवलोकन करते हुए उस पर्वत पर पहुँचे जहां महात्मा ऋषि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर रहा करते थे ३। ६ वहां से चलकर वे पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, उनके पहुँचते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी और बड़ी वर्षा हुई, और उसने अकस्मात् पृथ्वी और आकाश को धूल से ढक दिया ७। ८ उसके कारण से कुछ दिखाई न देने लगा और वे एक दूसरे से बात चीत न कर सके ६ तदनन्तर हे भरतवंशिन्! पत्थरों की रज वायु से उड़ने लगी और उन सबोंने अपनी अपनी आंखें बन्द कर लीं और एकदूसरे को न देख सके १० उस समय वे सब वायु से वृक्षों के टूटने और उड़ उड़ कर पहाड़ों पर गिरने के शब्द को सुनकर आश्चर्यपूर्वक कहने लगे कि यह क्या है? पृथ्वी फटती है या आकाश गिरता है या पर्वत विदीर्ण होता है ११। १२ और हाथों से राह के वृक्ष बल्मीक और नीचे ऊंचे स्थानों को टटोल टटोलकर चिपट रहे १३ उस समय महा बलवान् भीमसेन धनुष लेकर एक वृक्ष के सहारे से द्रौपदी के पास खड़ा हो गया १४ और युधिष्ठिर और धौम्यऋषि महावन में जा छिपे और सहदेव अग्निहोत्र को लेकर पर्वत में छिप रहा १५ और नकुल और महातपस्वी लोमशऋषि और अन्य ब्राह्मण भयभीत होकर जहां तहां वृक्षों को पकड़ पकड़कर खड़े हो रहे १६ जब वायु मन्दी हुई और धूल भी बैठ गई तब एकाएकी बादल उमड़कर चले आये और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बड़ी बड़ी बूंदें गिरने लगीं, उनके गिरने से चटचटा शब्द होने लगा और बिजलियां आकाश में इधर से उधर चमकने लगीं; थोड़ी देर में वायु के फिर प्रचण्ड होने पर ओलों सहित जल की धारा गिरने लगी और चारों ओर से समुद्र में मिलनेवाला जल फेन-सहित बह बहकर आने लगा १७ । २० और फेनों समेत वृक्षों को लिये हुए पर्वतीय नदियां उमड़ आईं २१ हे भारत ! इसके पीछे जब वायु बन्द हो गई, वर्षा थम गई, चारों ओर से शब्द बन्द हो गया, सब पानी बहकर नीचे स्थानों में चला गया और सूर्य निकल आये, तब वे सब शूरवीर धीरे धीरे निकलकर परस्पर मिले और गन्धमादन पर्वत पर चल दिये ॥ २२ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

एकसौ चवालीसवाँ अध्याय ।

द्रौपदी का मार्ग में थककर अचेत होकर गिर पड़ना, युधिष्ठिर का विलाप करना, ब्राह्मणों का युधिष्ठिर को समझाना और भीमसेन का घटोत्कच को बुलाना ।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय ! जब महात्मा पाण्डव उक्त स्थान से चलकर एक कोस पहुँचे तब वह पैदल चलने के अयोग्य तपस्विनी द्रौपदी वर्षा और वायु से थककर शरीर की कोमलता के कारण से अचेत हो गई, शरीर उसका मोह से कांपने लगा और वह अकस्मात् अपनी दोनों गोल और सुन्दर भुजाओं से अपनी गजकर सम जांघों को पकड़कर बैठ गई और पैर फैलाकर पृथ्वी पर कदली के समान गिर पड़ी १।४ उस समय नकुल ने उसके पास जाकर उस टूटी हुई, लता के समान गिरती हुई वराङ्गना को पकड़ लिया ५ और युधिष्ठिर से पुकार कर कहा कि हे भारत ! महाराज ! देखिये यह नीले नयनवाली पांचाल देश के राजा की पुत्री थककर पृथ्वी पर गिर पड़ी है ६ इस मृदुगामिनी ने बड़ा दुःख पाया है, यह इस दुःख के योग्य नहीं है, आप यहां आकर इस थकी हुई को धैर्य दीजिये ७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! नकुल की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन और सहदेव दौड़कर द्रौपदी के पास आये और धर्मात्मा युधिष्ठिर दुःखी होकर उस विवर्णमुखी और लेटी हुई को गोद में लेकर विलाप करने लगा ८।९ हाय! यह वराङ्गना द्रौपदी अच्छे अच्छे महलों में सुन्दर पलँगों पर सोने के योग्य होकर इस विपत्ति में पृथ्वी पर पड़ी हुई सोती है १० मेरे कारण से इसके कोमल चरण और कमल-सा मुख कैसे काले पड़ गये हैं ११ मुझ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुबुद्धि ने यह क्या किया ? जो मैं जुआ खेला और इस कोमलाङ्गी को लेकर इस मृगों के रहने के वन में आया १२ इसके पिता द्रुपद ने यह समझकर हम लोगों को इसे दिया था कि यह पाण्डवों को पति पाकर सुख पावेगी १३ परंतु इसने सुख नहीं पाया और मुझ पापी के कारण से शोक और श्रम से दुःखी होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई है १४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब युधिष्ठिर ने उक्त प्रकार से विलाप किया, तब धौम्य आदि सब ब्राह्मण उसके पास चले आये १५ और धैर्य देकर अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये और राक्षसों को मारनेवाले मन्त्रों का जप करके अनेक प्रकार के यत्न किये १६ जब महर्षियों ने शान्ति करनेवाले अनेक मन्त्र पढ़े और पाण्डवों ने अपने शीतल हाथों से स्पर्श किया और जल छिड़ककर पवन की, तब धीरे धीरे सुखपूर्वक द्रौपदी चैतन्य हो गई १७।१८ तब पाण्डवों ने मृगचर्म बिछाकर मूर्च्छा से जगी; तपस्विनी, दुखिया द्रौपदी को लिटा दिया १९ नकुल और सहदेव अपने ज्या से चिह्नित हाथों से उसके पैरों को, जिनके तलुये लाल थे दाबने लगे २० और धर्मराज युधिष्ठिर उसको धैर्य देता रहा, इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा २१ कि हे महाबाहो ! ये पर्वत बहुत नीचे ऊंचे और बरफ के कारण से कठिनता से जाने के योग्य हैं, द्रौपदी इनमें कैसे चलेगी २२ यह सुनकर भीमसेन बोला कि हे पुरुषोत्तम ! आप चिन्ता न कीजिये मैं आपको और द्रौपदी समेत नकुल और सहदेव को आप उठाकर ले चलूंगा २३ और वह महाप्रतापी घटोत्कचनामी हिडम्बा का पुत्र, जो मेरे समान बलवान् है, आपके कहने से हम सबों को ले चलेगा २४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया, वह धर्मात्मा, वीर, पिता के याद करते ही वहां आ पहुँचा और हाथ बांधकर पिता के सम्मुख खड़ा हो गया, इसके पीछे उसने सब पाण्डव और ब्राह्मणों को दण्डवत् की और उन सबोंने उसे आशीर्वाद दिया २५।२६ आशीर्वाद पाकर वह अपने पिता भीमसेन से कहने लगा कि आपके याद करते ही मैं आपकी सेवा करने के लिये यहां आया हूं २७ कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ? जो कुछ आप कहेंगे, उसको मैं निस्संदेह करूंगा; यह सुनकर भीमसेन उठकर अपने पुत्र से मिला ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ पैंतालीसवाँ अध्याय।

सब पाण्डव और ब्राह्मणों का राक्षसों के ऊपर सवार होकर विशाल बदरी नाम आश्रम में पहुंचना और वहां नरनारायण के आश्रम की झांकी करके वहां के वन में विहार करना।

युधिष्ठिर बोला हे भीमसेन! यह घटोत्कच हमारा धर्म का जाननेवाला बलवान्, सच्चा, राक्षसों में श्रेष्ठ, परमभक्त और औरस पुत्र है, यह हमको जल्दी अपने ऊपर सवार कर ले, हम इसकी भुजाबल से द्रौपदी सहित सुखपूर्वक गन्धमादन पर्वत पर जाना चाहते हैं १। २ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन अपने भाई की उक्त बात को सुनकर वैरिविनाशन अपने पुत्र घटोत्कच से बोला ३ कि हे बेटा हिडम्बा के पुत्र! यह तेरी माता चलते चलते हार गई है, तू बलवान् और इच्छा के अनुसार चलनेवाला है, इससे तू इसको अपने कन्धे पर बिठा ले और हम सबके साथ साथ नीची गति से आकाश मार्ग से ले चल जिसमें इसे पीड़ा न होने पावे ४। ५ यह सुनकर घटोत्कच बोला कि हे अनघ! मैं अकेला ही द्रौपदी और युधिष्ठिर और नकुल, सहदेव और धौम्य पुरोहित को ले चल सकता हूं, अब तो मेरे साथ और भी आकाशचारी राक्षस हैं—अब क्यों न ले चल सकूंगा; ये सब मेरे शूरवीर साथी आप सबको और ब्राह्मणों को ले चलेंगे और मैं द्रौपदी को ले चलूंगा ६। ७ यह कहकर घटोत्कच ने द्रौपदी को अपने कन्धे पर बिठा लिया और दूसरे राक्षसों ने सब पाण्डव और ब्राह्मणों को अपने ऊपर सवार करा लिया और सबके सब आकाशमार्गी हुए उस समय लोमशऋषि दूसरे सूर्य के समान सिद्धमार्ग से उनके साथ-साथ हो लिये और वे सब रमणीक वन और उपवनों को देखते हुए, विशाल बदरी नाम आश्रम में पहुँचे ८। ११ वह स्थान यद्यपि बहुत दूर था, परंतु उन शीघ्रगामी राक्षसों पर सवार होने के कारण से उनको वह मार्ग बहुत छोटा सा जान पड़ा १२ राह में उन सबोंने उत्तम कुरुदेश और अन्य अनेक पहाड़ी देश देखे जो म्लेच्छ और विद्याधरों से व्याप्त अनेक प्रकार के रत्न, धातु, उपधातुओं से युक्त, वानर, किन्नर, किंपुरुष और गन्धर्वों से आवृत मोर, चमर, मृग, वाराह, गौ और भैंसाओं से सुशोभित नदियों के जलों से घिरे हुए और अनेक प्रकार के पक्षियों से शब्दित थे और पर्वतोत्तम कैलास पर्वत जिसमें अनेक आश्चर्य की बातें और उसके समीप के नरनारायण के आश्रम को देखते हुए १३। १८

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उस बदरी के निकट पहुँचे जिसके फल पुष्पयुक्त शोभायमान वृक्षों के बड़े बड़े मनोहर स्कन्ध सघन छाया के सचिक्कण कोमल पत्ते और स्वादिष्ठ मीठे फल थे १६।२१ वहां नानाप्रकारके मदसे नित्य हर्षित पक्षी और बड़ेबड़े महाऋषि रहते थे २२ मक्खी और मच्छर का नाम न था और फल,मूल और जल जितना चाहो मिलता था पृथ्वी वहां की उर्वरा और घास हरी थी और देवता, गन्धर्व वहां सदैव रहाकरतेथे २३ भूमि उसस्थानकी बराबर और स्वाभाविक बरफ के कारण से चिकनी थी और काँटे देखने को न थे २४ हे राजन्! उसको देखकर सब पाण्डव ब्राह्मणों सहित धीरेधीरे राक्षसों के कन्धों परसे उतर पड़े और सब ने जाकर वहां नर नारायण के परम रमणीक आश्रम को देखा २५।२६ इस आश्रम में विना सूर्य की किरणों के भी अँधेरा नहीं रहता है और भूख, प्यास, सरदी और गरमी नहीं लगती है, वहां जाने से शोक दूर हो जाता है, अनेक महाऋषि और चारों वेदों के जाननेवाले ब्राह्मण वहां रहते हैं, अधर्मी मनुष्य वहां नहीं जा सकता २७।२८ यज्ञ करने के वह स्थान भी वहां बने हुए हैं, जिनमें बलिप्रदान, होम, मार्जन और लेपन करने की सब सामग्री धरी रहती है, वह स्थान दिव्यपुष्प, अग्नि के अंगारे, जल भरे हुए कलश और स्रुवा आदि यज्ञपात्रों से सुशोभित हो रहे थे २६।३० सब प्राणियों की शरण का वही स्थान है, वहां सदैव वेदध्वनि हुआ करती है और जानेवाले का सब श्रम दूर हो जाता है ३१ उस अनिर्देश्य देवचर्या से उपशोभित आश्रम में सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी महाऋषि रहते हैं, ये ऋषि फल और मूल खाकर रहते हैं और काले मृगों के चमड़े ओढ़ते हैं और बड़े जितेन्द्रिय, शुद्धअन्तःकरण, मोक्षार्थी, महाभाग और ब्रह्मवादी हैं, उनको देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उनके पास गया, उन वेदपाठी महर्षियों ने अपने दिव्य ज्ञान से उनको जानकर उन्हें आशीर्वाद दिया और प्रसन्नता से उनका सत्कार करके पवित्रजल, पुष्प, मूल और फल दिये ३२।३७ युधिष्ठिर ने बड़ी प्रीति और प्रसन्नता से उस उपहार अर्थात् भेंट को अङ्गीकार किया और वहां से चलकर सहस्रों वेदपारग ब्राह्मण और अपने भाई और द्रौपदी सहित उस नरनारायण के आश्रम में गये जो इन्द्र के भवन के सदृश सुगन्धित, मनोरम, धर्म का बढ़ानेवाला ३८।४० देवता और देवऋषियों से पूजित गङ्गा से उपशोभित था ४१ अनेक महाऋषि वहां सेवा कर रहे थे और वृक्षों में अनेक प्रकार के मधु के सदृश मीठे-मीठे फल लगे हुए थे; पाण्डव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वहां पहुँचकर उस आश्रम को देखने लगे और ब्राह्मणों सहित वहां वासकर के आनन्दपूर्वक रमण करने लगे ४२। ४३ वहां से उन्होंने मैनाक पर्वत देखा, जिसकी सुनहरी चोटियों पर नाना प्रकार के पक्षी रहते हैं और उसके ऊपर जो बिन्दुसर नामी तीर्थ है, उसको भी देखा ४४ इसके उपरान्त पाण्डव वहां के सुन्दर वन में द्रौपदी सहित विहार करने लगे, उस वन में सब ऋतु के पुष्प फूल रहे थे ४५ वहां के वृक्षों की लताएँ फलों के बोझ से झुक रही थीं, कोकिला आदि पक्षी उनपर बैठे हुए मधुर मधुर बोल रहे थे, पत्ते उन वृक्षों के सघन और चिकने चिकने थे, छाया बड़ी शीतल थी और बड़े रमणीक और मनोहर दीखते थे, जहां तहां उस वन में कमल फूल रहे थे और सरोवर निर्मल जल भरा हुआ होने से बड़े शोभायमान लगते थे, उस समय वहां शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु बहने लगी, उससे पाण्डव द्रौपदी सहित बहुत आह्लादित अर्थात् प्रसन्न हुए ४६। ४८ फिर वहां से उन सीता सुतीर्था और भागीरथी नाम तीर्थों को देखते हुए जिनके घाट मणि और मूंगाओं के बने थे, किनारों पर दिव्य फूलों से फूले हुए वृक्ष लग रहे थे और बीच में कमल फूल रहे थे, फिर विशाल बदरी के निकट उस स्थान पर पहुँचे, जहां देवऋषि रहा करते थे, पाण्डवों ने उस दुर्गम स्थान में श्रीगङ्गाजी के जल से तर्पण किया ५०। ५२ और ब्राह्मणों सहित जप, तप और शौच में मन लगाकर वास किया ५३ फिर उस स्थान पर उक्त प्रकार से बसकर द्रौपदी के क्रीड़ा करने के लिये स्थानों को देखते हुए रमण करने लगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

एकसौ छियालीसवाँ अध्याय।

एक सुगन्धित कमल के फूल का वायु से उड़कर द्रौपदी के पास आ पड़ना, द्रौपदी का भीमसेन को वैसेही फूल लाने को भेजना, भीमसेन का वन और पर्वतों की शोभा देखते हुए फूल लेने जाना और कदली खण्ड में पहुँचकर हनुमान्‌जी से वार्तालाप होना।

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! वे पुरुषोत्तम पाण्डव उस स्थान में बड़ी पवित्रता से रहकर अर्जुन के दर्शनों की लालसा से छःरात्रि बसे १ उसके उपरान्त दैव इच्छा से वहां एक कमल जिसमें एक सहस्र पत्ते थे पूर्व और उत्तर के कोने से वायु से उड़कर आन पड़ा २ द्रौपदी ने उस सुगन्धित और पवित्र कमल को पृथ्वी पर से उठा लिया और उसकी मनोहर और उत्तम सुगन्ध से प्रसन्न

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

होकर उसने भीमसेन से कहा ३ । ४ कि हे भीमसेन ! इस सर्वोत्तम सुगन्धित कमल के फूल को देखो, इसको देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है, मैं इस फूल को युधिष्ठिर को दूंगी, तुम ऐसेही और फूल मुझको ला दो, मैं उनको काम्यक वन में ले चलूँगी ५।६ तात्पर्य यह है कि जो तुम मुझको अपनी प्रिया समझते हो तो ऐसेही फूल बहुत से लाना, मैं इनको काम्यक वन में लेजाना चाहती हूं ७ द्रौपदी इस प्रकार भीमसेन से कहकर वह फूल युधिष्ठिर को देने के लिये चली गई ८ और महाबली भीमसेन अपनी उस प्रिया के अभिप्राय को जानकर उसी वायु के सम्मुख जिससे उड़कर वह फूल आया था और फूल लेने के लिये सुनहरी धनुष और विषधारी सर्पों के तुल्य बाण लिए हुए मतवाले हाथी और सिंहकी सी गति करके शीघ्र चल दिया ९ । ११ जाते में उसको सब प्रकार के जीवों ने देखा परंतु भीमसेन को किसी से भय नहीं हुआ वह वीर अपने बल के आश्रय रहता था, उसको ग्लानि, विकलता, भय और श्रम कभी नहीं होता था, आगे चल के वह अपनी प्रिया की कामना को पूरा करने के लिये पर्वत पर चढ़गया और वहां की शोभा देखने लगा, उस पर्वत की नीली नीली शिला वृक्ष और लताओं से ढकी हुई थीं १२ । १४ किन्नर लोग वहां के निवासी थे और वह अनेक प्रकार की धातु, वृक्ष, मृग और पक्षियों से चित्र विचित्र दीखता था १५ उँचाई उसकी पृथ्वी की भुजा के तुल्य थी और वह पर्वत अनेक प्रकार की वनस्पतियों से अनेक प्रकार के भूषण पहिरे हुए दीखता था, भीमसेन उस पर्वत के सब रमणीक शिखरों पर अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखकर उनके अभिप्रायों को विचारता, कोकिला आदि पक्षियों की मनोहरवाणी सुनता हुआ, षट्पदों के रहने के देशों को देखता हुआ आगे को चला । उस समय सब ऋतुओं के पुष्पों के फूलने के कारण से सुगन्धित वायु चलने लगी, भीमसेन उससे श्रमरहित और प्रसन्न हो गया और मतवाले हाथी के समान झूमता हुआ चलने लगा, सुगन्धित वायु उसके शरीर में लगती जाती थी और ऐसा जान पड़ता था मानों वायु अपने पुत्र को थका हुआ देखकर उसके ऊपर हाथ फेरती है १६ । २० इसके पीछे उसने उस पर्वत को जिस पर यक्ष, गन्धर्व, देवता और ब्रह्मऋषि रहते थे, फूलों के लिये देखा, उस पर्वत के ऊँचे नीचे स्थान सुनहरी रुपहरी और श्याम रंग की धातुओं से युक्त होने के कारण त्रिपुण्ड्र आकार दिखाई देते थे और उनके पार्श्व में बादलों के चलने से वे पक्षी की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भांति नाचते हुए जान पड़ते थे और जहां तहां झरनाओं के झरने से ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत मोतियों के हार पहिने हुए हैं और उसके ऊपर अप्सराओं के चलने से घुँघुरुओं के शब्द से यह विदित होता था कि पहाड़ मोर की भांति नाच रहा है, दिग्गज अपने दांतों को उस पहाड़ के पत्थरों से घिस रहे थे और उस पहाड़ के चारों ओर बहती हुई नदियां ऐसी दीखती थीं मानो पहाड़ का डुपट्टा उतरकर गिरपड़ा है, इस प्रकार की शोभा को और निर्भय उन हरिणों की क्रीड़ा को, जो मुख में घास का ग्रास लिये हुए सावधानी से समीप खड़े थे, निरखता हुआ अपने वेग से लताओं को हटाता हुआ २१। २६ वह प्रसन्नमन वायुपुत्र भीमसेन अपनी प्रिया की कामना पूरी करने के लिये आगे को चला २७ उसके शरीर की प्रभा सोने की सी थी, अङ्ग उसका सिंह के सदृश दृढ़ था और पराक्रम वेग और आंखे उसकी मतवाले हाथी की सी थीं, यक्ष और गन्धर्वों की स्त्रियां पहाड़ के शिखरों पर बैठी हुईं निश्चेष्ट और अदृश्यरूप से उसको देख रही थीं और वह अनेक क्रीड़ा और दुर्योधन के दिये हुये दुःखों को याद करता हुआ, गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर विचरने लगा २८।३१ और उस वनवासिनी द्रौपदी का मनोरथ पूरा करने के लिये उद्यम में प्रवृत्त होकर चिन्ता करने लगा कि अर्जुन तो स्वर्ग में है और मैं इधर फूल लेने के लिये चला आया हूं, वहां न जाने युधिष्ठिर क्या करेगा, मैं जानता हूं कि स्नेह के कारण से वह नकुल और सहदेव को त्याग नहीं करेगा, अब मुझको फूल जल्दी से क्योंकर मिलें, इस प्रकार से चिन्ता करता हुआ ३२। ३४ वह वीर पहाड़ और वन के फूले हुए वृक्षों की शोभा देखता और पृथ्वी को अपने पैरों से कम्पित करता हुआ जल्दी चलने लगा और अपने वायुरूपी वेग से हाथियों के झुण्डों को डराता, सिंह और व्याघ्रों को मारता, वृक्षों को तोड़ता और लता बेलों को खींचता हुआ, हाथी के समान गन्धमादन पर्वत के एक शिखर पर चढ़ गया और वहां बादल के समान गर्जकर आगे को वेग से चल दिया, उसकी गर्जना सुनकर गुफाओं में सोते हुए व्याघ्र जग पड़े और डर के मारे जहां तहां जा छिपे और पक्षी उड़ने लगे, मृगों के झुण्ड के झुण्ड इधर उधर भागने लगे, रीछ वृक्षों से उतर उतर कर भागे और महासिंह जँभाई लेने लगे और भैंसे इधर उधर देखने लगे ३५।४१ हाथी और हाथिनियों के झुण्ड डर डरकर उस वन को छोड़कर दूसरे महावन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

में चले गये ४२ और वाराह, भैंसा और मृग आदि अनेक वन के जीव भयभीत होकर अपनी अपनी बोली बोलने लगे ४३ चकवा, चकवी, मोर, चातक, हंस, तोता, कारण्डव, प्लव, कोकिला और कुरच आदि पक्षी उड़ उड़कर इधर उधर चल दिये ४४ इसके पीछे जो हाथी हथिनियों के साथ थे, वे और क्रोधी सिंह और व्याघ्र भय से मूत्र विष्ठा करते हुए और भयानक बोली बोल बोल मुखबाये हुए भीमसेन की ओर दौड़े ४५। ४६ जब निकट आये तब उसने हाथियों को हाथी से और सिहोंको सिंहों से और दूसरे जीवों को हाथों से मार मार कर गिरा दिया तब वे सब जीव भयभीत होकर मूत्र और विष्ठा करते हुए, भीमसेन के पास से भागकर इधर उधर वन में चले गये और वह वीर अपनी गर्जना से दिशाओं को पूरित करता हुआ शीघ्रता से वन में घुसगया और वहां गन्धमादन के एक शिखर पर चढ़कर उसने कदलीखण्ड अर्थात् केलों के वन को देखा उसको देखकर वह वेग से नीचे उतर आया और उस वन के समीप जाकर ४७।५१ मतवाले हाथी के समान केले के पेड़ों को उखाड़ उखाड़कर चारों ओर फेंकने लगा और नृसिंहजी के तुल्य गर्वित होकर बड़े शब्द से गर्जता हुआ आगे को चला ५२। ५३ और बड़े बड़े शरीरधारी वन के जीव और मृग, वानर, सिंह, भैंसा और जलचारी जीवों को नांघता हुआ वन के भीतर घुस गया, उसकी गर्जना से दूसरे वनों के मृग और पक्षी भी डर गये और उनके शब्द से सहस्रों जलपक्षी जिनके पर जल में भीगे हुए थे, डरकर अकस्मात् एक सरोवर में से उड़कर चले, भीमसेन उन पक्षियों को देखकर उसी ओर चल दिया जिधर से वे पक्षी उड़े थे और एक बड़े लम्बे चौड़े और सुन्दर सरोवर पर जा पहुँचा ५४।५७ जिसके चारों ओर सुनहले केले एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर झुके हुए लगे थे और वे केले वायु से हिलने के कारण से ऐसे दीखते थे मानो उस सरोवर का पंखा कर रहे हैं ५८ भीमसेन उस कमल फूले हुए सरोवर में घुस गया और हाथी के सदृश उसमें क्रीड़ा करने लगा ५९ जब क्रीड़ा कर चुका, तब बाहर निकल कर पहाड़ के ऊपर बड़े सघन वन में चला गया ६० और वहां उसने अपने बल की पूर्ण अवधि तक धमाकर शंख बजाया और बड़े शब्द से गर्जकर अपने हाथ की ताल बजाई, उस शब्द से सब दिशा पूर्ण होगईं और पहाड़ों की कन्दरा गूंजने लगीं ६१। ६२ उन गुफाओं में सोनेवाले सिंह पूर्णशब्द से दहाड़ने लगे, उनकी दहाड़ से डरे हुए हाथी बड़े शब्द से चिग्घारने लगे ६३।६४

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इसके उपरान्त वानररूप वीर हनुमान् ने उस शब्द को सुनकर और अपने भाई भीमसेन को पहिंचान कर स्वर्ग का मार्ग इस हेतु से रोकदिया कि भीमसेन इस मार्ग से आगे को न जाय आगे जाने में उसको कोई शाप देदेगा अथवा धर्षणा करेगा, प्रीतिपूर्वक उसकी रक्षा करने के लिए उस कदलीखण्ड अर्थात् केले के वन के संकीर्ण मार्ग को रोकने की इच्छा से बड़ा लम्बा और चौड़ा वानररूपी शरीर धारण करके उस मार्ग के आगे लेटगए और जमुहाई ले लेकर अपनी इन्द्र की ध्वजा की तुल्य ऊंची और वज्र के गिरने के तुल्य शब्द करनेवाली लांगूल अर्थात् पूंछ को पर्वतपर मारते हुए सोगये ६५।७० उस पूंछ के पर्वतपर गिरने के शब्द से पहाड़ की गुफाओं में से सांड़ के डकारने के समान शब्द आनेलगा ७१ और वह पहाड़ हिलकर चारों ओर से फटगया ७२ उस शब्द से हाथी आदि के चिग्घारने का शब्द अन्तर्धान होगया और उस पहाड़ के एक शिखर से दूसरे शिखर प्रतिशब्दित होनेलगे ७३ उसको सुनकर भीमसेन के रोम खड़े होगये और वह उस शब्द के उत्पन्न होने के स्थान को उस कदलीखण्ड में ढूंढ़ने लगा ७४ और आगे जाके उसने एक मोटी शिलापर हनुमान्जी को सोतेहुए देखा ७५ जिनके शरीर की प्रभा और चञ्चलता और बोलने का शब्द बिजली के गिरने के सदृश था और उनकी ओर इस प्रकार से कठिनता से देखाजाता था जैसे बिजली के गिरने के समय बिजली की ओर नहीं देखाजाता ७६ कमर उनकी पतली थी और भुजदण्ड बहुत तय्यार थे और अपनी पुष्ट और छोटी गरदन को एकभुजा के मुड्ढेपर रक्खेहुए थे ७७ सब शरीर पर बड़े बड़े बाल थे और दो लड़ से होरहे थे और ऊंचे को उठीहुई पूंछ ध्वजा की समान जानपड़ती थी ७८ होंठ उनके छोटे छोटे और जीभ और मुख अत्यन्त लाल थे, भौंह चञ्चल, दाढ़े गोल, दांत श्वेत और अत्यन्त नुकीले थे और मुख की छवि ऐसी दीखती थी मानो किरणों से युक्त चन्द्रमा है ७९। ८० सुनहले केलों में सोने के कारण से उनके शरीर के बाल अशोकवृक्ष के फूलों के सदृश दीखते थे और शरीर उनका ऐसा दीप्त होरहा था मानो जलतीहुई अग्नि है, भीमसेन उन वानरों मे श्रेष्ठ और बुद्धिमान् हनुमान्जी को हिमालय पहाड़ के तुल्य शरीर से मार्ग रोकेहुए देखकर निर्भयता से उनके पास चलागया और बिजली के गिरने के सदृश सिंहनाद करनेलगा, उसके सिंहनाद से सब मृग और पक्षी डरगये ८१।८५ और हनुमान्जी ने अपने लाल लाल नेत्रों को कुछ एक खोलकर और भीमसेन की ओर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अनादर के साथ देखकर मन्द मन्द मुसकराकर कहा ८६ कि तुमने मुझ सुख से सोते हुए को जगाया है, तुम तो ज्ञानी हो, तुमको जीवोंपर दया करनी चाहिये ८७ हम लोग तो निस्संदेह धर्म नहीं जानते हैं, क्योंकि हमारी उत्पत्ति तिर्यग्योनि से है; परंतु मनुष्य तो बुद्धिमान् होते हैं, उनको दया करना अवश्य उचित है ८८ आश्चर्य है कि तुमसा बुद्धिमान् होकर ऐसे खोटे शरीर वाणी और चित्त के दोष लगानेवाले धर्मनाशक कर्मों में चित्त लगावे ८९ हम जानते हैं कि तुम धर्म नहीं जानते हो और बुद्धिमानों की तुमने संगति नहीं की है, जिसके कारण से तुम बालकों की भांति मृगों को पीड़ा देरहे हो ९० अब तुम हमको बताओ कि तुम कौन हो और किसलिए यहां आये हो और कहां तुमको जाना है? यहां से आगे यह पर्वत अगम्य और चढ़ने के योग्य नहीं है, यह मार्ग देवलोक को जाने का है, मनुष्य वहां नहीं जासक्ता है और विना सिद्ध मार्ग के और कोई राह आगे जाने की नहीं है ९१। ९३ हे वीर! हम तुम पर दया करके तुमको रोंकते हैं, तुम हमारी बात पर विश्वास करो और आगे मत जावो यहीं तक तुम्हारा आना कल्याणकारी है, यहां के अमृततुल्य मूल और फलों को खाकर लौटजावो, हमारी इस बात को मानने से तुम्हारे प्राण वृथा न जायँगे ॥ ९४। ९६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

एकसौ सैंतालीसवाँ अध्याय।

भीमसेन और हनुमान्जी का विवाद होना भीमसेन का हनुमान्जी का पराक्रम देखकर भयभीत होना और हनुमान्जी का भीमसेन से अपना वृत्तान्त कहना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन बुद्धिमान्, वानरेन्द्र हनुमान् जी की इस बात को सुनकर भीमसेन बोला कि मैं जाति का क्षत्री हूं नाम मेरा भीमसेन है और चन्द्रवंशी राजाओं के कौरववंश में कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूं और मुझे वायुपुत्र पाण्डव भीमसेन कहते हैं, आप भी बताइये कि आप कौन हैं और वानर का स्वरूप धारण करके यहां क्यों पड़ेहुए हैं १। ३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान्जी भीमसेन की बात को सुन कर मन्द-मन्द मुसकराकर कहनेलगे कि मैं वानर हूं तुमको तुम्हारी इच्छा के अनुसार आगे जाने को राह नहीं दूंगा, तुम चाहे लौटो चाहे जावो, जो तुम लौटोगे नहीं तो मारे जाओगे ४। ५ भीमसेन बोले कि हे वानर! मैं चाहे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मारा जाऊं, चाहे कुछ हो, तुमसे मैं कुछ नही पूछता हूं तू राह में से उठ खड़ा हो और मुझे जाने दे, नहीं तो तू दुःख उठावेगा ६ हनुमान्‌जी बोले कि मैं रोग से ग्रसित होरहा हूं, मुझमें उठने की सामर्थ्य नहीं है, जो तुमको जाना आवश्यक है, तो मुझ को नांघकर चलाजा ७ भीमसेन बोला कि निर्गुण परमात्मा सब की देह में रहता है, मैं उस ज्ञान से जानने के योग्य परमात्मा का अपमान नहीं करसकता हूं और इसी कारण से तुझको भी नहीं नांघसक्ता हूं ८ जो मैं उस भूतभावन अर्थात् आकाश आदि के उत्पन्न करनेवाले को शास्त्र से न जानता होता तो सागर को हनुमान्‌जी की भांति तुझको और इस पर्वत को नांघकर चलाजाता ९ हनुमान् जी बोले कि यह हनुमान् नाम किसका है जिसने समुद्र को नांघा था हे नरोत्तम! इसका जो कुछ वृत्तान्त तुम जानते हो सो कहो १० भीमसेन बोला कि वह हनुमान् बड़ा बुद्धिमान् गुणवान् और महापराक्रमी मेरा भाई है वानरों में वह सब से श्रेष्ठ है और उस की कथा रामायण में इस प्रकार से विख्यात है कि उसने रामचन्द्रजी की स्त्री के कारण से सौ योजन समुद्र को एक ही फलांग में नांघा था ११। १२ मेरा वह भाई बड़ा पराक्रमी है और तेज, बल, पराक्रम और युद्ध में मैं भी उसीके समान हूं मैं तेरा निग्रह करसकता हूं इससे तू उठकर मुझे राह दे और मेरा पराक्रम देख और जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो मैं तुझको अभी यमलोक में पहुँचा दूंगा १३। १४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान् जी भीमसेन को बलके कारण से उन्मत्त और गर्वित देखकर हृदय में हँसे और कहने लगे कि भाई! दया करो मुझे बुढ़ापे के कारण से उठने की सामर्थ्य नहीं है कृपा करके तुम मेरी पूंछ को हटाकर चलेजावो १५। १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हनुमान्‌जी की बात को सुनकर उस बल से गर्वित भीमसेन ने विचार किया कि इस बल पराक्रम से हीन वानर को मारकर ही चलना चाहिये ऐसा विचार कर उसने कुछ हँसकर निरादरसे हनुमान् जी की पूंछ बायें हाथ से पकड़ ली और उसे हटाने लगा परंतु वह उसको हिला भी न सका १७। १८ इसके पीछे उसने उस इन्द्रधनुष के तुल्य उठी हुई पूंछ को दोनों हाथों से पकड़ लिया और पराक्रम से उसे हटानेलगा परंतु वह पूंछ उससे हिल भी न सकी और बल करते करते उसकी भौंहें चढ़गईं आंखें फटी फटी सी होगईं और मुख पिटा-सा निकल आया २०। २१ उस समय भीम-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सेन ने लज्जा से अपना शिर झुकालिया और हनुमान् जी को दण्डवत् करके दोनों हाथ जोड़े हुए उनकी बगल से खड़ा होकर कहने लगा कि हे वानरोत्तम! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और मेरे कहेहुए खोटे वचनों को क्षमा कीजिये २२। २३ और मुझसे कृपा करके कहिये कि आप वानर का रूप बनाये हुए कौन हैं देवता हैं या गन्धर्व हैं या गुह्यक हैं या सिद्ध हैं २४ हे महाबाहो! मैं आपसे शिष्य के समान पूछता हूं जो उसके प्रकाश करने में किसी प्रकार की बुराई न हो तो उसको मुझसे कहिये २५ हनुमान्जी बोले कि अच्छा, जो तुझे हमारा वृत्तान्त जानने की इच्छा है तो हम अपना सब हाल कहते हैं सुन २६ हमारा जन्म जगत् के आधार वायु से केशरी के क्षेत्र में हुआ है और नाम हमारा हनुमान् है २७ अगले समय में बालि और सुग्रीव नामी बड़े पराक्रमी दो वानर उत्पन्न हुए थे, बालि इन्द्र का और सुग्रीव सूर्य का पुत्र था, सब वानर और वानरों के राजा उन दोनों की उपासना किया करते थे उनमें से सुग्रीव से हमारी ऐसी मित्रता होगई जैसे वायु और अग्नि की है २८। २९ इसके उपरान्त किसी कारण से बालि ने सुग्रीव को निकाल दिया और वह ऋष्यमूक पर्वत पर हमारे पास आकर रहनेलगा बहुत दिनों के पीछे श्रीविष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहां नररूप से अवतार लिया और उनका नाम रामचन्द्र हुआ ३०। ३१ वे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र पिता की आज्ञा से अपने छोटे भाई और स्त्रीसहित वन को निकल कर चले आये और दण्डकवन में रहने लगे ३२ हे निष्पाप! वहां से दुर्बुद्धिशाली बली रावण नामी राक्षसों का राजा मारीच नामी राक्षस को सुवर्णरूपी मृग बनाकर और उससे उन नरोत्तम को लुभाकर उनकी स्त्री को हरलेगया॥ ३३। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥

एकसौ अड़तालीसवां अध्याय।

हनुमान्जी का भीमसेन से सीताहरण की कथा कहना और उसे उस ओर न जाने का उपदेश देना।

हनुमान् जी बोले कि हे भीमसेन! स्त्री के हरे जाने पर रामचन्द्रजी अपने भाई सहित अपनी स्त्री को ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूक के निकट आये वहां पर्वत के शिखर पर उन्होंने सुग्रीव को देखा और उससे उनकी मित्रता होगई उन्होंने बालि को मारकर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया १। २ राज्य को पाकर सुग्रीव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ने उनकी स्त्री सीता को ढूंढ़ने के लिये सैकड़ों और सहस्रों वानर चारों ओर भेजदिये ३ उस समय हम भी अपने साथ करोड़ों वानरों को लिये हुए सीता को ढूंढ़ते हुए दक्षिण दिशा को चलेगये ४ वहां हमको संपाति नामी गृद्ध से मालूम हुआ कि सीता रावण राक्षस के घर में है ५ तब हम रामचन्द्रजी का काम करने के लिए सौ योजन चौड़े समुद्र को नांघकर लङ्का में चलेगये और वहां राघवजी की प्रिया सीता से जो राजा जनक की पुत्री और देवकन्याओं के समान थीं मिलकर और उस लङ्का को बहिर्द्वार और महलों सहित जलाकर श्रीराचन्द्रजी का नाम प्रकाश करके लौटकर चले आये ६। ६ और राजीव-लोचन रामचन्द्रजी हमारी बातपर विश्वास करके समुद्र का सेतु बांधकर असंख्य वानरों को साथ लियेहुए समुद्र उतरकर लङ्का पर जाचढ़े वहां उन्होंने उस पीड़ा देनेवाले रावण नाम राक्षस को उसके भाई, बान्धव, पुत्र और राक्षसों के गणों सहित अपने पराक्रम से मारडाला और वहां का राज्य उसके भाई राक्षसेन्द्र विभीषण को, जो बड़ा भक्त धर्मात्मा और भक्तजनों का प्यारा था, देकर आप अपनी स्त्रीसहित अपनी अयोध्या नाम पुरी को जहां जाकर शत्रु युद्ध नहीं करसक्ता था लौटकर चलेआये १०। १५ वहां आनेपर रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हुआ उस समय मैंने उनसे यह वरदान मांगा कि जबतक आपकी यह कथा संसार में बनी रहे तबतक मैं भी जीतारहूं उन्होंने मुझको वह वरदान देदिया तबसे मुझे उन सीतारामजी की ही कृपा से यहां इच्छा के अनुसार पदार्थ भोगने को मिलते हैं १६।१८ रामचन्द्रजी ने एक सौ दश सहस्र वर्षतक अयोध्या का राज्य किया उपरान्त परम-धाम को चलेगये १९ अब हे तात! यहां अप्सरा और गन्धर्व उन्हीं रामचन्द्रजी का यश गा गाकर मुझको प्रसन्न किया करते हैं २० हे भीमसेन! यह मार्ग मनुष्यों के जाने के योग्य नहींहै, क्योंकि यहां देवता रहतेहैं, मैंने तुझको इस कारण से रोकदिया था कि तू चला न जाय और तुझको देवसेवित मार्ग में आते हुए देखकर कोई शाप न देदे अथवा धर्षणा न करे इस के सिवाय जिस सरोवर पर तू जाना चाहता है वह भी इधर नहीं है ॥२१।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणयष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

एकसौ उंचासवाँ अध्याय।

हनुमान्जी का भीमसेन से चारों युगों का धर्म पृथक् पृथक् वर्णन करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! महाभुजशाली भीमसेन उक्तप्रकार

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने भाई हनुमान्जी को दण्डवत् करके कहने लगा कि मेरे समान धन्य कौन है जो मुझको आप ऐसे श्रेष्ठों के दर्शन हुए आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया मैं आपके दर्शनों से तृप्त होगया परंतु इतना और आपसे चाहता हूं कि आप मुझको अपने उस स्वरूप के दर्शन दीजिये जो स्वरूप आपका उस समय था जिस समय आपने समुद्र को नांघा था १।४ मैं उस स्वरूप को देखकर सब प्रकार से तुष्ट होजाऊंगा मुझको आप के कहने का परम विश्वास है यह सुनकर हनुमान्जी ने हँसकर कहा कि भाई उस स्वरूप को तुम क्या कोई नहीं देख सकता है? अब वह समय नहीं है वह समय और ही था सत्ययुग, त्रेता और द्वापर तीनों युगोंका समय अलग अलग है अब यह समय ह्रास होने का है अब हमारा वैसा स्वरूप नहीं है ५।७ पृथ्वी, नदी, वृक्ष, पर्वत, देवता और महाऋषि सब काल के ही अनुसार युग युग में पृथक् पृथक् वर्तावा करते हैं और सबका बल शरीर और प्रभाव युगों के ही अनुसार घट बढ़ जाताहै इससे तू मेरे उस स्वरूप को देखने की इच्छा मत करे हम भी युग के अनुसार बर्तावा कररहे हैं भाई समय बड़ी कठिनता से उल्लंघन किया जासक्ता है ८।६ तब भीमसेन बोला कि महाराज! कृपा करके मुझे युगों की संख्या और प्रत्येक युग के आचार, धर्म, शक्ति, उत्पत्ति, बिनाश, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य का हाल सुनाइये १० हनुमान्जी बोले कि हे तात! कृतयुग में सनातनधर्म प्रचलित था सब पदार्थ सिद्ध मिलते थे कर्म नहीं करना पड़ता था इसीसे उस युग का नाम कृतयुग है ११ उस युग में धर्म का नाश नहीं होता था और न प्रजा की क्षय होती थी इसीसे कृतयुग का समय मुख्य गिना जाता है १२ और देवता, दानव, गन्धर्ब, यक्ष, राक्षस और सर्प न थे अर्थात एक पुरुषोत्तम ही की पूजा सब करते थे और क्रय विक्रय अर्थात् खरीद फरोख्त का भी व्यवहार न था १३ और सामवेदी ऋग्वेदी और ऋजुर्वेदी अलग अलग न थे अर्थात् एक ही वेद था चारों वर्णों में से कोई मानवीक्रिया अर्थात खेती आदि नहीं करता था जो चाहता था सो संकल्पमात्र ही करने से मिल जाता था और केवल संन्यास धर्म था १४ और व्याधि का होना इन्द्रियों का शिथिल होजाना दूसरों के गुणों में दोष लगाना और घमण्ड या कपट करना न था १५ और वैर, आलस्य, बुरा चाहना, चुगली करना, संताप, ईर्ष्या और झूठ का नाम न था १६ इन गुणों से उस समय में शुक्लवर्ण नारायण जो सब योगियों की परम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गति और सब प्राणियों की आत्मा हैं मिलते थे १७ उस युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बराबर थे, और अपने अपने कर्म में निरत रहते थे १८ और आश्रम, आचार, ज्ञान और कर्म आदि सब धर्म सब वर्णों के समान थे १९ सब वर्ण एक ही आनन्दरूपी देवता को प्राप्त करने के लिये यत्न करते थे सबकी एक ही क्रिया एक ही मन्त्र और एक ही विधि थी और धर्म का आचार और वेद भी सबका एकही था २० और इन सब धर्मों को स्त्री पुत्र अथवा स्वर्ग आदि के मिलने की विना कामना किये हुए करने के कारण से परमगति प्राप्त होती थी २१ कृतयुग में धर्म के चारों चरण थे और चारों वर्णों का परमधर्म आत्मयोग की एकता अर्थात् आत्मज्ञान का होना था २२ हे भीमसेन! यह धर्म कृतयुग का होचुका जिसमें तीनों गुणों में से कोई न था अब त्रेतायुग का वृत्तान्त सुनो जिसमें यज्ञ प्रवृत्त हुए २३ इस युग में धर्म तीन चरण का रहगया और नारायण का वर्ण लाल होगया और मनुष्य सत्य में प्रवृत्त और क्रिया और धर्मपरायण होकर रहने लगे २४ अर्थात् अपने मन के संकल्पित फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदिक अनेक क्रिया करने लगे २५ इस युग में तप और दान करने वाले मनुष्य अपने धर्म से कभी नहीं हटते थे और क्रियावान् होकर धर्मात्मा होते थे २६ जब त्रेतायुग के पीछे द्वापरयुग आया तब धर्म के दो चरण रहगये नारायण का वर्ण पीला होगया और एक वेद के चार वेद होगये २७ उनमें से कोई चारों वेद, कोई तीन वेद, कोई दो वेद, और कोई कोई एक भी नहीं पढ़ने लगे २८ और शास्त्र भिन्न भिन्न होकर भिन्न भिन्न क्रियाओं का उपदेश होने लगा और तप और दान में सब प्रजा प्रवृत्त होकर राजसी होने लगी २९ एक वेद को सुखपूर्वक न पढ़सकने के कारण से बहुत से वेद कियेगये सत्यधर्म का इस युग में नाश होगया कहीं कहीं ही रहगया ३० इस प्रकार से सत्यधर्म के नाश होजाने के कारण सें बहुतसी व्याधि फैलगईं और ईश्वरकृत नाना प्रकार की कामना और उपद्रव प्रकट होगये ३१ उन व्याधियों को दूर करने और कामनाओं के मिलने और स्वर्गआदि के प्राप्त होने के लिये मनुष्य तप और यज्ञ करने लगे ३२ इस प्रकार से हे भीमसेन! द्वापरयुग में अधर्म के कारण से प्रजा की क्षय होती है इसके पीछे कलियुग आता है उसमें धर्म का एक चरण रहजाता है और तमोगुण प्रधान होने से नारायण का वर्ण कृष्ण होजाता है इस युग में वेदाचार, धर्म, यज्ञ और सब क्रिया नष्ट होजाती

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हैं ३३। ३४ और मनुष्यों को अतिवर्षा, आधि, व्याधि, आलस्य, क्रोध और क्षुधा आदि अनेक उपद्रवों से भय और पीड़ा रहती है ३५ इस प्रकार से युगों के लौटने पौटने से धर्म का नाश होजाता है धर्म के नाश होने से लोकों का नाश होता है ३६ और लोकों के नष्ट होने से धर्मप्रवर्तक भाव अर्थात् ज्ञान आदि क्षय होजाते हैं और युगक्षय के किये हुए धर्मों से प्रार्थना विपरीत हो जाती हैं अर्थात् जिस काम के लिये प्रर्थाना करो वह नहीं होता है ३७ सो हे भीमसेन! वही कलियुग अब आनेवाला है मुझसे चिरंजीवी पुरुषों को भी काल के अनुसार वर्तावा करना पड़ता है ३८ तुझको जो मेरे स्वरूप के देखने की इच्छा है वह निरर्थक है ज्ञानी मनुष्य निरर्थक काम की कभी इच्छा नहीं करते हैं ३९ हम से तैंने चारों युगों का वृत्तान्त पूछा था वह हमने कह सुनाया अब तू जा तेरा कल्याण होगा ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

एकसौ पचासवाँ अध्याय।

हनुमान्‌जी का भीमसेन को अपना स्वरूप दिखाना और उससे ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का धर्म वर्णन करना।

उक्त कथा को सुनकर भीमसेन बोला कि मैं आपके पूर्वरूप को बिना देखे किसी अवस्था में नहीं जाऊंगा जो आपका मुझपर अनुग्रह है तो मुझे अपने दर्शन दीजिये १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन की बात को सुनकर हनुमान्‌जी ने मुसकराकर वही स्वरूप धारण किया जो समुद्र को नांघने के समय में था २ उससमय हनुमान्‌जी का शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा पहाड़ से भी ऊंचा मानो दूसरा बड़ा पहाड़ है लाल लाल नेत्र तीक्ष्ण दाढ़ें, टेढ़ी भृकुटी और बड़े तेज से जगमगाता हुआ होगया और उससे वह सब कदली खण्ड वृक्षों सहित दबगया हनुमान्‌जी उस स्वरूप को धार करके पूंछ लपेटकर इस प्रकार से बैठगये मानो सब दिशाओं को व्याप्त कररहे हैं भीमसेन भाई के उस स्वरूप को देखकर आश्चर्य में आगया और प्रसन्न हुआ और उनके सुवर्ण के पर्वत के तुल्य शरीर की सूर्य की-सी प्रभा को देखकर उसने अपनी आंखें बन्द करलीं उस समय हनुमानजी ने मन्द मन्द मुसकराकर उससे कहा ३।८ कि हे भीमसेन! तू मेरे इतने ही रूप को देखसक्ता है परंतु मैं शत्रुओं के बीच में जाने पर अपनी इच्छा के अनुसार

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वह उनके लगने से क्रोधित होगया और उसने अपनी बड़ी गदा घुमाकर उसके मारी ६४ भीमसेन ने उस बिजली के समान गदा को आती हुई देखकर अपने तीक्ष्णबाणों से उसे ढकदिया ६५ परंतु वे सब बाण उस गदा से टूट गये और उसको न रोकसके तब उस वीर ने उसको गदायुद्ध की रीतिसे गिरा दिया ६६ । ६७ इसी अन्तर में उस राक्षस ने एक लोहे की शक्ति मारी जिस की मूठ सुनहरी थी ६८ और बड़ी भयानक अग्नि के समान प्रज्वलित और डरावना शब्द करनेवाली थी वह भीमसेन की दाहिनी भुजा को देख कर पृथ्वी पर गिरपड़ी ६९ उससे घायल होकर भीमसेन क्रोधित होगया और उसकी आंखे लाल लाल होगई उस समय भीमसेन ने अपनी लोहे की गदा जो शत्रुओं को भय दिलानेवाली और नाश करनेवाली थी ले ली और वह बड़े वेग से उस राक्षस के सम्मुख युद्ध करने को गया उस राक्षस ने भी एक बड़ा शूल हाथ में लेलिया और उसे घुमाकर भीमसेन पर फेंका भीमसेन ने उस शूल को अपनी गदा की नोक से तोड़कर गिरा दिया ७० । ७३ और उस राक्षस को मारने के लिये इस प्रकार से दौड़ा मानों गरुड़जी सर्प को मार ने को जाते हैं इसके पीछे भीमसेन ने गर्जकर और उछल कर अपनी वज्र के तुल्य गदा घुमाकर उस राक्षस के ऊपर छोड़दी और वह उस राक्षस को मार कर पृथ्वीपर गिरपड़ी और वह राक्षस पृथ्वी पर प्राणरहित गिरा हुआ ऐसा दीखने लगा मानो सिंह ने बैल मारा है इसके उपरान्त मरने से बचे हुए राक्षस उस मणिमान् राक्षस को मरा हुआ देखकर करुणा और भयानक शब्द करते हुए पूर्व दिशा को भागगये ॥ ७४ । ७७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

एकसौ एकसठवाँ अध्याय ।

युधिष्ठिरआदि का भीमसेन के पास जाना वहां कुबेरजी का आना और अपने पाप से छूटने का वृत्तान्त युधिष्ठिर को सुनाना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धौम्य ऋषि, द्रौपदी और सब ब्राह्मण पर्वत की गुफाओं को अनेक प्रकार के शब्दों से शब्दित और भीमसेन को वहां न देखकर उदास होगये १ । २ और द्रौपदी को आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में छोड़कर एक साथ सबके सब पहाड़ की उस चोटी पर चढ़गये ३ और वहां उन्होंने भीमसेन और उसके चारों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और महापराक्रमी राक्षसों को निर्जीव पड़ा देखा ४। ५ उस समय भीमसेन की छवि ऐसी थी मानों गदा और खड्गआदि शस्त्रों को लिये हुए इन्द्र है जिसने दानवों को मारा है ६ पाण्डव उसे देखकर उससे मिले और परम उत्तम गति को पाते हुए वहां बैठगये ७ उस समय उनसे वह पर्वत का शिखर ऐसा सुशोभित दीखनेलगा मानो स्वर्ग में लोकपाल देवता इकट्ठे हुए हैं ८ तब युधिष्ठिर ने कुबेर के भवन और मरे हुए राक्षसों को देखकर भीमसेन से कहा ९ कि भाई! तैंने साहस अथवा मोह के कारण से यह पाप किया है तुझको मुनियों का वेष रखकर ऐसा निरर्थक वध करना उचित न था १० धर्मात्माओं का यह मत है कि राजा को ऐसा दुष्ट कर्म करना न चाहिये जैसा तैंने देवताओं के साथ किया है ११ अर्थ और धर्म को छोड़कर जो मनुष्य पाप कर्म करता है उसको उन कर्मों के करने का फल अवश्य प्राप्त होता है इससे जो तू मेरा प्रिय करना चाहता है तो फिर ऐसा न कीजिये १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! तत्व के जाननेवाले राजा युधिष्ठिर ने उक्त प्रकार से भीमसेन को समझाया और चुप होकर उसके विषय में शोच करने लगा इसी अवसर में भीमसेन के हाथ से बचे हुए राक्षस जो शस्त्र और कवच से रहित थके हुए और रुधिर से लिप्त अङ्ग थे बाल फेरे हुए कुबेरजी के भवन में पहुँचे और बड़ी पीड़ा से भयानक शब्द करके कुबेरजी से कहने लगे कि हे धनेश्वर, नराधिप, महाराज! एक मनुष्य ने पर्वत के शिखर पर आकर सब क्रोधवशा नाम राक्षसों को जो आपके आगे चलनेवाले थे गदा, परिघ, खड्ग और तोमर आदि शस्त्रों से युद्ध करनेपर भी मारडाला है और वे सब निर्जीव पड़े हुए हैं आपकी कृपा से हम लोग बचकर भाग आये हैं आपका मित्र मणिमान् भी मारा गया १३। २० अब जैसा आप उचित समझें वैसा कीजिये यह सुनकर कुबेरजी ने क्रोध से लाल लाल आंखें करके कहा कि भीमसेन ने यह दूसरा बड़ा अपराध किया है अच्छा हमारा रथ जोत कर तैयार करो यह सुनकर यक्षों ने पर्वत के समान ऊँचे रथ में जिसके चलने का शब्द बादल की गर्जना के सदृश था गन्धर्व देश के घोड़े जोते जो सुनहरी माला पहिने हुए थे वे घोड़े शीघ्रगामी पराक्रमी सब लक्षणों से युक्त और दशों भोरियों से शुद्ध थे उन्होंने परस्पर हींस कर विजयरूप शब्द किया उस रथ में चढ़कर देवता और गन्धर्वों से स्तुति सुनते हुए जो कुबेरजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चले उनके पीछे पीछे एक सहस्र से अधिक यक्ष हो लिये और वे आकाश मार्ग से शीघ्र गन्धमादन पर्वतपर जापहुँचे उनके चलने से ऐसा दीखता था मानो वे सब आकाश को खींचते हुए चले आते हैं २१। २९ पाण्डव महात्मा कुबेरजी को सपक्ष घोड़ों से जुते हुए रथ में यक्ष और राक्षसों के समूह सहित आते हुए देखकर प्रसन्न हुए और कुबेरजी भी उन वीर पाण्डवों को जो धनुष् और खड्ग धारण किये हुए थे देखकर और उनको देवताओं का काम करनेवाले जानकर हर्षित हुए ३०। ३२ कुबेरजी के आगे चलनेवाले यक्ष उस पर्वत के शिखपर इस प्रकार से आकाश से उतर कर खड़े होगये जैसे उड़ते हुए पक्षी उतर कर वृक्षपर बैठजाते हैं और वे सब कुबेरजी को पाण्डवों पर प्रसन्न देखकर चुप चाप खड़ेहो रहे ३३। ३४ युधिष्ठिर नकुल और सहदेव ने अपने को अपराधी समझकर कुबेरजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए उनको घेरकर खड़े होरहे ३५। ३६ कुबेरजी उस समय पुष्पक नामी जड़ाऊ विमानपर जो विश्वकर्माका बनाया हुआ था विराजमान हुए और सहस्रों यक्ष राक्षस जिनके बड़े बड़े शरीर थे उनको घेरकर बैठगये ३७। ३८ और सैकड़ों गन्धर्व, अप्सरा वहां इस प्रकार से आकर स्थित होगये मानो इन्द्र के समीप देवता बैठे हुए हैं ३९ उस समय भीमसेन सुवर्ण की माला और गदा, खड्ग, धनुष् हाथ में लिये हुए कुबेरजी की ओर देखनेलगा और यद्यपि राक्षसों के हाथ से घायल होरहा था परंतु कुबेरजी की ओर देखने से उसके चित्त में ग्लानि नहीं आई ४०। ४१ कुबेरजी उसे तीक्ष्ण बाण लिये हुए युद्ध करने की इच्छा से सम्मुख खड़ा हुआ देखकर युधिष्ठिर से कहने लगे ४२ कि तुमको सब प्राणी प्राणियों के हित में प्रीति रखनेवाला समझते हैं तुम इस पर्वत की चोटीपर निर्भय होकर रहो ४३ और भीमसेन पर किसी प्रकार से क्रोध न करो क्योंकि इन राक्षसों का काल ही आ पहुँचा था भीमसेन केवल निमित्तमात्र है ४४ और ऐसा साहस करने के कारण से तुमको किसी प्रकार की लज्जा भी करना उचित नहीं है देवताओं को इन राक्षसों के नाश होने का हाल पहिले ही से मालूम था ४५ हे भरतर्षभ! मैं भीमसेन पर किसी प्रकार से क्रोधित नहीं हूं किन्तु प्रसन्न हूं और इसके काम से मुझे बड़ा हर्ष हुआ है ४६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुबेरजी राजा युधिष्ठिर से उक्त प्रकार से कहकर भीमसेन से बोले कि हे वृकोदर! मेरे मन में क्रोध नहीं है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तुमने जो देवता और मुझको अनादर करके द्रौपदी के कारण से यह साहस और अपनी भुजाबल से यक्ष और राक्षसों का नाश किया है तससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं क्योंकि तेरे इस कर्म से मेरा घोर शाप दूर होगया है ४७। ४६ अगले समय में अगस्त्यजी ने मुझे किसी अपराध के कारण से शाप दिया था वह शाप आज निवृत्त हुआ मैं इस दुःख को होनहार पहिलेही से जानता था इससे हे भीमसेन! इसमें तेरा कुछ अपराध नहीं है ५०। ५१ यह सुनकर युधिष्ठिर कुबेरजी से पूछने लगे कि महाराज! आपको अगस्त्यजीने किस कारण से शाप दिया था मुझे बड़ा आश्चर्य है कि उस महात्मा ऋषि के शाप से आप उसी समय अपनी सेना और अनुचरों सहित भस्म नहीं हुए मैं इस सब वृत्तान्त को सुना चाहता हूं आप कृपा करके कहिये ५२। ५३ कुबेरजी बोले कि कुशवती में देवताओं की सभा हुई थी वहां हम भी घोररूप और अनेक अस्त्रों को धारण करनेवाले यक्षों की तीनसौ महापद्मसेना लेकर गये थे राह में हमको अगस्त्यजी मिले जो पुष्पितवृक्ष और अनेक प्रकार के पक्षियों से सुशोभित यमुनातट पर ऊपर को बाहु उठाये हुए सूर्य के सम्मुख खड़े होकर उग्र तपस्या कर रहे थे और तेजके कारण से ऐसे दिखाई देते थे मानो बड़ी प्रज्वलित अग्नि है उनको देखकर हमारे सखा मणिमान् ने अपनी मूर्खता के अज्ञान, गर्व और मोह से आकाश से उनके मस्तकपर थूक दिया उसको देखकर उन्होंने मुझसे कहा कि हे कुबेर! तुम्हारे देखते हुए उस दुष्टात्मा ने मेरा ऐसा अपमान किया है इससे यह दुष्ट इस सब सेना के साथ मनुष्य के हाथ से मारा जायगा और दुर्मति के कारण से तुम भी सेना के मरने से क्लेश पाकर उसी मनुष्य के दर्शन करने से इस पाप से छूटोगे ५४। ६१ और इस सेना के राक्षसों के पुत्र और पौत्र आदि जो तुम्हारी आज्ञा से सेना में रहेंगे उनको यह शाप नहीं लगेगा हे युधिष्ठिर! अगस्त्यजी ने मुझे उक्त प्रकार से शाप दिया था उससे मुझे अब भीमसेन ने छुटाया है॥ ६२। ६३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६१॥

एकसौबासठवाँ अध्याय।

कुबेरजी का पाण्डवों को शिक्षा देकर अपने भवन को चलाजाना और पाण्डवों का उस रात्रि को उसी पहाड़ की चोटी पर वास करना।

कुबेरजी बोले हे युधिष्ठिर! संसार में कार्य के साधन करने की विधि पांच

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रकार की है धृति अर्थात् संकट में व्याकुल न होना १ चतुराई २ पराक्रम ३ विधान अर्थात् यत्न करके कार्य करना ४ और विधि अर्थात् उदय के हेतु को पहिंचानना ५ सत्ययुग के मनुष्य धृतिमान् अपने अपने कामों में चतुर पराक्रमी और विधान के जाननेवाले थे १ । २ सो जो क्षत्रिय धृतिमान् देशकाल को पहिंचाननेवाला और धर्म को जाननेवाला होता है वह इस पृथ्वीपर बहुत दिनों तक राज्यशासन करता है ३ और जो अपना वर्ताव भी ठीक ठीक उक्त विधियों पर करता है उसको इस लोक में यश और परलोक में सद्गति मिलती है ४ देखो देश और काल को विचार करने के कारण से इन्द्र ने वसुओं सहित पराक्रम से स्वर्ग का राज्य पाया था ५ जो मनुष्य पापात्मा दुष्टबुद्धि और देशकाल के अनुसार कार्य के विषय और करने के समय को नहीं जानता है और क्रोध के कारण से अपने गिरने को नहीं देखता है वह इसलोक और परलोक दोनों में शीघ्र नष्ट होजाता है ५।७ और यही गति उस मनुष्य की भी होती है जो वृथा आचार करता है और जो मनुष्य दुष्ट बुद्धि वञ्चक सहसा कामकरनेवाला अथवा अपने को सामर्थ्यवान् माननेवाला होता है वह निश्चय पाप का भागी होता है सो हे युधिष्ठिर ! यह भीमसेन धर्म को नहीं जानता है और घमंडी, क्रोधी निर्बुद्धि और निर्भय है तुम इसको शिक्षा करो कि यह लौटकर आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम को चलाजाय और तुम सब भी वहीं निर्भय और शोक को छोड़कर कृष्ण पक्षपर रहो मेरी आज्ञा से सब अलकापुरीवासी गन्धर्व किन्नर और पर्वतीलोग ब्राह्मणों सहित तुम सबकी रक्षा करो ८ । १२ हे राजन् ! भीमसेन यहां साहस करके आया है तुम इसको फिर ऐसा करने से निषेध कर दो इसीमें अच्छा है १३ ऐसा करने से यहां के वनवासी तुमको देखकर सदा तुम्हारी रक्षा करेंगे १४ और हमारे भृत्य तुम सबके लिये बहुत प्रकार के स्वादिष्ठ अन्न और पीने के पदार्थ पहुँचाया करेंगे १५ मुझको तुम सबकी रक्षा करना उसी प्रकार से उचित है जैसे तुम्हारी रक्षा यमराज, भीमसेन की वायु, अर्जुन की इन्द्र और नकुल और सहदेव की अश्विनीकुमार करते हैं १६ । १७ तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन जो अर्थतत्त्व और सब धर्मों को जानता है स्वर्ग में कुशल है १८ जो कुछ स्वर्गसम्बन्धी परम संपत्ति इस लोक में मानीजाती है उसको वह अपने जन्म से रखता है और दम अर्थात् बाहरकी इन्द्रियों का जीतना और दान, बल, बुद्धि, लज्जा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धैर्य और तेज आदि गुण भी उसमें स्थित हैं १९।२० मोह के वश में होकर वह निन्दा का काम कभी नहीं करता है और न कभी उसका कोई झूंठा वचन कहना सुनागया २१ वह कुरुवंशियों की कीर्ति का बढ़ानेवाला है और देवता और पितर उसको मानते हैं वह अस्त्रों का अभ्यास कररहा है २२ और तुम्हारे बाबा राजा शंतनु जिसने सब राजाओं को अपने धर्म से अपने वश में कर लिया था स्वर्ग में गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुन को देख देख कर प्रसन्न होते हैं तुम्हारे बाबा ने भी अपने कुल की मर्यादा के साथ पितर, देवता, ऋषि और ब्राह्मणों को पूजकर यमुना तटपर सात अश्वमेध यज्ञ किये थे २३।२५ सो हे युधिष्ठिर ! उस राजा शंतनु ने इन्द्रलोक से तुम्हारी कुशल पूछी है २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! कुबेरजी की उक्त बातों को सुनकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और भीमसेन ने गदा शक्ति, खड्ग और धनुष को बांधकर कुबेरजी को नमस्कार किया २७।२८ तब कुबेरजी ने उस शरणागत भीमसेन को आशीर्वाद दिया कि तू शत्रुओं का मानभंग करनेवाला मित्रों को आनन्द देनेवाला लक्ष्मी को बढ़ानेवाला हो २९ इसके पीछे कुबेर जीने कहा कि अब तुम सब अपने आश्रम में रहो यक्ष तुम्हारी सब कामना पूरी करेंगे ३० और अर्जुन भी अस्त्रविद्या लेकर इन्द्र से बिदा होकर शीघ्र तुमसे आकर मिलेगा ३१ कुबेरजी युधिष्ठिर से उक्त प्रकार से कहकर अस्ता-चल पर्वतपर चलेगये ३२ और सहस्रों यक्ष और राक्षस भी नाना प्रकार के रत्नों से भूषित होकर अनेक सवारियों में चढ़ चढ़ कर उनके पीछे पीछे चले गये ३३ कुबेरजी के रथ के घोड़े वायु और बादलों को खींचते हुए शीघ्र अकाशमार्गी होगये और कुबेरजी के भवन में उनका शब्द पक्षियों के सदृश ऐसा हुआ जैसा शब्द ऐरावत मार्ग पर अर्थात् जिस मार्गपर इन्द्र का ऐरा-वत हाथी चलता है होता है ३४।३५ इसके पीछे कुबेरजी की आज्ञा से उन मरे हुए राक्षसों के शरीर, जो अगस्त्यजी के शाप के कारण से मारे गये थे, इधर उधर फिकवा दिये गये और महात्मा पाण्डवों ने उस रात को राक्षसों से पूजित होकर वहीं वास किया ॥ ३६।३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ तिरसठवाँ अध्याय।

धौम्यऋषि का युधिष्ठिर को ब्रह्मलोक आदि दिखाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! प्रातःकाल होने पर धौम्य और आर्ष्टिषेण ऋषि सन्ध्या आदि कर्म करके पाण्डवों के समीप आये पाण्डवों ने हाथ जोड़ कर उन दोनों को दण्डवत् और सब ब्राह्मणों का यथायोग्य पूजन किया १।२ इसके उपरान्त धौम्य ऋषि ने युधिष्ठिर का दाहिना हाथ पकड़ लिया और पूर्व की ओर मुख करके यह वचन कहने लगे ३ देखो, यह मन्दराचल पर्वत है, जो पृथ्वी को समुद्रतक दबाता चलागया है इस दिशा में बहुत से उत्तम पर्वत, वन और कानन हैं और रक्षा इस दिशा की इन्द्र और कुबेरजी करते हैं ४।५ बुद्धिमान् और धर्मज्ञ ऋषि इस स्थान को महाइन्द्र और कुबेर का स्थान बताते हैं ६ और ब्राह्मण, धर्मज्ञ, ऋषि, सिद्ध, साध्य और देवतालोग कहते हैं कि सूर्य इसी दिशा में उदय होते हैं ७ यह दक्षिण दिशा है जहाँ सब धर्मों के जाननेवाले यमराज रहते हैं और सब प्राणी मरकर जाते हैं ८ देखो, इस दिशा में वह संयमन नामी यमराज का परम उत्तम भवन कैसा अद्भुत दिखाई देता है ९ और इधर देखो, यह अस्ताचल पर्वत समुद्र के पास है वरुणलोक भी वहीं है वरुण वहां रहकर पश्चिम दिशा में प्राणियों की रक्षा करते हैं १०।११ और यह देखो, सुमेरपर्वत उत्तर दिशा को प्रकाशित कररहा है जहां केवल ब्रह्मज्ञानियों की ही गति है इसी पर्वतपर ब्रह्मलोक है जहां सब चर और अचर जीवों के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी रहते हैं १२।१३ और दक्षआदि ब्रह्माजी के मानसी पुत्रों का भी कल्याणरूप और उपाधिरहित स्थान इसी पर्वतपर है १४ हे तात! यहीं वशिष्ठ आदिक सप्तऋषि भी प्रतिष्ठित होकर उदय होते हैं और मेरुपर्वत के उस शिखर के देश को देखो, जो रजरहित दीखता है, उसी स्थानपर अपनी तृप्ति के लिये ब्रह्माजी सब देवताओं सहित रहते हैं १५।१६ और इस ब्रह्मलोक से परे जो शुभ और सर्वतेजोमय स्थान दिखाई देता है जिसको देवता भी नहीं देखसक्ते हैं वह सूर्य और अग्नि के विना अपने ही तेज से प्रभासित हो रहा है महात्मा श्रीविष्णु भगवान् नारायण का स्थान है जो सब भूतों के कारण और आदि अन्त रहित हैं देवता और दानव उस स्थान को दुःख से देख सकते हैं १७।१८ नारायण का यह स्थान मेरुपर्वत पर पूर्व की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ओर हटकर है वहां सब प्राणियों के ईश्वर और सबके उत्पन्न करनेवाले विष्णु भगवान् लक्ष्मी सहित सब प्राणियों पर अपने तेज का प्रकाश करते हुए विराजमान हैं वहां केवल यती और योगीलोग ही जासकते हैं ब्रह्मऋषियों की भी गति नहीं है और महाऋषियों की कौन कहे २० । २२ क्योंकि वहां सर्वव्यापी अचिन्त्यात्मा विष्णु भगवान् आप विराजमान हैं जो योगी और यती लोग बड़ी तपस्या और अनेक शुभकर्म करते हैं और मोह अज्ञान से छूटकर उस अपने आप उत्पन्न होनेवाले सनातन नारायण के लोक में जाते हैं वे फिर लौटकर संसार में जन्म नहीं लेते हैं २३ । २५ यह स्थान सनातन है न कभी बिगड़ता है न बनता है और न छोटा बड़ा होता है हे युधिष्ठिर ! तुम इस स्थान को प्रणाम करो २६ सूर्य और चन्द्रमा तारागणों सहित इस मेरु पर्वतके चारों ओर नित्यप्रति घूमा करते हैं जो देश सूर्य केसम्मुख रहता है वहां दिन रहता है और जो देश सूर्य के सम्मुख नहीं रहता है वहां रात्रि रहती है सूर्य एकसमय प्रदक्षिणा करके फिर पूर्वमुख होकर प्रदक्षिणा मेरुपर्वत की करते हैं और उनके और चन्द्रमा आदि नक्षत्रों के इस प्रकार से घूमने से अनेक प्रकार के पर्व पड़ते हैं और उनसे सौर्यमास और चान्द्रमास आदि महीने होते हैं २७ । ३२ हे युधिष्ठिर ! इस मार्ग में सूर्यदेव विना आलस्य के निरन्तर घूमा करते हैं और अपने प्रकाश से जगत् को प्रभासित करते हैं जब सूर्य दक्षिणायन होकर घूमते हैं तब जाड़ा पड़ने लगता है और जब उत्तरायण होकर घूमते हैं और सब जड़ और चैतन्य जीवों के रस को अपनी किरणों से शोषण करते हैं तब मनुष्यों के पसीना आने लगता है और श्रम आलस्य और ग्लानि होने लगती है और सदैव स्वप्न दीखते हैं ३३ । ३७ इस प्रकार से सूर्य उक्त मार्ग में घूमकर प्रजा को उत्पन्न करते हैं और जल वर्षाते हैं और वर्षा, ताप और वायु से सब जड़ और चैतन्य जीवों को बढ़ाकर फिर दक्षिणायन मार्ग में लौटआते हैं ३८ । ३९ हे युधिष्ठिर ! इस कालचक्र में सूर्य की गति निरन्तर रहती है और सूर्य सदैव प्राणियों के साररूपी रस को शोषण करके फिर छोड़देतेहैं ४० । ४१ औरसूर्य ही के घूमनेसे दिन रात और आयुकर्म के अनुसार सब जीवों का कला काष्ठा स्वरूप होता है अर्थात् पहिले लड़का होता है और फिर क्रम क्रम से बढ़ने से स्वरूप बदल जाता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणित्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ चौंसठवाँ अध्याय ।

पाण्डवोंका हिमालय पर्वतपर रहना और अर्जुन का अस्त्रविद्या सीखकर इन्द्रलोक से यात्रा करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पाण्डव उस पर्वत पर अर्जुन के दर्शन की लालसा से उत्तम व्रतों को करते हुए रहनेलगे और उनको बड़ा आनन्द हुआ उनके पास गन्धर्व और महाऋषियों के समूह प्रीतिपूर्वक आया जाया करते थे १ । २ उस हिमालय पर्वत को पाकर जो फूले हुए वृक्षों से बड़ा मनोहर होरहा था पाण्डव ऐसे हर्षित हुए जैसे मरुद्गण स्वर्ग में जाकर प्रसन्न होते हैं ३ कभी वे पाण्डव पहाड़ के शिखर और अन्य स्थानों को जो मोर और हंसों के शब्दों से बड़े सुहावने लगते थे देखने चले जाते और कभी कुबेरजी की बनाई हुई पुष्करणियों में जाकर विहार करते थे पुष्करणियां शैवाल अर्थात् सिवार से आच्छादित कमलों से सुशोभित और कारण्डवआदि जलपक्षियों से शब्दित होरही थीं ४ । ५ उसी पर्वतपर पाण्डवों ने अनेक क्रीड़ा करने के स्थानों को भी देखा जो मणियों से जटित और चित्र विचित्र पुष्पों से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कुबेरजी के क्रीड़ास्थान हैं ६ इस प्रकार से उन्होंने निरन्तर घूम घूम कर उस पर्वत के शिखरों को जो नानाप्रकार का वर्ण रखते थे और सुगन्धित पुष्पों के वृक्षों से व्याप्त थे देखा परंतु वे उनके विस्तार और शोभा को अनुभव न करसके ७ हे नरवीर ! वहां पर उस पर्वत और उसपर की ओषधियों का ऐसा प्रकाश था कि दिन और रात्रि नहीं जानपड़ती थी ८ पाण्डवों ने वहां रहकर सूर्य के उदय और अस्त होने के स्थान अर्थात् उदयाचल अस्ताचल और दिशा विदिशा जो सूर्य की किरणों से प्रभासित रहती थीं देखे ९ । १० और वेदपाठ, जप, क्रिया, धर्म और व्रतआदि नियमों को करते हुए महारथी और सत्यव्रत अर्जुन के आने की बाट देखते हुए रहनेलगे ऋषिलोग उनको यह आशीर्वाद देते थे कि तुमको अस्त्र सीखे हुए अर्जुन के मिलने का सुख यहीं प्राप्त होगा और पाण्डव उन आशीर्वादों को सुनकर तप और योग में स्थित होकर रहते थे और उनको अर्जुन की चिन्ता में एक दिन और रात्रि एक वर्ष के समान जान पड़ती थी ११ । १२ हे जनमेजय ! जब अर्जुन जटा रखाकर धौम्य ऋषि की अनुमति और युधिष्ठिर की आज्ञा से काम्यकवन से तपस्या करने को चला था

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तभी पाण्डवों को उसके जाने का बड़ा शोक हुआ था अब तो उसे गये हुए भी बहुत दिन होगये थे और मन भी सबका उसी की ओर लगा हुआ था अब उन को विना अर्जुन के क्यों कर आनन्द मिलना संभव था १४। १५ उस पर्वत पर अर्जुन की चिन्ता में पाण्डवों का एक महीना बड़े कष्ट से व्यतीत हुआ १६ उस के पीछे अर्जुन इन्द्र के भवन में पांच वर्ष में इन्द्र से अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, वायु विष्णु, इन्द्र, पशुपति, ब्रह्मा, प्रजापति, यम, धाता, सविता, त्वष्टा और कुबेर आदि देवताओं के अस्त्रों को सीख कर इन्द्र से बिदा मांगकर और उसकी प्रदक्षिणा और दण्डवत् करके महाहर्षित होता हुआ गन्धमादन पर्वत पर आया ॥१७।२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

एकसौ पैंसठवाँ अध्याय

अर्जुन का इन्द्रलोक से गन्धमादन पर्वत पर आना और धौम्य ऋषि और पाण्डवों से मिलना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इन्द्रलोक से चलने पर जब वह इन्द्र का रथ जिसमें अर्जुन बैठा हुआ था और हरे घोड़े जुत रहे थे ऐसा दिखाई देता था मानो बिजली चमक रही है आकाश में पाण्डवों के निकट आया तब वे उसमें अर्जुन को आया हुआ विचार कर बहुत प्रसन्न हुए १ उस रथमें मातलि सारथी घोड़ों की बागडोर पकड़े हुए बैठा हुवा था और वह रथ बादलों में उल्का की समान चमकता हुआ ऐसा दीखता था मानो निर्धूम प्रज्वलित अग्नि की लौ उठरही है २ थोड़ी देर में वह रथ गन्धमादन पर्वत पर उतरा और पाण्डवों ने उसमें अर्जुन को किरीट, माला और नवीन आभरण धारण किये हुए इन्द्र के सदृश तेज धारण किये हुए बैठा देखा अर्जुन ने उस रथ से उतर कर पहिले धौम्य ऋषि को दण्डवत् की फिर युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम करके द्रौपदी से मिला इस के उपरान्त नकुल और सहदेव ने अर्जुन को दण्वत् की और वह उनको आशीर्वाद देकर भाइयों के समीप बैठगया ३। ५ उसको देखकर पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए और उसने भी प्रशंसा करके युधिष्ठिर को प्रसन्न किया ६ इसके उपरान्त पाण्डव उस इन्द्र के रथ के पास गये जिस में बैठकर इन्द्र ने दैत्यों का बध किया था उसकी परिक्रमा की तदनन्तर युधिष्ठिर ने मातलि सारथी का इन्द्र के समान सत्कार किया और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उससे प्रत्येक देवता की क्षेमकुशल विधिपूर्वक पूछी ७। ८ मातलि ने भी युधिष्ठिर को अनेक बातें कहकर प्रसन्न किया और पाण्डवों को पितापुत्र की भाँति आशीर्वाद देकर उसी रथ में बैठकर इन्द्रलोक को लौट गया ६ उसके चले जाने पर अर्जुन ने इन्द्र के दिये हुए उत्तम उत्तम धनों को युधिष्ठिर के अर्पण किया और जो जो दिव्य आभूषण लाया था जिनकी प्रभा सूर्य के तुल्य थी वे सब द्रौपदी को दिये इसके पीछे अर्जुन ने उन महात्मा सूर्य अग्नि के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मणों में बैठकर इन्द्र आदि देवताओं से अस्त्र पाने और अपने स्वर्ग में रहने का वृत्तान्त संक्षेप करके सुनाया और यह कहा कि मेरे शीलस्वभाव से सब देवता मुझ से प्रसन्न रहे यह कहकर अर्जुन उस रात्रि को नकुल और सहदेव के साथ सो रहा ॥ १० । १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

एकसौ छाछठवाँ अध्याय।

इन्द्र का पाण्डवों के पास आना और उनको काम्यक वन को लौटजाने का उपदेश करके स्वर्ग को चले जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! रात्रि के व्यतीत होने पर सब भाइयों समेत अर्जुन ने उठकर धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया १ इसी अवसर में आकाश में देवताओं के बाजे बजने लगे और रथों की झंझनाहट, घण्टों की टंटनाहट, मृग, सर्प, और पक्षियों के बोलने का घोष पृथक् पृथक् सुनाई देने लगे २। ३ थोड़ी देर में इन्द्र का सुवर्ण जटित रथ जिसके चलने का शब्द मेघ की गर्जना के समान होता था उस पर्वत पर आकाश से उतरा उसके पीछे गन्धर्व और अप्सराओं के समूह सूर्यतुल्य प्रकाशित विमानों में चढ़े हुए आए रथ के पृथ्वीपर आने पर सहस्राक्ष इन्द्र पाण्डवों के सम्मुख उस रथ से उतरा ४। ६ उसको देखकर राजा युधिष्ठिर सब भाइयों सहित उठकर उसके समीप गया ७ और वेदोक्त रीति से उसकी यथायोग्य पूजा की उस समय अर्जुन इन्द्र को दण्डवत् करके सेवक के समान उसके समीप खड़ा हो रहा ८। ६ उस जटिल तपोयुक्त और अकल्मष अर्जुन को इस प्रकार से इन्द्र के समीप विनीत खड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्यार से उसके माथे को सूँघ कर इन्द्र की पूजा की इन्द्र उस प्रसन्न चित्त युधिष्ठिर को देखकर बोला कि हे पाण्डुनन्दन! तुम्हारा कल्याण होगा और तुम पृथ्वी का राज्य करोगे अब तुम सब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लौटकर काम्यक वन को चले जाओ १०। १३ तुम्हारे भाई अर्जुन ने मेरा प्रिय काम किया है और अब वह सब अस्त्र पाकर ऐसा पराक्रमी होगया है कि उसे तीनों लोकों में कोई जीत नहीं सकता है १४ यह कह कर इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक महाऋषियों से स्तुति सुनता हुआ स्वर्ग को चला गया १५ हे राजा जनमेजय! जो कोई मनुष्य इस अर्जुन के इन्द्रलोक में रहने और पाण्डवों के इन्द्र से समागम होने की कथा को ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और व्रत करके पाठ करेगा वह बाधारहित होकर सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जीवेगा ॥ १६। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

एकसौ सरसठवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर से किरातरूपी महादेवजी से युद्ध होने और उनसे पाशुपत अस्त्र मिलने की कथा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इन्द्र के चलेजाने पर अर्जुन ने अपने भाइयों व द्रौपदी सहित राजा युधिष्ठिर की पूजा की युधिष्ठिर ने उसकी पूजा से प्रसन्न होकर प्यार से उसके माथे को सूँघा और गद्गद वाणी से कहने लगा १। २ कि हे अर्जुन! स्वर्ग में तेरा काल कैसे कैसे व्यतीत हुआ था और जो जो अस्त्र तुझको इन्द्र और शिवजी आदि देवताओं ने प्रसन्न होकर दिये हैं उनको तैंने किस प्रकार से पाया था क्या आराधना तैंने की थी और तुझको इन देवताओं का दर्शन किस प्रकार से हुआ था? इस सब वृत्तान्त को मैं विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं और इन्द्र ने जो यह कहा था कि अर्जुन ने मेरा प्रिय काम किया है सो वह क्या काम था और तैंने उसको कैसे किया था ३। ८ यह सुनकर अर्जुन बोला कि बहुत अच्छा मैं इन्द्र और शंकर के दर्शन होने की कथा कहता हूं सुनिये ६ मैं आपकी आज्ञा के अनुसार आपकी सिखाई हुई विद्या पढ़कर तप करने के लिये काम्यकवन से चलकर भृगुतुङ्ग पर्वत पर पहुँचा वहां मैंने रात्रि को वास किया उपरान्त राह में मुझको एक ब्राह्मण मिला उसने पूछा कि तू कौन है मैंने उससे सब सच्चा सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया १०। १२ हे राजसत्तम! उसको सुनकर उस ब्राह्मण ने मेरी सत्यता की प्रशंसा की और प्रसन्न होकर मुझसे प्रीति मानकर कहा कि तू तप कर तप के प्रभाव से थोड़े ही दिनों में तुझको इन्द्र के दर्शन मिलेंगे १३। १४ हे महाराज! मैं उसकी बात को मानकर हिमालय पर्वतपर चढ़गया और तपस्या

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करने लगा एक महीना में फल और मूल खाकर रहा १५ हे पाण्डुनन्दन! दूसरे महीने में केवल जल के आधार से रहा तीसरे में निराहार रहकर तपस्या की १६ चौथे महीने में मैंने ऊँचे को बाँह उठाकर तप किया परंतु मेरा बल नहीं घटा मुझको इस बात को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ १७ जब पांचवां महीना लगा तब एक दिन मेरे सम्मुख एक बड़ैल सूअर अपने मुख से पृथ्वी को खोदता और पैरों से पृथ्वी पर चिह्न करता हुआ कभी इधर कभी उधर दौड़ता हुआ आया और उसके पीछे पीछे एक किरात धनुष्, बाण, खड्ग और साथ में बहुतसी स्त्रियां लिये हुए आ पहुँचा मैंने धनुष् बाण लेकर उस बड़ैल के एक बाण मारा १८। २१ उसी समय उस किरात ने भी धनुष् बाण चढ़ाकर बड़ा दृढ़ बाण उसी बड़ैल के मारा कि जिसको देखकर मेरा मन कांपने लगा २२ इस के पीछे उस किरात ने मुझसे कहा कि यह बड़ैल मेरा पूर्व परिग्रह है तुमने अहेर मारने के धर्म को छोड़कर इसके क्यों बाण मारा है २३ अब मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से तेरा घमण्ड दूर करूंगा तू खड़ारह २४ यह कहकर उसने मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करके मुझे इस प्रकार से ढक दिया जैसे बादल की बूंदों से पर्वत ढक जाता है २५ तब मैंने भी अपने दृढ़ और तीक्ष्ण बाण छोड़े और उनसे उस किरात को इस प्रकार से छेदडाला जैसे वज्र से पर्वत विदीर्ण होजाता है २६ तब उस किरात का स्वरूप सहस्रों प्रकार का होगया और मैंने उसके सब प्रकार के स्वरूपों में बाण मारे २७ इसके उपरान्त उन सब स्वरूपों का मिलकर फिर एक ही स्वरूप होगया और मैंने उसको भी बाणों से ताड़ना किया २८ वह स्वरूप कभी छोटा सा शरीर और बड़ा भारी मुख और कभी बड़ा भारी शरीर और छोटा सा मुख बना लेता था थोड़ी देर में वह स्वरूप एक सा होकर मुझसे युद्ध करने लगा मैं उससे बाणों से युद्ध न करसका और हार कर मैंने वायव्य अस्त्र छोड़ा २९। ३० परंतु वह किरात उससे नहीं मरा यह देखकर मैं आश्चर्य में रहगया ३१ और मैंने फिर अन्य बहुत से अस्त्र मारकर उसे ढकदिया ३२ इसके उपरान्त मैंने स्थूलाकर्ण, वारुण, और शलभ आदि अस्त्र छोड़े और बाण और पत्थरों की वर्षा से उससे युद्ध किया ३३ तब वह मेरे छोड़े हुए सब अस्त्रों को अपने पराक्रम से निगलगया तब मैंने ब्रह्मास्त्र छोड़ा ३४ उसके छोड़ते ही उसमें से जलते हुए बाण निकल निकल कर चारों ओर फैलगये और उसके तेज से एकक्षण भर में सब दिशा और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आकाश प्रकाशित होगये ३५। ३६ परंतु उस तेजस्वी किरात ने उस अस्त्र को भी निगललिया उसके निष्फलजाने पर मुझे भय ने चारों ओर से घेर लिया ३७ परंतु मैंने अपने हृदय को दृढ़करके धनुष चढ़ा लिया और उसके अक्षय बाण मारने लगा उसने उन बाणों को भी निगल लिया ३८ जब अस्त्र और शस्त्र कुछ मेरे पास न रहे तब मेरा और उस किरात का बाहु-युद्ध होने लगा और अनेक मुक्के और चपेटे मैंने उस किरात के मारे परंतु उसके बल का पार नहीं पाया अन्त में मैं अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ३९। ४० और वह किरात हँसकर सब साथ की स्त्रियों सहित अन्तर्धान होगया ४१ थोड़ीदेर में बृषभध्वज शिवजी महाराज पार्वती सहित दिव्यस्वरूप धारण करके सर्पों के भूषण और पिनाक धनुष धारण किये हुए पहिले किरातरूप को छोड़कर मेरे सम्मुख आकर खड़े होगये और कहनेलगे कि मैं तुझपर प्रसन्न हूं यह अपना धनुष और दोनों अक्षय बाण रखनेवाला तर्कस ले और इनको धारण कर ४२। ४६ और जो कुछ तुझको इच्छा हो सो मांग सिवाय देवभाव के अर्थात् देवता होने के और जो कुछ तू मांगेगा सो मैं तुझको दूंगा मेरा मन तो अस्त्र विद्या में लगा ही हुआ था मैंने उनकी बात को सुनकर मन से उनको नमस्कार किया और कहा कि महाराज! जो आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं सब देवताओं के अस्त्र पाना चाहता हूं यह सुन कर शिवजी बोले कि तुझको सब अस्त्र मिलेंगे ४७। ५० और मैं अपना रौद्रअस्त्र भी तुझको दूंगा यह कह कर शिवजी ने मुझे अपना पाशुपतअस्त्र देदिया ५१ और शिक्षा की कि मनुष्य और थोड़ा बल रखनेवाले प्राणियों पर इसको कभी न छोड़ियो क्योंकि ऐसा करने से यह अस्त्र सब जगत् को भस्म कर डालेगा हां जब तुझको अत्यन्त ही पीड़ा हो, कोई और अस्त्र काम न दे तब इस अस्त्र को छोड़ियो इसके पीछे शिवजी की कृपा से वह अप्रतिहत अर्थात् जिसको कोई नहीं रोंक सकता है और शत्रु और शत्रुओं की सेना का काटनेवाला अस्त्र जिसको कोई देवता, दानव और राक्षस पा और दे नहीं सकता है मूर्त्तिमान् होकर मेरी बगल में आकर स्थित होगया तदनन्तर मैं शिवजी की आज्ञा से वहीं ठहरा रहगया और शिवजी मेरे देखते देखते अन्तर्धान होगये ॥ ५२। ५७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६७॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौअरसठवाँ अध्याय ।

अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने स्वर्ग में रहने और निवात कवच दानवों से युद्ध करने के लिये जाने का वृत्तान्त कहना ।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज! महात्मा, देवाधिदेव, त्र्यम्बक, सदाशिव जी के अन्तर्धान होनेपर मैंने प्रसन्नतापूर्वक उस रात्रि को वहीं वास किया प्रातःकाल होनेपर जब मैं अपनी नित्यक्रिया करचुका तब मेरे पास वही ब्राह्मण फिर आया जो पहिले मिला था १ । २ हे भरतवंशिन्! मैंने उससे अपने भगवान् महादेवजी से मिलने का सब वृत्तान्त कहा ३ वह उस वृतान्त को सुनकर बोला कि जैसे तुमको महादेवजी के दर्शन हुए हैं उस प्रकार से दूसरे को होना कठिन है ४ अब तुमको यम आदि सब लोकपाल मिलेंगे और उनके पीछे इन्द्र के भी दर्शन तुमको होंगे वह तुझको सब अस्त्र देगा ५ यह कहकर वह सूर्य के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मण मुझसे वारंवार मिलकर अपनी इच्छाके अनुसार चला गया ६ उस दिन जब तीसरा प्रहर हुआ तब ऐसी वायु चलने लगी मानो संसार को फिर नवीन करदेगी और पर्वत पर बड़े बड़े दिव्य और सुगंधित पुष्प मेरे निकट प्रकट होगये ७ । ८ चारों ओरसे दिव्य बाजे बजने लगे और इन्द्र सम्बन्धी स्तुति सुनाई देनेलगी ९ और इन्द्र के सम्मुख गन्धर्वों के गाने और अप्सराओं के नाचने का शब्द होने लगा १० उसी समय इन्द्र के अनुचर मरुद्गण और भवन के भीतर रहनेवाले जयन्त आदि विमानों में बैठ बैठकर आये ११ और इन्द्रदेव श्रेष्ठ रथमें बैठे हुए जिसमें हरिनाम के घोड़े जुते हुए थे सब समाज सहित पूर्वदिशा में आकर स्थित होगये उसी समय नरवाहन कुबेरजी ने उत्तर दिशा में और यमराजने दक्षिण दिशा में और वरुण ने पश्चिम दिशा में आकर मुझे दर्शन दिया १२।१४ हे नरनायक, महाराज! वे सब देवता मुझसे कहने लगे कि हे अर्जुन! हम सब लोकपाल देवता हैं हम को देखो और हमसे अस्त्र लो तुमने देवताओंका कार्य सिद्ध करने के लिये शिवजी का दर्शन पाया है १५ । १६ यह सुनकर मैंने लोकपालों का दर्शन किया और सावधान होकर विधिपूर्वक उन सबसे अस्त्र लिये १७ इसके पीछे हे भरतसत्तम! सब देवता जहां से आये थे वहीं को चलेगये और भगवान् इन्द्र ने रथपर चढ़कर मुझसे कहा कि हे अर्जुन! तुझको स्वर्ग में हमारे पास आना चाहिये १८ । १९ हे अर्जुन! हम तेरा हाल तेरे आने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के पहिले ही से जानते हैं अब तुझको हमारा दर्शन हुआ तैंने अगले समय में तीर्थों में वारंवार स्नान किये थे और अब यह बड़ीभारी तपस्या की है इससे तू स्वर्ग में सदेह जा सकेगा तुझको वहां आना और उत्तम रणरूपी तप करना अवश्य उचित है २०।२२ हमारी आज्ञा से हमारा मातलि सारथी तुझको स्वर्ग लोक को लेजायगा तेरा हाल सब देवता और महात्मा मुनि जानते हैं २३ यह सुनकर मैंने कहा कि हे भगवन्! हे देवेश्वर! मुझपर प्रसन्न हूजिये मैं अस्त्र सीखने के लिये आपको अपना गुरु बनाना चाहता हूं २४ यह सुनकर इन्द्र बोले कि हे तात! अस्त्रों के जानने से तू क्रूरकर्म करने लगेगा इससे जिस काम के लिये तू अस्त्र चाहता है उसको हमसे कह हम तेरे उस काम को पूरा करेंगे २५ यह सुनकर मैंने विनय की कि हे देवराज! हे श्रेष्ठदेव! मैं इन अस्त्रों का प्रयोग अस्त्र न चलानेवाले मनुष्यों पर नहीं करूंगा और अस्त्रों से जय होनेवाले लोकों को भी पीछे प्राप्त करूंगा आप मुझको दिव्य अस्त्र दीजिये २६।२७ यह सुनकर इन्द्र बोले कि हे अर्जुन! मैंने यह बात केवल तेरी परीक्षा करने के लिये कही थी तू मेरा पुत्र है तैंने बहुत योग्य बात कही २८ अब तू हमारे भवन में आइयो और वहां वायु, अग्नि, अष्टवसु, वरुण, मरुद्गण, साध्यगण, ब्रह्माजी, गन्धर्व, उरग और राक्षसों से अस्त्र सीखियो और नैर्ऋत और वैष्णव अस्त्र भी तुझको मिलेंगे हमारे पास सब अस्त्र विद्यमान हैं यह कहकर इन्द्र वहीं अन्तर्धान होगये २९।३१ इसके उपरान्त मैंने अपने समीप इन्द्र के दिव्य मायामय और पवित्र रथ को जिसमें हरि नाम के घोड़े जुते हुए थे मातलि सारथीसहित देखा ३२ उस सारथी ने लोकपालों के चलेजाने पर मुझसे कहा कि हे अर्जुन! सहस्राक्ष इन्द्र तुमको देखना चाहते हैं इससे तुम विलम्ब मत करो शीघ्र तैयार होजाओ और मेरे साथ सदेह चलकर स्वर्गलोक देखो यह सुनकर मैंने हिमालय पर्वत की प्रदक्षिणा की और उस रथ पर बैठगया और मातलि ने उस रथ के मन और वायु के तुल्य वेगवान् घोड़ों को हांका रथ के चलने पर मातलि ने मेरी ओर मुड़कर देखा और चकितसा होकर कहने लगा कि मुझे बड़ा आश्चर्य है ३३।३८ कि इस दिव्य रथ के चलने पर तुम्हारा आसन दृढ़ बनारहा अर्थात् हिले झुले नहीं मैंने इन्द्र को भी देखा है कि जब कभी वे इसपर सवार हुए हैं और घोड़ों ने प्रथम उत्पात किया है अर्थात् पहिले

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ही पहिले भिभककर चले हैं तब भी उनका आसन डगमगा गया है परन्तु तुम रथ के चलने पर भी निश्चल बैठे हुए दीखते हो यह बात तुममें इन्द्र से विशेष जान पड़ती है यह कहकर मातलि उस रथ को हांककर आकाशमार्ग से ऊपर को ले चला और मुझको देवताओं के स्थान और विमान दिखलाता गया ३६। ४२ देवता और ऋषियों ने मेरा सत्कार किया और मैं राह में देवऋषियों की इच्छानुसार चलनेवाले लोकों को और गन्धर्व, अप्सरा और देवताओं के नन्दनवन आदि वन, उपवन और लोकों को देखता हुआ इन्द्र भवन और अमरावतीपुरी के निकट जा पहुँचा ४३। ४५ वह पुरी रत्नों से अलंकृत थी और वृक्ष वहां के दिव्य ऐसे थे कि जो फल तुम चाहो सो ही उनमें से तोड़ लो वहां सूर्य नहीं तपता है जाड़ा गर्मी और थकावट नहीं व्यापती है ४६ हे नृपाल! रजोगुण की बाधा भी वहां नहीं होती है बुढ़ापा, शोक और दुर्बलता का नाम नहीं है ४७ और देवताओं में वहां किसी प्रकार की ग्लानि अथवा क्रोध या लोभ नहीं रहता है वहां के रहनेवाले प्राणी सदा तुष्ट रहते हैं और वृक्ष सदैव फूले फले और हरे बने रहते हैं ४८। ४६ वहां अनेक प्रकार की पुष्करिणी बनी हुई हैं और उनमें सौगन्धिक नामी कमल खिले हुए रहते हैं वायु वहां शीतल मन्द सुगन्ध चला करती है पृथ्वी वहां की रत्न और पुष्पों से भूषित रहती है और बहुत से सुन्दर पक्षी मीठी मीठी बोली बोला करते हैं ५०। ५१ इन्द्रपुरी के निकट पहुँचने पर मैंने आकाश में आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, बारहों सूर्य और दोनों अश्विनीकुमार देखे मैंने उन सबको दण्डवत् की और उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद किया कि तू पराक्रमी, यशस्वी, तेजस्वी, अस्त्रों का जाननेवाला और युद्ध में विजय पानेवाला हो इसके उपरान्त मैंने इन्द्रपुरी में प्रवेश किया और इन्द्र के सम्मुख हाथ जोड़कर जा खड़ा हुआ इन्द्र ने प्रसन्न होकर मुझको अपने आधे आसन पर बैठा लिया ५२। ५५ और मेरे ऊपर बड़े मान से हाथ फेरा इसके पीछे मैं वहां देवता और गन्धर्वों के साथ बसकर अस्त्र सीखता रहा और विस्वावसु गन्धर्व के पुत्र चित्रसेन से मेरी मित्रता होगई ५६। ५७ हे राजन्! उसने मुझको संपूर्ण गान्धर्व वेद सिखाया और मैं वहां बड़े सुख से बसता रहा ५८ हे भरतसत्तम! मैंने वहां मधुर मधुर बाजों के शब्द और गन्धर्वों के मनोहर गीतभी सुने और अप्सराओं का नाच भी देखा परंतु मैं सबका आदर सत्कार यथायोग्य करता रहा और आप राग

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रहित होकर अस्त्रों के सीखने में तत्पर रहा इन्द्र मेरे उस चलन से प्रसन्न हुआ हे महाराज, युधिष्ठिर! इस प्रकार से मेरा समय स्वर्ग में व्यतीत हुआ ५६। ६१ इसके उपरान्त इन्द्र ने मुझे विश्वासपात्र और अस्त्र जाननेवाला समझ कर मेरे माथे पर हाथ फेरा और मुझसे कहा ६२ कि हे अर्जुन! अब तुझको देवता भी सब मिलकर नहीं जीत सकते हैं अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है जो तुझसे युद्ध कर सकें ६३ रण में तुझे कोई न मार सकेगा और न कोई तेरा सामना कर सकेगा तू सावधान, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मण्य, अस्त्रज्ञ और शूरवीर है तेरी समान आज कोई योद्धा नहीं है तू हमसे पन्द्रह अस्त्र पा चुका है और उनका चलाना लौटाना ठंडा करना और प्रायश्चित्त अर्थात् अस्त्र से मरे हुए को फिर जिलाना और प्रतिघात अर्थात् दूसरे के चलाये हुए अस्त्र को अपने अस्त्र से शमित करना भी तुझे बता दिया है अब इन सबको काम में लाने और हमको गुरुदक्षिणा देने का समय आन पहुँचा है सो जो तू उसको करने की प्रतिज्ञा करे तो मैं तुझसे उस काम को कहूँ यह सुनकर मैंने कहा ६४। ६६ कि महाराज! जो काम मेरे करने के योग्य है उसको आप किया हुआ ही समझें यह सुनकर इन्द्र ने हँसकर कहा ७० कि तीनों लोकों में ऐसा कोई काम नहीं है जो तुझसे नहीं हो सकता है निवात कवच नामी तीन कोटि दैत्य समुद्र की कुक्षि में, दुर्ग स्थानों में रहते हैं वे हमारे शत्रु हैं और सब एक बराबर बल रखते हैं ७१। ७२ हे कुन्तीनन्दन! तू जाकर उन दैत्यों को मार उनको मारने पर तेरी दक्षिणा पूरी होगी यह कह कर इन्द्र ने मुझको अपना बड़ी प्रभावाला दिव्य रथ दिया जिसमें मातलि सारथी था और ऐसे घोड़े जुते थे जिनका रंग मोर के परों के सदृश था और यह सुन्दर किरीट मेरे शिर में बाँध दिया और अङ्ग अङ्ग के उत्तम भूषण और यह अभेद्य कवच भी दिया और इस गाण्डीव धनुष में यह ज्या लगा दी जो कभी पुरानी नहीं होती है इसके उपरान्त मैं उस रथ में बैठकर चल दिया ७३। ७६ अगले समय में इन्द्र ने विरोचन के पुत्र बलि को इसी रथ में बैठकर जय किया था उस रथ के शब्द को सुनकर सब देवता मुझे इन्द्र समझ कर मेरे पास आये और पूछने लगे कि हे अर्जुन! तू क्या करना चाहता है ७७। ७८ यह सुनकर मैंने उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि हे देवताओ! मैं निवातकवच नामी दैत्यों को मारने जाता हूँ आप लोग मुझे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मेरा कल्याण होने का आशीर्वाद दीजिये यह सुनकर देवता इन्द्र की भाँति मेरी स्तुति करने लगे और बोले ७६। ८० कि इन्द्र ने इस रथ में बैठकर शम्बर, नमुचि, बलि, वृत्र, प्रह्लाद, नरक और अर्बुदों दैत्यों को जय किया था ८१। ८२ हे कौन्तेय ! तुम भी उसी प्रकार के अपने पराक्रम से निवात-कवच दैत्यों को जीतोगे ८३ और इस शंख से भी तुम दानवों को विजय करोगे इन्द्र ने भी इस शंख से अनेक लोक विजय किये थे ८४ इस प्रकार से देवताओं के स्तुति करने पर मैंने वह देवदत्त नामी शंख विजय प्राप्त करने के लिये ले लिया ८५ और शंख, कवच, धनुष, और बाण लेकर युद्ध करने के लिए उन उग्र दानवों के नगर को चल दिया ॥ ८६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणयष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का निवातकवच दैत्यों के नगर में पहुँचना और उन दैत्यों से युद्ध करना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज! स्वर्ग से चलकर जहां तहां महा ऋषियों से स्तुति सुनता हुआ समुद्र के समीप पहुँचा जिसमें फेन लिये हुए लहरें उठ रही थीं और ऐसी दीखती थीं मानो चलते हुए पर्वत हैं १। २ कहीं रत्नों से भरी हुई सहस्रों नावें लगी हुई थीं कहीं बड़ी बड़ी मछलियां कहीं बड़े बड़े कछुये और कहीं कहीं जल में डूबे हुए मगर पर्वतों के समान दीखते थे कहीं जल में डूबे हुए शंख ऐसे जान पड़ते थे मानो रात्रि में पतले बादलों से ढके हुए तारागण हैं और अनेक प्रकार के सहस्रों रत्न उस समुद्र के जल के ऊपर तिर रहे थे ३। ५ वायु वहां बड़ी भयानक चल रही थी मैं उस समुद्र की शोभा को देखता हुआ उन दानवों से भरे हुए नगर के निकट शीघ्र जा पहुँचा वहां पहुँचकर मातलि ने रथ को आकाशमार्ग से पृथ्वी पर उतार लिया और उसको चारों ओर से देखकर उस नगर के सम्मुख शीघ्रता से ले चला ६। ८ उस रथ के चलने के शब्द को सुनकर सब दानव मुझे इन्द्र समझ कर व्याकुल हो गये ९ और विस्मित होकर धनुष, बाण, खड्ग, गदा, शूल और फरसा आदि अस्त्र हाथ में लेलेकर खड़े होरहे १० और सबने भयभीत होकर नगर के द्वार बन्द कर लिये जब वहां मुझे उस नगर का कोई रक्षक दिखाई नहीं दिया तब मैंने प्रसन्न होकर देवदत्त शंख को धीरे धीरे बजाया ११। १२ उसके शब्द से आकाश गूंजने लगा और बड़े बड़े प्राणी भी डर डर कर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जहां तहां छिपगये १३ थोड़ी देर में सहस्रों निवातकवच दैत्य अनेक प्रकार की गर्जना करते हुए हाथों में शूल, गदा, पट्टिश, करवाल, रथचक्र, शतघ्नी, भुशुंडी और खड्ग आदि चित्र विचित्र हथियार धारण किये हुए निकल आये १४। १६ उनको देखकर मातलि ने इधर उधर रथ के जाने के योग्य मार्गों को देखकर समान पृथ्वी की ओर इस शीघ्रता से रथ हांका कि चलते में पृथ्वी पर की कोई वस्तु यथावत् नहीं जानी जाती थी वह एक बड़ा आश्चर्य-सा हुआ १७। १८ इसके पीछे दानवों ने अनेक बाजे जिनके स्वरूप विकृत थे बजाये और उनके शब्द से समुद्र में पर्वतरूपी बड़ी बड़ी मछलियां इधर से उधर भागने लगीं १९। २० तदनन्तर सहस्रों दानव तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए मेरे सम्मुख बढ़े और मेरा उनसे महाघोर युद्ध होने लगा जिसमें बहुत से दैत्य मारे गये २१। २२ उस समय युद्ध में देवऋषि, दानवऋषि, ब्रह्मऋषि, और सिद्धलोग वहां आये और उन सबों ने मेरी स्तुति इस प्रकार से की जैसे तारकासुर दैत्य से युद्ध करते समय इन्द्र की स्तुति की थी ॥ २३ । २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

एकसौ सत्तरवाँ अध्याय।

निवातकवच दैत्यों का अर्जुन से युद्ध करना और उस युद्ध में अर्जुन के हाथ से सहस्रों दैत्यों का माराजाना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज! उक्त ऋषियों के आने के पीछे सब निवातकवच दैत्य एक साथ मेरे सम्मुख दौड़े और चारों ओर से घेरकर मेरे रथ के जाने का मार्ग बन्द करदिया और मुझको बाणों की वर्षा से अदृश्य करदिया १। २ उन दैत्यों के भुशुण्डी, शूल, गदा और शक्ति आदि हथियारों की वर्षा मेरे रथ के ऊपर निरन्तर होने लगी ३। ४ बहुत से दैत्य जिनका प्रहार बड़ा भयानक था मेरे सम्मुख दौड़े परंतु मैंने उस समय गाण्डीव धनुष् चढ़ाकर प्रत्येक दैत्यों के दश दश तीक्ष्ण बाण मारे और उनके लगने से वे सब विमुख होगये उसी अवसर में मातलि भी बड़ी युक्ति से रथ को हांककर शीघ्रता से इधर उधर हांकने लगा और बहुत से दैत्य उसके भ्रमण और घोड़ों की टाप से दब दब कर मरगये यद्यपि मेरे उस रथ में हरे रंग के सहस्र

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

घोड़े जुते हुए थे परंतु मातलि उनको इस प्रकार से हांकता हुआ चारों ओर घुमाता था जैसे कोई थोड़े घोड़े जुते हुए रथ को हांक लेता है ५। ८ मेरे बाणों के निपात और रथ की धड़धड़ाहट और घोड़ों की टापों से सहस्रों दैत्य मारे गये १० बहुतसे दैत्यों को जिनका सारथी मारा गया था और आप भी धनुष् लिये हुए निर्जीव होगये थे रथ के घोड़े खींचे खींचे फिरते थे ११ इसके पीछे उन निवातकवच दैत्यों ने दशों दिशाओं को रोककर गर्ज गर्ज कर चारों ओर से मेरे ऊपर शस्त्रों की वर्षा की उससे मेरा मन बहुत व्यथित होगया १२ उस समय मैंने मातलि का यह पराक्रम देखा कि वह अत्यन्त वेग से जाते हुए घोड़ों को बड़े यत्न से डाटे रहा १३ हे राजन्! मैंने भी तब अपने तीक्ष्ण और चित्र विचित्र अस्त्रों से सहस्रों दानव और उनके आयुधों को छेद डाला १४ मुझको इस प्रकार से युद्ध करते हुए देखकर मातलि प्रसन्न हुआ १५ उस समय बहुत से दैत्य रथ के घोड़ों की टाप से दब दब कर मरगये और बहुतों ने मेरे बाणों से घायल होकर मेरे ऊपर ऐसी बाणों की वर्षा की कि मुझे ढकदिया १६। १७ तब मैंने भी ब्रह्मास्त्र आदि शीघ्रगामी बाण छोड़कर सहस्रों दानवों को मारकर गिरादिया १८ फिर उन दानवों ने दुःखी और क्रोधित होकर मेरे ऊपर शक्ति, शूल और खड्ग आदि आयुधों की वर्षा की उनसे मुझे बड़ी पीड़ा हुई परंतु मैंने भी माधव अस्त्र का प्रयोग करके जो बड़ा तीक्ष्ण और तेज से भरा हुआ था उन दैत्यों के फेंके हुए खड्ग, त्रिशूल और तोमरों को टुकड़े टुकड़े करडाला और शेष से प्रत्येक दैत्य के दश दश बाण मारकर उनको छेदडाला उस समय मातलि मेरे गाण्डीव धनुष् से भौंरों की पंक्ति की सदृश छोड़े हुए बाणों को देखकर मेरी सराहना करने लगा १९। २३ इसके पीछे उन दानवों ने भी मेरे ऊपर बाणवृष्टि करके मुझे ढकादिया मातलि ने उनकी बाणवृष्टि भी सराही और मैंने उन बाणों को अपने बाणों से काटकर गिरादिया २४ तब उन दानवों ने फिर मुझपर बाणवृष्टि की और मुझे चारोंओर से ढकादिया मैंने भी अस्त्रघाती अस्त्रों से उनकी बाणवृष्टि को रोंकदिया और सहस्रों दानवों को काटकर गिरादिया २५। २६ तब उनके कटे हुए शरीरों में से रुधिर की धारें इस प्रकार से निकलनेलगीं जैसे वर्षाकाल में पर्वतों के शिखरों पर से जल चारों ओर को गिरता है २७ उस समय वे असुर मेरे वज्ररूपी बाणों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से व्याकुल होगये और शरीर और अस्त्रों के शतधा भिन्न होने के कारण से क्षीण पराक्रम होकर माया रचकर युद्ध करने लगे ॥ २८ । २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते बनपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसौ एकहत्तरवाँ अध्याय ।

अर्जुन का निवातकवच दानवों से युद्ध करके उनको मारकर यमलोक में भेजना ।

अर्जुन बोले हे युधिष्ठिर, महाराज! इसके पीछे वे निवातकवच दैत्य चारों ओर से मेरे ऊपर वृक्षप्रमाण पत्थर वर्षाने लगे उनको देखकर मेरी दृष्टि को बहुत पीड़ा हुई परंतु महासंग्राम में मैंने वज्र तुल्य वेगवान् महेन्द्रास्त्र छोड़कर उन पत्थरों को चूर्ण कर डाला १ । २ तब उन पत्थरों से अग्नि प्रकट होगई और उनका चूर्ण अग्नि की राशि के समान गिरने लगा ३ इसके पीछे आकाश से मेरे चारों ओर मूसलाधार जल वर्षने लगा और वायु प्रचण्ड चलने लगी उस समय वायुकी संसनाहट, जलकी तड़तड़ाहट और दैत्यों की गड़गड़ाहट से कोई बात सुनाई नहीं पड़ती थी ४ । ६ उन आकाश से निरंतर गिरनेवाली धाराओं से मैं मोहित सा होगया परंतु मैंने इन्द्र के बताये हुए जल के सुखानेवाले दीप्त अस्त्र को छोड़कर सब जल को सुखादिया ७ । ८ तब दानवों ने अपनी माया से अग्नि और प्रचण्ड वायु प्रकट की मैंने वारुणास्त्र से अग्नि को और शैल अस्त्र से वायुवेग को शान्त करदिया ९ । १० इसके उपरान्त उन दुर्मद दानवों ने एक साथ ही नानाप्रकार की माया प्रकट की चारोंओर से घोरअस्त्र अग्नि पत्थर वर्षने लगे और वायुप्रचण्ड चलनेलगी उससे मेरेशरीर के रोम खड़े होगये और चित्त को बड़ी पीड़ा हुई थोड़ी देरमें चारों ओरमहा अन्धकार छागया उस के कारण से रथ के घोड़े न चल सके और मातलि भी रथ से खिसल पड़ा और उसके हाथ से सुनहरा चाबुक गिरपड़ा तब मातलि ने भयभीत होकर मुझ से कहा कि हे अर्जुन! अब तुम कहां हो ११ । १५ यह सुनकर मुझको भी बड़ा भय हुआ और मातलि ने मुझसे उस भयकी अवस्था में कहा कि पहिले अमृतके लिये देवता और असुरोंका बड़ाभारी संग्राम हुआ था वह मैंने देखा था और जब शम्बर दैत्यसे इन्द्र ने युद्ध किया था तब भी मैं ही इन्द्रका सारथी था और वृत्रासुर और बलिके संग्राम में भी मैंने ही इन्द्र का रथ हांका था परंतु मैं ऐसा अचेत किसी युद्धमें हुआ नहीं था जैसा इस युद्ध में हुआ हूं न जाने ब्रह्माने यह घोर संग्राम जगत् को संहार करने को रचा है ऐसा संग्राम पहिले कभी कहीं नहीं हुआ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

था १६ । २१ यह सुनकर मैंने अपने मन को स्थिर किया और उस भयभीत मातलि से कहा तुम किसी प्रकार का भय मत करो मेरे बल, अस्त्र और गाण्डीव धनुष् के प्रभाव को देखो अभी मैं अपने अस्त्रों के प्रभाव से इन दानवों की दारुण माया और इस अंधकार को दूर किये देता हूं २२ । २४ हे नराधिप ! यह कहकर मैंने देवताओं के हित के लिए सब प्राणियों को मोहनेवाली अस्त्रमाया छोड़ी २५ उससे वह असुरों की सब माया दूर होगई तब अपार बलशाली दानवों ने और बहुत प्रकार की माया प्रकट की २६ कभी अंधेरा और कभी उजेला हो जाता था और कभी ऐसा जानपड़ता था कि जल में डूबे जाते हैं परंतु जब अस्त्र के प्रभाव से वह सब माया नष्ट होगई और उजेला होगया तब मातलि घोड़ों को अच्छी तरह पकड़कर रथको हांकता हुआ लोमहर्षण संग्राम में इधर से उधर बिचरने लगा २७ । २८ उस समय सब दानव चारों ओर से सिमिटकर मेरे ऊपर आकर गिरे मैंने अवसर पाकर मार मारकर उन सबको यमलोक में भेजदिया २६ इसके उपरान्त बचे हुए दानवमाया करके एक साथ गुप्त हो गये और कोई दिखाई नहीं देने लगा ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

एकसौ बहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का संपूर्ण निवातकवच दैत्यों को मारकर उनके पुर की शोभा देखना और इन्द्रपुरी को लौटना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज ! वे दानव अदृश्य होकर माया से युद्ध करने लगे मैंने भी उनसे अदृश्य अस्त्र के द्वारा युद्ध किया १ और गाण्डीव धनुष् से छोड़े हुए अस्त्र प्रेरित बाणों से उनके शिर कट कट कर जहां तहां गिरनेलगे २ इसके पीछे उन दानवों ने अपनी माया को संहार करलिया और एकाएकी अपने नगर के भीतर घुसगये ३ उस समय प्रकाश के होने पर मैंने देखा कि सहस्रों दानव रणभूमि पर कटेहुए पड़े हुए हैं कोई कवच पहिरे हुए ही मरगया है कोई शस्त्र लिये हुए ही कटगया है कोई आभरण धारण किए हुए ही पञ्चत्व को प्राप्त हुआ है और किसी किसी का शरीर चूर्ण हो गया है निदान वे दानव वहां इस प्रकार से मरे और कटे हुए पड़े थे कि उनके कारण से मेरे रथ के घोड़े नहीं चलसके और वे उछलकर आकाश मार्ग में रथ को लिए हुए चलने लगे ४ । ६ उस समय सब निवातकवच

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दानव फिर वहां अदृश्यरूप से आगये और कुछ आकाश में स्थित होकर मेरे ऊपर पहाड़ फेंकने लगे बहुतों ने नीचे से मेरे रथ के पहिए और घोड़ों की टांगें पकड़लीं और मुझको रथसहित इस प्रकार से पर्वतों से ढकदिया कि वह स्थान जहां मेरा रथ था पर्वत की गुफा-सा दीखने लगा ७। १० पर्वतों से ढकजाने और घोड़ों के पकड़े जाने के कारण से मुझको बड़ी पीड़ा हुई मातलि मुझको उस अवस्था में देखकर कहने लगा कि हे अर्जुन! तुम डरो मत और वज्र अस्त्र छोड़ो ११। १२ यह सुनकर मैंने इन्द्र के प्रिय और भयानक वज्र अस्त्र का प्रयोग किया १३ और गाण्डीव धनुष् को अभिमन्त्रित करके वज्ररूपी लोहे के बाण छोड़े १४ वे बाण वज्र से प्रेरित होकर उन पर्वत-रूपी दानव और उन रची हुई माया को छेदनेलगे और उससे वे मर मर कर एक दूसरे से चिपटे हुए पृथ्वी पर गिरनेलगे उन बाणों ने उन दानवों को भी मारकर यमलोक को पहुँचादिया जो मेरे रथ के घोड़े और पहियों को पकड़े हुए थे १५। १७ उन दानवों के मरकर गिरने से उनके पर्वतरूपी फैले हुए शरीरों से वह देश ढकगया १८ हे राजन्! मेरी अथवा मातलिसमेत रथ के घोड़ों की कोई हानि किसी प्रकार की नहीं हुई उस समय मातलि ने मुझसे हँसकर कहा कि हे अर्जुन! तुम्हारा सा पराक्रम किसी देवता में भी नहीं है १६। २० हे युधिष्ठिर, महाराज! उन दानवों के मारेजाने पर उस नगर में उनकी स्त्रियां इस प्रकार से रोनेलगीं जैसे शरदृऋतु में सारसी चिल्लाती हैं २१ मैं उस समय उन स्त्रियों को रथ के शब्द से डराता हुआ नगर के समीप चलागया वे स्त्रियां उन दश सहस्र रथ के घोड़ों को जिनका वर्ण मोर के रंगके सदृश था और उस रथ को जिसका प्रकाश सूर्य के तुल्य था देखकर भागने लगीं उनके भागने का ऐसा शब्द हुआ मानो पहाड़पर पत्थरों की शिला गिरती हैं २२। २४ जब मैं निकट पहुँचा तब वे स्त्रियां अपने अपने रत्नजटित और सुनहरे मकानों में घुसगईं २५ इसके पीछे मैंने उस उत्तम और देवताओं के नगर से भी श्रेष्ठ पुर को देखकर मातलि से पूछा २६ कि देवता इस नगर में क्यों नहीं रहते हैं यह नगर तो मुझको इन्द्रपुरी से भी अच्छा दीखता है २७ यह सुनकर मातलि बोला कि पहिले यह नगर देवताओं का ही था परंतु निवातकवच दैत्यों ने बड़ी तपस्या करके ब्रह्माजी से यह वरदान मांगा था कि हमको यह नगर बसने को मिले और देवता हमको किसी प्रकार से न जीतसकें सो वरदान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पाने पर उन दानवों ने देवताओं को इस नगर से निकाल दिया था २८। २९
इसके उपरान्त इन्द्र ने ब्रह्माजी से अपने हित की इच्छा से पूछा कि महाराज!
ये दैत्य क्योंकर मारे जायँगे इनके वध की विधि बताइये यह सुनकर ब्रह्माजी
ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम्हीं दूसरा शरीर धारण करके इन दानवों को
मारोगे ३०। ३१ हे अर्जुन! इसी कारण से इन्द्र ने इन दैत्यों को मारने के
लिये तुमको संपूर्ण अस्त्र दिये हैं ये दैत्य जिनको तुमने मारा है देवताओं से
वध्य न थे ३२ इनका अब समय आ पहुँचा था सो तुम इनको नाश करने के
लिये यहां प्राप्त हुए और तुमने उनका नाश यथावत् किया ३३ इन्द्र ने इन्हीं
दानवों को मारने के लिए तुमको अस्त्रों का बल ग्रहण कराया था ३४ हे युधिष्ठिर
महाराज! इसके उपरान्त मैं नगर को देखकर मातलि के साथ देवलोक को
लौट आया ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

एकसौ तिहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का हिरण्यपुरनाम दानवों के नगर को गिराना और दानवों को मारकर
मातलिसहित इन्द्रपुरी को लौटकर चला जाना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर, महाराज! इन्द्रपुरी को लौटने के समय राह में
मैंने एक बड़ा अद्भुत नगर देखा जो इच्छापूर्वक जहां चाहो वहां जा सक्ता था
और सूर्य के तुल्य प्रकाश कर रहा था १ वृक्ष वहां के फूले फले रत्नजटित
और चित्र विचित्र थे पक्षी उन पर बैठे हुए मधुर मधुर वाणी बोल रहे थे उस
नगर के चार द्वार थे और भीतर बड़े बड़े अद्भुत और रत्नजटित गृह बने
हुए थे गोपुर और अटारियां उन गृहों पर परम शोभा दे रही थीं उसके देखने से
आश्चर्य-सा होता था उस नगर में पौलोम और कालकञ्ज नामी असुर रहते
थे और शूल, खड्ग, मुशल, मुद्गर और धनुष आदि अनेक आयुध लिये हुए
बहुत से असुर जो माला धारण किए हुए थे उसकी रक्षा कर रहे थे २। ५ उस
नगर को देखकर मैंने मातलि से पूछा कि यह अद्भुत दर्शन क्या है? मातलि
बोला कि पुलोमा नाम दैतेयी और कालका नामी दो महासुरी थीं उन्होंने
सहस्र वर्ष तक बड़ा उग्र तप किया था ६। ७ ब्रह्माजी उनकी तपस्या से प्रसन्न
हुए थे और उनसे उन दोनों ने यह वरदान मांगा था कि हमारे पुत्र देवता
राक्षस और सर्पों से अवध्य होंवे अर्थात् उनको देवता या राक्षस अथवा सर्प

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

न मार सकें और उनको रहने के लिए एक बड़ा रमणीक और प्रकाशित नगर मिले जो आकाश में जहां चाहे तहां चल फिर सके और सब रत्न और गुणों से युक्त शोक रोगरहित और देवता, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, असुर और राक्षसों से भी दुर्धर्ष होवे यह सुनकर ब्रह्माजी ने उन दोनों आसुरियों को उक्त वरदान दिया और उनके पुत्रों के लिये यह नगर बनाया, इसका नाम हिरण्यपुर विख्यात है देवता इसमें नहीं रहते हैं केवल पौलोम और कालकञ्ज नाम दैत्य ही बसते हैं और वे ही इसकी रक्षा करते हैं ८। १३ हे अर्जुन ! ये दानव इस नगर में निर्भय वास करते हैं और देवताओं से अवध्य हैं अगले समय में ब्रह्माजी ने कहा था कि इनकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से होगी सो तुम वज्र अस्त्र से मारकर इन दैत्यों को भी नाश करो १४। १५ यह सुनकर मैं उन दैत्यों को देवताओं से अवध्य जानकर प्रसन्न हुआ और मैंने मातलि से कहा कि अब तुम शीघ्र मेरे रथ को इस नगर के निकट ले चलो मैं इन दैत्यों को भी अस्त्रों से मारूंगा क्योंकि जो दैत्य देवताओं के शत्रु हैं वे निश्चय मेरे वध्य हैं १६। १७ यह सुनकर मातलि उस हरी जाति के घोड़ों से जुते हुए रथ को शीघ्र हांककर उस नगर के समीप लेगया १८ मुझे देखकर वे दैत्य चित्र विचित्र वस्त्र आभरण और कवच धारण किये हुए रथों में बैठ बैठ कर मेरे सम्मुख आये १९ और मेरे ऊपर नालीक, नाराच, भल्ल, शक्ति, दुधारा और खड्ग आदि शस्त्र प्रहार करने लगे २० हे राजन् ! उस समय मैंने रथ को घुमा घुमा कर विद्याबल से बाणों की वर्षा की और उनके फेंके हुए शस्त्रों को रोककर उन्हें मोहित कर दिया तब वे दैत्य मोहित होकर आपस में परस्पर मारने लगे और एक दूसरे की ओर दौड़ने लगे उस समय मैंने तीक्ष्ण बाणों से उनके शिर काट काटकर गिरा दिये २१। २३ इस प्रकार से ताड़ित होने पर वे दैत्य अपने नगर में घुस गये और दानवी माया करके नगरसहित आकाश को उछल कर चले मैंने बड़ी बाणवर्षा करके उनका मार्ग रोक दिया जब ऊपर को जाने को राह न मिली तब वह इच्छानुसार चलनेवाला और सूर्य के तुल्य प्रकाशित नगर जिसकी रक्षा दैत्य सुखपूर्वक कर रहे थे, नीचे को चलाआया और अन्तरिक्ष में घूमने लगा कभी ऊंचेको चला जाता था कभी तिरछा चलनेलगता था और कभी पानी में डूब जाता था २४। २७ हे परन्तप ! उस समय मैंने दिव्यअस्त्र और बाणों के जालों से उस अमरावती के तुल्य नगर की गति

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चारों ओर से रोक दी और वह मेरे तीक्ष्ण लोहे के बाणों से कटकट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा २८।३० तब उसमें रहनवाले दानव मेरे बाणों से ताड़ित और काल से प्रेरित होकर इधर उधर घूमने लगे उस समय मातलि मेरे सूर्यरूपी रथ को आकाश में चढ़ाकर शीघ्र नीचे को उतार लाया और उन दानवों ने क्रोधित होकर साठ सहस्र रथों से मुझे घेर लिया, मैं भी उनको अपने तीक्ष्ण बाणों से जिनमें गिद्ध के पर लगे हुए थे मारने लगा ३१।३४ और वे दैत्य भी समुद्र की लहरों की भांति लौटकर मुझसे लड़ने लगे, उस समय मैंने यह अनुमान करके कि ये दैत्य मनुष्य से नहीं जीते जा सकते हैं, दिव्य दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया परंतु उन दैत्यों ने धीरे धीरे मेरे चलाये हुए सब अस्त्र नष्ट करदिये और चित्र विचित्र मुकुट, कवच और ध्वजा धारण किये हुए अनेक प्रकार के रथों में बैठे हुए रण में घूमने लगे कि जिनको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ ३५।३८ उस समय मैंने अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्रों से प्रेरित करके बाणवर्षा की परंतु वे महापराक्रमी दैत्य युद्ध में ऐसे कुशल थे कि उन्होंने उन सब अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया और मुझे पीड़ित किया उनकी युद्ध की निपुणता और अस्त्र की कुशलता को देखकर मेरा हृदय भय से आविष्ट हो गया, परंतु मैंने सावधान होकर शिवजी को नमस्कार किया और यह कहकर कि प्राणियों का कल्याण हो उस महाअस्त्र का प्रयोग किया जो पाशुपत नाम से विख्यात है और उग्र शत्रुओं का नाश करनेवाला है उसका प्रयोग करते ही मैंने अपने समीप एक पुरुष देखा जिसके तीन शिर, नौ आंखें, तीन मुख, अग्नि के समान प्रज्व-लित बाल और छः महानागों का वस्त्र पहिरे हुए था ३९।४३ शिवजी के उस सनातन और घोर रौद्र अस्त्र को देखकर मैंने उसको गाण्डीव धनुष पर चढ़ा लिया और तीन नेत्र रखनेवाले शिवजी को नमस्कार करके दानवों को मारने की इच्छा से उसे छोड़ दिया ४४।४५ हे प्रजाधीश! उसके छोड़ते ही सहस्रों मृग, सिंह, व्याघ्र, रीछ, भैंसे, सर्प, बैल, शरभ, हाथी, वानर, ऋषभ, वाराह, मार्जार, शालाबृक, प्रेत, भुरुण्ड, गिद्ध, गरुड़, चमर, देवता, ऋषि, गन्धर्व पिशाच, यक्ष, असुर, गुह्यक, नैर्ऋत्य, गजमुख, मगर, उलूक, मीन और घुड़-मुहे अनेक अनेक प्रकार के रूप और अस्त्र धारण कियेहुए प्रकट हो गये ४६।५१ और यातुधाननामी असुर और और बहुत प्रकार के जीव गदा और मुद्गर आदि शस्त्र लिये हुए इतने उत्पन्न हो गये कि उनसे सब जगत् व्याप्त हो गया उनमें से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बहुतों के तीन शिर, चार डाढ़ें, चार मुख और चार चार भुजा थीं उन सबोंनें पृथ्वी को मांस, मेदा और हाड़ों से युक्त करदिया और सब दानवों को मारडाला ५२।५४ उस समय मैंने भी बहुत से दैत्यों को अग्नि, सूर्य और वज्ररूपी लोहे के बाणों से मारकर गिरा दिया उनको आकाश से निर्जीव हो हो कर गिरते हुये देखकर मैंने शिवजी को फिर नमस्कार किया और मातलि सारथी मेरे उस काम को देखकर जिसका होना देवताओं से भी कठिन था प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा ५५। ५६ कि आज तुमने जो काम किया है उसको देवता और असुर नहीं किन्तु इन्द्र भी नहीं कर सकता था ६० तुमने अपने पराक्रम और तप के बल से इस आकाशचारीपुर को जो देवताओं का अवध्य था नाश किया है ६१ इसके उपरान्त उन दानवों के मरने पर उस गिरे हुए नगर से दानवों की स्त्रियां रोती पुकारती बाहर निकलीं और अपने अपने बाप, भाई, पुत्र और पति का शोक करती हुई विलाप करने लगीं, कोई छाती पीटकर अचेत हो जाती और पृथ्वी पर गिर पड़ती थी किसीकी माला टूटकर खिसल पड़ती थी किसी के आभूषण गिर पड़ते थे किसी के बाल खुल जाते थे और कोई कोई सारसी पक्षी के सदृश हूक दे देकर रोती थीं ६२। ६४ और वह दानवों का नगर स्वामी के मारेजाने और शोक के कारण से शोभाहीन और तेज रहित हो गया और ऐसा दीखने लगा मानो सूखा हुआ वन और नागरहित सरोवर है इसके उपरान्त वह नगर आकाश में गन्धर्व नगर के समान अदृश्य हो गया ६५। ६६ तब मातलि मुझको रणभूमि से इन्द्रपुरी को ले गया वहां पहुँचकर मैं इन्द्र के पास गया और मातलि ने इन्द्र से मेरी प्रशंसा करके हिरण्य-पुर के गिराने और निवातकवचों के मारने और दानवी माया को दूर करने का सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया ६७। ७० उसको सुनकर सहस्राक्ष इन्द्र ने मरुद्गणोंसहित प्रसन्न होकर कहा कि भाई अच्छा किया अच्छा किया और फिर देवताओंसहित मुझे धैर्य देकर यह मधुरवाणी उच्चारण की ७१। ७२ कि वाह अर्जुन! तैंने यह काम देवता और असुरों को उल्लंघनकर किया है और हमारे शत्रुओं को मारकर हमको गुरुदक्षिणा दी है ७३ दृढ़ और ज्ञानी पुरुष को रणभूमि में इसी प्रकार से यन्त्र और अस्त्रों का प्रयोग करना उचित है ७४ अब तुझको युद्ध में कोई देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, असुर, गन्धर्व, पक्षी और पन्नग नहीं जीत सकता है ७५ तेरा भाई कुन्तीनन्दन, धर्मात्मा,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

युधिष्ठिर तेरी भुजाबल से जीती हुई पृथ्वी का भोग करेगा ॥ ७६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

एकसौ चौहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर से अपने इन्द्रपुरी से गन्धमादन पर्वत पर आने का वृत्तान्त कहना।

अर्जुन बोला हे युधिष्ठिर महाराज! इसके पीछे इन्द्र ने मुझ बाणों से घायल और विश्वासी को अपने पास बैठा लिया और मुझसे कहने लगा कि हे अर्जुन! जितने दिव्य अस्त्र हैं वे सब तुझको प्राप्त हो गये हैं, अब तुझको कोई मनुष्य भूतल में नहीं जीत सकता है १।२ हे राजन्! संग्राम में भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और शकुनि सब राजाओंसहित तेरी सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ३ यह कहकर इन्द्र ने मुझको शरीर की रक्षा के लिये यह कवच सुनहरी माला और यह देवदत्त नामी शंख जिसका शब्द बड़ा भारी है, दिया और अपने हाथ से यह किरीट मेरे शिर में बाँध दिया ४।५ और ये वस्त्र और आभरण भी दिये जो प्रकाशमान और बहुत मोल के थे ६ हे युधिष्ठिर महाराज! इस प्रकार से मैंने इन्द्रभवन में ५ वर्ष गन्धर्वों के बालकों के साथ सुखपूर्वक वास किया और जुआँ खेलने के दोष को स्मरण करता रहा, उपरान्त इन्द्र ने मुझसे कहा कि हे अर्जुन! अब तेरे जाने का समय आ पहुँचा है, तेरे भाई तेरी याद करते हैं, यह सुनकर मैं वहाँ से चला आया और इस गन्धमादन पर आकर भाइयोंसहित आपके दर्शन किये ७। १० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले हे अर्जुन! तैंने प्रारब्ध से सब अस्त्र पाये हैं और इन्द्र का आराधन और पार्वतीसहित शिवजी का दर्शन भी प्रारब्ध ही से किया है और प्रारब्ध ही से तैंने शिवजी को युद्ध में प्रसन्न किया प्रारब्ध ही से कुन्ती के पुत्रों की वृद्धि हुई और प्रारब्ध ही से तू यहां कुशलपूर्वक आ पहुँचा है ११।१३ अब मैं यह मानताहूँ कि मैंने सब पृथ्वीको विजय करलिया और धृतराष्ट्रके पुत्रों को भी अपने वशीभूत किया १४ परंतु अब मैं उन दिव्य अस्त्रों को देखना चाहता हूँ, जिनसे तैंने ऐसे पराक्रमी निवातकवच दैत्यों का वध किया १५ यह सुनकर अर्जुन बोला बहुत अच्छा कल प्रातःकाल आपको सब दिव्य अस्त्र दिखाऊँगा, वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर उस रात्रि को अर्जुन ने भाइयोंसहित उसी स्थान पर वास किया ॥ १६।१७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ पचहत्तरवाँ अध्याय।

अर्जुन का युधिष्ठिर को स्वर्ग से लायेहुए अस्त्रों को दिखलाना और नारदजी का निषेधकरना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! प्रातःकाल उठकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयोंसहित नित्यक्रिया की और उससे निवृत्त होकर मातृसुखकारी अर्जुन से कहा कि भाई! अब हमको वे अस्त्र दिखला जिनसे तैंने उन दानवों का वध किया था १। २ यह सुनकर अर्जुन ने पवित्र होकर दिव्य कवच धारण कर लिया और पर्वतरूपी रथ पर चढ़कर देवदत्त नामी शंख और गाण्डीवधनुष को हाथ में ले लिया और उन देवताओं के दिये हुए दिव्य अस्त्रों को क्रमपूर्वक दिखलाना प्रारम्भ किया उन अस्त्रों के प्रयोग करने पर पृथ्वी, नदियाँ और समुद्रसहित अर्जुन के दोनों पैरों से दबी हुई होने पर भी हिलने लगी पर्वत फटने लगे, वायु का चलना बन्द हो गया, सूर्य का प्रकाश जाता रहा और अग्नि प्रज्वलित न होने लगा ३। ६ ब्राह्मण वेद का पाठ भूल गये और पृथ्वी के सब प्राणी अस्त्रों से पीड़ित होकर बाहर निकल आये और हाथ जोड़कर काँपते हुए त्राहि त्राहि करने लगे इसके पीछे ब्रह्मऋषि, सिद्ध, महाऋषि, देवऋषि, देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पक्षी, सब आकाशचारी जीव, ब्रह्माजी, लोकपाल और भगवान् महादेवजी अपने सब गणोंसहित वहाँ आये और अर्जुन के सम्मुख खड़े हो गये १०। १५ उस समय पाण्डवों के चारों ओर दिव्य पवन चलने लगी और उससे चित्र विचित्र फूलों की उन पर वर्षा हुई १६ और देवताओं की आज्ञा से गन्धर्व अनेक प्रकार की रागिनी गाने लगे और अप्सरा टोली बाँध बाँधकर नाचने लगीं १७ इसके पीछे देवताओं से प्रेरित होकर नारदजी वहाँ आये और अर्जुन से कहने लगे १८ कि भाई भारत, अर्जुन! इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग मत करो विना लक्ष्य अर्थात् निशाने के इनका प्रयोग होना उचित नहीं है १९ क्योंकि हे कुरुनन्दन! विना लक्ष्य मिलने और पीड़ित होने के इनके प्रयोग करने में महादोष होता है २० शास्त्र के अनुसार इन अस्त्रों को रक्षित रखने से ये अस्त्र निस्संदेह बलवान् हो जाते हैं और अरक्षित रहने से तीनों लोकों को नाश कर डालते हैं इस से फिर ऐसा मत करना २१। २२ और हे युधिष्ठिर! जो तुमको इन अस्त्रों के देखने की इच्छा है तो जब युद्ध जुड़े और अर्जुन शत्रुओं को नाश करनेके लिये इन अस्त्रों का प्रयोगकरे तब तुम भी इनको देख लेना २३ वैशंपायनजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे सब देवता और अन्य अन्य प्राणी जो वहाँ आये थे अर्जुन को अस्त्र का प्रयोग करने से निषेध करके अपने अपने स्थानों को चले गये और पाण्डवों ने द्रौपदीसहित बड़ी प्रसन्नता से वहीं वास किया ॥ २४ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

एकसौ छिहत्तरवाँ अध्याय।

भीमसेन आदि चारों भाइयों का, युधिष्ठिर से दुर्योधन के समीप के वन को चलने के लिये कहना और युधिष्ठिर का सबसे विदा होकर ब्राह्मणोंसहित वहाँ से चलना।

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी ! जब शूरवीर अर्जुन अस्त्र सीखकर अपने भाइयों से आन मिला, तब पाण्डवों ने क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! अर्जुन के स्वर्ग से आने पर वे वीर पाण्डव उसी रमणीक पर्वत पर कुबेरजी के मनोहर वन और उपवनों में विहार करने लगे और अर्जुन वहां के अत्यन्त सुन्दर भवन और नानाप्रकार के वृक्षों से सुशोभित क्रीड़ा करने के स्थानों को देखता हुआ निरन्तर भ्रमण करने लगा २।३ कुबेरजी की कृपा से उनको अच्छे स्थान और उत्तम भक्ष्य भोज्य मिलते रहे उनको पाकर उन राजपुत्रों ने फिर मनुष्यों के ऐश्वर्य के पाने की इच्छा नहीं की और वह काल उनका बहुत आनन्द से व्यतीत हुआ ४ अर्जुन के आने के पीछे पाण्डव वहां चार वर्ष रहे और वे वर्ष उनको पिछले दिनों की एक रात्रि के समान जान पड़े इसप्रकार छः वर्ष पहिले और चार वर्ष ये मिलकर जब पाण्डवों के वनवास के दश वर्ष बीत गये ५ तब एक दिन भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने एकान्त में युधिष्ठिर के पास बैठकर यह हितकारी और प्यारी बात कही ६ कि हे युधिष्ठिर महाराज ! हम सब आपका प्रिय और आपकी प्रतिज्ञा को सत्य करना चाहते हैं इसी कारण से हमलोग वन को छोड़कर दुर्योधन को अनुचरोंसहित मारने को नहीं जाते हैं ७ हमारे वनवास का अब ग्यारहवाँ वर्ष है सो यद्यपि हम सब सुखभोगी होकर दुःख पा रहे हैं परंतु अब हमको उचित है कि हम सब मान छोड़कर आपकी आज्ञा से दुर्योधन के निकट किसी वन में चल बसें क्योंकि निकट रहने से हमारी ओर से उसको शङ्का न रहेगी जब कुछ दिन में वह भूल जायगा तब हम सब कपट वेष से कहीं दूर चले चलेंगे और वहां एक वर्ष गुप्त रह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कर फिर प्रकट हो जायँगे और दुर्योधन को अनुचरोंसहित नाश करके अपने वैर को फूल फलोंसहित उसके अर्पण करेंगे और पृथ्वी पर सुखपूर्वक वास करेंगे वह देश निस्सन्देह स्वर्ग के तुल्य है वहां रहने से हमारे शोक का दूर होना भी संभव है ८। ११ परंतु ऐसा करने से आपकी शुद्ध कीर्ति लोक में नष्ट हो जायगी और कुरुओं के राज्य को पाकर आप यज्ञादिक क्रिया कर सकेंगे १२ हे नरनायक! जो भोग आप कुबेर देवता से पा रहे हैं वे आपको सदैव ही मिलेंगे इससे आप अब शत्रुओं को मारने और पापियों को दण्ड देने की बुद्धि धारण कीजिये १२ हे धर्मराज! आपका तेज ऐसा उग्र है कि साक्षात् इन्द्र भी उसको नहीं सह सकता है और भगवान् गरुड़ध्वज अर्थात् श्रीकृष्णजी और सात्यकी दोनों आपके अर्थ को सिद्ध करने में प्रवृत्त हैं और वे दोनों ऐसे प्रबल हैं कि देवताओं से भी सामना करने पर उनको पीड़ा नहीं पहुँच सकती है इसी प्रकार से भीमसेन और यह अर्जुन भी दोनों ऐसे बलवान् हैं कि अपना प्रतियोधा नहीं रखते हैं १४। १५ हे नरदेववर्य! जिस प्रकार से श्रीकृष्णजी यादवोंसहित आपका हित किया चाहते हैं उसी प्रकार से हम चारों अर्थात् भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी आपका अर्थ सिद्ध किया चाहते हैं और शत्रुओं को नाश करके आपके धन और ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहते हैं १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर युधिष्ठिर ने उठकर कुबेरजी के भवन की प्रदक्षिणा की और वहां के स्थान, नदी, सरोवर और राक्षसों से मिलकर अपने जाने के मार्ग को देखकर हिमालय पर्वत को देखा और उससे प्रार्थना की कि हे गिरिराज! मेरी बुद्धि आपकी कृपा से ऐसी होवे कि मैं शत्रुओं को मारकर और राज्य के भोगों को भोगकर फिर यहां आऊं और जितात्मा होकर तपस्या करने के लिये आपके दर्शन करूं यह कहकर युधिष्ठिर भाइयों और ब्राह्मणोंसहित उसी मार्ग से चल दिया जिससे आया था १७। २० मार्ग में जहां कहीं झरने और दुर्गस्थान पड़ते थे वहां घटोत्कच सबको अपने ऊपर सवार कराकर ले जाता था और लोमश ऋषि प्रसन्न होकर पाण्डवों को पुत्र की भांति उपदेश करके देवताओं के पुण्यस्थान को चले गये और वे पाण्डव आर्ष्टिषेण ऋषि से शिक्षा पाकर रमणीक वन उपवन और सरोवरों को देखते हुये चल दिये॥ २१। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७६॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ सतहत्तरवाँ अध्याय।

पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत से वृषपर्वा के स्थान को आना वहां से नारायणआश्रम को जाना और वहां से अनेक देशों में होते हुए सरस्वती के तट पर आना और वहां वास करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस गन्धमादन पर्वत के छोड़ने पर जो झरनाओं से सुशोभित दिग्गज, किन्नर और पक्षियों से सेवित था भरतवंशी पाण्डवों का चित्त प्रसन्न नहीं रहा १ परंतु जब उन्होंने आगे चलकर कुबेरजी के प्यारे पर्वत कैलास को देखा जिसका प्रकाश ऐसा हो रहा था मानों जल से भरी हुई मेघ की घटा है तब उनको बड़ा हर्ष हुआ २ और वे वीर धनुर्धारी, खड्गधारी नरोत्तम होकर पर्वतों के ऊंचे ऊंचे निरोध अर्थात् रोक और सिंहों के रहने की बनी और नदियों पर उतरने के पुल और जहां तहां ऊंचे नीचे स्थान मृग, पक्षी और हाथियों से सेवित वनों को देखते हुए आगे चले ३। ४ जहां कहीं रमणीक वन अथवा निर्मल नदी सुन्दर सरोवर या उत्तम छोटी बड़ी पहाड़ की गुफा आ जाती थी वहीं रात्रि में अथवा दिन में वे पाण्डव अपना डेरा कर देते थे ५ इस प्रकार से अनेक दुर्गस्थानों में बसते हुए कैलास को नांघकर पाण्डव वृषपर्वा ऋषि के आश्रम में आये ६ वहां पहुँचकर वे राजऋषि वृषपर्वा से मिले और उनसे पूजित होकर मोहरहित होते हुए उन्होंने अपना सब पूर्व वृत्तान्त विस्तार से वर्णन किया इसके पीछे उसी के देव, महर्षि सेवित पुण्याश्रम के पास एक रात्रि रहकर वे वीर विशाल बदरीआश्रम को चल दिये और वहां नारायणआश्रम में पहुँचकर उस कुबेरजी की प्यारी नलिनी पर वास किया जो देवता और सिद्धों से सेवित है ७। ८ और उसको अच्छे प्रकार से देखकर शोकरहित पाण्डव जो कि सर्व नरों में मुख्य थे वे वहां इस प्रकार से रमने लगे जैसे ब्रह्मऋषि नन्दनवन में पहुँचकर रमण करते हैं १० इस प्रकार से उन नरवीरों ने उस विशाल बदरीआश्रम में एक महीना सुख से वास किया उपरान्त वहां से किरातों के राजा सुबाहु के देश को चल दिये और चीन, तुषार, दरद, और कुलिन्द आदि अनेक देशों को देखते और हिमालय के दुर्गस्थानों को नांघते हुए उस राजा के नगर के निकट जा पहुँचे ११। १२ वह राजा सुबाहु उनको आया हुआ सुनकर अपने पुत्र और पौत्रों सहित उनके लेने के लिये बड़ी प्रसन्नता से आगे गया और पाण्डवों ने भी उस राजा से मिलकर उसे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नमस्कार किया १३ इसके पीछे पाण्डव विशोक आदि सारथी महेन्द्रसेन आदि सेवक रसोई बनानेवाले और सामग्री ले चलनेवाले अनुचरों से मिले और वहां एक रात्रि रहकर वहां से घटोत्कच को अनुचरोंसहित बिदा करके सब समाज और रथोंसहित यामुन पर्वत पर चले गये १४। १५ वहां लाल और पाण्डुरंग के शिखर पर विशाखयूप नाम स्थान में वास किया १६ फिर वहां एक वर्ष तक रहकर वहां के चैत्ररथ के तुल्य उस सुन्दर वन में जो अनेक प्रकार के सुन्दर मृग और पक्षियों से सुशोभित था पाण्डव अहेर खेलते और विहार करते रहे १७ उसी वन में भीमसेन को एक बड़े अजगर ने जो बली भूखा और मृत्यु के समान था पकड़ लिया था और युधिष्ठिर ने जिसकी आत्मा उस समय विषाद और मोह से पीड़ित हो गई थी उसकी रक्षा की थी और उसको उस सर्प से छुटाया था १८। १९ इस प्रकार से विहार करते हुए उनको बारहवां वर्ष लग गया और वे उस नन्दनवन के सदृश वन से चलकर एक जलरहित पहाड़ी देश में पहुँचे और वहां से वे सब धनुर्वेद के जाननेवाले सरस्वती नदी के तट पर द्वैतवन नाम सरोवर पर जा बसे २०। २१ वहां उनको आया हुआ जानकर वहां के रहनेवाले ऋषि जो तपस्वी दम, आचार, समाधियुक्त कुशासन और कमण्डलु धारण करनेवाले और पत्थर पर कूटकर भोजन करनेवाले थे उनसे मिलने को आये २२ वह सरस्वती का तट प्लक्ष, अक्ष, रौहीतक, वेतस, बदरी, खैर, शिरीष, बेल, इंगुद, पीलू, छोंकर और करील आदि वृक्षों से परम सुशोभित हो रहा था २३ और यक्ष, गन्धर्व, महाऋषि और देवताओं का प्रिय स्थान था पाण्डव उसके तट के वन में घूम घूमकर विहार करने लगे ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

एकसौ अठहत्तरवाँ अध्याय।

भीमसेन का वन में क्रीड़ा करने को जाना वहां उसको एक अजगर का मिलना और अजगर का भीमसेन की बांह पकड़ लेना उससे भीमसेन का मोहित होना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी! भीमसेन का पराक्रम भयानक और दश सहस्र हाथियों के समान था और उस बल का उसको ऐसा अभिमान था कि उसने पुलस्त्यनन्दन कुबेरजी को युद्ध के लिये बुलाया और कुबेरजी की नलिनी में कमलों को तोड़कर उसके

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रक्षक यक्ष और राक्षसों को मारकर गिरा दिया उसी से भीमसेन के विषय में आपने वर्णन किया है कि उसको एक सर्प से बड़ा भय हुआ और वह बड़ी विपत्ति में ग्रसित हो गया यह सुनकर मुझको बड़ा आश्चर्य होता है आप इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक सुनाइये मैं इसको पूरा पूरा सुनना चाहता हूं १ । ३ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब पाण्डव वृषपर्वा राजर्षि के आश्रम से चलकर उस अद्भुत वन में जा बसे तब एक दिन अपनी इच्छा से भीमसेन धनुष् और खड्ग बांधे हुए उस रमणीक वन की शोभा देखने को जिसमें देवता और गन्धर्व रहते थे गया ४ । ५ और हिमालय पर्वत के सुन्दर देशों को जो देवता, ऋषि, सिद्ध और अप्सराओं से सेवित चकोर, उपचक्र, जीवजीवक और कोकिला आदि पक्षी व मृगों से शब्दित और बहुत से फूले फले छायावान् मन नेत्रों को आनन्द देनेवाले वृक्षों से शोभित बरफ के सदृश शीतल वैडूर्यमणि की समान निर्मल जल रखनेवाली हंस और कारण्डव आदि जल के पक्षियों से युक्त पहाड़ी नदियों से भूषित थे देखता हुआ कुछ दूर निकल गया ६ । ६ और देवदारु, चन्दन के वृक्षों से युक्त तुङ्ग और कालीयक वृक्षों के वन में पहुँचा वह वन देवदारु के वृक्षों से मेघ की घटा के सदृश दीखता था वहां भीमसेन पर्वत के समान निर्जल स्थानों में बाणों से मृगों को मारता हुआ सिंह, शार्दूल, मृग, वाराह और भैंसाओं का अहेर खेलता हुआ घूमने लगा वह महाबली कभी वृक्षों को उखाड़कर इधर उधर फेंक देता था कभी उनको अपने वेग से तोड़ डालता था कभी वन के प्रदेश और पर्वत के शिखरों पर जाकर भयानक शब्द करता था कभी दौड़ने लगता था कभी सिंहनाद करता था कभी ताल बजाता था कभी खम्भ ठोंकता था इस प्रकार से भीमसेन के क्रीड़ा करने पर वह वन उसके शब्द से गूंजने लगा और बड़े बड़े गजेन्द्र और मृगेन्द्र उस शब्द से भयभीत होकर अपनी अपनी गुफा छोड़कर भागने लगे १० । १८ इसके पीछे भीमसेन कहीं दौड़ता कहीं ठहरता कहीं बैठता कहीं वन के जीवों को मारता और कहीं भयानक अद्भुत शब्द करता हुआ वनचारी मृग के समान इधर उधर घूमता हुआ आगे को बढ़ा १६ । २१ उसके शब्द से पहाड़ की गुफाओं में सोते हुए सर्प भयभीत हो गये और वह सबको नांघता हुआ धीरे धीरे आगे को चला थोड़ी दूर जाकर उसने एक बड़ा भारी सर्प देखा जिसके देखने से रोम खड़े हो जाते थे वह सर्प पर्वत के एक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ऐसे स्थान पर जहां जाना कठिन था अपने बड़े लम्बे चौंड़े पर्वताकार शरीर से पर्वत की कन्दरा को ढके बैठा हुआ था २२। २४ उसका वर्ण हलदी के समान था और शरीर पर चित्र विचित्र चिह्न बने हुए थे दांत उसके चार थे और आंखें लाल लाल अग्नि के समान दीप्त थीं वह वारंवार श्वास लेता हुआ जीभ से होठों को चाटता हुआ बड़ा भयानक काल और यमराज के सदृश दीखता था वह अजगर सर्प क्रोधित होकर भीमसेन के पास चला आया और उसने अकस्मात् भीमसेन की दोनों भुजा मुख से पकड़कर दाब लीं उसके दाबते ही भीमसेन मोहित हो गया और यद्यपि उसका दश सहस्र हाथी का बल दुस्सह था परंतु वरदान के कारण से वह बल कुछ काम न दे सका निदान वह मोहित होकर कुछ विशेष चेष्टा न कर सका और अनेक उपाय करने पर भी अपने को उस सर्प से न छुटा सका और न उस सर्प को किसी प्रकार की पीड़ा दे सका ॥ २५। ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

एकसौ उन्नासीवाँ अध्याय।

भीमसेन का सर्प से पूछना कि तू कौन है और विलाप करना और युधिष्ठिर का अनेक उत्पात देखकर भीमसेन को ढूंढ़ने जाना और उसको सर्प से पकड़ा हुआ देखना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन उस सर्प के वशीभूत होकर उसके बड़े अद्भुत पराक्रम को देखकर चिन्ता करने लगा और उस महासर्प से बोला कि हे भुजङ्गश्रेष्ठ! तुम कौन हो और मुझको पकड़कर क्या किया चाहते हो १। २ मैं भीमसेन नामी युधिष्ठिर का छोटा भाई पाण्डव हूं और दश सहस्र हाथियों का पराक्रम रखता हूं तुमने मुझको अपने वश में कैसे कर लिया है ३ सैकड़ों सिंह, केशरी, व्याघ्र, भैंसा, हाथी और वाराह मेरे हाथों से मारे गये हैं और बड़े बड़े पराक्रमी राक्षस, पिशाच और सर्प भी मेरी भुजाओं के वेग को धारण नहीं कर सके परंतु तुमने मुझको ऐसा अपने वश में कर लिया है कि उद्योग से भी मैं तुमसे अपने को नहीं छुटा सकता हूं इससे मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारे पास ऐसी क्या विद्या है या क्या वरदान है जिससे तुममें इतना पराक्रम है ४। ६ मैं जानता हूं कि मनुष्य का सब पराक्रम असत्य है जो तुमने मेरा दश सहस्र हाथी का बल नष्ट कर दिया ७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस सर्प ने अक्लिष्टकारी वीर भीमसेन की बात सुनकर अपने बड़े

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शरीर से उसको चारों ओर से लपेट लिया और उसकी मोटी भुजाओं को छोड़कर उससे कहने लगा ८। ९ कि हे महाबाहो ! आज बहुत दिनों के पीछे मुझ भूंखे को प्रारब्ध और देवताओं की कृपा से भोजन मिला है भाई ! सब देहधारियों को अपने अपने प्राण प्यारे हैं मुझको जिस प्रकार से यह सर्पदेह मिली है वह सब मैं तुमसे कहता हूं सुनो १० । ११ हे शत्रुदमन ! यह अवस्था मेरी महर्षियों के शाप से हुई है इससे मैं अब उस शाप का अन्त करने की इच्छा से सब वृत्तान्त तुमसे कहता हूं १२ मैं आपके वंश में उत्पन्न नहुष नामी राजऋषि तुम्हारे पुरखाओं का पुरखा हूं तुमने भी मेरा नाम सुना होगा मैंने ब्राह्मणों का अपमान किया था उसके कारण से मुझे अगस्त्यजी ने शाप दिया और उस शाप से मेरी यह गति हुई तुम मेरे इस प्रारब्ध को देखो और इस होनहार को भी ध्यान करो कि यद्यपि तुम मारने के योग्य नहीं हो क्योंकि हमारे वंश में उत्पन्न होने के कारण से तुम हमारे प्रियदर्शन पुत्र हो परंतु मैं तुम को मारकर भक्षण करना चाहता हूं १३ । १५ हे नरोत्तम ! जब छठवां काल अर्थात् मेरे भोजन का समय आता है तब हाथी, भैंसा या कोई जीव हो मेरे वश में आकर मुक्त नहीं हो सकता है १६ सो हे भीम ! तुम केवल यही मत समझो कि मुझको एक तिर्यग्योनि के सर्प ने पकड़ा है किन्तु मुझे वरदान भी है १७ जिस समय मैं इन्द्रासन से नीचे को गिराया गया था उस समय मैंने भगवान् अगस्त्यजी से प्रार्थना की थी कि महाराज ! इस शाप के अन्त होने का समय नियत कीजिए १८ तब उन तेजस्वी कृपालु ऋषि ने मुझसे कहा था कि हे राजन् ! थोड़े काल के व्यतीत होने पर तुम शाप से छुट जाओगे १९ यह सुनकर मैं पृथ्वी पर आन पड़ा और इस अवस्था में प्राप्त हो गया परंतु मेरी स्मृति अर्थात् याद नहीं गई मुझको सब पहिला वृत्तान्त ज्यों का त्यों याद बना रहा २० अब मुझे याद है कि अगस्त्यजी ने यह भी कहा था कि जो आत्मा और अनात्मा का ज्ञान रखनेवाला पुरुष तेरे कहे हुए प्रश्नों का उत्तर देगा वही तुझको इस शाप से छुटावेगा २१ और यह भी वरदान दिया था कि जिस प्राणी को तू पकड़ लेगा उसका बल शीघ्र नष्ट हो जायगा चाहे वह कैसा ही बलवान् हो २२ यह कहकर ब्राह्मण अन्तर्द्धान हो गये और मैं महापापी इस सर्प की योनि से नरक में पड़ा हुआ शाप के अन्त होने के काल की बाट देख रहा हूं २३। २४ यह सुनकर महाभुजशाली भीमसेन बोला

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कि हे महासर्प! मैं न अपनी निन्दा करता हूं न तुम पर क्रोध करता हूं २५ क्योंकि मनुष्य को दुःख और सुख के मिलने अथवा नष्ट होने से सामर्थ्यहीन अथवा सामर्थ्यवान् होकर ग्लानि करना उचित नहीं है प्रारब्ध को उपाय से कोई नहीं मेट सकता है मनुष्य का पुरुषार्थ निष्फल है मेरी समझ में तो जो कुछ है सो दैव अर्थात् प्रारब्ध है २६। २७ देखो, यह प्रारब्ध ही की मन्दता का कारण है जो मेरी भुजाओं का बल नष्ट हो गया और विना कारण मेरी यह गति हुई २८ मुझको अपने मरने का कुछ शोच नहीं है परंतु राज्यहीन और वन में छोड़े हुए भाइयों का शोच मुझे मारे डालता है २९ वे विह्वल होकर इस दुर्गम और यक्ष, राक्षसों से व्याप्त हिमालय पर्वत पर मुझको ढूंढ़ते फिरेंगे ३० और मुझे नष्ट हुआ सुनकर राज्य के मिलने के प्रयत्न को छोड़ देंगे क्योंकि मैं ही उन धर्मात्मा और शीलवानों को राज्य के मिलने का यत्न करने की पीड़ा दिया करता था ३१ अथवा उनको महात्मा अर्जुन के कारण से दुःख न होवे क्योंकि वह सब अस्त्रों का ज्ञाता और देवता, गन्धर्व और राक्षसों से अनाधृष्य है और ऐसा महाबली है कि इन्द्र को भी अकेला ही इन्द्रासन से गिरा सकता है उसको दुर्योधन से ज्वारी, द्वेषी, घमण्डी और मोह से भरे हुए मनुष्य को जीतना कितनी बड़ी बात है ३२। ३४ परंतु मुझको बड़ा शोच अपनी दुःखी माता का है जो अपने पुत्रों के महत्त्व को सदैव दूसरों से अधिक होना चाहा करती है ३५ सो हे सर्प! मेरे मारे जाने से मेरी उस अनाथा माता के सब मनोरथ निष्फल हो जायँगे ३६ और नकुल सहदेव जो प्रतिष्ठावान् गुरुभक्त और मेरी भुजाओं के बल से रक्षित रहते हैं मेरे नाश होने से उत्साहहीन और निर्जीव हो जायँगे इस प्रकार से भीमसेन बहुत-सा विलाप करता रहा परंतु उस सर्प से दबा हुआ होने के कारण हिलझुल भी न सका ३७। ३९ इसी अवसर में युधिष्ठिर अपने निवासस्थान के निकट बहुत से खोटे और घोर उत्पातों को देखकर व्याकुल हो गया दक्षिण दिशा में आश्रम के पास डरी हुई गीदड़ी भयानक और अकल्याणसूचक शब्द से रोने लगी ४०। ४१ और वर्तिका नाम पक्षी जिसके एक पक्ष एक नेत्र और एक ही टांग थी सूर्य के सम्मुख बैठकर रुधिर वमन करने लगी ४२ वायु रूखी तीक्ष्ण और कङ्कड़ लिये हुए चलने लगी और सब मृग पक्षी दाहिनी ओर बोलने लगे ४३ पीठ की ओर से काले वर्ण का काक चल चल ऐसा शब्द

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सुनाने लगा और युधिष्ठिर की दाहिनी भुजा वारंवार फड़कने लगी ४४ हृदय और बायां चरण घूमने लगा और बायां नेत्र भी फड़कने लगा ४५ इन सब बातों को देखकर युधिष्ठिर ने अनुमान किया कि कोई भय प्राप्त होनेवाला है यह अनुमान करके उसने द्रौपदी से पूछा कि भीमसेन कहां है ४६ द्रौपदी बोली कि महाराज! वह बहुत देर से कहीं को गया हुआ है यह सुनकर युधिष्ठिर धौम्य पुरोहित को साथ लेकर चल दिये और अर्जुन को द्रौपदी की और नकुल और सहदेव को ब्राह्मणों की रक्षा के लिये छोड़ गये ४७। ४८ आगे जाकर युधिष्ठिर भीमसेन के जाने के मार्ग को अनेक चिह्नों से पहिंचान-कर उस महावन में भीमसेन को पूर्व दिशा में ढूंढ़ना प्रारम्भ किया और वहां उसको पृथ्वी पर पड़े हुए बड़े गजेन्द्र और भीमसेन के पैरों के चिह्न मिले ४९।५० उनको देखता हुआ वह आगे को बढ़ा और वहां उसे सहस्रों मृग और सैकड़ों मृगेन्द्र मरे हुए पड़े मिले ५१ उनको और बहुत से टूटे हुए वृक्षों को जो भीमसेन की जंघा से गिर गये थे देखकर युधिष्ठिर बढ़ता हुआ उस वन में चला गया और एक गुफा के निकट जा पहुँचा जहां बड़ी रूखी वायु चल रही थी और वृक्षों में पत्ते न थे वहां उसने एक ऐसे निर्जल और ऊसर स्थान पर जो बहुत नीचा-ऊंचा और अनेक पत्थर वा कटीले छोटे पेड़ों से भरा हुआ था भीमसेन को सर्प से लपेटा हुआ और पृथ्वी पर निश्चेष्ट पड़ा हुआ देखा॥ ५२। ५४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७९॥

एकसौ अस्सीवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर और उस सर्प का जिसने भीमसेन को ग्रस लिया था आपस में प्रश्नोत्तर होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर अपने प्यारे भाई को सर्प से लपटा हुआ देखकर कहने लगा कि हे भीमसेन! तुम इस विपत्ति में कैसे आ पड़े और यह पर्वत के समान सर्प कौन है १। २ यह सुनकर भीमसेन ने आदि से लेकर सब वृत्तान्त अपने भाई युधिष्ठिर से वर्णन किया और कहा कि यह नहुष नामी राजऋषि है मुझको इसने भोजन करने के लिये ग्रस लिया है ३। ४ यह सुनकर युधिष्ठिर ने उस सर्प से कहा कि हे आयुष्मन्! कृपा करके तुम मेरे इस अमित पराक्रमी भाई को छोड़ दो मैं तुम्हारी क्षुधा दूर करने के लिये दूसरा पदार्थ भोजन के लिये दूँगा ५ यह सुनकर सर्प बोला

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कि यह राजपुत्र मुझको आहाररूप ही मिला है और मेरे मुख में चला गया है अब तुम यहां से चले जाओ नहीं तो कल तुमको भी भोजन करूंगा ६ हे तात ! मेरा यह व्रत है कि जो कोई मेरे इस देश में आता है वह मेरा आहार होता है तुम भी यहां आये हो इससे तुम भी मेरे आहार होगे यह तेरा भाई मुझको बहुत दिनों के पीछे भोजन करने को मिला है मैं इसको छोड़ नहीं सकता हूँ और न दूसरा आहार इसके बदले में चाहता हूँ ७। ८ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे सर्प ! मैं युधिष्ठिर हूँ तुमसे पूछता हूँ कि तुम कौन हो देवता हो या दैत्य हो या उरग हो मुझसे सत्य सत्य कहो तुमने भीमसेन को किसलिये ग्रसा है ९ हे सर्प ! तुमको क्या लाकर दिया जावे या क्या तुमको बताया जावे अथवा कौन सा भोजन तुम्हारी भेंट किया जावे जिसको ग्रहण करके तुम प्रसन्न हो और इसको छोड़ दो १० यह सुनकर वह सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर मैं नहुष नामी राजा तुम्हारा पुरखा हूँ और चन्द्रवंश में चन्द्रमा से पांचवें राजा आयु का पुत्र हूँ ११ मैंने अपने यज्ञ, तप, वेदपाठ, दम और पराक्रम से तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था १२ और उस ऐश्वर्य को पाकर मैं ऐसा मदान्ध और घमण्डी हो गया था कि मैंने अपनी पालकी सहस्र ऋषियों से उठवाई उस ब्राह्मणों के अपमान से अगस्त्यजी ने मुझे शाप दिया और उस शाप से मैं इस गति को पहुँचा १३।१४ परन्तु हे पाण्डव ! महात्मा अगस्त्यजी की कृपा से अभी तक मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि नष्ट नहीं हुई है १५ यह तुम्हारा भाई मुझको छठे पहर में भोजन के निमित्त मिला है मैं इसको छोड़ नहीं सकता हूँ और न इसके बदले में दूसरा भोजन चाहता हूँ १६ परंतु जो तुम मेरे पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर यथावत् दे दोगे तो अलबत्ता तुम्हारे भाई भीमसेन को छोड़ दूंगा १७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बहुत अच्छा, हे सर्प ! जो तुम्हारी इच्छा हो वह प्रश्न हमसे पूछो हम तुमको उसका उत्तर देंगे १८ तुम उन सब बातों को जानते हो जो ब्राह्मण को जानना उचित है तुम प्रश्न करो हम उसको सुनकर उसका उत्तर देंगे १९ यह सुनकर सर्प बोला बहुत अच्छा, हे राजन् ! बताओ संसार में ब्राह्मण किसको कहना चाहिये और वह पदार्थ क्या है? जिसका जानना अवश्य उचित है तुम हमको बातों से चतुर दिखाई देते हो २० युधिष्ठिर बोले कि हे नागेन्द्र ! स्मृति का यह वाक्य है कि ब्राह्मण वह है जो सत्य-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वादी, दानी, क्षमावान्, शीलस्वभाव, हिंसा न करनेवाला, तपस्वी और कृपायुक्त हो २१ हे सर्प ! जानने के योग्य पदार्थ केवल ब्रह्म है जो अचिन्त्य और सुख दुःख से रहित है जिसको पाकर मनुष्य को कर्मकृत भोग नहीं भोगने पड़ते हैं २२ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! संसार में ब्राह्मण आदि चार वर्ण हैं उन चारों का सत्य और वेद, प्रमाण और हितकारी है, परंतु जो सत्य आदि उक्त गुण शूद्र में होयँ तो क्या वह शूद्र भी ब्राह्मण के समान हो सकता है और जो तुमने कहा कि जानने के योग्य पदार्थ ब्रह्म है जो सुख और दुःख से रहित है तो यह बताओ कि वह पद कौन है जो सुख और दुःख से हीन है मुझको ऐसा कोई पद दिखाई नहीं देता है २३ । २४ युधिष्ठिर बोले कि हां, जो ब्राह्मण के लक्षण शूद्र में होयँ और शूद्र के ब्राह्मण में होयँ तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है किंतु शूद्रही है और वह शूद्रभी शूद्र नहीं है किंतु ब्राह्मण ही है २५।२६ और जो तुम कहते हो कि कोई पदार्थ जानने के योग्य नहीं है और न कोई पद ऐसा है जो सुख और दुःख से रहित है सो सब सत्य है निस्संदेह कोई पद सुख और दुःख से इस प्रकार खाली नहीं है जैसे शीत में उष्ण और उष्ण में शीत का अभाव होता है परंतु सुख और दुःख कर्म से उत्पन्न होते हैं और जहां कर्म का त्याग है वहां सुख और दुःख से रहित ज्ञानगम्य ब्रह्मरूपी निर्विकारपद है २७।२८ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! तुम कहते हो कि ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मणों के धर्मपर चले तो जब तक अपना अपना कर्म न करे तबतक जाति का होना वृथा है ३० युधिष्ठिर बोला—हे सर्प ! इस लोक में वर्णों की आपस में ऐसी मिलावट है कि जाति की परीक्षा होना कठिन है सदा से सब मनुष्य सब वर्णों की स्त्रियों से भोग करते हैं और उनके संतान उत्पन्न होती हैं और सबकी वाणी अर्थात् बोली और सबका मैथुन और जन्म-मरण एक ही समान है इससे तत्त्व के जाननेवाले महात्माओं ने आचार को ही प्रधान माना है सब मनुष्यों का जातकर्म करना नाल काटने से पहिले करना कहा है जिसमें माता सावित्री-रूप और पिता आचार्यरूप वर्णन किये हैं इससे जबतक मनुष्य का संस्कार वेद के अनुसार नहीं किया जाता है तबतक वह शूद्र के समान रहता है जाति में संशय होने के कारण से स्वायम्भुव मनुजी ने भी यह कहा है ३१ । ३५ कि जो वेद के अनुसार संस्कार न किया जावे तो वह मनुष्य और वर्ण का अधिकारी नहीं हो सकता है अर्थात् शूद्र ही रहता है सो हे सर्प ! वर्णों की मिलावट

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बड़ी बलवान् है विना संस्कार और आचार के उनका जानना कठिन है इसी कारण मैंने पहिले आचार से ही ब्राह्मण का होना कहा था ३६। ३७ यह सुनकर सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! जो पदार्थ हमने जानने के योग्य तुमसे पूछा था वह तुमने हमसे यथावत् वर्णन किया अब हम तुम्हारे भाई भीमसेन को क्योंकर भक्षण कर सकते हैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकसौ इक्यासीवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का सर्प से अनेक प्रश्न पूछना, सर्प का दिव्य देह धारण करके स्वर्ग को चला जाना और युधिष्ठिर भीम और धौम्य सहित अपने आश्रम को लौट आना।

युधिष्ठिर बोले-हे सर्प ! तुम वेद और वेद के अङ्गों के ज्ञाता हो यह बताओ कि मनुष्य को उत्तम गति किस कर्म के करने से मिलती है १ सर्प बोला कि मेरी समझ से मनुष्य को, पात्र को दान देने, मीठा बोलने, सत्य कहने और अहिंसा में प्रीति रखने से स्वर्गवास मिलता है २ युधिष्ठिर बोले अच्छा अब यह बताओ कि दान देना और सत्य बोलना इन दोनों में कौन सा धर्म बड़ा है और हिंसा न करना और मीठी बोली बोलना इनमें से कौन न्यून और कौन अधिक है ३ सर्प बोला कि हे राजेन्द्र ! दान, सत्य, ज्ञान, अहिंसा और मीठा बोलना इन पांचों की बड़ाई छुटाई कार्य की बड़ाई, छुटाई पर स्थित है कहीं दान से सत्य बड़ा गिना जाता है और कहीं सत्य से दान विशेष माना जाता है ४। ५ इसी प्रकार से अहिंसा और प्रिय बोलना भी परस्पर कार्य के अनुसार एक दूसरे से बड़े छोटे समझे जाते हैं ६ निदान इनकी बड़ाई छुटाई कार्य पर है अब जो कुछ और तुमको पूछना है वह भी पूछो हम उत्तर देंगे ७ तब युधिष्ठिर बोला कि हे सर्प ! शरीर के छुटने पर मनुष्य को किस कर्म के फल से स्वर्ग मिलता है ८। ९ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर ! जीव को कर्म के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम, तीन प्रकार की गति मिलती है और वे तीनों गति ये हैं स्वर्गवास १ मनुष्ययोनि में जन्म २ और तिर्यग्योनि में जन्म ३ सो दान आदि शुभकर्म और हिंसा न करने से मनुष्य इस लोक को छोड़ स्वर्ग को जाता है १० और इनके विपरीत कर्म करने से मनुष्ययोनि मिलती है परंतु तिर्यग्योनि में जन्म होनेका कारण कुछ विशेष है वह यह है कि जो कोई काम, क्रोध, हिंसा, लोभ और मनुष्यभाव से भ्रष्टकर्म करता है उसको तिर्यग्योनि में जन्म लेना पड़ता है ११। १२ तिर्य-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ग्योनि में जन्म लेने का पृथग्भाव यह है कि मनुष्ययोनि में जन्म पावे परंतु गौ और घोड़ाआदि तिर्यग्योनि के जीव जो अहिंसक हैं देवभाव को भी प्राप्त होते हैं १३ सो हे युधिष्ठिर! जीवात्मा अपने कर्म के अनुसार उक्त तीनों गतियों में भ्रमण करता रहता है और ब्राह्मण उस आत्मा को ब्रह्म में लगाता है और वह जीवात्मा वारंवार जन्म लेकर अपने कर्म के फल को भोगता है और उस फल का संगी होकर संतान के जन्म और मरण के सुख और दुःख को देखता है १४। १५ तब युधिष्ठिर बोले कि हे सर्प! अब यह कहो कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का आधार क्या है और इनके विषय का विचार एक साथ ही बुद्धि क्यों नहीं कर सकती है १६। १७ सर्प बोला कि हे भरतसत्तम! जब इस देह का आत्मा बुद्धि से युक्त होता है तब वह इन्द्रियों का आधार होकर भोगों को भोगता है उनके भोगने में बुद्धि, मन और ज्ञान कारण होते हैं हे युधिष्ठिर! यह आत्मा इन्द्रियों के द्वारा जो विषयों के स्थान हैं मन सहित बाहर निकलकर क्रमपूर्वक अलग अलग विषयों को प्राप्त करता है और जीवात्मा को उन विषयों का अलग अलग विधान करनेवाला मन है अर्थात् मन एक समय में एक ही विषय की कांक्षा कर सकता है इस कारण से एकही साथ सब विषयों का ग्रहण नहीं हो सकता है १८। २१ हे पुरुषोत्तम! जीवात्मा दोनों भौंहों के बीच में सदैव स्थित रहकर उत्तम और अधम बुद्धि को अनेक प्रकार के विषयों में प्रेरणा किया करता है इससे यह बुद्धि ही आत्मा का प्रकाश करनेवाली है २२। २३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे सर्प! मन और बुद्धि का क्या लक्षण है इसको जानना ज्ञानियों का परम कार्य है २४ सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! बुद्धि आत्मा के संग रहनेवाली है आत्मा ही के आश्रय है और आत्मा ही को चाहनेवाली है उसके उत्पन्न होने का स्थान विषयों का संयोग है और मन तो वासनारूप ही से उत्पन्न है बुद्धि उस वासना को बढ़ाती है इन दोनों अर्थात मन और बुद्धि में अन्तर इतना है कि बुद्धि में किसी गुण की विधि नहीं है और मन बुद्धिरूप गुण रखता है सो हे युधिष्ठिर! बुद्धि वा मन का लक्षण और अन्तर उक्त प्रकार से है तुम भी बुद्धिमान् हो कहो तुम इस विषय को किस प्रकार से मानते हो २५। २७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि तुम बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हो और बुद्धि तुम्हारी शुभ है और जो पदार्थ जानने के योग्य है उसको भी तुम जानते हो मुझे बड़ा आश्चर्य है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तुमने सर्वज्ञ होकर मुझसे क्यों ऐसा प्रश्न किया और स्वर्गवास पानेपर तुम्हारे मन में मोह ने क्योंकर प्रवेश किया २८। २९ यह सुनकर सर्प बोला कि हे युधिष्ठिर! सुख और ऋद्धि ऐसे पदार्थ हैं कि इनके मिलने से बड़े बड़े ज्ञानी और शूरवीर भी मोहित होजाते हैं मेरा भी चित्त परम ऐश्वर्य के पाने से मोहित और मदोन्मत्त होगया था और जब स्वर्ग से गिरकर पृथ्वीपर आया तब मुझको चेत हुआ ३०। ३१ हे युधिष्ठिर! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया जो तुमसे साधु से संभाषण करने से मैं इस महाकष्टरूपी शाप से मुक्त हुआ ३२ अगले समय में मैं स्वर्ग में दिव्य विमान पर चढ़कर फिरा करता था और अपने अभिमान से मतवाला होकर किसी को कुछ न समझता था ३३ ब्रह्म-ऋषि, देवता, गन्धर्ब, यक्ष, राक्षस, सर्प और सब त्रिलोकी के जीव मुझको कर देते थे ३४ हे पृथ्वीपते! मेरी दृष्टि में ऐसा बल था कि जिस प्राणी की ओर मैं देखता था उसी के तेज को शीघ्र ही हर लेता था ३५ सहस्र ब्रह्मऋषि मेरी पालकी को उठाकर ले चलते थे परंतु मेरी अनीति ने मुझे उस ऐश्वर्य से गिरादिया ३६ एकदिन ब्रह्मऋषि मेरी पालकी को उठाकर लिये जाते थे मैंने अपने दर्प से उस समय अगस्त्यजी को पैर से मारकर कहा कि (सर्प)! जल्दी चलो तब अगस्त्यजी ने क्रोधित होकर मुझको शाप दिया कि तू सर्प होकर पृथ्वी पर गिरपड़ ३७ तब मैं अकस्मात् पालकी में से गिरपड़ा स्वरूप मेरा सर्प का सा और मुख नीचे को होगया जब मैंने इस बात को जाना तब अग-स्त्यजी से प्रार्थना की कि महाराज! इस शाप के अन्त होने का समय नियत कीजिये ३८ और मुझ अपराधी के अपराध को क्षमा कीजिये यह सुनकर अगस्त्यजी ने मुझपर कृपा की और गिरने के समय मुझसे कहा ३९ कि हे महाराज! तुझको धर्मराज युधिष्ठिर इस शाप से छुटावेगा और तू इस अभि-मान और घोर पाप के फल को भोगकर फिर पुण्य के फल को भोगेगा उस ऋषि की तपस्या के बल को देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ ४०। ४१ इसी कारण से मैंने तुमसे ब्रह्म और ब्रह्मज्ञानियों के लक्षण कहे हैं पुरुषों के साधक केवल सत्य इन्द्रियों का जीतना तप और दान है जाति और कुल से स्वर्ग आदि नहीं मिल सकते हैं यह तुम्हारा भाई भीमसेन प्रसन्न रहे और तुम्हारा कल्याण हो अब मैं स्वर्ग को फिर जाता हूं ४२। ४३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह सर्प उक्त प्रकार से कह कर और दिव्य स्वरूप धारणकर-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के स्वर्ग को चलागया ४४ और युधिष्ठिर भीमसेन से मिलकर धौम्य पुरोहित सहित अपने आश्रम को लौटआया ४५ वहां आकर युधिष्ठिर ने सब वृत्तान्त ब्राह्मणों से कहा वे ब्राह्मण और द्रौपदी और नकुल, सहदेव, अर्जुन उसको सुनकर बहुत लज्जित हुए ४६ । ४७ इसके पीछे उन ब्राह्मणों ने भीमसेन के साहस की निन्दा की और उसको उपदेश किया कि फिर ऐसा करना तुमको उचित नहीं है ४८ और पाण्डवों ने महाबलवान् भीमसेन को भय से मुक्त देख कर प्रसन्नतापूर्वक उस वन में विहार किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

एकसौ बयासीवाँ अध्याय।

पाण्डवों का वर्षाकाल में पर्वतों पर रहना और कार्त्तिक पूर्णिमा में काम्यक वन को चलना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उसी वन में पाण्डवों के वास करते करते सब जीवों को सुखदेनेवाला और ग्रीष्म का अन्त करनेवाला वर्षाकाल आगया १ और चारों दिशाओं से काले काले बादल उमड़ उमड़कर गर्जने लगे और आकाश में मण्डलाकार हो होकर रात्रि दिन जल वर्षानेलगे बिजली उन मण्डलाकार मेघों में सूर्य की प्रभा के समान चमकने लगी और पृथ्वी जल से भीगकर ठंढी होने हरी हरी घास के ऊपर उगने और मतवाले सर्प और डांसों से युक्त होने के कारण से बड़ी मनोहर दीखने लगी २ । ४ चारों ओर जल के भरजाने से यह नहीं जाना जाता था कि पृथ्वी कहां सम है कहां विषम है कहां नदी है और कहां स्थल है ५ और वन वहां के उन नदियों के चढ़ने से जो बड़े अर्रांटे के साथ बाण के समान वेग से बहती थीं परम शोभायमान होगया ६ उसमें वाराह मृग और पक्षी अनेक प्रकार की बोलियां बोलने लगे और चातक, मोर, कोकिला और मतवाले मेढक चारों ओर फिरने और मधुर मधुर ध्वनि सुनाने लगे ७ । ८ पाण्डव उस कल्याणरूपी वर्षाकाल में पर्वत के सूखे सूखे स्थानों में रहा किये जब वर्षा व्यतीत होगई तब आनन्द-रूपी शरदृऋतु आई जिसमें वन और पर्वतों के शिखर अनेक प्रकार की घासों से सुशोभित होगये नदियों का जल शुद्ध और निर्मल होगया ६ । १० आकाश और नक्षत्र विमल होगये और रात्रि शीतल, रजरहित और चन्द्रमा और नक्षत्रों से प्रकाशित होने लगी पशु पक्षी समूह के समूह विचरने लगे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पाण्डवों को यह ऋतु बड़ी कल्याणरूपी दीखती थी ११। १२ और वे सुन्दर नदी और पुष्पकरणियों पर जिनमें कुमुद और पुण्डरीक नामी कमल खिले हुए थे विहार करनेलगे १३ और उनका चित्त उस कल्याणरूपी सरस्वती नदी को देखकर जिसका जल निर्मल पुण्यकारी और अनेक प्रकार के वृक्षों से बड़ी शोभित होरही थी बड़ा हर्षित हुआ १४। १५ इस प्रकार से रहते रहते जब कार्त्तिकशुक्ल पौर्णमासी की रात्रि आई तब पाण्डवों ने सब तपस्वियों सहित रथोंपर भार लदवाया और उस रात्रि के व्यतीत होनेपर प्रातःकाल सब समाजसहित काम्यक वन को चलदिये ॥ १६। १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

एकसौ तिरासीवाँ अध्याय।

पाण्डवों का काम्यक वन में पहुँचकर आये हुए श्रीकृष्णजी और सत्यभामा से वार्तालाप करना और मार्कण्डेय ऋषि का युधिष्ठिर के पूछने पर जीवात्मा के कर्मानुसार सुख और दुःख भोगने का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव काम्यक वन में पहुँचकर द्रौपदी सहित रहने लगे, उस वन के तपस्वियों ने पाण्डवों का आतिथ्य किया और वहां उनके पास चारों ओर से बहुत से ब्राह्मण आये उनमें से एक ब्राह्मण ने पाण्डवों से कहा कि अर्जुन के प्यारे सखा श्रीकृष्णजी जो स्वतन्त्र और बुद्धिमान् हैं और तुम्हारा कल्याण चाहते हैं तुम्हारे यहां आने का हाल सुनकर तुमको देखने के लिये आनेवाले हैं १। ४ और मार्कण्डेयजी महाराज जो बड़े तपस्वी हैं और जिनकी बड़ी आयु है वे भी शीघ्र तुमसे यहां आकर मिलेंगे ५ उस ब्राह्मण के इतना कहने पर श्रीकृष्णजी का रथ आता हुआ दीख पड़ा जिसमें शैव्य और सुग्रीवनामी घोड़े जुते हुए थे और श्रीकृष्णजी उसमें सत्यभामा सहित इस प्रकार से बैठेहुए शोभा देते थे मानो इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित बैठेहुए हैं ६। ७ जब वह रथ समीप आया तब श्रीकृष्णजी प्रसन्न होकर रथ से उतर पड़े और युधिष्ठिर और भीमसेन को नमस्कार कर धौम्य पुरोहित के पास जाकर उन्होंने उनकी पूजा की नकुल और सहदेव ने श्रीकृष्णजी को नमस्कार किया फिर श्रीकृष्णजी द्रौपदी को सान्त्वन करके बहुत दिनों के पीछे अपने प्रियमित्र अर्जुनको देखकर उससे वारंवार मिले ८। १० इसी प्रकार से श्रीकृष्णजी की प्यारी पटरानी सत्यभामा भी पाण्डवों की प्रियभार्या

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

द्रौपदी से मिली ११ इसके पीछे पाण्डवों ने द्रौपदी और धौम्य पुरोहितसहित कमल-लोचन श्रीकृष्णजी की पूजा की और कुशल क्षेम पूछी १२ उस समय श्रीकृष्णजी वीर अर्जुन से मिलकर इस प्रकार से सुशोभित हुए मानो भगवान् रुद्र कार्त्तिकेयजी सहित विराजमानहैं १३ इसके उपरान्त अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से सब वन का वृत्तान्त वर्णन किया और पूछा कि सुभद्रा और अभिमन्यु कैसे हैं १४ यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने अर्जुन, द्रौपदी और धौम्य पुरोहित की पूजा की और युधिष्ठिर की इस प्रकार से प्रशंसा करनेलगे १५ कि हे युधिष्ठिर! राज्य-लाभ से धर्मलाभ उत्तम है और धर्म का मूल तप है सो तुमने उस धर्मको पकड़कर अपने सत्य और सीधेपन से यह और पर दोनों लोक अपने वश में कर लिये १६ इसके सिवाय तुमने व्रत किये वेद पढ़े धनुर्वेद सीखा क्षत्रियधर्म से धन संचय किया और पुराने पुराने यज्ञ किए १७ हे नरेन्द्र! हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारी प्रीति ग्राम्यधर्मों में अर्थात् मैथुनादि में लेशमात्र नहीं है न तुम कोई शुभकर्म किसी कामना से करते हो और न अर्थ के लोभ से अपने धर्म को छोड़ते हो इसी कारण से तुम धर्मराज हो १८ हे राजन्! देखो, जब तुमको बहुत से देश बहुत सा धन और बड़े बड़े भोग प्राप्त थे तब भी तुम्हारी प्रीति दान, सत्य, तप, श्रद्धा, क्षमा और धृति आदि में ही रहती थी १९ जिस समय कुरुजाङ्गल देश के मनुष्यों ने द्रौपदी का अपमान सभा में देखा था उस समय यह तुम्हाराही काम था जो ऐसे धर्म व्यवहार से विपरीत अन्याय को धर्म जान कर सहगये २० अब तुम शीघ्रही सब कामनाओं से युक्त होकर प्रजा का पालन करोगे और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होने पर हम निस्संदेह कौरवों को निग्रह करने का यत्न करेंगे २१ इसके पीछे श्रीकृष्णजी ने धौम्य पुरोहित, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव औरद्रौपदी से कहा कि बड़े प्रारब्ध की बात है जो अर्जुन अस्त्र सीखकर कल्याणपूर्वक आप लोगों से आन मिला २२ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी याज्ञसेनी द्रौपदी से कहने लगे कि तू बड़ी प्रारब्धिनी है जो अर्जुन स्वर्ग से आया और तू उससे मिली २३ हे द्रौपदि! तेरे सब पुत्र सुशील हैं और धनुर्वेद के पढ़ने सीखने और सत्पुरुषों के से काम करने में प्रीति रखते हैं २४ और तेरे भाई और पिता ने उन बालकों को राज्य और देश देने कहे परंतु वे वहां नहीं रहे किन्तु धनुर्वेद सीखने को आनन्द के साथ द्वारिका को चले आये और यादवों से धनुर्वेद सीखने लगे अब वे द्वारका में सुभद्रा के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पास रहते हैं और सुभद्रा उनका पालन उसी प्रकार से करती है जैसे तू और कुन्ती दोनों करती थीं और प्रद्युम्न भी उनको धनुर्वेद की शिक्षा उसी प्रकार से देता है जैसे अनिरुद्ध, अभिमन्यु, सुनीथ और भानु को शिक्षा करता है २५ । २८ और आलस्य छोड़ कर उन शूरवीरों को गदा, खड्ग और ढाल का पकड़ना अस्त्रों का चलाना और घोड़े आदि पर सवार होकर युद्ध करना बहुत अच्छी तरह सिखाता है २९ और प्रद्युम्न, अभिमन्यु और तेरे पुत्रों को शस्त्रों की शिक्षा करके उनके पराक्रम को देख देखकर बहुत प्रसन्न होता है ३० हे द्रौपदि ! जब कभी तेरे पुत्र किसी स्थान को विहार करने को जाते हैं तब उनके साथ में रथ, घोड़े, पालकी और हाथी बराबर जाते हैं ३१ श्रीकृष्णजी द्रौपदी से उक्त प्रकार की बातें कहकर युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन् ! दशार्ह, कुकुर और अन्धक देश के योद्धा तुम्हारी आज्ञा का पालन किया चाहते हैं जहां तुम आज्ञा करो तहां वे रहें और उनकी सब चतुरङ्गिणी सेना जिसके नियन्ता बलदेवजी हैं सज अर्थात् तैयार रहकर धृतराष्ट्र के पापी पुत्र दुर्योधन को सब साथियों सहित यमलोक में पहुँचाना चाहती हैं ३२ । ३४ सो हे नरेन्द्र ! तुम अपने उसी प्रणपर बने रहो जो तुमने सभा में किया था और जहां मन हो तहां विहार करो दशार्हदेशी योद्धा हस्तिनापुर के योद्धाओं को मारकर तुम्हारी बाट हस्तिनापुरमें देखते रहेंगे जब तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुको तब हस्तिनापुर को चले आना ३५ । ३६ यह सुनकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी की प्रशंसा की और उनके मत को विचार कर हाथ जोड़कर कहा ३७ कि हे केशव ! तुम पाण्डवों की गति हो और हम सब तुम्हारी ही शरण हैं निस्संदेह समय के आने पर तुम ऐसा ही करना ३८ अब हम सब को इस निर्जन वन में बारह वर्ष बीत गये और एक वर्ष अज्ञात रहने को और रह गया है उसके समाप्त होने पर हम सब आपकी शरण लेंगे ३९ हे केशव ! अब भी आपही की शरण में हैं ईश्वर करे आपकी ऐसी ही बुद्धि सदा बनी रहे ४० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जिस समय श्रीकृष्णजी और युधिष्ठिर उक्त प्रकार से वार्त्तालाप कर रहे थे उसी समय मार्कण्डेयजी महाराज जो बड़े तपस्वी सहस्रों वर्ष की आयु रखनेवाले, धर्मात्मा अजर और अमर थे वहां आये उस समय उनकी अवस्था पच्चीस वर्ष की सी दीखती थी उनको देखकर श्रीकृष्ण और पाण्डव और सब ब्राह्मण खड़े होगये और सब ने आदर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सहित उनको बैठाकर उनकी पूजा की जब वे भगवन्माया में दृढ़ विश्वास रखनेवाले महात्मा बैठगये तब श्रीकृष्णजी ने सब ब्राह्मण और पाण्डवों के मत के अनुसार उनसे विनय की ४१ । ४४ कि महाराज ! मैं सत्यभामा द्रौपदी और पाण्डव और ये सब ब्राह्मण यहां आपके मुखारविंद से श्रेष्ठ वचन सुनने के लिये इकट्ठे हुए हैं सो आप कृपा करके अगले समय के वृत्तान्तों की कथा और राजऋषियों के सदाचारों को वर्णन कीजिये ४५ । ४६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उसी समय वहां देवऋषि नारदजी भी पाण्डवों को देखने की इच्छा से आये ४७ उन पुरुषोत्तमों ने पाद्य और अर्घ्य देकर न्याय के अनुसार उनकी पूजा की ४८ नारदजी उस पूजा को ग्रहण करके बैठ गये और पाण्डवों को कथा सुनने के लिये निमन्त्रित जानकर उन्होंने मार्कण्डेयजी से उस कथा की प्रशंसा की उसी समय काल के ज्ञाता श्रीकृष्णजी ने भी मन्द मन्द मुसकराकर मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज ! अब आप जो कथा पाण्डवों से कहना चाहते हैं कहिये ४९ । ५० यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि अच्छा ठहरो हम एक बड़ी कथा वर्णन करेंगे ५१ यह सुनकर पाण्डव ब्राह्मणोंसहित एक क्षण भर चुपके बैठे रहे औरमध्याह्न समय के सूर्य के सदृश प्रकाशमान उस महामुनि की ओर देखते रहे ५२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! क्षण भर के उपरान्त जब मार्कण्डेयजी कथा कहना चाहते ही थे कियुधिष्ठिर ने उनसे कथा प्रारम्भ करने के लिये यह कहा ५३ कि महाराज ! आप पुराने ऋषि हैं आपने देवता, दैत्य, महात्मा, ऋषि और सब राजऋषियों के चरित्र देखे हैं ये देवकी के पुत्र श्रीकृष्णजी जो हमारे उपास्य और सम्मत हैं और जिनको देखने के लिये मेरे मन में बहुत दिनों से लालसा लग रही थी मुझे देखने को यहां आये हैं सो महाराज अपने को दुःखी और धृतराष्ट्र के दुर्वृत्त पुत्रों को सब ऐश्वर्यसम्पन्न देखकर मेरी बुद्धि इस संशय में पड़ी हुई है ५४ । ५६ कि जब मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म दोनों आपही करता है और उन कर्मों का फल भी वही भोगता है तो फिर ईश्वर क्योंकर करता है ५७ हे ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ ! सुख अथवा दुःख का होना यही कर्मों का फल है मनुष्य उस फल को इस देही से अथवा और शरीर से अवश्य भोगता है सो हे महाराज ! मैं आपसे पूछता हूँ कि जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर इसलोक अथवा परलोक में अपने कर्मों के अनुसार शुभ अथवा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अशुभ कर्म क्योंकर करता है और भोगता है और उसके वे अलौकिक अर्थात् परलोकसम्बन्धी कर्म कहां रहते हैं ५८। ६० यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह प्रश्न तुम्हारे पूंछने और जानने के योग्य है हम जानते हैं कि तुम इसको जानते हो परंतु तुमने यह प्रश्न हमसे संसार के हित के लिये पूछा है ६१ अच्छा अब तुम चित्त को एकाग्र करके सुनो हम इसलोक और परलोक में मनुष्य के सुख और दुःख भोगने का हाल वर्णन करते हैं ६२ सबसे पहिले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे उन्होंने देहधारियों के निर्मल और शुद्ध शरीर धर्मतन्त्ररूपी बनाये थे ६३ उस समय के वे मनुष्य सफल संकल्प अर्थात् जो बात चाहें वही तत्काल मिल जाय और सुव्रत सत्यवादी ब्रह्मपारायण और पुण्यरूप होते थे और अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग को चले जाते थे और वहां देवताओं से मिलकर फिर लौट आते थे ६४। ६५ जब उनकी इच्छा होती थी तभी शरीर को छोड़ देते थे और इच्छा के अनुसार जहां चाहें तहां जा सकते थे बाधा उनको बहुत कम व्यापती थी और उपद्रव से भी रहित होते थे ६६ देवता और महात्मा ऋषियों का दर्शन करते थे सब धर्मों को देखते थे और जितेन्द्रिय होकर मत्सरता से हीन होते थे ६७ आयु उन मनुष्यों की सहस्रों वर्ष की होती थी और पुत्र भी सहस्रों ही होते थे परंतु जब दूसरा समय आया तब वे ही पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और मोह करनेवाले होनेलगे और अपनी जीविका छल और कपट से करने लगे तब उस अशुभ कर्म के प्रभाव से वे पापी पशु पक्षी आदि नरकरूपी अनेक योनियों में जन्म ले लेकर अशुभ कर्म को भोगने लगे और उनके इष्टसंकल्प अर्थात् मन की कामना और ज्ञान निष्फल होने लगे और सब अज्ञानी होकर सब बातों में शङ्का करने लगे और दुःखदायी हो गये ६८।७१ कुल भी उनके नष्ट होने लगे और कालान्तर में वे सब रोगी, दुरात्मा, अशुभकर्मी, अल्पआयु, पापी, अनेक कामना रखनेवाले, रौद्रकर्मी अर्थात् कतल आदि अपराधों के करनेवाले नास्तिक और निर्बुद्धि हो गये ७२।७३ सो हे युधिष्ठिर! देह त्यागने पर मनुष्य की गति केवल कर्मों ही के द्वारा होती है अर्थात् देह छोड़ने पर जैसा जो कर्म करता है वैसा ही उसको फल मिलता है और जो तुमने यह प्रश्न किया है कि ज्ञानी और अज्ञानी मनुष्यों के पुण्य और पापकर्मों का कोष अर्थात् खज़ाना कहां रहता है और जीवात्मा उस पुण्य और पाप को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कहां भोगता है उसका भी निर्णय सुनो ७४। ७५ इस शरीर के दो रूप हैं एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म जो लिङ्गशरीर कहलाता है सो मनुष्य उस देवता के रचे हुए लिङ्गशरीर से शुभ और अशुभ कर्मों को इकट्ठा करता रहता है जब उसकी आयु पूरी होजाती है तब वह सूक्ष्मशरीर जीवात्मा इस स्थूल शरीर को त्याग कर तत्काल दूसरी योनि में जन्म ले लेता है और उसके किये हुए कर्म उसके साथ छाया के समान चले जाते हैं और यमराज उस जीवात्मा को उन्हीं कर्मों के अनुसार सुख अथवा दुःखरूपी फल देता है और उस फल को उसे अवश्य भोगना पड़ता है ७६। ७९ हे युधिष्ठिर ! यह गति हमने केवल अज्ञानियों की कही है अब ज्ञानियों की उत्तमगति का भी हाल सुनो ८० ज्ञानी मनुष्य तपस्या करते हैं, शास्त्र की मर्य्यादा पर चलते हैं, व्रतको स्थिरता से करते हैं और सत्यवादी, गुरुभक्त, सुशील, धर्मात्मा, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, तेजस्वी, पवित्र योनि में उत्पन्न होनेवाले, शुभ लक्षणों से युक्त, सतोगुणी, आरोग्य, अल्पदुःखी और भय और उपद्रव से रहित होते हैं ८१। ८३ और स्वर्ग से गिरकर गर्भ में वास करके जब उत्पन्न होते हैं तब अपने ज्ञानचक्षुओं से अपने आत्मा और परमात्मा को जान लेते हैं ८४ ऐसे महात्मा ऋषि जिनकी बुद्धि शास्त्र के अनुसार होती है इस कर्म भूमिपर जन्म लेकर फिर स्वर्गलोक को चले जाते हैं ८५ और संसारी जीवों को वह स्वर्ग किसी को दैव इच्छा से किसी को हठ से और किसी को कर्म करने से प्राप्त होता है ८६ हे युधिष्ठिर ! यह बात भी परमकल्याण करनेवाली है सुनो कोई मनुष्य तो ऐसे होते हैं कि उनको इसलोक में तो सुख मिलता है परंतु परलोक में कुछ नहीं मिलता है और कोई ऐसे होते हैं कि उनको परलोक में सुख मिलता है इस लोक में नहीं मिलता है किसी को दोनों लोकों में सुख मिलता है और किसी को न इसलोक में सुख मिलता है न परलोक में ८७। ८८ देखो, संसार में जो मनुष्य धनवान् हैं और सदा अच्छा खाते। पहिनते और सुखसे रहते हैं उनको इस लोक में तो सुख ही है परंतु परलोक में सुख नहीं मिलता है ८९ और जो पुरुष योगी, तपस्वी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय और हिंसारहित हैं उनको परलोक में सुख मिलता है परंतु इसलोक में नहीं मिलता है ९० और जो प्रारंभ से ही धर्म पर चलते हैं और धर्म से धन इकट्ठा करके अपना विवाह करके यज्ञादिक करते हैं उनको इसलोक और परलोक दोनों में सुख मिलता है ९१

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और जो अज्ञानी हैं और विद्या नहीं पढ़ते हैं और तप और दान भी नहीं करते और न पुत्रों को उत्पन्न करने का यत्न करते हैं वे सुख नहीं पाते हैं उनको इसलोक और परलोक दोनों में सुख नहीं मिलता है ६२ सो हे युधिष्ठिर! तुम सब देवताओं का काम करने के लिये स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आये हो और बड़े पराक्रमी, तेजस्वी, दृढ़, विद्यावान्, शूरवीर, तपस्वी, जितेन्द्रिय, बड़े कर्मठी, देवता, ऋषि, पितरों को तृप्त करनेवाले और पुण्यात्मा हो तुम सबको क्रमपूर्वक स्वर्गवास मिलेगा यह थोड़े दिनोंका क्लेश केवल सुखका उदय करने के लिये है इसको देखकर तुम किसी बात में विशेष शङ्का मत करो॥६३।६५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८३॥

एकसौ चौरासीवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से ब्रह्मघाती हैहयदेश के एक राज का इतिहास बर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डवों ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! हमलोग मुख्य मुख्य ब्राह्मणों का माहात्म्य सुना चाहते हैं, आप कृपा करके कहिये यह सुनकर महातेजस्वी महातपस्वी और सर्वशास्त्रज्ञाता मार्कण्डेयजी बोले १।२ कि हैहयवंश में एक बड़ा शूरवीर और स्वरूपवान् बलवान् राजकुमार था एक दिन वह अहेर खेलने को मूँज, काँस, घास और लताओं से घिरे हुए वन में गया वहां उसने एक मुनि को जो काले हरिण का चर्म ओढ़े हुए थे देखा और वह उनको घास में छिपे होने के कारण से हरिण समझकर मारकर गिरादिया जब वह कमललोचन राजकुमार उनके पास गया और देखा कि मृग नहीं है किंतु मुनि मारे गये हैं तब उसको बड़ा दुःख हुआ और वह शोक में अचेतसा होकर अपने हैहयदेश को लौटकर चला आया और उस देश के सब बुद्धिमान् राजाओं से सब वृत्तान्त कहा ३।६ हे तात! वे राजा लोग भी उस फल और मूल भोजन करनेवाले मुनि के मारे जाने का हाल सुनकर महादुःखी हुए और इस बात को जानने के लिये कि वह मुनि कौन और किसका पुत्र था वे सब वन को चले आये और उस मरे हुए मुनि को ढूंढ़ने लगे ढूंढ़ते ढूंढ़ते वे कश्यपगोत्री अरिष्टनेमि नामक ऋषि के आश्रम में पहुँचे ७।८ और वहां उस नियतव्रती महात्मा मुनि को दण्डवत् करके बैठ गये उस ऋषि ने उनका आदर सत्कार करके उनकी पूजा करनी चाही परंतु सब बोले कि हे महामुने! हम लोग कर्मदोष के कारण आपसे पूजा के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

योग्य नहीं हैं हमारे हाथ से ब्राह्मण मारा गया है ६ । १० यह सुनकर वह ऋषि बोला कि तुम्हारे हाथ से वह ब्राह्मण कैसे मारा गया और अब वह मरा हुआ कहां है हमको यह सब बताओ और हमारे तप के बल को देखो ११ यह सुनकर उस महात्मा से उन राजाओं ने सब वृत्तान्त कहसुनाया और वे उस मुनि को साथ लेकर वन में उस मरे हुए मुनि के ढूंढ़ने को गये परंतु वह निर्जीव मुनि उनको कहीं नहीं मिला इससे वे सब अचेत और लज्जित होगये तब अरिष्टनेमि ऋषि ने हँसकर कहा १२।१३ कि हे राजाओ ! देखो, वह ब्राह्मण जो तुम्हारे हाथ से मारा गया था यह है यह मेरा पुत्र है और तप का बल रखता है १४ हे राजन् ! उसको देखते ही वे सब राजा चकित से होगये और आश्चर्य आश्चर्य कहकर बोले कि महाराज ! यह आपके बुलाने से क्योंकर जी उठा वह कौनसा तप है जिसके करने से मरा हुआ मनुष्य फिर जी जाता है १५ । १६ हे महाराज ! हम उसको सुना चाहते हैं जो वह सुनने के योग्य हो तो वर्णन कीजिये यह सुनकर उस मुनि ने उत्तर दिया कि हे नरपालको ! हम लोगों को मृत्यु नहीं जीत सकती है कारण न जीतने का यही है कि हम लोग सदैव सत्य बोलते हैं झूठ को जानते भी नहीं और अपने धर्म पर चलते हैं और जो बात ब्राह्मणों की कुशल करनेवाली होती है उसे ब्राह्मणों से कह देते हैं और उनके दुराचारों का किसी से नाम भी नहीं लेते और अतिथियों को अन्नदान और भृत्यों को भोजन आदि से संपन्न करके जो शेष रह जाता है उसी को हमलोग भोग लगाते हैं १७ । २० और क्षमाशील और शान्तस्वभाव रखकर इन्द्रियों का दमन करते हैं और पुण्यदेशों में वास करके तीर्थों पर दान देते हैं २१ हमारे ऐसे आचार तेजस्वी पुरुषों के देश में रहने के कारण से हैं हे राजाओ ! मृत्यु के जीतने का पहले समस्त कारण हमने तुमलोगों से कहा है अब तुम सब जाओ तुमको ब्राह्मण के मारने का पाप न लगेगा २२ हे भरतसत्तम ! यह सुनकर वे सब राजालोग उस महर्षि को दण्डवत् करके बहुत अच्छा कहते हुए प्रसन्नता के साथ अपने अपने स्थानों को चले आये २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

एकसौ पचासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से राजा वैन्य के यज्ञ में अत्रिऋषि के जाने और धन लाने का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डवो ! अब दूसरी कथा ब्राह्मणों के माहात्म्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की वर्णन करते हैं सुनो वैन्यनामी एक राजऋषि थे उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा ली थी १ अत्रिऋषि ने उस यज्ञ में जाकर धन लाने की इच्छा नहीं की परंतु पीछे यह विचार करके कि धर्म का फल चाहने से धर्म नष्ट हो जाता है इसलिये वहां नहीं गये फिर उस महातेजस्वी ने वन में ही रहना अच्छा विचार कर अपनी स्त्री और पुत्रों को बुलाकर कहा कि अब हमारा विचार वैन्य के यज्ञ में जाने का नहीं है यहाँ वन में रहकर तपस्या करने से हमलोगों को मोक्ष मिलेगा जो सब उपद्रवों से रहित है इससे तुमलोग भी वनवास ही की रुचि रक्खो २ । ४ यह सुन कर धर्म का ही अनुसरण करती हुई उनकी स्त्री बोली कि महाराज ! आप महात्मा वैन्य राजऋषि के पास जाकर बहुतसा धन लाइये ५ हे विप्रर्षे ! वह हमारा यजमान है उससे मांगने पर वह कभी धन देने से निषेध नहीं करेगा सो आप जाकर धन ले आइये और उसको सेवक और पुत्रों को देकर फिर इच्छा के अनुसार वनवास का विचार कीजियेगा धर्म के ज्ञाताओं ने यही परमधर्म कहा है ६।७ यह सुनकर अत्रिऋषि बोले कि हमसे महात्मा गौतम ऋषि ने कहा था कि राजा वैन्य सत्यव्रती और धर्मात्मा है परंतु उसके पास द्वेष से भरेहुए ब्राह्मण रहते हैं इस कारण से गौतमऋषि के कहने के अनुसार मैं वहां जाना नहीं चाहता हूं क्योंकि जो मैं वहां जाकर कोई बात कल्याणकारक और धर्मयुक्त कहूंगा उसको वे ब्राह्मण विपरीत और निरर्थक बतावेंगे ८ । १० परंतु हे महाप्राज्ञे ! मुझे तेरा भी कहना करना है इससे मैं वहां जाता हूं और मुझे निश्चय है कि राजा वैन्य बहुतसा धन और गौ देगा ११ यह कहकर अत्रि ऋषि चल दिये और राजा वैन्य की यज्ञशाला में पहुँचकर राजा को यह मङ्गलीय स्वस्त्ययन सुनाया कि हे राजन् ! तू धन्य है ईश है और तू भूतल में नृप अर्थात् मनुष्यों का रक्षक है और इस पृथ्वी पर प्रथम है मुनियों के समूह के समूह तेरी स्तुति करते हैं और तुझसे बढ़कर कोई धर्म का जाननेवाला नहीं है यह सुनकर उस यज्ञशाला में से एक गौतम ऋषि नामी ब्राह्मण ने अत्रिऋषि से क्रोधित होकर कहा १२ । १४ कि हे अत्रि ! तुम फिर ऐसे शब्द मत कहना तुम्हारी बुद्धि सावधान नहीं है हमारा सबका प्रथम पुरुष और रक्षक इन्द्र है १५ अत्रि बोले कि हे गौतम ! तुम मोह से मोहित होरहे हो और बुद्धि भी तुम्हारी अल्प है यह राजा भी इन्द्र और प्रजापति के समान विधाता है १६ गौतम बोले कि मैं कदापि मोहित नहीं हूं मैं सब जा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जानता हूं मोहित तो तुमही होरहे हो जो धन के लिये जनों की समाज में राजा की इस प्रकार से स्तुति करते हो १७ तुम अभी न परम धर्म को जानते हो न प्रयोजन को पहचानते हो तुम्हारी बुद्धि तो मूढ़ और बालकों की सी है तुम्हारे बाल वृथा ही श्वेत होगये हैं १८ मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो! जब उन दोनों में इस प्रकार से बहुत विषाद बढ़ा तब उस यज्ञ में जो ब्राह्मण बुलाये हुये आये थे वे पूछने लगे कि ये दोनों आपस में कैसा विवाद कर रहे हैं और क्या चाहते हैं इनको राजा वैन्य की सभा में किसने घुसने दिया है जो ये चिल्ला चिल्लाकर कलह कर रहे हैं १६।२० उस समय एक काश्यपनामी ऋषि ने जो सब धर्मों का ज्ञाता था उनके पास जाकर विवाद करने का कारण पूछा उसको सुनकर गौतम ऋषि ने उस यज्ञ के सदस्यों से कहा कि हे द्विजसत्तमो! अत्रि ने राजा वैन्य की स्तुति विधाता कहकर की है उसको सुनकर हमको बड़ा संदेह हुआ है मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो! यह सुनकर वे सब मुनि संदेह मिटाने के लिये सनत्कुमारजी के पास गये जो धर्म के परम ज्ञाता थे और उनसे सब वृत्तान्त कहा उसको सुनकर सनत्कुमारजी धर्म से कहने लगे २१।२४ कि हे मुनियो! जब ब्रह्मकुल क्षत्रीकुल से और क्षत्रीकुल ब्रह्मकुल से मिल जाता है तब वे दोनों कुल मिलकर शत्रुओं का नाश इस प्रकार से कर देते हैं जैसे अग्नि और वायु मिलकर सब वन को भस्म कर डालते हैं २५ और राजा भी निश्चय धर्मरूप और धर्म का स्थापन करनेवाला है और प्रजा का स्वामी है इससे राजाही इन्द्र अर्थात् रक्षक और शुक्र अर्थात् नीति का जाननेवाला और धाता अर्थात् जनकरूप और बृहस्पति अर्थात् हित का उपदेशक है २६ इससे जो राजा की स्तुति प्रजापति, विराट्, सम्राट्, क्षत्रिय, भूपति और नृप आदि शब्दों से की जाय तो कौन ऐसा होगा जो उनको न मानेगा २७ राजा को पूर्वयोनि अर्थात् धर्म को प्रवृत्त करने के कारण से प्रथम कारण और युधाजित अर्थात् संग्राम में जय करने से उपद्रवों की शान्ति करनेवाला और भव अर्थात् सबकी रक्षा करके स्वर्ग में पहुँचानेवाला और सत्य की उत्पत्ति का स्थान और सत्यधर्म का प्रवृत्त करनेवाला कहते हैं और ऋषियों ने अधर्म के डर से क्षत्रियकुल को अपने तप का बल दिया है जिससे राजा पृथ्वी पर अधर्म को इस प्रकार से नाश करता है जैसे सूर्य अपने तेज से अन्धकार को दूर करता है २८।३० इससे और शास्त्र के प्रमाण से राजा की प्रधानता सिद्ध होती है इससे राजा को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

विधाता कहना अनुचित नहीं है जिसने राजा की स्तुति इस शब्द से की है उसका पक्ष सिद्ध है ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे पाण्डवो ! उस पक्ष के सिद्ध होने पर राजा वैन्य ने प्रसन्न होकर अत्रिऋषि से कहा कि हे महाराज ! आपने मुझको मनुष्यों में बड़ा बनाकर देवताओं के तुल्य पदवी दी है इससे मैं आपको सर्वज्ञ जानता हूं इसलिये आपको एक सहस्र श्यामा दासियां जो सुन्दर वस्त्र और गहने पहिरे हुए हैं और दशकोटि सोना और दश भार चांदी के देता हूं आप उसको लीजिये ३२ । ३५ यह सुनकर अत्रिऋषि उस सब धन को लेकर अपने घर को चले आये और उसे पुत्रों को दे शुद्धात्मा होकर तपस्या करने के लिये वन को चले गये ॥ ३६ । ३७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

एकसौ छियासीवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से सरस्वती और तार्क्ष्यऋषि के आपस में प्रश्नोत्तर होने का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे परंतप, वीर, युधिष्ठिर ! अब हम तुमसे तार्क्ष्यमुनि और सरस्वती देवी का संवाद वर्णन करते हैं १ एक समय तार्क्ष्यऋषि ने सरस्वती से पूछा कि हे भद्रे ! इस संसार में मनुष्य का कल्याण करनेवाला क्या पदार्थ है और कर्म करने का वह कौनसा प्रकार है जिसको आचरण करने से मनुष्य अपने धर्म से नहीं हटता है मैं इस सबको साङ्गोपाङ्ग सुना चाहता हूं जिससे मैं भी उसी प्रकार से कर्म करूं और धर्म से चलित न होऊं २ और यह भी जानना चाहता हूं कि अग्नि का पूजन किस प्रकार से और किससमय होना चाहिये और होम करना कब उचित है और वह कौनसा कर्म है जिससे धर्म का नाश न हो हे देवि ! यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो जिससे मैं उसीप्रकार करके सुन्दर लोक पाऊं ३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! उस उत्तम बुद्धि तार्क्ष्यऋषि के पूछने पर सरस्वती देवी इस प्रकार से धर्मोपदेशक और हितकारी बातें कहने लगी ४ कि जो मनुष्य सदैव सावधानी और पवित्रता से वेदपाठ और जप करता है और ब्रह्म को सर्वव्यापी जानता है वही देवलोक पाता है और देवताओं की प्रीति भी उसीसे होती है ५ उस देवलोक में बड़ी पवित्र और रमणीक शोक के दूर करनेवाली पुष्करिणी बनी हुई हैं उनमें निर्मल जल है सुन्दर सुन्दर मछलियां हैं और सुनहरे कमल फूले हुए हैं पुण्यभोगी पुरुष

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अच्छी तरह अलंकृत और सुवर्ण का सा वर्ण रखनेवाली अप्सराओं से पूजित होकर उन पुष्करिणियों के तटपर वास करते हैं ६। ७ गोदान करनेवाले को परमलोक और बैलदान करनेवाले को सूर्यलोक और वस्त्रदान देनेवाले को चन्द्रलोक और सुवर्ण के दानी को अमरलोक मिलता है ८ और जो कोई मनुष्य ऐसी गौका दान करता है जो दूध देती हो बछड़ा रखती हो और भागती न हो वह स्वर्गलोकमें इतने वर्षतक वास करता है जितने उस गौ के रोम होते हैं ९ और जो कोई ऐसे बैल को दान देता है जो सीधा, बलवान्, युवा और हलवाहक हो उसको वे लोक मिलते हैं जो दश गोदान करनेवाले को प्राप्त होते हैं १० और जो कोई कपिला गायको वस्त्र और कांसे की दोहनी और दक्षिणासहित दान देता है उसको वह गाय कामधेनु के स्वरूप से स्वर्गलोक में मिलती है ११ और उस गाय के जितने रोम होते हैं उतने ही गोदान करने का फल मनुष्य को होता है और वह गाय दानकर्ता के पुत्र, पौत्र और कुलकी सातवीं पीढ़ी तक को स्वर्गलोक में पहुँचाती है १२ और जो कोई गोदान दक्षिणा सुनहले सींग और कांसे की दोहनी और अन्य अन्य देनेके योग्य धनसहित करता है उसको वसुओं के लोक सुलभ होजाते हैं १३ जो मनुष्य अपने कर्मों से उस नरक में गिराया जाता है जिसमें बड़े बड़े दानव रहते हैं और अँधेरे से पूर्ण है उसको गोदान उस नरक से इस प्रकार पार लगा देताहै जैसे समुद्र में नौका वायु के सहारे से उतर जाती है १४ और जो मनुष्य ब्राह्मविवाह से कन्यादान करताहै अथवा वेदपाठी ब्राह्मण को पृथ्वीदान देताहै या और कोई दान विधिपूर्वक करता है उसको इन्द्रलोक मिलताहै १५ हे तार्क्ष्य! जो कोई सातवर्षतक नियमसे अग्नि में होम करता है वह अपने आप और सात अगली और सात पिछली पीढ़ियों को तारता है १६ यह सुनकर तार्क्ष्य ऋषि बोले कि हे शारदे, हे देवि! मैं अग्निहोत्र के पुराने व्रत को जानना चाहताहूं कृपा करके कहो कि वह व्रत क्या है १७ यह सुनकर सरस्वती बोली कि वेद के और वेदार्थ के न समझनेवाले और अपवित्रात्मा अशुद्ध हाथपांव रखनेवाले मनुष्यों को अग्निमें हवन करना उचित नहीं है क्योंकि देवता श्रद्धाहीन और अपवित्र पुरुष की दी हुई हविको ग्रहण नहीं करते हैं १८ और जो ब्राह्मण वेदपाठी नहीं है उसकी दी हुई आहुति निष्फल होजाती है इससे मनुष्य को उचित है कि हवन करानेवाले ब्राह्मण के गोत्र आदि को पूछकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यह बात निश्चय करले कि वह वेद पढ़ा है या नहीं और जो वेद न पढ़ा हो तो उससे हवन न करावे क्योंकि वेदशून्य ब्राह्मण को अग्नि में आहुति देना उचित नहीं है १९ जो मनुष्य धन का गर्व न करके सत्यव्रत होकर श्रद्धा से अग्नि में होम करते हैं और जो कुछ हवन में शेष रह जाता है उसी को भोजन करते हैं वे गोलोक को जाते हैं और उनको ब्रह्माजी और परब्रह्म का दर्शन मिलता है २० यह सुनकर तार्क्ष्यऋषि बोले कि हे सुन्दररूपधारिणि ! हे बड़भागिनि ! तुझको प्रज्ञा देवी जानकर मैं पूछताहूं कि तू कौन है तू बुद्धि में आत्मस्वरूप से प्रविष्ट होकर परमात्मस्वरूप है २१ सरस्वती बोली कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों का संदेह दूर करने के लिये अग्निहोत्र से निकली हूं और अपना यह सच्चा वृत्तान्त मैंने तुझसे केवल तेरे भक्तिभाव को देखकर कहाहै २२ तार्क्ष्यऋषि बोले कि हे सुभगे ! तेरे समान कोई नहीं है तू लक्ष्मी के समान अत्यन्त सोहती है और प्रज्ञा देवी को धारती है इसलिये तेरा यह स्वरूप बड़ा दिव्य अत्यन्त कान्ति रखनेवाला है २३ सरस्वती बोली कि हे विप्र ! मन्त्र और द्रव्य आदि जो कुछ यज्ञों के अङ्ग हैं उन्हींसे मैं वृद्धि पाती हूं और स्वरूपवती होजातीहूं २४ हे तार्क्ष्य ! समिध सौवर्ण और यव आदि जो कुछ यज्ञद्रव्य हैं उनको दिव्यबुद्धि धारण करके तू मेरी आत्मा ही का स्वरूप समझ २५ तार्क्ष्य बोले हे सरस्वति ! मैं उस शोकरहित और सबसे श्रेष्ठ परम मोक्षरूप को नहीं जानता हूं जिसमें केवल ज्ञानियों की ही गति होती है और जिसको मुनिलोग परम कल्याण जान कर अपनी इन्द्रियों का निरोध करते हैं तू कृपा करके उस मोक्षरूप को मुझसे वर्णन कर २६ सरस्वती बोली कि जो जीवन्मुक्त और शोकरहित पुरुष वेद के ज्ञाता होते हैं और अहिंसा आदि व्रत और जप आदि पुण्यकर्म करके तपरूपी धन रखते हैं वेही उस सबसे श्रेष्ठ और सबसे परे उस पुराण ब्रह्म को जो सच्चिदानन्दरूप से विख्यात है पाते हैं २७ और जिस अवस्था में वे उस परमात्मा को पाते हैं वही अवस्था मोक्षका स्वरूप है उसी परमात्मा में सहस्रशाखासम्पन्न अर्थात् भोगों के स्थानों सहित गन्धवान् अर्थात् धर्म और ज्ञान वैराग्ययुक्त एक वेतसवृक्ष अर्थात् संसार रूपी वृक्ष है उस वृक्ष की जड़ से नदियां निकलती हैं अर्थात् भोगों की वासना उत्पन्न होती हैं और उसीसे मीठे जल के झरने झरते हैं अर्थात् सुख प्राप्त होता है २८ और उसी वृक्ष की शाखाओं में पुत्र पौत्रादि के विषय से युक्त धान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और यव गेहूं आदि अन्न और अपूप आदि सच्छिद्र पक भोजन मांस शाक और खीर आदि अनेक स्वादिष्ठ भोजनरूपी कीच रखनेवाली अनेक नदियां बहती हैं तात्पर्य यह है कि यह संसार जिसकी उपमा वृक्ष से दी है परमात्मा के अन्तर्गत है परंतु जो मनुष्य उस संसार के नदीरूपी विषय और भोगों में लिप्त होकर सिकता अर्थात् रजरूपी पुत्र पौत्रादि में मिलकर कीचरूपी स्वादिष्ठ पदार्थों को ही भोजन करना प्रिय जानते हैं उनका वस्त्ररूपी चित्त उस कीच और रज से मलिन रहता है इससे वे उस परमात्मा को नहीं देख सकते हैं २९ हे तार्क्ष्य! जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिये अग्नि आदि देवताओं ने इन्द्र और मरुद्गणों सहित बड़े बड़े यज्ञ उक्त संसाररूपी वृक्ष में किये हैं वही मुक्त विद्यारूप सरस्वती का परमपद अर्थात् प्राप्त होने का स्थान है ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८६॥

एकसौसत्तासीवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का पाण्डवों से वैवस्वतमनु का उपाख्यान कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! हम वैवस्वत मनु का चरित्र सुना चाहते हैं वर्णन कीजिये १ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! बहुत अच्छा, सुनिये, मनुजी सूर्य के पुत्र थे महाप्रतापी और ब्रह्माजी के समान तेजस्वी थे २ और ऐसे पराक्रमी शोभायमान तेजस्वी तपस्वी थे कि इन गुणों से उन्होंने अपने पिता और प्रपितामह को भी उल्लंघन किया ३ उन्होंने विशाला बदरीनाम आश्रम में जाकर दशसहस्रवर्ष तक बड़ी उग्र तपस्या की थी पहिले तो कुछ दिनोंतक एक पैरसे खड़े होकर ऊपर को बाहु उठाये हुए तपस्या की उपरान्त अधोमुख होगये और विना पलकमारे बड़ाघोर और दृढ़ तप किया ४। ५ उसी तप की अवस्था में एक दिन चीरणी नदी के तटपर एक मत्स्य ने आकर उनसे कहा कि हे भगवन्, महाराज! मैं एक छोटी सी मछली हूं मुझको नदी की बड़ी बड़ी मछलियों से बड़ा भय रहता है क्योंकि हमारी सदैव की यही जीविका है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खाजाती है आप कृपा करके उन बड़ी मछलियों से मेरी रक्षा कीजिये मैं भी उसके बदले में आपका प्रत्युपकार करूंगी ६। ९ यह मछली का वचन सुनकर मनुजी ने दया विचार कर उस मछली को हाथ में उठालिया और जल से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भरेहुए रत्नपात्र में छोड़दिया १० वह मछली सत्कृत होकर उस पात्र में रहने लगी और मनुजी को भी उससे पुत्र के सदृश प्रीति होगई कुछ काल में वह मछली बढ़ते बढ़ते इतनी बड़ी होगई कि उस पात्र में न समासकी ११। १३ तब उसने मनुजी से कहा अब मेरे लिये दूसरा स्थान नियत कीजिये १४ यह सुनकर मनुजी ने उसको रत्नपात्र से निकालकर एक बड़ी बावड़ी में पहुँचा दिया १५ वहां वह मछली रहा की और बहुत से वर्ष बीतनेपर इतनी बड़ी हो गई कि उस बावड़ी में भी न आसकी यद्यपि वह बावड़ी दो योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी थी १६। १७ हे कौन्तेय! तब उस मछली ने फिर मनुजी से कहा कि महाराज! अब मुझको समुद्र की पटरानी गङ्गाजी में पहुँचा दीजिये वहां मैं सुखपूर्वक रहूंगी अथवा जो कोई और स्थान आप उचित समझें वहां ले चलिये मैं वहां ही रहूंगी मुझको आपकी आज्ञा मानना अवश्य उचित है क्योंकि आपके कारण से मैंने बड़ी वृद्धि पाई है १८। २० यह सुनकर मनुजी उसको लेगये और गङ्गाजी में छोड़ आये कुछ दिनों में वह वहां रहते रहते और बड़ी होगई और वहां भी सुखपूर्वक न रहसकी तब उसने फिर मनुजी से कहा कि हे भगवन्! अब मैं गङ्गाजी में भी सुखपूर्वक नहीं रह सकती हूं कृपा करके मुझको समुद्र में पहुँचाइये २१। २३ हे पार्थ! यह सुनकर मनुजी उस मछली को उठा कर लेगये और समुद्र में छोड़दी २४ वह मछली बड़ी थी परंतु जब मनुजी उसको उठाकर ले चले तब वह इतनी बड़ी होगई जितनी कि मनुजी ले जा सकते थे और उसके शरीर में से बड़ी सुगन्ध आती थी २५ जब मनुजी ने उसको समुद्र में छोड़ दिया तब वह मुसकुराती हुई उनसे कहनेलगी २६ कि हे भगवन्, मनुजी! तुमने सबप्रकार से मेरी बड़ी रक्षा की है अब जो कार्य तुमको करना उचित है उसको मैं कहती हूं सुनो २७ अब लोकों के प्रक्षालन होने का समय आन पहुँचा है सो थोड़े ही दिनों में प्रलय होगी और उसमें सब भूमिसम्बन्धी चर और अचर जीवों का नाश होजायगा इसमें मैं तुम्हारे हित के लिये तुमको उपदेश करती हूं २८। २९ कि हे महामुने! तुम एक बड़ी दृढ़ नाव बनवा रक्खो और उसमें एक बड़ी दृढ़ रस्सी भी बांध रक्खो जब वह प्रलय काल का समय आवे तब तुम सप्तऋषियों सहित सब संसारी बीजों को लेकर उस नाव पर चढ़जाना और मेरे आने की बाट देखना मैं उसीसमय वहां एक बड़ा सींग धारण कियेहुए आऊंगी तुम मुझको

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसी सींग से पहिंचान लेना बिना मेरे तुम्हारी नाव प्रलय काल के महाजल में तर न सकेगी ३०।३४ हे जननायक! इसबात को तुम निश्चय समझना इसमें किसी प्रकार की शङ्का न करना यह सुनकर मनुजी बोले कि बहुत श्रेष्ठ मैं ऐसाही करूंगा उपरान्त वे दोनों आपस में एक दूसरे को पूछकर इच्छा के अनुसार चलेगये इसके पीछे हे महाराज! मनुजीने उस मछली के कहने के अनुसार नाव बनवाई और जब प्रलयकाल आया तब सब बीजोंको लेकर उसी नावमें बैठगये जब समुद्र बढ़ा और नाव पृथ्वीसे उठकर तैरनेलगी तब मनुजी ने उस मछली को याद किया उनके याद करते ही वह मछली बड़ा भारी सींग धारण कियेहुए पर्वताकार ऊंची उठी हुई वहां आन पहुँची उसे देखकर मनुजी ने तुरन्त नाव में लगी हुई रस्सी का फंदा बनाकर उस मछली के सींग में डाल दिया उससे वह नाव उस सींग में बँधगई और वह मछली उस नाव को महासमुद्र में बड़े वेग से खैंचती हुई फिरने लगी ३५।४२ हे परपुरंजय! उससमय समुद्रमें जल के गिरने का बड़ा अर्राटा होता था और लहरें ऐसी ऊंची ऊंची उठती थीं कि उनसे समुद्र नाचता हुआसा जान पड़ता था और वह नाव उस समुद्रमें महावायु के कारण से मतवाली स्त्री के सदृश नाचती थी थोड़े काल में सब दिशा विदिशा और स्वर्ग आकाश नष्ट होकर जलरूप होगये और चारों ओर अन्धकार वर्तमान होगया उससमय में केवल मनुजी और सप्तऋषि उसमछली समेत रहगये और सब पदार्थ नष्ट होगये वह मछली उस नाव को कई वर्ष तक उस महासमुद्र में खैंचे खैंचे फिरा की उपरान्त उसको खींचकर वहां लेगई जहां हिमालय पहाड़ का बड़ा ऊंचा शिखर है वहां पहुँचकर हँसतीहुई उस मछली ने सप्तऋषियों से कहा ४५।४८ कि अब देर मत करो इस नाव को इस पहाड़ के शिखर से बांध दो यह सुनकर हे भरतश्रेष्ठ! सप्तऋषियों ने झटपट उस नाव को हिमालय पहाड़ के उस शिखर से बांध दिया वह शिखर अबतक नौ बन्धन नाम से विख्यात है इसके उपरान्त उस मछली ने उन ऋषियों से कहा कि मैं ही वह सबसे बड़ा ब्रह्मा हूं और जिसका दर्शन नहीं मिलता है वह भी मैं ही हूं मैंने मछली का स्वरूप धारण करके तुम सबको इस भय से छुटाया है ४६।५२ अब मनु को उचित है कि वह देवता असुर और मनुष्य आदि सब चर और अचर प्रजाको उत्पन्नकरे उसको प्रजा के उत्पन्न करनेका ज्ञान तपसे होगा और मेरी कृपा से प्रजा के उत्पन्न करने में उसे मोह नहीं होगा ५३।५४ यह कहकर वह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मछली अन्तर्धान होगई और मनुजी ने प्रजाको उत्पन्न करनेका विचार किया परन्तु उनको यह ज्ञान नहीं हुआ कि प्रजा किस प्रकार से उत्पन्न की जावे तब उन्होंने बड़ी तपस्या की और उस तपस्या के प्रभावसे सबप्रजाकी रचना यथावत् की हे युधिष्ठिर! हमने यह मात्स्यक नामी पुराण वर्णन किया है जो पापोंको दूर करनेवाला है जो कोई इस मनुजी के चरित्र को नित्य पढ़ेगा अथवा सुनेगा उसके सब मनोरथ पूरे होंगे और उसको सुन्दर लोक मिलेंगे ॥ ५५ । ५८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

एकसौ अट्ठासीवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से महाप्रलय का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने विनयपूर्वक फिर यशस्वी मार्कण्डेयजी से पूछा १ कि हे महामुने! महात्मा, परमेष्ठी ब्रह्माजी के सिवाय इस संसार में आपके समान किसी की आयु नहीं है जब सहस्र युग व्यतीत होजाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होता है सो आपने तो ब्रह्माजी के अनेक दिन देखे होंगे २ । ३ हे विप्रजी! जब प्रलय होता है और आकाश, देवता और दानव आदि सबका नाश हो जाता है तब ब्रह्माजी के पास आप ही केवल रहते हैं ४ और जब वह प्रलयकाल समाप्त होजाता है और ब्रह्माजी जगकर सृष्टि की रचना करते हैं तब भी आप ही अकेले सब उत्पन्न होनेवाले जीवों को देखते हैं ५ हे विप्रर्षे! जिस प्रकार से ब्रह्माजी सब दिशाओं को वायुरूप करके और जहां तहां जल फैलाकर जगत् की रचना करते हैं उस सबको भी आपने देखा है ६ हे द्विजोत्तम! आपने समाधि में तत्पर होकर जगद्गुरु ब्रह्माजी का आराधन किया और संपूर्ण ब्रह्माण्ड को अनेक उपायों से आत्मा तुल्य करके घोर तपस्या के प्रभाव से ब्रह्माजी को जीत लिया है ७ । ८ आप नारायण के समीप रहनेवाले हैं और पूर्वकाल में आपने भगवान् ब्रह्माजी के उत्पन्न होने के स्थान दिव्य हृदयकमल को खोल कर अन्तर दृष्टि से विश्व के रचनेवाले परब्रह्म के स्वरूप को बहुत बार देखा है ९ । १० हे विप्रर्षे! इसी कारण से परमपदस्थायी ब्रह्माजी की कृपा से आपको बुढ़ापा और मृत्यु बाधा नहीं कर सकते हैं ११ और जब सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, देवता, असुर और सब जड़ और चैतन्य जीव नाश होकर एकार्णव होजाता है और शेषजी प्रकट होते हैं और सब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जीवों के ईश्वर ब्रह्माजी कमल पर शयन करते हैं तब आपही अकेले उनको देखते हैं १२ । १४ हे द्विजोत्तम ! यह सब पुरातन वृत्तान्त आपने अपने नेत्रों से देखा है इससे मैं सबके हित के लिये इस वृत्तान्त को सुना चाहता हूं मेरी समझ में सब लोकों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको आप न जानते हों १५ । १६ मार्कण्डेयजी बोले हे पुरुषोत्तम, युधिष्ठिर ! मैं उस जन्म-मरण से रहित निर्गुण और गुणात्मा अविनाशी पुरुषोत्तम को नमस्कार करके तुम्हारी पूछी हुई कथा को वर्णन करता हूं सृष्टि का रचनेवाला ब्रह्म ये ही पीताम्बरधारी जनार्दन हैं १७ । १८ ये ही कर्ता हैं ये ही अनेक रूप धारण करनेवाले हैं ये ही भूतात्मा हैं ये ही प्राणियों के प्रभु हैं इन्हींका रूप अचिन्त्य है ये ही पवित्र हैं ये ही आदि अन्त से रहित हैं ये ही विश्वरूप हैं ये ही अव्यय हैं ये ही अविनाशी हैं और ये ही सबके कर्ता और अपने आप प्रकट होनेवाले हैं १९ । २० हे राजसत्तम ! अपने आपको ये ही जानते हैं वेद भी इनको नहीं जान सकते हैं इन्होंने ही इस आश्चर्यरूपी जगत् को रचा है प्रलयकाल के व्यतीत होनेपर पहिले चार सहस्र दिव्य वर्षतक सत्ययुग रहता है उसके पीछे तीन सहस्र दिव्य वर्षतक त्रेतायुग और दो सहस्र दिव्य वर्षतक द्वापरयुग और एक सहस्र दिव्य वर्षतक कलियुग रहते हैं इन चारों युगों की संध्या और संध्यांश के काल का प्रमाण उतने ही उतने सौ वर्ष का है जितने जितने सहस्र वर्षों का प्रमाण प्रत्येक युग का है और इन दिव्य वर्षों का एक दिन संसारी एक वर्ष की बराबर होता है इस प्रकार से जब पहिले तीनों युग बीतजाते हैं और चौथे कलियुग का भी काल पूरा होजाता है तब सत्ययुग फिर आजाता है इस प्रकार से इन चारों युगों का प्रमाण बारह सहस्र दिव्य वर्षों का है २१ । २७ जब ऐसी ही ऐसी एक सहस्र चौकड़ी व्यतीत होजाती हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है उस दिन के अन्त में सब विश्व ब्रह्मलोक में जाकर लय होजाता है उसी ब्रह्मा के दिन की अवधि का नाम प्रलय है हे युधिष्ठिर ! जब चारों युगों की एक चौकड़ी पूरी होनेपर आजाती है और कलियुग थोड़ा सा रहजाता है २८ । २९ तब मनुष्य बहुधा मिथ्यावादी होने लगते हैं और यज्ञ दान और व्रत की प्रतिनिधि प्रवृत्त होती है ब्राह्मणलोग शूद्रों का काम करने लगते हैं और शूद्रलोग धन का संचय करते हैं ३० । ३१ और क्षत्रिय भी अपने धर्म से भ्रष्ट होजाते हैं हे तात ! ब्राह्मण यज्ञ, जप, दण्ड और मृगचर्म को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

छोड़ कर सर्वभक्षी होजाते हैं और शूद्रलोग जप में तत्पर और ब्राह्मण जपके त्यागी होने लगते हैं ३२। ३३ हे नरेश्वर! आंध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाह्लिक, शूर और आभीर आदि म्लेच्छजातियों के मिथ्या आज्ञा देनेवाले पापी और मिथ्यावादी राजा होते हैं उस समय में कोई ब्राह्मण अपने धर्म से अपनी जीविका उपार्जन नहीं करता है ३४। ३६ हे नराधिप! विपरीत धर्म पर चलने से क्षत्रिय और वैश्य भी अल्पायु, अल्पपराक्रमी, अल्पवीर्यवान्, अल्पदेही और अल्पसार रखनेवाले होने लगते हैं और सत्य बहुत कम बोलते हैं और देश शून्य सा होकर दिशायें मृग और सर्पों से व्याप्त होजाती हैं ३७।३८ और ब्रह्मवादी धूर्त होने लगते हैं और शूद्रलोग ब्राह्मणों से नीच वचन और ब्राह्मणलोग शूद्रों से विनययुक्त वचन बोलने लगते हैं ३९ और बहुत से क्रूरकर्मी जीव होने लगते हैं और औषधियों में गन्ध और अन्न में स्वाद नहीं रहता है और स्त्रियां छोटी छोटी बहुत संतान रखनेवाली शील और आचार से रहित और मुखभगा अर्थात् लिङ्गको मुख में धारण करनेवाली होजाती हैं ४०।४१ और सब मनुष्य अन्न बेचनेवाले और ब्राह्मण वेद बेचनेवाले और स्त्रियां योनि विक्रय करनेवाली होने लगती हैं ४२ और गौवें बहुत थोड़ा दूध देने लगती हैं और वृक्ष भी कम फूलते फलते हैं और उन वृक्षों पर कागों का बास रहता है ४३ और ब्राह्मण ऐसे राजाओं का दान लेने लगते हैं जो ब्रह्महत्यारे झूठे लोभी कपटरूपी धर्म रखनेवाले और मोह से परिपूर्ण होते हैं ४४। ४५ और दिशाओं के लोग भिक्षा के लिये ब्राह्मणों से पीड़ा पाने लगते हैं और कर के डर से गृहस्थी मनुष्य चोरी करने लगते हैं ४६ और ब्राह्मणलोग अपनी जीविका व्यापार से करते हैं और मुनियों कासा कपट वेष बनाकर झूंठ मूठ को नख और बाल बढ़ा लिया करते हैं ४७ और ब्रह्मचारी धन के लोभ से झूंठे आचार और मद्यपान करने लगते हैं और गुरु की शय्यापर सोते हैं ४८ और आश्रमीलोग अर्थात् ब्रह्मचारी और संन्यासी आदि बहुत सा पाखण्ड रचकर पराये अन्न के स्वाद बखान बखान कर ऐसे भोजन चाहने लगते हैं जिनके भक्षण से केवल मांस और लोहू शरीर में बढ़े ४९ और इन्द्र भी ऋतु के अनुसार वर्षा नहीं करते हैं न अन्न अच्छीतरह से उगता है और जो लोग पवित्र गिने जाते हैं वे भी हिंसा करते हैं ५०।५१ वह समय ऐसा होता है कि उसमें अधर्म करने का बड़ा फल गिना जाता है और धर्मात्मा मनुष्यों की बहुत थोड़ी आयु

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

होती है और कोई धर्म नहीं रहता है मनुष्य उस समय में बहुत से द्रव्यों को कपट के बाँटों से बेंचने लगते हैं व्यापारी महाकपटी होजाते हैं ५२ । ५३ और पापियों की वृद्धि होती है और धर्मात्मा नहीं बढ़ते हैं धर्म के बल की हानि होती है और अधर्म बलवान् होजाता है ५४ किन्तु धार्मिक पुरुष अल्पायु और दरिद्री होते हैं और धर्म को त्याग करनेवाले मनुष्यों की आयु बड़ी और ऐश्वर्य वृद्धियुक्त होता है और जहां जहां नगर के क्रीड़ा करने के स्थान होते हैं वहां व्यभिचारी मनुष्य रहते हैं और प्रजा अधर्म के अनेक उपायों से व्यवहार करने लगती है ५५ । ५६ और थोड़े सेही धन के होने से गर्वित होजाती है हे राजन्! बहुत से मनुष्य पापाचार रखकर परस्पर विश्वासघात करके विश्वास पर रक्खे धन को हर लेने का उपाय करते हैं और निर्लज्ज होकर वेही मनुष्य रक्खे धन को नहीं कबूलते हैं ५७। ५८ और देवताओं के मन्दिर और मनुष्यों के विहार करने के स्थानों में व्याघ्र आदि मनुष्यभक्षी जीव सोते हैं और सात, आठ वर्ष की स्त्रियों के गर्भ रहने लगता है और दश या बारह वर्ष की आयु में पुरुषों के पुत्र उत्पन्न होता है ५९ । ६० और सोलह वर्ष की अवस्था में मनुष्य वृद्ध होने लगते हैं और उनकी आयु बहुत शीघ्र क्षीण होजाती है ६१ तरुण पुरुषों का स्वभाव वृद्धों का सा और वृद्धों का शील तरुण पुरुषों का सा होने लगता है ६२ और स्त्रियां अपने योग्य पति को धोखा देकर पशुओं की भांति दासों से व्यभिचार कराने लगती हैं ६३ और वीरपत्नी स्त्रियां भी पति के विद्यमान होनेपर दूसरे मनुष्यों का आश्रय करके उनसे कुकर्म कराती हैं इस प्रकार से जब सहस्र युग के व्यतीत होने पर आयु क्षय होजाती है तब हे महाराज! बहुत दिनों तक अकाल रहता है और मनुष्य अल्पसार और भूंखे होने के कारण से नाश होजाते हैं ६४ । ६६ इसके पीछे बारहों सूर्य और सातों अग्नियां अपने उग्र तेज से सब नदी और समुद्रों के जल को शुष्क कर देती हैं ६७ हे भरतवंशिन्! सब गीले और सूखे काठ और तृण भस्मीभूत होजाते हैं इस प्रकार से जब लोक बारहों सूर्य के तेज से सूख जाते हैं तब उन लोकों में संवर्तक नाम अग्नि प्रचंड वायुसहित प्रवेश होती है ६८। ६९ बाद पृथ्वी को भेदन कर रसातल में प्रविष्ट होकर देव, दानव और गन्धर्वों को बड़ी भय उपजाती है ७० और आकाश, पाताल और पृथ्वी आदि सब लोकों में व्याप्त होकर बीस योजन के सैकड़ों और सहस्रों योजन लम्बे चौड़े लोकों को देवता, असुर,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गन्धर्व,यक्ष,उरग,राक्षस, नाग और सब जगत् के जीव और सब पदार्थों सहित एक क्षण भर में भस्म कर देती है इसके उपरान्त आकाशमें चारों ओरसे महामेघोंकी घटा हाथियों के समूह के सदृश उठती हैं और बिजली के उग्र दर्शन चमक के साथ सब ओर व्याप्त हो जाती हैं वे घटाएँ कोई नीले कमल के समान कोई कुमुद के सदृश कोई किंजल्करूपी कोई पीली कोई हल्दी के रंग की कोई काग के अण्डों की सी उज्ज्वलता रखनेवाली कोई शिंगरफ़-सी लाल कोई कमल के पत्र के तुल्य कोई अञ्जन-सी काली कोई बड़े पुर के आकार और कोई मकर के अनुरूप और बिजलियों की माला से भूषित होती हैं ७१। ७८ और बड़े घोर शब्द से गर्ज गर्जकर सब आकाश और पर्वतों सहित पृथ्वी को ढककर ब्रह्माजी की आज्ञा से बारह वर्ष तक मुसलाधार जल वर्षाकर उस प्रलयकाल की अग्नि को बुझा देती हैं तब समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ देता है पर्वत सब फट जाते हैं और पृथ्वी जल में डूब जाती है ७६। ८३ इसके उपरान्त वायु से प्रेरित होकर सब बादल आकाश में घूम घूमकर नष्ट हो जाते हैं और फिर आदिदेव ब्रह्माजी उस घोर वायु को पीकर सो जाते हैं ८४। ८५ हे युधिष्ठिर! जब पिछली महाप्रलय में उक्त प्रकार से सब जगत् और देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी और पञ्चमहाभूत नाश होकर एकार्णव हो गये तब मैं अकेला नाश से बचकर उस एकार्णव में इधर से उधर बहने लगा और किसी प्राणी को न देखकर बहुत व्याकुल हो गया ८६। ८८ और तैरता तैरता बहुत दूर तक चला गया और थक गया परन्तु मुझको कोई शरण न मिला ८६ हे पृथ्वीपते! कुछ काल के पीछे उस एकार्णव में मुझको एक बड़ा भारी वट का वृक्ष दिखाई दिया जिसकी शाखायें बहुत दूर तक फैली हुई थीं जब मैं उस वृक्ष के समीप पहुँचा तब देखता क्या हूं कि उसके ऊपर एक सुन्दर शय्या बिछ रही है और उस पर बड़े दिव्य बिछौने हो रहे हैं और उन बिछौनों पर एक बालक जिसका मुख चन्द्रमा का-सा और नेत्र फूले हुए कमल के सदृश थे लेटा हुआ है ९०। ९२ हे नराधिप! उसको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं विचार करने लगा कि सब संसार के नष्ट होनेपर यह बालक कैसे बच रहा जो यहां शयन कर रहा है यद्यपि मैं त्रिकालदर्शी हूं परन्तु मैंने उस बालक को तपोबल से चिन्तन करने पर भी नहीं पहिंचाना ९३। ९४ और उस कमललोचन का स्वरूप मुझको बड़ा अद्भुत द्युतिमान् अतसी के पुष्प की सी प्रभा रखने-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वाला लक्ष्मी-चिह्न से शोभित और श्रीवत्सधारी दीखने लगा इसके उपरान्त उस बालक ने मुझसे यह प्रिय वाक्य कहा ६५। ६६ कि हे मार्कण्डेय! मैं जानता हूं कि तुम थके हुए हो और विश्राम चाहते हो तुम मेरे शरीर में प्रवेश होकर जब तक चाहो ठहरो मैंने तुम पर कृपा करके तुम्हारे लिये बसने को स्थान निर्माण कर लिया है ६७। ६८ हे भारत! यह सुनकर मेरे हृदय में दीर्घ-काल तक जीने और मनुष्यरूप रहने में वैराग्य उत्पन्न हो गया परन्तु उसी समय उस बालक ने अकस्मात् अपना मुख फैला दिया और मैं अवश होकर दैवयोग से उसके मुख में चला गया ६६। १०० हे मनुजाधिप! उदर में भीतर जाकर देखता क्या हूं कि वहां सब पृथ्वी ज्यों की त्यों नगरों सहित स्थित है और गंगा, शतद्रू, सीता, यमुना, कौशिकी, चर्मण्वती, ऐरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, विपाशा, गोदावरी व स्वोकसार, नलिनी, नर्मदा, ताम्रा, वेणा, सुवेणा, कृष्णवेणा, इरामा, वितस्ता, महानदी, कावेरी, शोण, विशल्या, किंपुना और और जो जो नदियां हैं सब बह रही हैं और जलजीवों से सेवित रत्नाकर समुद्र भी है और सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्रों सहित आकाश भी प्रकाशित और शोभित हो रहा है १। ८ हे राजन्! अनेक काननों से पृथ्वी परम सुशो-भित हो रही है ब्राह्मणलोग यज्ञ कर रहे हैं क्षत्रिय सब वर्णों की रक्षा में तत्पर हैं वैश्य न्यायपूर्वक खेती करते हैं शूद्र द्विजन्मा तीनों वर्णों की प्रीतिपूर्वक सेवा कर रहे हैं और हिमालय, हेमकूट, निषध, श्वेत, गन्धमादन, मन्दर, नील, मेरु, महेन्द्र, विन्ध्याचल, मलयाचल, पारियात्र और और जितने पर्वत हैं सब दृष्टि आ रहे हैं और सिंह, व्याघ्र, वाराह और जो जो पृथ्वी के जीव हैं सब वहां स्थित हैं इन सबको देखता हुआ मैं वहां चारों ओर घूमने लगा ६। १७ और दिशाओं में घूमते घूमते मैंने इन्द्रादिक देवता, साध्यगण, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, गुह्यक, पितर, सर्प, नाग, गरुड़, अष्टवसु, दोनों अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, ऋषि, दैत्य, दानव, कालकेय, असुर और सिंहिका के पुत्रों से आदि लेकर सब देवताओं के शत्रु और जो जो कुछ जड़ और चैतन्य पदार्थ संसार में हैं सब उस बालक की कुक्षि में देखे और फलाहार करके सौ वर्ष तक विना विश्राम लिये दौड़ता हुआ सब जगत् में फिरता रहा परन्तु उस महात्मा बालक की देह का मुझको अन्त नहीं मिला १८। २४ तब मैंने मन, वाणी और कर्म से उसी वरेण्य वरदाता देवता की शरण ली और मैं वायु-वश से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

फिर उस महात्मा बालक के मुख में होकर बाहर निकल आया २५।२६ और उस अमित तेजस्वी और श्रीवत्स-चिह्न रखनेवाले जगतपति महापुरुष को उसी बालकरूप से उसी वट के ऊपर बैठा हुआ देखा २७।२८ तब उस पीताम्बरधारी ने प्रसन्नता से हँसकर मुझसे कहा कि हे मुनिसत्तम, मार्कण्डेय! कहो तुम मेरे उदर में रहकर विश्रान्त हुए या नहीं और तुम्हारी थकावट दूर हुई या नहीं २९।३० यह सुनकर एक मुहूर्त में मेरी दृष्टि प्रकाशित हुई और मैंने अपने आपको देखकर अपने को मुक्त और लब्धज्ञान जाना ३१ तब मैंने उसके सुन्दर कोमल चरणों को जिनके तलुए और उँगलियां लाल लाल परम शोभित थीं अपने मस्तक से लगाया और नम्रता से प्रणाम करके उस कमललोचन के पास चला गया और उस भूतात्मा से देवता के अमित तेज और परमप्रभा को देखने लगा इसके पीछे मैंने दोनों हाथ जोड़कर उसको फिर नमस्कार किया और उससे पूछा कि भगवन्! मैं आपको और आपकी इस उत्तम माया को जानना चाहता हूं ३२।३५ मैंने आपके मुखमार्ग से आपके उदर में जाकर सब लोक और देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, नाग और जड़ चैतन्यजीवों सहित जगत् को यथावत् देखा ३६। ३७ हे देव, महाप्रभो, कमललोचन! आपकी कृपा से मैं वहां घूमा किया परंतु मेरी स्मृति बनी रही और अब आपकी ही इच्छा से फिर बाहर निकल आया हूं सो मैं यह जानना चाहता हूं कि आप कौन हैं ३८। ३९ और सब जगत् को पीकर बालकरूप से यहां किस लिये स्थित हैं और आपके उदर में यह सब रचना किस प्रयोजन से होरही है यह बात बहुत बड़ी है मेरी सामर्थ्य इस बात को चिन्तन करने की भी नहीं है इससे मैं ब्राह्मणों की कामना से इस सब वृत्तान्त को यथावत् सुनना चाहता हूं यह सुनकर वह श्रीमान् द्युतिमान् देवदेवेश मुझसे कहने लगे॥ १४०।१४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८॥

एकसौ नवासीवाँ अध्याय।

नारायण का मार्कण्डेयजी से अपनी आत्मा का स्वरूप वर्णन करना और मार्कण्डेयजी का वही वृत्तान्त युधिष्ठिर से कहना।

हे मार्कण्डेय! मुझको देवता भी तत्त्वपूर्वक नहीं जानते हैं परंतु तुम्हारी प्रीति के कारण से मैं तुमको जगत् के उत्पन्न करने का वृत्तान्त सुनाता हूं १ तुम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्रह्मऋषि पितृभक्त, ब्रह्मचारी और मेरी शरण में प्राप्त हो इस प्रकार से तुमको मेरा साक्षात् दर्शन मिला है २ पूर्वकाल में मैंने जल का नाम नार रक्खा था वही नार मेरा स्थान है इससे मुझको तत्त्वदर्शी नारायण कहते हैं ३ मेरा एक ही रूप अविनाशी है मैं ही अनेक रूपों से प्रकट होता हूं और सब जीवों का रचने और संहार करनेवाला मैं ही हूं ४ हे द्विजोत्तम ! विष्णु, ब्रह्मा, देवेश, इन्द्र, कुबेर, प्रेतराज, यम, शिव, चन्द्रमा, काश्यप, प्रजापति, धाता, विधाता और यज्ञ भी मैं ही हूं ५ । ६ अग्नि मेरा मुख है पृथ्वी मेरा पैर है सूर्य और चन्द्रमा मेरे नेत्र हैं स्वर्ग और आकाश मेरा मस्तक है दिशा मेरे कान हैं जल मेरा पसीना है दिशा और आकाश मेरा शरीर है और वायु मेरा मन है मैंने बहुत से पूर्ण दक्षिणावाले सैकड़ों यज्ञ किये हैं ७ । ८ वेद के जाननेवाले ब्राह्मण मुझे यज्ञपुरुष जानकर मेरा पूजन करते हैं और स्वर्ग के चाहने की इच्छा से क्षत्रियलोग मेरा यज्ञ करते हैं ९ और स्वर्ग पाने की इच्छा से वैश्यलोग भी मेरा पूजन करते हैं मैं ही शेषरूप धारण करके मेरु और मन्दर आदि पर्वत और चारों समुद्र सहित पृथ्वी को धारण करता हूं मैंने ही पूर्वकाल में वाराहरूप धारण करके जल में डूबती हुई पृथ्वी को अपने पराक्रम से ऊपर को उठाया था मैं ही बड़वामुख नाम अग्नि होकर जल को पी जाता हूं और फिर छोड़ देता हूं ब्राह्मण मेरे मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र चरणों से उत्पन्न हैं और सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्वणवेद १० । १४ चारों मुझ ही से प्रकट होते हैं और मुझमें ही फिर आ बसते हैं और शान्तिरूप, जितेन्द्रिय, काम, क्रोध, द्वेष और अहंकार से रहित तत्त्वदर्शी निष्पाप ब्रह्मज्ञानी और वेदपाठी यतीलोग सदैव मेरा ही ध्यान और मेरी ही उपासना करते हैं और संवर्तकनाम अग्नि तथा वायु और इसी नाम का सूर्य भी मैं ही हूं सब तारागणों को मेरे रोमकूप और सब समुद्रों समेत चारों दिशाओं को मेरे वस्त्र और शय्या समझो और मुझको इन सबके लय होने का स्थान जानो और काम, क्रोध, हर्ष, भय और मोह भी मेरे रोम हैं मैंने ही इनको देवताओं के कार्य के सिद्ध करने के लिये विभक्त किया है १५ । २१ और सत्य, दान, तप, अहिंसा और स्वर्ग देनेवाले कर्म सबको मैंने ही रचा है और सब मुझमें ही बसते हैं ज्ञानीलोग मुझसे ही अभिभूत होकर विशेष चेष्टा करते हैं २२ । २३ और ब्राह्मणलोग वेद पढ़कर अनेक प्रकार के यज्ञ करके आत्मा को शान्त और क्रोध को जीतकर मुझको प्राप्त करते हैं २४ पापी, लोभी, कृपण,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नीच और अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्य मुझे नहीं पा सकते हैं इससे जिन मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध है उनका बड़ा फल है और जिस मार्ग पर योगी-लोग चलते हैं वह अज्ञानियों के लिये परम दुर्लभ है २५। २६ हे सत्तम! जब जब धर्म नष्ट होजाता है और अधर्म चारों ओर फैल जाता है और ऐसे भयानक दैत्य और राक्षस पृथ्वीपर जन्म लेते हैं जिनको देवता नहीं मार सकते हैं हिंसक होते हैं तब तब मैं शुभकर्मी मनुष्यों के घर में अवतार लेकर मनुष्यरूप से सबको शान्त करता हूं २७। २६ मैं ही सब देवता, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस औ रजड़ चैतन्यजीवों को उपजाकर अपनी मायासे संहार कर डालता हूं ३० और मर्यादा बांधने के लिये संसार में मनुष्यदेह से अवतार लेता हूं ३१ मेरा वर्ण सतयुग में श्वेत, त्रेता में पीत, द्वापर में रक्त और कलियुग में काला हो जाता है ३२ हे ब्रह्मन्! इस पिछले युग में धर्म का केवल एक भाग रहता है और तीन भाग अधर्म रहता है और जब काल का अन्त आजाता है तब मैं ही महाकाल होकर तीनों लोकों को सब जड़ चैतन्य जीवों सहित नाश कर डालता हूं मैं ही विश्वात्मा हूं मैं ही सब लोकों को सुख देनेवाला हूं और मैं ही सर्वगत, अनन्त, इन्द्रियों का स्वामी और सर्वशक्तिमान् हूं मैं ही अकेला कालचक्र को घुमाता हूं ३३। ३५ हे मुनिसत्तम! वही कालचक्र सब जीवों को नाश करनेवाला और सब लोकों का उद्यम करनेवाला है मेरा आत्मा सब प्राणियों में व्याप्त होरहा है परंतु मुझको कोई जानता नहीं है ३६ हे द्विज, निष्पाप! भक्तलोग सब लोकों में मेरी ही पूजा करते हैं हे मार्कण्डेय! जो तुमने मेरे शरीर के भीतर जाकर कुछ क्लेश पाया है वह तुम्हारे कल्याण और सुख का उदय करेगा और तुमने लोक में जो कुछ जड़ चैतन्य पदार्थ देखे हैं वे सब मेरी ही आत्मा के रचे हुए हैं और ब्रह्मा भी मेरे ही शरीर का अर्धभाग है ३७।३६ हे विप्रर्षे, मुनिसत्तम, विप्रवर्य! मैं शंख, चक्र और गदा का धारण करनेवाला नारायण हूं सो जबतक युगों की एक सहस्र आवृत्तियाँ न हो जायँगी तबतक मैं विश्व को अपनी आत्मा में धारण किये हुए सोऊंगा और बालक न होकर बालकरूप से इसी स्थान पर उस समय तक रहूंगा जिस समय तक ब्रह्मा न जागेंगे। अब मैं तुमको ब्रह्मरूपी वरदान देता हूं तुम ब्रह्मऋषियों में परम पूजित होगे और सब जड़ चैतन्य जीवों के नष्ट होने पर एकार्णव को देखकर व्याकुल होगये थे इस कारण से मैंने तुम्हारे मन की व्यथा को जानकर अपने शरीर के भीतर सब जगत् दिखलाया था,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

परंतु उसे देखकर तुम आश्चर्य करने लग गये और तुमको ज्ञान नहीं हुआ, तब मैंने शीघ्र तुमको मुख से बाहर निकाल लिया ४० । ४५ हे मार्कण्डेय! मैंने तुमसे अपनी आत्मा का सब वृत्तान्त, जिसको देवता और असुर भी दुःख से जान सकते हैं, वर्णन किया ४६ अब हे विप्रर्षे! जबतक भगवान् ब्रह्माजी न जागेंगे तबतक मैं यहीं सोऊंगा, तुम भी यहीं सुखपूर्वक बसो। जब सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी जागेंगे, तब मैं और ब्रह्मा एकरूप होकर आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और संपूर्ण जड़ चैतन्य जीवों की रचना करेंगे ४७ । ४९ इतनी कथा सुनाकर मार्कण्डेयजी बोले हे तात, भरतश्रेष्ठ, सर्वधर्मधारिवरिष्ठ, राजन्, युधिष्ठिर! वह देवदेवेश उक्त प्रकार से कहकर वहीं अन्तर्धान हो गया और मैंने उस महाप्रलय के अद्भुत स्वरूप और नानाप्रकार की सृष्टि की रचना को देखा ५० । ५१ हे पुरुषोत्तम ! जो कमललोचन देवता मैंने महाप्रलय में देखा था वह यही श्रीकृष्ण है जो तुम्हारा सम्बन्धी है ५२ इसी की कृपा से मेरी स्मृति बनी हुई है और मेरा दीर्घ आयु होना और इच्छा के अनुसार मरना भी इसी की कृपा से है ५३ हे कुन्तीनन्दन! यही श्रीकृष्ण पुराणपुरुष है, यही समर्थ है, यही अचिन्त्य आत्मा है, यही धाता है, यही विधाताहै, यही संहार करनेवाला है, यही सनातनहै, यही श्रीवत्सचिह्न रखनेवाला है, यही गोविन्द है, यही प्रभु है, यही प्रजापति है, यही आदिदेव है, यही विष्णुहै, यही सबका पिताहै और यही सबकी माता है, इसी पीताम्बरधारी को देखकर मुझे सब पिछला वृत्तान्त याद आगया। यह शरण के योग्य है इससे हे युधिष्ठिर! तुम इसीकी शरण जाओ ५४ । ५७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर पाण्डवों ने द्रौपदी सहित श्रीकृष्णजी को नमस्कार किया और उस पुरुषोत्तम ने भी उनसे साम-वचन कह कहकर उनका सम्मान किया ॥ ५८ । ५९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

एकसौ नब्बेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कलियुग और कल्की अवतार वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने महामुनि मार्कण्डेयजी से कलियुग के भविष्य कर्मों का वृत्तान्त सुनना चाहा और कहा कि हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ, मुनिजी! आपने जगत

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की प्रलय और उत्पत्ति का आश्चर्यरूपी वृत्तान्त सुनाया परंतु अब मुझको यह संदेह है कि जब आगे कलिकाल में धर्म समाकुल हो जायँगे तब क्या बात शेष रहेगी इससे मैं यह सुनना चाहता हूं कि उस युग में मनुष्यों का पराक्रम, आहार, विहार, आयु और वस्त्र किस प्रकार के होंगे और फिर कितने काल के पीछे सत्ययुग आवेगा सो कृपा करके यह सब विस्तारपूर्वक सुनाइये। आप तो बड़ी विचित्र कथा कहते हैं ४। ५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर मुनिनायक, महर्षि मार्कण्डेयजी श्रीकृष्ण और पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे ६ कि हे राजन्! पूर्वकाल में जो कुछ मैंने देखा या सुना है अथवा हे राजेन्द्र! जो कुछ मुझे ईश्वर की कृपा से अनुभव हुआ है हे भरतर्षभ! काल को पाकर मुझसे कहा हुआ जो सब लोक का भविष्य वृत्तान्त है उस सबको मैं कहता हूं सुनो ७। ८ सत्ययुग में सब धर्म बैल के समान चारों पैरों से युक्त थे और मनुष्य उनका आचरण निष्कपट और उपाधिरहित होकर करते थे, त्रेता में वही धर्म तीन तीन चरणों के रह गये एक चरण अधर्म से टूट गया और अब द्वापर में धर्म के केवल दो ही चरण हैं अर्थात् आधा धर्म और आधा अधर्म होता है ९। १० अब इसके आगे जब कलियुग आवेगा तब अधर्म तीन पैरों से सब लोको में व्याप्त होजायगा और धर्म का केवल एक चरण रह जायगा अर्थात् तीन अंश पाप और एक अंश धर्म होगा। मनुष्यों की आयु, पराक्रम, बुद्धि, बल और तेज प्रत्येक युग में कम होते चले जाते हैं। जब कलियुग का समय होगा तब चारों वर्ण कपटरूपी कर्मों को करके धर्म करेंगे और पण्डितों के अभिमान के कारण से सत्य क्षीण हो जायगा ११। १४ सत्य के जाने से आयु कम होने लगेगी और आयु के क्षीण होने से मनुष्य विद्याबल से अपनी जीविका उपार्जन न कर सकेंगे १५ विद्या के न होने से मनुष्यों का ज्ञान नष्ट हो जायगा और ज्ञान के नष्ट होने से सब मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी और अज्ञानी होकर परस्पर वैर बाँधकर एक दूसरे को मारने की इच्छा करने लगेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य परस्पर संकीर्ण होकर सत्य और तप को छोड़ देंगे और शूद्र-तुल्य हो जायँगे और अन्त्य अर्थात् चाण्डाल आदि मध्य अर्थात् क्षत्रिय पृथ्वी के रक्षक राजा होंगे और मध्य अन्त्य अर्थात् चाण्डालों का कर्म करेंगे १६। १८ और वस्त्रों में सन का वस्त्र और अन्नों में कोदों अति उत्तम गिने जायँगे १९

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और सब मनुष्य केवल अपनी स्त्रीही के मित्र होकर रहेंगे और मछलियोंके मांस को बेचकर अथवा भेड़ी बकरियों को दुहकर अपना पेट पालेंगे २० गौयें उस समय में नष्ट हो जायँगी और जो मनुष्य सदाके व्रतधारी होंगे वेभी लोभी हो जायँगे २१ सबका मन हिंसा करनेमें रहेगा और परस्पर चोरी करेंगे और नास्तिक और जप न करनेवाले हो जायँगे २२ लोग नदियोंके किनारे कुदालोंसे खेतियां करेंगे और वे भी निष्फल होंगी और जो मनुष्य श्राद्ध और यज्ञ आदि देवकर्मों के करने का व्रत रक्खेंगे वेभी लोभ के कारण से परस्पर भोजन करने लगेंगे अर्थात् पिता पुत्र के घर और पुत्र पिता के घर श्राद्ध आदिक कर्मों में भोजन किया करेंगे २३ । २४ और भोजन के सब पदार्थ मर्यादारहित होंगे, ब्राह्मण वेदनिन्दक होकर व्रत नहीं करेंगे और बहुत सा वाद करके अनेक हेतु दिखा-कर यज्ञ और होम को छोड़कर नीच कर्मों में रत हो जायँगे २५ । २६ और मनुष्य खेतियां नीची पृथ्वी पर करने लगेंगे और धुरी में गौ और एक वर्ष के बछड़ों को जोतेंगे २७ पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मारकर खेद न करेंगे और बहुत सा वाद करने के कारण से उनकी निन्दा भी नहीं होगी २८ इस प्रकार से सब जगत् कर्म न करने और यज्ञ आनन्द और उत्सवों के बन्द होजाने के कारण से म्लेच्छों से भर जायगा और वे म्लेच्छ बहुधा कृपण, भाई, बन्धु और विधवाओं के धन को हर लिया करेंगे २९ । ३० और अल्प पराक्रमी लोग लोभ और मोह के कारण से कपटरूपी आचार रखनेवाले दुष्टों के दिए हुए दान को भी ले लिया करेंगे । हे कौन्तेय ! राजालोग पापी, मूर्ख और अपने को पण्डित जाननेवाले होकर परस्पर एक दूसरे को मारेंगे और युद्ध के लिये बुलाया करेंगे इस प्रकार से वे क्षत्रिय रक्षा करना छोड़कर इस लोक के कांटे हो जायँगे और लोभी, मानी, अहंकारी और घमण्डी होकर केवल दण्ड ही देने में मन रक्खेंगे ३१ । ३४ हे भरतवंशिन् ! दया न होने से रोते हुए साधुओं के धन और स्त्री को हरकर आप भोगेंगे ३५ उस समय में न कोई कन्यादान करेगा, न कोई कन्या मांगेगा किंतु अपने आपही चाहे जिसको ग्रहण कर लिया करेंगे ३६ और मूढ़चित्त राजा भी असंतुष्ट होकर अनेक उपायों से दूसरे के धन को हरलिया करेंगे ३७ हे युधिष्ठिर ! निस्संदेह सब संसार म्लेच्छरूप हो जायगा और चोरी हाथों हाथ होने लगेगी ३८ लोग अपने को पण्डित मानने लगेंगे, सत्य संसार से उठ जायगा और बालक वृद्धों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की सी बुद्धि और वृद्ध बालकों की सी बुद्धि रखने का अभिमान रक्खेंगे ३९ और जो मनुष्य भीरु होंगे उनको शूरता का अभिमान होगा और जो शूर होंगे वे डरपोंकनों से विवाद करेंगे और परस्पर कोई किसीका विश्वास नहीं करेगा ४० सब लोभी और मोह से भरे हुए मनुष्य होंगे और आहार सबका एक सा हो जायगा इस प्रकार से अधर्म तो बढ़ता रहेगा और धर्म का लेश नहीं रहेगा ४१ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सब नष्ट होकर सब जगत् एक वर्ण हो जायगा ४२ स्त्रियां अपने पति की सेवा नहीं करेंगी और न पिता पुत्रको और न पुत्र पिता को मानेगा ४३ सब मनुष्य वहीं जा जाकर बसेंगे जहां यव और गेहूं आदि अन्न उत्पन्न होते होंगे ४४ और सब पुरुष इच्छाचारी हो जायँगे और स्त्रियों में क्षमा नहीं रहेगी ४५ न कोई श्राद्ध करेगा न देवकर्म करेगा सबके स्वभाव म्लेच्छों के से हो जायँगे ४६ और तमोगुण में ग्रस्त होकर कोई किसी की न सुनेगा और न कोई किसी को गुरु जानेगा ४७ और आयु सब की सोलह वर्ष की होने लगेगी सत्रहवें वर्ष में प्राण छुट जाया करेंगे ४८ और कन्याओं के पांचवें अथवा छठे वर्ष में गर्भ रहने लगेगा और सात अथवा आठ वर्ष के लड़कों के पुत्र उत्पन्न हुआ करेगा ४९ और स्त्री पति से और पति स्त्री से संतोषित नहीं रहेंगे ५० सब मनुष्य हिंसक, अल्पद्रव्य रखनेवाले और वृथालिङ्गी होंगे और कोई किसी को दान नहीं देगा ५१ सब पुरुष अन्न बेचने लगेंगे, ब्राह्मण वेद बेचेंगे और स्त्रियां अपनी भग बेचेंगी ५२ सबके सब म्लेच्छों का सा आचार रखकर सर्वभक्षी और सब कर्मों में भयानकरूप होजायँगे ५३ हे भरतश्रेष्ठ! धन के लोभ से सब मनुष्य क्रय विक्रय अर्थात् ख़रीद फ़रोख़्त के समय ठगई करेंगे ५४ और जो जिसकी इच्छा में आवेगा सोई कर्म करेंगे और स्वभाव सेही कुकर्मी और एक दूसरे की श्लाघा करनेवाले हो जायँगे और विना व्यथा के वृक्ष और बाग़ों का नाश करेंगे उस समय में सब जीवों को अपने अपने जीवित का त्रास रहेगा ५५। ५७ हे नृपाल! सब मनुष्य लोभ से अभिभूत होकर ब्राह्मणों का धन छीनकर भोगेंगे और उनको मारेंगे ५८ तब ब्राह्मण भयभीत, दुःखी और शूद्रों से पीड़ित होकर विना रक्षक के हाहाकार करते हुए इस पृथ्वी पर जहां तहां घूमेंगे ५९ और उन शूद्रों की हिंसा, दया, हीनता और भयानकरूप से डरे हुए ब्राह्मण भाग भाग कर नदी, पर्वत और विषम स्थानों में जा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बसेंगे ६०।६१ और चोरों से पीड़ित राजा के कर से दुःखी और सब मनुष्यों से शङ्कित होकर धैर्य को छोड़ देंगे और शूद्रों की सेवा और नीचकर्म करने लगेंगे ६२।६३ और शूद्र गद्दीपर बैठकर धर्मका व्याख्यान कहेंगे और ब्राह्मणलोग उनके नीचे बैठकर उस व्याख्यानको सुनेंगे ६४ इस प्रकारसे कलियुग के उत्तर समय में सब बातें विपरीत होने लगेंगी । मनुष्य देवताओं के पूजन को छोड़ कर कबरों की पूजा करने लगेंगे ६५ शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करेंगे और जहां जहां महाऋषियों के आश्रम, ब्राह्मणों के स्थान और देवता और सर्पोंके आलय होंगे वहां वहां कबरों के चिह्न होजायँगे ६६।६७ हे राजन्! सब लोग रौद्रकर्मी, धर्महीन, मांसभक्षी और मद्यपी होने लगेंगे । ये सब लक्षण युग के क्षय होने के हैं और जब फल में फल और पुष्प में पुष्प उत्पन्न होने लगेंगे तब युगका अन्त हो जायगा उस समय वर्षा अकाल में होगी ६८।७० सबके कर्म विपरीत हो जायँगे और शूद्र ब्राह्मणों के साथ विरोध करने लगेंगे ७१ सब पृथ्वी म्लेच्छों से पूर्ण हो जायगी और ब्राह्मण कर के भयसे दशों दिशाओं में भाग भागकर जा बसेंगे ७२ बेगार से दुःखी होकर फल और मूल खा खाकर रहेंगे इस प्रकार से जब लोक व्याकुल होगा तब कोई बात मर्यादा की नहीं रहेगी, शिष्य गुरु की शिक्षा नहीं मानेंगे और जो आचार रखनेवाले और निर्धन होंगे उनको सब धिक्कार देंगे और धनवाले के पास सब मित्र और भाई बन्धु वास करेंगे, निर्धन को कोई नहीं पूछेगा ७३।७५ ऐसा समय वर्तमान होने पर सब प्राणियों का नाश हो जायगा और सब दिशा प्रज्वलित और नक्षत्र प्रभाहीन हो जायँगे ७६ ग्रहों की चाल विपरीत, वायु प्रचण्ड और उल्कापात आदि अनेक भय होने लगेंगे ७७ और सूर्य दूसरे छः ग्रहों के साथ बड़े तेज से तपने लगेगा और निर्घात शब्द और दिशाओं में दाह भी होगा ७८ इन्द्र बिना काल के वर्षा करेगा और सूर्य उदय और अस्तकाल में राहु से अन्तर्हित होने लगेगा ७६ खेतियों में अन्न उत्पन्न नहीं होगा, स्त्रियां बड़ी कर्कशा और खोटा वचन बोलनेवाली हो जायँगी । उनको रोना बहुत अच्छा लगेगा और पति की आज्ञा नहीं मानेंगी । पुत्र माता और पिता को मारने लगेंगे ८०।८१ स्त्रियां पुत्र का आश्रय लेकर अपने पति को मारेंगी । राहु बिना पर्व के सूर्य को ग्रसने लगेगा ८२ अग्नि सब ओर बहुत लगा करेगी और राहगीरों को मांगने पर भी कोई भोजन नहीं देगा और न कोई

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उनको कहीं टिकने देगा तब वे निकाले हुए राहगीर जहां तहां मार्गों में ही पड़े रहेंगे और निर्घात शब्द के होने से काग, मृग और पक्षी भयानक बोलियां बोलेंगे और मनुष्य अपने अपने मित्र, सम्बन्धी और स्वजन परिजनों को छोड़ छोड़कर अनेक देश, दिशा, पत्तन और नगरों में जा बसेंगे । इसके उपरान्त जब कलियुग समाप्ति पर आवेगा तब ऐसा दारुण समय होगा कि मनुष्य एक दूसरे को हाय बेटा, हाय पिता, पुकारने लगेंगे इस प्रकार से जब युगक्षय हो जायगा तब भगवान् फिर कृपाकरेंगे और द्विजाति आदि सब वर्ण लोक में बढ़ने लगेंगे और जिस दिन सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति पुष्य नक्षत्र में एक ही साथ एक राशिपर आजायँगे उसीदिन सत्ययुग लग जायगा ८३।९० सत्ययुग के लगने पर वर्षा समय पर होने लगेगी, नक्षत्र शुभ होजायँगे और ग्रह अपनी अपनी गति करने लगेंगे और संसार के सब उपद्रव शान्त होकर सुकाल होने लगेगा और मनुष्य आरोग्य होने लगेंगे ९१।९२ उसी समय में संभल ग्राम में एक ब्राह्मण के घर भगवान्का कल्की अवतार होगा। नाम उसका विष्णुयशा होकर बड़ा पराक्रमी और बुद्धिमान् होगा । संकल्पमात्र ही करने से उसके पास सब वाहन, आयुध, योद्धा और कवच वर्तमान हो जायँगे और वही बड़ा धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा होकर, ब्राह्मणों को साथ लेकर, सब नीच म्लेच्छोंको मारकर नाशकरेगा और इस व्याकुल लोकको परमानन्द देगा। उस बुद्धिमान् तेजस्वी के सबके नाश करने पर सत्ययुग लग जायगा॥९३।९७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

एकसौइक्यानवेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से कल्कीअवतार की कथा कहके धर्मपर आरूढ़ रहनेकी शिक्षा करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! वह कल्की अवतार चौरों को विध्वंसन करके अश्वमेध यज्ञ करेगा और उस यज्ञ में इस पृथ्वी को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान कर देगा १ और ब्रह्मा की बांधी हुई मर्यादा को संसार में स्थापित करके जब वह वन को चला जायगा तब सब मनुष्य उसके प्रचलित किये हुए धर्मपर चलने लगेंगे और चौरों के नाश हो जाने से सब स्थानों में क्षेम हो जायगी २।३ वह विप्रवर्य कल्की काला मृगचर्म ओढ़कर शक्ति, त्रिशूल आदि अनेक आयुध लिये हुए देश देश और निर्जन स्थानों में भ्रमण करेगा, जहां जहां उसको ब्राह्मण मिलेंगे तहां तहां वह ब्राह्मणों का सत्कार करेगा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और ब्राह्मण भी उसकी स्तुति करेंगे और जहां कहीं चोरों को पायेगा वहीं उनको मारकर यमपुरी पहुँचा देगा। इस प्रकार से सब संसारी चोर मां, बाप, भाई और पुत्र आदि को पुकार पुकार कर नाश हो जायँगे ४।६ इसके पीछे हे भारत! सत्ययुग का समय लग जायगा, उस समय में अधर्म का नाम न रहेगा, धर्मकी दिन दिन वृद्धि होगी और मनुष्य भी क्रियावान् होने लगेंगे ७ और बाग और यज्ञ की सीमाके वृक्ष, तड़ाग, पुष्करिणी, देवमन्दिर, अनेक यज्ञ और ब्राह्मण, साधु, मुनि और तपस्वी प्रकट हो जायँगे ८।६ और जितने पाखण्ड के आश्रम होंगे सब नाश हो जायँगे प्रजा में सत्य स्थित हो जायगा और मनुष्यों का वासनारूपी बीज ब्रह्मज्ञान से नष्ट हो जायगा १० हे राजेन्द्र! ऋतु ऋतु की खेतियां अच्छे प्रकार से होने लगेंगी और मनुष्य दान, व्रत और नियम के करने में प्रसन्नता रक्खेंगे ११ ब्राह्मण वेदपाठ, जप और यज्ञ आदि कर्मों के करने में तत्पर होकर धर्म ही करने की कामना रक्खेंगे और राजा लोग पृथ्वी का पालन धर्म से करेंगे १२ और व्यवहार में वैश्यों की और षट्-कर्मों में ब्राह्मणों की और पराक्रम में क्षत्रियों की प्रीति होने लगेगी और शूद्र भी तीनों ऊंचे वर्णों की सेवा करने में तत्पर हो जायँगे । हे युधिष्ठिर! यह सत्ययुग का धर्म है और त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म हम तुमसे कहही चुके हैं। हम चिरंजीवी हैं इससे हमने संसार के बहुत से मार्ग देखे और अनुभव किये हैं। उन सबके अनुसार मैंने वायु के कहे हुए परम प्रतिष्ठित पुराण को स्मरण करके यह भूत और भविष्य वृत्तान्त सुनाया है १३।१७ अब हम तुम्हारा धर्म का सन्देह दूर करने के लिये दूसरी शिक्षा करते हैं, उसको भी तुम भाइयों सहित सुनो १८ वह शिक्षा यह है कि तुम सबको अपना मन धर्म ही में लगाना चाहिये क्योंकि दोनों लोकों में केवल धर्मात्मा ही को सुख मिलता है और दूसरी बात यहहै कि तुमको ब्राह्मणका अपमान करना किसी अवस्था में उचित नहीं है क्योंकि ब्राह्मण क्रोधित होकर प्रतिज्ञा से तीनों लोकों को नाश करसक्ता है १६।२० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! बुद्धिमान्, परमप्रकाश-वान्, कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी के उक्त वचनों को सुनकर बोले २१ कि महाराज! किस धर्म के अनुसार मुझको प्रजा की रक्षा करना उचित है और वह धर्म कौन सा है जिसपर चलने से मैं अपने धर्ममार्ग से भ्रष्ट न होऊं २२ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! तुमको सब प्राणियों पर दया करना, हित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करना, प्रीति मानना, दूसरे के गुण में दोष न लगाना, सत्य बोलना, मृदुता रखना, जितेन्द्रिय रहना, प्रजा की रक्षा करना, धर्म करना, अधर्म छोड़ना, देवता और पितरों को पूजना, प्रमाद से किये हुए कर्म को दान से दूर करना, धैर्य रखना, पृथ्वी को जोतना और सदा प्रसन्न और सुखी रहना उचित है २३। २६ हे तात, युधिष्ठिर! हम तुमसे सब भूत और भविष्य धर्म अच्छे प्रकार से कह चुके और हमको भूतल में कोई ऐसी भूत अथवा भविष्य बात नहीं दीखती है जिसको तुम न जानते हो इससे तुमको अपने हृदय में क्लेश मानना उचित नहीं है। ज्ञानियों को काल के अनुसार बड़ी पीड़ा पाने पर भी मोह नहीं होता है २७ हे महाबाहो! काल बड़ाही बलवान् है, देवता भी काल के आने पर मोहित हो जाते हैं और काल ही की प्रेरणा से प्रजा को मोह हो जाता है २८ हे निष्पाप! इससे तुम मेरे कहे हुए वाक्यों में किसी प्रकार की शङ्का न करो, शङ्का करने से तुम्हारा धर्म लोप हो जायगा २६ तुम कौरववंशी हो। तुमको मन, वाणी, कर्म से सब उक्त धर्मों को करना उचित है ३० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज! आपने जो कानों को सुख देने वाले वाक्य कहे हैं उनको मैं अवश्य यत्नपूर्वक करूंगा ३१ हे विप्रेन्द्र! मुझ को लोभ, भय और मत्सरता नहीं है मैं निस्संदेह आप की शिक्षा के अनुसार चलूंगा ३२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी के वचनों को सुनकर पाण्डव और श्रीकृष्णजी अतिप्रसन्न हुए और जो वेद-पाठी ब्राह्मण वहां आये थे वे उस मार्कण्डेयजी के कहे हुए पुराने इतिहास को सुनकर विस्मित हो गये॥ ३३। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९१॥

एकसौ बानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से ब्राह्मणों का माहात्म्यवर्णन करने में राजा परीक्षित् के पुत्र राजा शल, दल और वामदेवजी का संवाद कहना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी! अब आप ब्राह्मणों के उस माहात्म्यको वर्णन कीजिये जो महातपस्वी मार्कण्डेयजी ने पाण्डवों से वर्णन किया था १ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मार्कण्डेयजी ने युधिष्ठिरके पूछने पर कहा कि मैं ब्राह्मणों का एक अपूर्व चरित्र वर्णन करता हूं सुनो २ अयोध्यापुरी में परीक्षित् नामी एक इक्ष्वाकुवंशी राजा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

था। एक समय वह राजा अहेर खेलने को गया और वहां उसने अपना घोड़ा एक मृग के पीछे डाल दिया और सब संग साथियों से छूटकर अकेला दूर निकल गया ३। ४ और एक नीले रंग के बड़े घने वन के निकट जा पहुँचा। राजा वहां थकावट और भूख प्यास से व्याकुल होकर उस वनखण्ड में चला गया और वहां एक रमणीक सरोवर देखकर घोड़े से उतर पड़ा और उस सरोवर में घोड़ा सहित स्नान करके, घोड़े को बांध उसके आगे कमल के पत्ते और नाल डाल कर आप उसी सरोवर के तटपर आसन बिछाकर लेट गया और विश्राम करने लगा। थोड़ी देर में उसने कुछ गाने की सी मधुर वाणी सुनी ५। ७ उसको सुनकर वह विचारने लगा कि यहां मनुष्य की तो गति है ही नहीं, यह गाने का शब्द किसका आरहा है ८ इसी अवसर में एक परम सुन्दरी कन्या फूल बीनती हुई और गाती हुई राजा के समीप आ निकली। राजा उसको देखकर पूछने लगा कि हे सुन्दरि! तू कौन है और किसकी बेटी है? वह बोली कि मैं कन्या हूं। तब राजा ने कहा मैं भी तेरा चाहने-वाला हूं ९। १० यह सुनकर वह कन्या बोली कि मैं विना नियम किये तुम को प्राप्त नहीं हो सकती हूं। राजा ने पूछा वह नियम क्या है? कन्या बोली मुझको कभी जल मत दिखलाना ११ राजा बोला बहुत अच्छा। इसके पीछे राजा ने उस कन्या से अपना विवाह करलिया और बड़े आनन्द से उस के साथ क्रीड़ा करके चुपचाप वहीं बैठ गया १२ इसी अवसर में राजा की सेना आ पहुँची और वह उसको चारों ओर से घेरकर बैठ गई तब राजा उस स्त्री को सुन्दर पालकी में बैठाकर वहां से चल दिया और अपने नगर के निकट आकर एक एकांतस्थान में उस स्त्री सहित बैठ गया १३। १४ और उसके साथ ऐसा क्रीड़ासक्त हो गया कि सब राजकाज भूल गया। उस राजा के प्रधान बड़े चतुर थे। उन्होंने राजा का यह हाल देखकर उस स्थान के समीप रहनेवाली स्त्रियों से पूछा कि यहां क्या हुआ करताहै? वे स्त्रियां बोलीं १५। १६ कि यहां यह बात बड़ी अपूर्व है कि जल नहीं जानेपाता है। यह सुनकर उन प्रधानों ने उस स्थानके निकट एक बड़ा रमणीक वन बनवाया। उसमें फूले फले हुए बहुत से वृक्ष लगवाये परन्तु उसके भीतर जल का कोई स्थान नहीं बनवाया और उस वन के बगल में एक गुप्त बावली अमृतरूपी निर्मल जलसे भरी हुई बनवाई। जब वह बनकर तैयार होगया तब उन प्रधानों ने राजा से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकांत में जाकर कहा कि यह समीप का वनबड़ा उत्तम और जलहीन है, आप इस वन में क्रीड़ा किया कीजिये १७ यह सुनकर राजा उस स्त्री को लेकर उस रमणीक वन में चला गया और वहां उसके साथ विहार करने लगा। एक समय राजा वहां भूख और प्यास के कारण से दुःखी हुआ और वहां उसने एक गृह देखा। राजा उस प्रिया सहित उस गृह में घुस गया और वहां उसने अमृतरूपी जल से भरी हुई एक बावली देखी १८।२० राजा उसके किनारे पर खड़ा हो गया और नियम को भूलकर अपनी प्रिया से बोला कि चलो इस बावली में उतरकर क्रीड़ा करें यह सुनकर वह स्त्री जल में उतरकर डूब गई और फिर नहीं उछली २१।२२ राजा उस जलमें चारों ओर उसको ढूढ़ने लगा परंतु उसका कुछ पता नहीं लगा। तब उसने उस बावली का जल निकलवाकर उसको सुखा दिया और वहां उसने एक सुन्दर मेंडक को बैठा हुआ देखा। उसको देखकर राजा ने अनुमान किया कि यह मेंडक ही उस स्त्री को खागयाहै। यह अनुमान करके राजा ने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि सब मनुष्य जहां जहां मेंडक पावें तहां तहां उनको मारडालें और जो मनुष्य मुझसे द्रव्य लेने की इच्छा रखते हों वे मेरेपास मेंडकरूपी भेंट ले लेकर आवें २३।२४ यह आज्ञा पाकर मनुष्य मेंडकोंको सब दिशाओं में जा जाकर मारने लगे उससे मेंडकोंको बड़ा भय हुआ और वे सब मेंडक मिलकर अपने राजा के पास गये और उससे सब वृत्तान्त कहा २५ उसको सुनकर मेंडकों के राजाने तपस्वी का रूप बनाकर राजा से आकर कहा २६ कि महाराज! आप क्रोध को छोड़कर कृपा कीजिये। इन निरपराध मण्डूकों को मारना आपको उचित नहीं है। यह वार्त्तासुनिये ॥२७॥

चौ०। हे अच्युत तजि क्रोध महान। मति मारो मण्डूक अयान।
अबुध होत जे जन मतिहीन। होत लक्ष्मी तिनकी क्षीन २८
मण्डूकनको वध करि आप। नहिं त्यागिहौ क्रोध को दाप।
याते तजहु अधर्म अकार्थ। मेंडकवध में नहिं कछु स्वार्थ २९

यह सुनकर राजा ने जिसका मन अपनी प्रिया के शोक में व्यग्र होरहा था उससे कहा ३० कि मैं मण्डूकों के अपराध को क्षमा नहीं करसक्ता हूं, क्योंकि उन दुरात्माओं ने मेरी प्यारी को खालिया है। मुझे उनको मारनाही उचित है। आपभी मुझको न रोकिये ३१ यह सुनकर वह मण्डूकों का राजा मनमें दुःखी होकर बोला हे राजन्! अब तुम खेद मत करो, प्रसन्न हो मैं आयुनामी मण्डूकों का राजा हूं और वह स्त्री जिसका तुम शोक कर रहे हो सुशोभनाम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मेरी पुत्री है। वह सदैव की दुःशीला है। कई बार इसी प्रकार से वह राजाओं के साथ छल कर चुकी है ३२ तब राजा बोला कि मैं उस पर आसक्त हूं, आप कृपा करके उसको मुझे दीजिये ३३ यह सुनकर उस मण्डूकपति ने अपनी कन्या उस राजा को दे दी और कन्या को शिक्षा की कि तू इस राजा की सेवा करियो और क्रोध के कारण से यह शाप भी दिया कि तैंने बहुत से राजाओं के साथ छल किया है इससे तेरे इस असत्य आचार के कारण से तेरे पुत्र ब्राह्मणों के अप्रिय करनेवाले होंगे ३४।३५ इसके पीछे वह राजा उस अपनी प्रिया को पाकर ऐसा प्रसन्न हुआ मानो तीनों लोकों का राज्य मिला है और उस प्रसन्नता के कारण से उसने नम्रीभूत वाक्य कहकर मण्डूकों के राजा को दण्डवत् की और उससे कहा कि आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है ३६ तदनन्तर वह मण्डूकों का राजा अपनी पुत्री से बिदा होकर जहां से आया था तहां को चला गया ३७ और वह राजा उस प्रिया के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। उसके तीन पुत्र हुए शल १ दल २ और बल ३। राजा उनमें से बड़े पुत्र शल को राज्य देकर वन में तपस्या करने को चला गया ३८ एक समय वह शल राजा अहेर खेलने को गया और वहां उसने अपना रथ एक मृग के पीछे डालकर सारथी से कहा रथ को हांककर मुझे शीघ्र ले चल। यह सुनकर वह सारथी बोला ३९।४० महाराज! आप निरर्थक हठ न कीजिये इस मृग को आप वाम्य घोड़ों को भी रथ में जोतने पर नहीं पा सकेंगे। यह सुनकर राजा बोला कि तू मुझको वाम्य घोड़ों को बता, नहीं मैं तुझे मार डालूंगा। वह सारथी यह सुनकर डर गया परंतु वामदेवजी के शाप के भय से उसने उन घोड़ों को नहीं बताया। तब राजा ने तलवार निकाल ली और उससे कहा कि शीघ्र बता, नहीं तो मैं तुझे अभी मारे डालता हूं। तब उस सारथी ने भयभीत होकर राजा से कहा कि महाराज! वे वाम्य घोड़े वामदेवजी के हैं और मन की समान शीघ्र चलते हैं ४१ यह सुनकर राजा ने कहा कि अच्छा हमारा रथ वामदेव के आश्रम को ले चल। उसने वैसा ही किया। राजा उस आश्रम में पहुँचकर वामदेवजी से बोला कि भगवन्! मेरे बाणों से बिधबिधकर मृग भाग जाते हैं इससे आप मेरे ऊपर कृपा करके मुझे वाम्य घोड़े दे दीजिये। यह सुन कर वामदेवजी ने राजा को दोनों घोड़े दे दिये और उससे कहा कि जब तुम्हारा काम हो चुके तब इन घोड़ों को लौटा देना। वह राजा उन घोड़ों को लेकर और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ऋषि से आज्ञा मांगकर चला आया और उनको रथ में जोतकर एक मृग के पीछे रथ दौड़ाया। जब उसने उन घोड़ों की चाल देखी तब वह सारथी से कहने लगा कि ये रत्नरूपी घोड़े ब्राह्मणों के योग्य नहीं हैं और न इस योग्य हैं कि वामदेवजी को लौटा दिये जावें। यह कहकर उस राजा ने मृग को समीप जाकर मार लिया और घोड़ों को अपने नगर में लाकर अपने महल के भीतर बँधवा दिया ४२।४३ वामदेवजी उन घोड़ों के लौटने की बाट देखते रहे और अपने मन में विचारते रहे कि यह क्या कारण है जो राजा ने घोड़े लौटाये नहीं। जब एक मास व्यतीत हो गया और घोड़े राजा ने नहीं लौटाये तब वामदेवजी ने अपने आत्रेयनामी शिष्य को आज्ञा दी ४४।४५ कि तू राजा के पास चला जा और हमारी ओर से उससे कहियो कि जो तुम्हारा कार्य हो चुका हो तो वाम्य घोड़ों को अब लौटा दो। यह सुनकर शिष्य राजा के पास गया और उसने राजा को वामदेवजी के वाक्य सुनाकर घोड़े मांगे। राजा ने उत्तर दिया कि ये घोड़े राजाओं के योग्य हैं, ब्राह्मणों के योग्य नहीं हैं। ब्राह्मणों को घोड़ों से क्या प्रयोजन है। तू जा और वामदेवजी से इसी प्रकार से कह देना ४६ यह सुनकर वह शिष्य वामदेवजी के पास लौट आया और उनसे राजा का उत्तर कहा। उसको सुनकर वामदेवजी क्रोधित होकर आप राजा के पास गये और उससे घोड़े मांगे परंतु राजा ने नहीं दिये ४७ तब वामदेवजी ने कहा कि हे राजन्! मानो, हमारे घोड़े दे दो। हम ब्राह्मण हैं, तुम क्षत्रिय हो। हमारे तुम्हारे बीच में वरुण देवता स्थित हैं। क्यों अपने को वरुण की पाश से बँधवाना चाहते हो ४८ राजा बोला कि हे वामदेवजी! ब्राह्मणों की सवारी में सुन्दर शिक्षित बैल होने चाहिये, उसी सवारी में बैठकर जहां तुम्हारी इच्छा हो चले जाओ और इससे भी आपको कुछ नहीं है क्योंकि आपसे महाऋषियों को तो वेदों के छन्द धारण करते हैं ४९ वामदेवजी बोले कि हां निस्संदेह वेद के छन्द हमसे ऋषियों को परलोक में धारण करते हैं परंतु इस लोक में यही घोड़े हमारी और हमसे दूसरे ऋषियों की सवारी देते हैं ५० राजा बोला कि आप चार गधे और हरिजात के घोड़े जो वायु की तुल्य शीघ्रगामी हैं अपनी सवारी के लिये ले लीजिये और सवार होकर चले जाइये। वाम्य घोड़े राजाओं की सवारी के योग्य हैं इससे वे घोड़े मेरे हैं आपके नहीं हैं ५१ वामदेवजी बोले कि ब्राह्मण का व्रत बड़ा घोर होता है, तुम हमारे घोड़े दे दो नहीं तो तुम अभी मारे जाओगे।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चार यातुधाननामी राक्षस बड़े भयानकरूप से लोहे के त्रिशूल लिये हुए मेरी आज्ञा से अभी यहां आकर तुम्हारे चार टुकड़े करके चारों ओर फेंक देंगे ५२ राजा बोला कि मेरे जिन मनुष्यों ने इस ब्राह्मण को मेरे मारने के लिये उद्यत मन, वाणी या कर्म से जाना है वे इसी समय यहां आकर शूल और खड्ग से इस ब्राह्मण को शिष्यसहित मारकर गिरा दें ५३ वामदेवजी बोले कि तुम हमसे वाम्य घोड़े इस नियम से मांग लाये थे कि मैं फिर लौटाल जाऊंगा सो यदि तुमको अपना जीवन प्रिय है तो शीघ्र अपने नियम को पूरा करो ५४ राजा बोला कि निस्सन्देह अहेर खेलना ब्राह्मणों के लिये नहीं है, तुम मिथ्या कहते हो, मैं तुमको इस मिथ्यावाद करने का दण्ड नहीं देता हूं जाओ। हां और जो कुछ तुम्हारी आज्ञाहै उसको मैं उत्तमलोक प्राप्त करनेके लिये अङ्गीकार करसक्ताहूं ५५ वामदेवजी बोले कि जो मनुष्य ब्राह्मण को मन, वाणी और कर्म से भी दण्ड देने के योग्य नहीं जानता है उसी का कल्याण होता है ५६ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! उक्त वार्त्तालाप के होने पर वहां चार घोररूप राक्षस अकस्मात् त्रिशूल लिये हुए आ गये और उन्होंने उस राजा को मार डाला। मरते समय राजा ने चिल्लाकर कहा ५७ कि हे ब्रह्मन्! जो मेरा छोटा भाई दल और ये वैश्य मेरी आज्ञा का पालन करेंगे तो तुम्हारे वाम्य घोड़े तुमको नहीं मिलेंगे। तुमसे मनुष्य को धर्मात्मा और शीलवान् नहीं कहना चाहिये ५८ यह कहकर राजा निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय इक्ष्वाकुवंशियों ने राजा को मरा हुआ जानकर दल का राज्याभिषेक कराया ५९ तब वामदेवजी दल के पास गये और उससे कहा कि सब धर्मों में यही कहा है कि ब्राह्मण की वस्तु देना ही चाहिये इससे जो तुमको अधर्म से डर है तो हमारे वाम्य घोड़े शीघ्र हमको दे दो। यह सुनकर दल क्रोधित होकर अपने सारथी से बोला ६०। ६१ कि हमारे विष के बुझाये हुए बाणों में से एक बाण ले आ, उससे बिधकर यह वामदेव दुःख पाकर कुत्ते के काटे के समान मरेगा ६२ वामदेवजी बोले कि मैं जानता हूं तेरे शेनजित नामी एक पुत्र दश वर्ष का है, मेरे वचन से प्रेरित होकर तेरे छोड़े हुए बाण उसको मारेंगे ६३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! यह सुनकर दल ने वह विष में बुझा हुआ बाण वामदेवजी को मारने के लिये छोड़ा परंतु उस बाण ने महल में जाकर राजपुत्र को मार डाला। दल उस बात को सुनकर कहने लगा ६४ कि मैं अब इक्ष्वाकुवंशियों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

का प्रिय करता हूं, जाओ दूसरा विष में बुझा हुआ बाण लाओ और मेरे पराक्रम को देखो मैं इस ब्राह्मण को अभी मारे डालता हूं ६५ वामदेवजी बोले कि हे मानवेन्द्र! जब तू धनुष पर बाण चढ़ाने चाहेगा तभी तू जड़ के तुल्य हो जायगा और बाण न छोड़ सकेगा ६६ इसके पीछे दल ने ज्यों ही बाण धनुष पर चढ़ाया त्यों ही वह स्तम्भित हो गया और कहने लगा कि हे इक्ष्वाकुवंशियो! देखो मेरे हाथ और पैर रह गये हैं, अब मैं इस बाण को नहीं चलासकता हूं इस कारण से अब मेरी इच्छा वामदेवजी को मारने की नहीं है ये वामदेवजी जीते रहें ६७ वामदेवजी बोले कि जो तेरी ऐसी ही इच्छा है तो तू यह बाण अपनी रानी के छुआ दे ऐसा करने से तू इस पाप से छूट जायगा। दल ने वैसा ही किया और उसके हाथ पैर खुल गये। उस समय दल की रानी ने वामदेवजी से कहा ६८ कि महाराज! मैं ब्राह्मणों की सेवा करने की इच्छा से अपने इस निर्दयी पति से प्रतिदिन कल्याणकारी बातें कहती थी, उसको समझकर मैं आपसे चाहती हूं कि मुझको पुण्यलोक मिले ६९ वामदेवजी बोले कि हे सुन्दरि, राजपुत्रि! तैंने राजा के कुल की रक्षा की, अब मैं तुझको वरदान देता हूं कि तू इस इक्ष्वाकुकुल के बड़े राज्य को पालन कर ७० रानी बोली कि महाराज! जो आपने मुझपर कृपा की है तो राजा को भी पाप से मुक्त कर दीजिये और ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरा कल्याण हो और मैं पुत्र और बान्धवोंसहित राज्य भोगूं ७१ यह सुनकर वामदेवजी बोले कि 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही हो। इसके पीछे राजा दल ने प्रसन्न होकर वामदेवजी को प्रणाम किया और उनको वाम्य घोड़े दे दिये ॥ ७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

एकसौ तिरानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से बकऋषि और इन्द्र का संवाद वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सब ऋषि, ब्राह्मण और राजा युधिष्ठिर ने उक्त कथा को सुनकर मार्कण्डेयजी से पूछा कि महाराज! बकनामी ऋषि की बड़ी आयु किस कारण से हुई थी। मार्कण्डेयजी बोले कि हां बक-ऋषि बड़े तपस्वी और आयुष्मान् थे, आपको इसमें क्या संदेह है, यह बात निश्चय है, इसमें विचार करना उचित नहीं है १। २ यह सुनकर भाइयोंसमेत कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बोले कि हमने सुना है कि महात्मा बक और दालभ्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ऋषि चिरंजीवी, इन्द्र के मित्र और प्रमाणीक ऋषि थे। हे भगवन्! मैं आपसे उन बकऋषि और इन्द्र के दुःख सुखरूपी समागम को तत्त्वपूर्वक सुना चाहता हूं ३।५ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! अच्छा, सुनो। पूर्वकाल में जब देवासुरसंग्राम प्रवृत्त होकर निवृत्त हुआ और इन्द्र तीनों लोकों का राज्य करने लगा ६ और वर्षा अच्छी होने लगी, खेतियां भलेप्रकार से उगने लगीं, प्रजा अपने अपने धर्म में रत और रोगरहित होने लगी और सब मनुष्य बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे, तब इन्द्र एक दिन ऐरावत हाथी पर सवार होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर अपनी प्रजा के देखने को आया और चित्र विचित्र आश्रम, अनेक नदी, नगर, ग्राम, देश, धर्मात्मा राजा, कूप, बावड़ी, तड़ाग, अनेक सरोवरों को जिनके किनारे ब्रह्मचारी ब्राह्मणलोग बास कर रहे थे देखता हुआ पूर्वदिशा के रमणीक देश में जो समुद्र के समीप और बहुत से वृक्षों से परम शोभायमान था पहुँचा। उस देश में उसने एक बड़ा सुन्दर आश्रम जिसमें मृग और पक्षी कलोल कर रहे थे देखा और उसी आश्रम में बकनामी ऋषि को पाया ७। १४ वह ऋषि देवेन्द्र को देखकर प्रसन्न हुआ और उसने फल, मूल पाद्य, अर्घ और आसन आदि निवेदन करके उनकी पूजा की १५ बलासुरघाती देवेन्द्र वहां सुखपूर्वक बैठ गये और उस ऋषि से पूछने लगे कि हे निष्पाप, मुनिनायक, ब्रह्मन्! तुम्हारे जन्म के अब एक लाख वर्ष व्यतीत हो चुके, कहिये चिरञ्जीवी पुरुषों को किस बात का दुःख रहता है १६। १७ बकऋषि बोले कि हे देवेन्द्र! अप्रियपुरुषों के साथ वास होना, प्रिय पुरुषों से वियोग होना और असत्पुरुषों का मिलना यही चिरञ्जीवी मनुष्यों को दुःख होता है १८ पुत्र, स्त्री, स्वजातीय और सुहृदों का नाश और शत्रुओं के वश में रहना इनसे अधिक कोई दुःख नहीं है १९ और धन आदि ऐश्वर्य सेहीन होकर दूसरे मनुष्यों से निरादर पाना भी महादुःख है इससे अधिक और दुःख नहीं है २० सो हे देवेन्द्र! चिरञ्जीवी मनुष्यों को कुलीनों के कुल की क्षय और अकुलीनों के कुल की वृद्धि और संयोग वियोग देखना पड़ता है और यह बात प्रत्यक्ष है और आप भी जानते हैं कि नीचकुल के मनुष्यों की बढ़ोतरी होने से कैसी विरुद्ध बातें होती हैं २१। २२ इसके सिवाय बड़ी आयुवालों को देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, उरग और राक्षसों का विपर्यास अर्थात् नाश देखना पड़ता है इससे और क्या अधिक दुःख है २३ कुलीन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पुरुष दुष्टकुल के पुरुषों के वश में होकर अनेक क्लेश भोगते हैं और धनाढ्य लोग दरिद्रियों का अपमान करते हैं और ज्ञानी और पण्डित लोग क्लेशित और अज्ञानी सुखी रहते हैं सो हे देवेन्द्र! चिरञ्जीवी मनुष्यों को इस प्रकार के अनेक मनुष्यसम्बन्धी दुःख, क्लेश और विपरीत धर्म का आचरण देखना पड़ता है। यह सुनकर इन्द्र बोला हे महाभाग! हे महर्षे! २४। २६ फिर चिरञ्जीवियों को कोई सुख भी होता है? बकऋषि बोले कि जो पुरुष अपने घर में आठवें अथवा बारहवें दिन शाक आदि बनाकर खा लेता है परंतु अपनी जीविका कुमित्रों के आश्रय से उत्पन्न नहीं करता है उससे बढ़कर सुखिया कोई नहीं है। अपने घर में स्वतन्त्रता से अपने ही उद्योग से लाये हुए फल और शाक आदि को बनाकर खा लेना परम कल्याणकारी है और दूसरे के घर में निरादरसहित स्वादिष्ठ अन्न भी खाना श्रेष्ठ नहीं है इसी से सत्पुरुषों ने ऐसा कहा है कि जो कृपण, दुरात्मा और कुत्ते के समान रुधिर पान करनेवाला मनुष्य दूसरे के अन्न को खाने की इच्छा रखता है उसको और उसके भोजन करने को धिक्कार है और जो द्विज पितरों को और अतिथियों को अन्नदान करके शेष बचे हुए अन्नको आप खाकर रहता है उससे भी अधिक सुखी कोई नहीं है और उस शेष बचे हुए भोजन से भी अधिक कोई स्वादिष्ठ और पवित्र भोजन नहीं है और जो मनुष्य ब्राह्मण को भात खिलाता है उसको उतने सहस्र गोदान करने का फल मिलता है जितने ग्रास ब्राह्मण खाता है और उस मनुष्य के यौवन अवस्था में किये पाप भी सब दूर हो जाते हैं २७। ३५ और जिसके द्वार पर ब्राह्मण भोजन करके आचमन करता है उसके सब पाप क्षणमात्र में ही धुल जाते हैं ३६ हे युधिष्ठिर! देवेन्द्र इस प्रकार से बकऋषि से अनेक प्रकार की बहुत सी कथा सुनकर अपने स्थान को चला गया॥ ३७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिणवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९३॥

एकसौ चौरानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से राजा शिवि का माहात्म्य वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से फिर पूछा कि महाराज! आपने ब्रह्मऋषियों का वृत्तान्त तो सुनाया परंतु अब मैं राजऋषियों की कथा सुनना चाहता हूँ। मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ, सुनिये १ कुरु के वंश में एक सुहोत्रनामी राजा था। एक दिन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वह राजा महाऋषियों से मिलकर अपने घर को लौटा हुआ आता था। मार्ग में उसको राजा उशीनर का शिबिनामी पुत्र रथ में बैठा हुआ सम्मुख आते हुए मिला उन दोनों ने आपस में मिलकर अपनी अपनी आयु के अनुसार एक दूसरे को दण्डवत् की और अशीर्वाद दिया परंतु दोनों ने अपने अपने को गुणों में तुल्य जानकर एक ने दूसरे को जानेको मार्ग नहीं दिया अर्थात् एक ने कहा तू हट जा मैं चला जाऊं और दूसरे ने कहा तू अलग हो जा मैं निकल जाऊं। उसी समय उन दोनों के समीप नारदजी आ गये और उन्होंने उनसे पूछा कि तुम दोनों एक दूसरे के मार्ग को रोके हुए क्यों खड़े हो ? २ राजा बोले कि धर्म जाननेवालों ने पूर्व समय में ऐसा कहा है कि अपने से श्रेष्ठ को, वृद्ध को, समर्थ को और स्त्री को मार्ग देना उचित है सो हम दोनों बराबर हैं, एक दूसरे को क्योंकर मार्ग दें। यह सुनकर नारदजी ने तीन श्लोक पढ़े ३ जिनका आशय यह है कि मनुष्य कोमल वचनों से क्रूरपुरुष को, क्रूर वचनों से कोमल जन को, साधु को असाधु वचनों से और असाधु को साधु वचनों से अवश्य वशीभूत कर सकता है और चाहिये भी यही कि नीच पुरुष को दान से, झूंठे को सत्य से, क्रूर को क्षमा से और असाधु को साधुता से जीत लेवे सो देवताओं के निर्णय के अनुसार यह उशीनर का पुत्र राजा शिबि तुम दोनों में अधिक शीलवान् और साधु है अब तुम दोनों आपस में समझ लो और जो तुममें से अधिक हो वह हटकर चला जावे, तुम दोनों उदार चित्त हो। यह कहकर नारदजी चुपके हो रहे और वह कौरववंशी राजा शिबि की परिक्रमा करके प्रशंसा करता हुआ मार्ग देकर चला गया ४। ७ हे युधिष्ठिर ! यह राजा शिबि का माहात्म्य नारदजी ने कहा था ॥ ८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

एकसौ पंचानबेवां अध्याय।

मार्कण्डेयजी का राजा युधिष्ठिर से दान की प्रशंसा में राजा ययाति का चरित्र वर्णन करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! अब दूसरा चरित्र सुनो। एक समय नहुष का पुत्र राजा ययाति अपने पुरवासी और देशनिवासियोंसहित अपनी सभा में बैठा हुआ था। उसी समय एक ब्राह्मण ने राजा से आकर कहा कि महाराज ! मैं गुरुदक्षिणा देने के लिये आपसे नियमपूर्वक कुछ भिक्षा मांगने आया हूं १ राजा बोला वह नियम क्या है ? ब्राह्मण ने कहा कि महाराज!

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इस लोक में दाता याचक पर भिक्षा मांगने पर क्रोध करने लगते हैं इससे मैंने आप से पूछा है कि आप मेरी प्रियवस्तु को आज किस प्रकार मांगने से देंगे २। ३ राजा ने कहा कि हे ब्राह्मण! तुम दानपात्र ब्राह्मण हो सुनो, मैं दान करके किसी से यह नहीं कहता हूं कि मैंने यह दान किया और न यह सुनता हूं कि यह पदार्थ देने के योग्य नहीं है अर्थात् मेरे पास जो कुछ है सब मांगने पर दे सकता हूं और दान देकर कभी शोच नहीं करता हूं किंतु बहुत प्रसन्न होता हूं, मुझे याचना करनेवाला ब्राह्मण बड़ा प्यारा लगता है, मेरा स्वभाव याचना करनेवाले पर क्रोध करने का नहीं है। लो अब मैं तुमको सहस्र गोदान देता हूं ४। ५ यह कहकर राजा ने उस ब्राह्मण को सहस्र गौवें दे दीं और वह ब्राह्मण गौ लेकर आशीर्वाद देता हुआ चला आया॥ ६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५॥

एकसौ छानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से वृषदर्भ और सेदुकनामी राजाओं की कथा तथा इन्द्र और अग्नि द्वारा राजा शिबि के धर्म की परीक्षा का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! मैं राजऋषियों का और माहात्म्य सुना चाहता हूं १ मार्कण्डेयजी बोले अच्छा सुनो, वृषदर्भ और सेदुकनामी दो राजा बड़े प्रतापी, नीति और अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता थे २ उनमें से सेदुक को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ कि वृषदर्भ का यह गुप्त वृत्त है कि ब्राह्मण को सिवाय सोना और चांदी के और वस्तु देना उचित नहीं है ३ कुछ काल पीछे एक वेदपाठी ब्राह्मण ने सेदुक से आकर अपने गुरु को गुरुदक्षिणा देने के लिये भिक्षा मांगी और कहा कि महाराज! मुझको सहस्र घोड़े दीजिये। राजा बोला कि हे ब्राह्मण! मेरी सामर्थ्य गुरु के लिये दक्षिणा देने की नहीं है ४। ६ तुम राजा वृषदर्भ के पास जाकर भिक्षा मांगो, वह राजा धर्मज्ञ है, उसका यह गुप्त व्रत है। वह तुमको अवश्य सहस्र घोड़े देगा ७ यह सुनकर उस ब्राह्मण ने वृषदर्भ के पास जाकर सहस्र घोड़े मांगे। वृषदर्भ ने उस ब्राह्मण के कोड़ा मारा तब उस ब्राह्मण ने कहा कि तुमने मुझ निरपराधी को क्यों मारा है, मैं तुमको शाप देता हूं। यह सुनकर राजा वृषदर्भ बोला कि हे वेदपाठिन्! जो कोई तुमको कोई पदार्थ न दे तो क्या उसको शाप देना चाहिये बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम शाप देते हो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्राह्मणको ऐसा उचित नहीं है ८।१० ब्राह्मण बोला कि मुझको सेदुकने आपके पास भेजा है और मैंने उसी के कहने के अनुसार आपसे भिक्षा मांगी है ११ यह सुनकर राजा बोला चाबुक मारनेपर अब मैं कैसे आपको निष्फल जाने दूं। आज आप ठहरिये प्रातःकाल जो कुछ बलि अर्थात् आमदनी आवेगी वह मैं तुमको दूंगा। यह कहकर उस राजा ने दूसरे दिन उस ब्राह्मण को उस सब दिन की आमदनी देदी जो सहस्र घोड़े के मूल्यसे भी अधिक थी १२।१३ अब और वृत्तान्त सुनो एक समय देवताओं ने आपस में विचार किया कि चलो हमलोग राजा उशीनर के पुत्र शिबि के धर्म की परीक्षा करें। ऐसा विचार कर इन्द्र और अग्निदेव चल दिये। अग्नि कपोत बनकर आगे आगे हो लिया और इन्द्र श्येन अर्थात् बाज बनकर मांसार्थी उस कपोत के पीछे पीछे दौड़ता हुआ चला और वे दोनों राजा शिबि के समीप आये। वहां आकर कपोत राजा शिबि की गोद में जो दिव्य आसनपर बैठा हुआ था गिरपड़ा १४।१६ उसको देखकर राजा के पुरोहित ने राजा से कहा कि महाराज! इस कपोत ने प्राणों की रक्षा के लिये श्येन के भय से आपकी शरण ली है परन्तु इसका आपकी गोद में गिरना बड़ा अशुभ है इससे आप प्रायश्चित्त करने के लिये धनदान कीजिये १७।१८ इसके पीछे कपोत ने राजा से कहा कि महाराज! मैंने श्येन के डर से अपने प्राणों की रक्षा के लिये आपकी शरण ली है। मैं कपोतरूप धारण किये हुए मुनि हूं, तू मेरा प्राणरूप है, मैंने अपने अङ्गों को तेरे अङ्गों में मिलाकर तेरी शरण ली है १६ मैं वेदपाठी और जप करनेवाला ब्रह्मचारी और तपस्वी, गुरुभक्त और निष्पाप हूं। मैं छन्दो को अच्छे प्रकार से जानता हूं, वेद मेरे अक्षर अक्षर करके पढ़े हुए हैं सो मैं कपोत नहीं हूं, मुझको श्येन को न दीजिये। वेदपाठी को शत्रु के सुपुर्द कर देना अच्छा नहीं है २०।२१ इसके उपरान्त श्येन राजा से बोला २२ कि जन्मान्तर में ऐसा हुआ करता है कि स्त्री माता हो जाती है, पिता पुत्र होजाता है और शत्रु मित्र और मित्र शत्रु हो जाते हैं। आप भी पहिले इस कपोत ही से उत्पन्न हुए थे सो इस पितारूप कपोत की रक्षा करके आप विघ्न न कीजिये २३ राजा बोला कि कभी किसीने ऐसी संस्कृत और श्रेष्ठ वाणी भी सुनी है जैसी यह कपोत और श्येन दोनों बोल रहे हैं। इन दोनोंकी वाणीको सुनकर मैं नहीं जानताहूं शुभ कर्म कैसे किया जाय २४ देखो, जो कोई शरण आये हुए जीवको उसके

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शत्रु को दे देता है उसके राज्य में वर्षाऋतु में वर्षा नहीं होती है, न उसका बोया हुआ अन्न उपजता है और उसको रक्षा चाहने के समय कोई रक्षक भी नहीं मिलता है २५ ऐसे मनुष्य की सन्तान भी बाल अवस्था ही में मरजाती है, पितर भी उसके स्वर्गवास नहीं पाते हैं और उसके दिये हुए हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते हैं २६ ऐसे अज्ञानी को निष्फल अन्न मिलता है, स्वर्गलोक से वह भ्रष्ट होजाता है और इन्द्रादिक देवता उस पर वज्र का प्रहार करते हैं २७ इससे हे श्येन ! जो तू कहै तो हम बैल का मांस बनवाकर भात-सहित जहां तेरी क्रीड़ा का स्थान हो वहां इस कपोत के बदले में पहुँचा दें २८ श्येन बोला कि मैं न बैल का मांस चाहता हूं, न इस कपोत से अधिक मांस चाहता हूं। यह कपोत ही मेरा देवताओं का दियाहुआ भक्ष्य है इसीको मुझे दे दीजिए २९ राजा बोला कि भाई इस कपोत के बदले में चाहे तू मेरा सब अङ्ग ले ले अथवा अङ्ग का टुकड़ा ले ले परंतु कपोत को मत मार। मैं इस कपोत को किसी अवस्था में न दूंगा चाहे मेरे प्राण जाते रहैं। अब तू क्लेश मत करे। यह कपोत सोमसंयुक्त अर्थात् यज्ञ के सदृश सदा रक्षा के योग्य है ३०।३१ इसके बदले में और जो कुछ तू कहे सो मैं करसकता हूं। बता क्या तेरा प्रिय करूं जिससे इस संसार में मेरे धर्म और कर्म की प्रशंसा होवे ३२ यह सुनकर श्येन बोला कि बहुत अच्छा, आप अपनी जंघा का मांस काट कर इस कपोत की बराबर मुझे तौल दीजिये, ऐसा करने से मेरा प्रिय होगा। यह कपोत बचजायगा और आपका संसार में नाम होगा ३३ यह सुनकर राजा ने तराजू मँगाकर अपनी दाहिनी जांघ में से एक टुकड़ा मांस का काट कर चढ़ा दिया परंतु वह कपोत के तुल्य नहीं हुआ। तब राजा ने दूसरा टुकड़ा काटकर चढ़ाया फिर भी कपोत ही भारी रहा। इस प्रकार से राजा ने सब शरीर का मांस काट काट कर चढ़ा दिया परंतु कपोत अधिक ही रहा ३४। ३५ तब राजा आप तराजू पर जा चढ़ा और उसने अपने मन को नेक भी उदास नहीं किया। यह देखकर वह श्येन पक्षी त्रात अर्थात् रक्षा की ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गया। तब राजा ने उस कपोत से पूछा कि हे पक्षिन् ! यह श्येन पक्षी कौन था, असमर्थ ऐसा काम कभी नहीं करेगा। तुम मेरे प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक कहो ३६। ३७ कपोत बोला कि मैं धूम्र की ध्वजा रखने-वाला वैश्वानर नाम से प्रसिद्ध अग्नि हूं और श्येन वज्रधारी शचीपति इन्द्र था।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हम दोनों तेरे धर्म की परीक्षा लेने के लिये इस रूप से आये थे ३८ अब तैंने अपने अङ्ग के जिस जिस स्थान से मांस के टुकड़े काट काटकर मेरे बदले में दिये हैं वहां वहां मैं तेरे शरीर में पवित्र कल्याणरूप और सुनहरे चिह्न किए देता हूं। तू प्रजा का पालन करेगा, यश पावेगा और देवऋषियों का सम्मत होगा और तुम्हारे शरीर को फाड़कर तुम्हारे इस पार्श्व से एक बड़ा यशस्वी शूरवीर और श्रेष्ठपुत्र होगा जिसका नाम कपोतरोमा होगा॥ ३९। ४०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि शिबिचरिते षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९६॥

एकसौ सत्तानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरसे अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना और शिबि के स्वर्ग जानेका वृत्तान्तकहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त वृत्तान्त को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने फिर मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! राजऋषियों का और माहात्म्य कथन कीजिये। यह सुनकर मार्कण्डेयजी अष्टक का माहात्म्य इस प्रकार से वर्णन करने लगे कि विश्वामित्र के पुत्र अष्टक ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सब राजालोग और उसके भाई प्रतर्दन, वसुमना और उशीनर का पुत्र शिबि भी आये थे। जब यज्ञ समाप्त हो गया तब वह राजा भाइयों सहित रथ में सवार होकर स्वर्ग को चला। राह में उनको नारदजी मिले। उन सबों ने उनको दण्डवत् की और कहा कि रथपर सवार हो लीजिये १। २ यह सुनकर नारदजी 'तथास्तु' कहकर रथपर सवार हो लिये। उस समय उन चारों में से एक ने नारदजी से पूछा कि महाराज! मैं आपको प्रसन्न करके कुछ पूछना चाहता हूं। नारदजी बोले कि पूछो। तब उसने कहा जिनकी आयु पूर्ण होती है वे सर्वगुणसंपन्न और प्रसन्न होते हैं सो हम चारों 'पूर्णायु' होकर स्वर्ग प्राप्त करके जाते हैं। हम चारों में से कौन क्षीणपुण्य होकर पहिले पृथ्वी पर गिरेगा। नारदजी बोले कि अष्टक गिरेगा ३। ४ तब उसने पूछा कि क्या कारण है? नारदजी बोले कि मैं अष्टक के घर गया था वह मुझको जब रथ पर सवार कराकर चला तब मैंने कई सहस्रवर्ण विभक्त गाय देखीं। मैंने अष्टक से पूछा कि ये गायें किसकी हैं? अष्टकने कहा कि मैंने इन गायों को छोड़ा है। इस प्रकार से यह अपनी श्लाघा अपने आप करता है इससे यही पहिले स्वर्ग से गिरेगा। तब उसने पूछा कि महाराज! अब हम तीन रह गये, उनमें से पहिले कौन क्षीणपुण्य होकर गिरेगा ५ नारदजी बोले कि प्रतर्दन। तब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उ..ने पूछा कि इसके गिरने का क्या कारण है। नारदजी बोले कि मैं इसके घरपर भी गया था, यह मुझको रथपर चढ़ाकर ले चला। मार्ग में एक ब्राह्मण ने इससे आकर घोड़ा मांगा। इसने कहा कि मैं लौटकर आपको घोड़ा दूंगा तब ब्राह्मण ने कहा कि मुझे शीघ्र घोड़ा दीजिये। तब इसने अच्छा कहकर रथ के दाहिनी ओर का घोड़ा खोलकर दे दिया। आगे चलकर दूसरा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा तब इसने उससे भी उक्त प्रकार से कहकर रथ के बाईं ओर का घोड़ा उसको दे दिया। थोड़ी दूरपर तीसरा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा तब इसने रथ के वामधुर्य घोड़े को खोलकर उसे दे दिया। आगे बढ़कर चौथा ब्राह्मण मिला उसने भी इससे घोड़ा मांगा। यह उस समय जल्दी में था इससे इसने कहा कि मैं दूंगा ठहरो। तब वह ब्राह्मण बोला कि शीघ्र दीजिये। यह सुनकर इसने रथ का चौथा घोड़ा भी खोलकर दे दिया और रथ की धुरी को आप थांभकर कहने लगा कि ब्राह्मणों को योग्य आर अयोग्य का कुछ विचार नहीं है ६।१० इसप्रकार से इसनेदान तो दिया परंतु दोष भी लग गया इससे यह क्षीणपुण्य होकर पृथ्वीपर गिरेगा। तब उसने पूछा कि महाराज! अब दो मनुष्य और रह गये इनमें से पहिले कौन स्वर्ग से क्षीण-पुण्य होकर गिरेगा? नारदजी बोले वसुमना गिरेगा ११ उसने पूछा कि यह किस कारणसे गिरेगा। नारदजी बोले कि एक समय मैं चारों ओर घूमताहुआ वसुमनाके घरगया था १२ और प्रयोजन मेरे जानेका यह था कि मुझे पुष्परथ की आवश्यकता थी। जब मैं इसके घर पहुँचा तब मैंने देखा कि ब्राह्मण स्वस्ति-वाचन पढ़ रहे हैं। जब ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ चुके तब इसने पुष्परथ ब्राह्मणों को दिखलाया, मैंने उस रथकी प्रशंसा की। तब इसने मुझसे कहा कि भगवन्! यह रथ आपका ही है। इसके पीछे मुझको रथ की फिर आवश्यकता हुई और मैं फिर इसके घर गया तब भी इसने यही कहा कि यह रथ सब प्रकार से आपही का है। फिर मैं तीसरी बार गया और मैंने ब्राह्मणों को स्वस्तिवाचन करते देखा। उससमय भी इसने रथ को ब्राह्मणों को दिखलाकर मुझसे कहा कि हे भगवन्! आपने इस पुष्परथ का स्वास्तिवाचन देखा। इस प्रकार से इसने द्रोहवचन अर्थात् देना लेना कुछ नहीं वृथा ही स्तुति की। इससे यह क्षीणपुण्य होकर स्वर्ग से फिर पृथ्वी पर उतारा जायगा १३। १५ तब उसने पूछा कि अब यह एक रह गया यह स्वर्ग में जाकर उतरेगा या नहीं? नारदजी बोले

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कि यह चौथा राजा शिबि स्वर्ग में जाकर पृथ्वी पर नहीं आवेगा। हां मैं चाहे क्षीणपुण्य होकर उतारा जाऊं। उसने पूछा इसका क्या कारण है? नारदजी बोले कि मैं राजा शिबि के समान नहीं हूं। एकसमय राजा शिबि के पास एक ब्राह्मण आया और उसने राजा से कहा कि मैं अन्न चाहता हूं। राजा ने उससे पूछा कि आपके लिये क्या अन्न बनाया जावे १६। १७ ब्राह्मण बोला कि अपने बृहद्गर्भ नाम पुत्र को काटकर उसका मांस बना और अन्य अन्य भी अन्न बना। यह सुनकर राजा ने पुत्र को काटकर उस शिरके मांसको संस्कार कराया और जब हो गया तब उस मांस को एक पात्र में रखकर शिरपर लिये हुए उस ब्राह्मण को ढूंढ़ने निकला १८ ढूंढ़ते समय किसी ने राजा से कहा कि वह ब्राह्मण बड़ा क्रोधी है, तेरे नगर में घुस कर कोशागार, शस्त्रघर, स्त्रियों का स्थान, अश्वशाला और हस्तिशाला को दग्ध कर रहा है १६ यह सुनकर राजा ने अपने मन को यत्किंचित् भी मलीन नहीं किया किंतु उसी प्रकार मांस शिरपर लिये हुए ब्राह्मण को ढूंढ़ने नगर के भीतर चला गया। जबवह ब्राह्मण मिला तब राजा ने उससे कहा महाराज! लीजिये यह मांस तैयार है। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने आश्चर्य से नीचे को मुख कर लिया और राजाको कुछ उत्तर नहीं दिया २० तब राजा ने उस ब्राह्मण से अनेक बातें कहकर उसे प्रसन्न किया और उससे कहा कि भोजन कीजिये। वह ब्राह्मण एक मुहूर्त भर राजा की ओर देखता रहा उपरान्त बोला २१ कि तुमहीं इसको भोजन करो राजा बोला बहुत श्रेष्ठ, ऐसा कहकर राजा ने पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक उस ब्राह्मण की पूजा की और मांस के पात्र को खोलकर बैठ गया ज्योंही राजाने चाहा कि भोजन करूं, त्योंही उस ब्राह्मण ने राजा का हाथ पकड़ लिया और उसे वरदान देकर उससे कहा कि तैंने क्रोधको निस्संदेह जीत लियाहै और तेरे पास कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसको ब्राह्मणोंको देनेसे तू निषेध करे। उस समय राजा ने ऊपर मुख उठाकर जो देखा तो देखता क्याहै कि उसका वही पुत्र जिसको उसने काटकर बनाया था, अलंकृत होकर देवकुमारों के सदृश खड़ाहै। तब वह ब्राह्मण राजा से यह कहकर अन्तर्धान हो गया कि मैं विधाता हूं, तेरी परीक्षा करनेके लिये इस रूपसे आयाथा। इसके उपरान्त राजा के मन्त्रियोंने राजासे पूछा कि आपने ऐसा कर्म किस कामना से कियाथा २२।२५ राजाबोला किमैं कोई दान, यश, ऐश्वर्य, भोग और किसीवस्तुकी तृष्णाकी कामनासे नहीं देताहूं।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भाई यह पापियोंके चलने का मार्ग नहीं है। यह वह श्रेष्ठमार्ग है जिसपर सत्पुरुष चलते हैं। इससे मैं भी निष्काम होकर उसी मार्ग पर चलताहूं। हे युधिष्ठिर ! यह शिबि का बड़ाश्रेष्ठ माहात्म्य है मैं इसमाहात्म्यको यथावत् जानताहूं २६।२७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६७ ॥

एकसौ अट्ठानबे का अध्याय।

पाण्डवों का मार्कण्डेयजी से पूछना कि आपसे बड़ी आयु भी किसी की है और मार्कण्डेयजीका राजा इन्द्रद्युम्नकी कथा कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे सब ऋषियों ने और पाण्डवों ने मार्कण्डेयजी से पूछा कि महाराज ! आपसे अधिक भी किसी की आयु है ? मार्कण्डेयजी बोले कि हां, इन्द्रद्युम्ननामी राजऋषि मुझसे बड़ा है। वह राजऋषि क्षीणपुण्य होकर स्वर्ग से पृथ्वीपर गिरकर मेरे समीप आया और मुझसे बोला कि संसार में अब मेरी कीर्ति नष्ट होगई है, आप मुझको जानते हैं? मैंने कहा कि मैं एक रात्रि से अधिक किसी ग्राम में नहीं बसता हूं, सदैव मेरी प्रीति तीर्थाटन में रहती है और जपके नियममें मग्न रहता हूं इससे मुझको यह भी नहीं ज्ञान है कि मुझको अपने लिये अब क्या करना चाहिये ? और न मैं कुछ शरीर के उपताप के कारण से अपने निमित्त करता हूं। ऐसी अवस्था में मुझको भूत और भविष्य का ज्ञान क्योंकर रह सक्ता है १।३ तब उस राजऋषिने मुझसे पूछा कि तुमसे और भी कोई बड़ी आयु रखनेवाला है। मैंने कहा हां, प्रावारकर्णनामी उलूक जो यहां से बहुत दूर पर हिमालय पहाड़ में रहता है, मुझसे अधिक चिरजीवी है। वह आपको आश्चर्य नहीं कि जानता हो ४ इसके पीछे वह राजऋषि मुझको घोड़ा बनाकर उलूक के पास ले पहुँचा और उसने उलूक से पूछा कि आप मुझको जानते हैं? उलूक ने एक मुहूर्त ध्यानकरके उससे कहा कि मैं आपको नहीं जानता हूं। तब उस इन्द्रद्युम्न राजऋषिने उलूकसे फिर पूछा कि अच्छा संसारमें किसीकी आयु आपकी आयु से बड़ी भी है ? उलूक बोला कि हां, इन्द्रद्युम्न सरोवरपर नाड़ीजंघ नाम बगला रहता है उसकी आयु मुझसे बड़ी है, उससे आप चलकर पूछिये। यह सुनकर वह राजऋषि मुझको और उलूकको लेकर इन्द्रद्युम्न सरोवर पर जहां वह बगला रहता था पहुँचा। वहां पहुँचकर हमलोगोंने उस बगले से पूछा कि आप इस इन्द्रद्युम्न राजा को जानते हैं? वह बगला एक मुहूर्त विचारकर बोला कि मैं इनको नहीं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जानता हूं। तब हम लोगोंने उस बगले से फिर पूछा कि आपसे बढ़कर भी कोई चिरजीवी है। वह बगला बोला हां, इस सरोवर में अकूपार नाम एक कछुआ रहता है वह मुझसे भी अधिक चिरजीवी है, उससे आप पूछिये कदाचित् वह इस राजा को किसी प्रकार से जानता हो ५। ८ इसके उपरान्त उस बगले ने कछुये को सम्बोधन करके बुलाया और उससे कहा कि हमको आपसे कुछ पूछना है आप बाहर आइये तो पूछें। यह सुनकर वह कछुआ सरोवर से निकल कर हमलोगों के पास चला आया तब हमलोगों ने उससे पूछा कि आप इस राजा इन्द्रद्युम्न को जानते हैं९ तब वह कछुआ एक मुहूर्तभर ध्यान करके खिन्नचित्त होकर आंखें डबडबाता हुआ बोला कि हम इस राजा को क्योंकर न जानें इसने सहस्र यज्ञों में यज्ञस्तम्भ लगाये थे और अनन्त दक्षिणा व्यय की थी और अनन्त गोदान किये थे जिसके कारण से यह सरोवर बनाया गया था जिसमें हम रहते हैं १०। ११ ज्योंही हम सब कछुये से उक्त वृत्तान्त सुनचुके त्योंही देवलोक से देवरथ वहां प्रकट हुआ और हम सबने यह वाणी सुनी कि हे इन्द्रद्युम्न! तेरी कीर्ति अभी संसार में है, तू स्वर्ग में जाकर यथोचित स्थान में वास कर, तेरा स्वर्ग में जाना शुभ हो १२ इस वाणी से ऐसा प्रतीत हुआ कि पुण्यकर्म का शब्द स्वर्ग और पृथ्वी दोनों को स्पर्श करता रहता है जब तक वह शब्द पृथ्वीपर रहता है तभीतक प्राणी स्वर्ग में वास करताहै १३ और जिस प्राणी की संसार में अकीर्ति रहती है वह अधम लोकों में गिरता है इससे मनुष्य को उचित है कि मोक्ष के लिये सदैव कल्याणरूपी व्रत करे और पापवृत्ति को छोड़कर धर्ममार्ग पर चले १४। १५ हे युधिष्ठिर! वह राजा इन्द्रद्युम्न उक्त वाणी को सुनकर उस रथको देखकर बोला कि जब तक मैं इन वृद्धों को इनके स्थानों पर न पहुँचा आऊं तब तक ठहरो १६ इसके पीछे वह राजऋषि मुझको और प्रावारकर्ण उलूक को उचित स्थान पर पहुँचाकर उसी रथ में बैठकर स्वर्ग को चला गया और वहां उचित स्थान पर रहने लगा। हे पाण्डवो! मैंने इस प्रकार से चिरजीवी लोग देखे १७ यह सुनकर पाण्डव बोले कि फिर आपने बहुत अच्छा किया जो स्वर्गसे गिरे हुए राजा इन्द्रद्युम्न को फिर उसके स्थान को ही पहुँचा दिया। यहसुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि इस देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने भी राजा नृग को नरक से उद्धार करके स्वर्गवास दिया है॥ १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९८॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एकसौ निन्नानबे का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से दानधर्म वर्णन करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर महाभाग मार्कण्डेयजी से इन्द्रद्युम्न राजऋषि की स्वर्गसिद्धि का वृत्तान्त सुनकर पूछने लगा कि महाराज! आपके विचार में मनुष्य किस प्रकार की अवस्था में दान करने से इन्द्रलोक प्राप्त करसक्ता है और बालअवस्था, गार्हस्थ्य, यौवन और वृद्धावस्था चारों अवस्थाओं में किस प्रकार से फल भोगता है। कृपा करके इसका वृत्तांत यथावत् वर्णन कीजिये १। ४ मार्कण्डेयजी बोले अच्छा सुनो। चार प्रकार के मनुष्यों का जन्म वृथा है प्रथम जो पुत्रहीन और अधर्मी हैं, दूसरे जो दूसरे के आश्रय होकर भोजन करते हैं, तीसरे जो केवल अपने ही अर्थ भोजन बनाकर खाते हैं और चौथे जो बालक, वृद्ध और अतिथि को विना भोजन कराये आप खा लेते हैं और सोलह दान करना वृथा हैं। प्रथम ऐसे मनुष्य को देना जिसने ब्रह्मचर्य व्रत सदा के लिये लिया हो और वह उस धर्म से पतित हो गया हो, दूसरे ऐसा धन दान करना जो अन्याय से संचित किया गया हो, तीसरे पतित ब्राह्मण को दान करना, चौथे मिथ्यावादी गुरु को, पांचवें पापी को, छठे कृतघ्नी को, सातवें गांव में भिक्षा मांगनेवाले को, आठवें वेद बेचनेवाले को, नवें शूद्र की रसोई करनेवाले को, दशवें ब्राह्मणजातिमात्र को अर्थात् ऐसे ब्राह्मण को जो कर्म और वेद से शून्य है केवल नाममात्र को ब्राह्मण है, ग्यारहवें ऐसे ब्राह्मण को जो शूद्रा स्त्री का पति हो, बारहवें स्त्रियों को, तेरहवें व्यालग्राह्यों को, चौदहवें सेवा करनेवाले ब्राह्मण को, पन्द्रहवें चोर को और सोलहवें मिथ्यावादी को ५। ६ और जो मनुष्य तमोगुणी होकर भय अथवा क्रोध से दान करता है वह उसके फल को गर्भ में वास करके भोगता है और जो द्विजन्माओं को दान करता है वह उस दानके फल को वृद्धभाव से भोगता है १० इससे हे युधिष्ठिर! स्वर्ग की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को सदैव द्विजन्माओं को ही दान देना उचित है ११ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! ब्राह्मणलोग चारों वर्णों का दान लेते हैं, वे ऐसा कौनसा विशेष कर्म करते हैं जिससे आपभी तरते हैं और दूसरों को तारते हैं १२ मार्कण्डेयजी बोले कि वेदपाठी ब्राह्मण जप, मन्त्र, होम और वेदपाठ से सब पापों को दूर करके वेदरूपी नाव के द्वारा आप तरते हैं और दूसरों कोभी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तारते हैं १३ जो मनुष्य ब्राह्मणों को तुष्ट करता है उससे देवता संतुष्ट होजाते हैं और वेदपाठी ब्राह्मण के केवल वचन से ही मनुष्य को स्वर्गलोक मिल जाता है १४ सो हे युधिष्ठिर! तुम पितर, देवता और ब्राह्मणों की पूजा करते हो, तुम इसके प्रभाव से निस्संदेह अनन्त पुण्यलोक को जाओगे १५ मनुष्य मरने के समय श्लेष्मा आदि रोगों से अचेत हो जाता है, उस समय में स्वर्ग-प्राप्ति के लिये ब्राह्मणों की ही पूजा करना उचित है १६ इसके सिवाय श्राद्ध में भी ऐसे ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है जो अनिन्दित हों और दुर्वर्ण, कुनखी, कुष्ठी, कपटी, कुण्ड, गोलक और जो धनुष बाण धारण करने-वाले हैं वे यत्नपूर्वक श्राद्ध में वर्जित हैं क्योंकि ये श्राद्ध निन्दित ब्राह्मण यजमान को इस प्रकार से दग्ध कर देते हैं जैसे अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। हां, जो ब्राह्मण अन्धे, गूंगे और बहिरे हों उनको वेदपाठी ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध में युक्त करना अनुचित नहीं है १७। १६ और देखो, दान देना ऐसेही ब्राह्मण को उचित है जो आप तर जाय और दाता को तार ले जाय २०। २१ और अग्नि, पुष्प, चन्दन और होम आदिसे इतनी प्रसन्नता नहीं होती है जितनी अतिथि को भोजन कराने से होती है २२ हे राजन्! इससे तुम अतिथि को भोजन देने में अपना चित्त स्थिर रक्खो। जो मनुष्य पादोदक, पादघृत, दीप, अन्न और स्थान दान करता है वह यमराज के पास नहीं जाता है और देवता के निर्माल्य को हटाना और ब्राह्मणों की जूंठन उठाना, गन्ध लगाना, सेवा करना और अङ्ग दाबना इन प्रत्येक के करने का फल गोदान से भी अधिक है २३। २५ और मनुष्य कपिलादान करने से सब पापों से निस्संदेह छूट जाता है, इससे मनुष्य को उचित है कि ऐसे ब्राह्मण को गोदान करे जो वेदपाठी, दरिद्री, गृहस्थी, अग्निहोत्री और पुत्र और स्त्री रखता हो और अनउपकारी हो अर्थात् अपना उसने कोई उपकार न किया हो। ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण को देना निषेध है क्योंकि उसमें कोई गुण नहीं होता है २६। २८ और एक गोदान एक ही ब्राह्मण को देना उचित है बहुतों को कभी न दे। क्योंकि दान की हुई गाय को बेचने से दाता के तीन पुरखा स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं २६ और वह गाय न दाता को तारती है, न उस लेनेवाले ब्राह्मण को और जो कोई अतिशुद्ध सुवर्णदान करता है वह दान अन्य सौगुने सुवर्ण के दान से अच्छा होता है और जो कोई धुरंधर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और बलवान् बैल को दान करता है ३०। ३१ वह दुर्गस्थानों को पार होकर स्वर्ग को जाता है और जो कोई ज्ञानी ब्राह्मण को पृथ्वीदान करता है उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होती हैं और जो मनुष्य ऐसे पुरुषोंको जो मार्ग चलने के कारण से थके हुए हैं और पीड़ित हैं और पांव उनके धूल में भरे हुए हैं अन्नदाता को पूछने पर यह बता देते हैं कि फलाना मनुष्य अन्नदान करता है, उसको भी निस्सन्देह अन्न देनेवाले के समान फल मिलता है इससे तुम सब दानों को छोड़कर केवल अन्नदान करो ३२। ३५ अन्नदान के समान दूसरे दान का फल नहीं है। जो कोई वेदपाठी ब्राह्मण को बनाया हुआ अन्न देता है वह प्रजापति के लोक को जाता है। अन्न सबसे श्रेष्ठ है, उससे उत्तम और पदार्थ नहीं है ३६। ३७ अन्न को कोई विराट्रूप कहते हैं और कोई उसको संवत्सर मानते हैं। संवत्सर होने से अन्न यज्ञरूप है और यज्ञ से सब पदार्थ मिल सकते हैं ३८ अन्न ही से सब जड़ और चैतन्य प्राणी प्रकट होते हैं इस कारण से अन्न सबसे श्रेष्ठ है ३९ जिन्होंने तड़ाग, बावड़ी और कूप जल के निमित्त और स्थान रहने को और अन्न भोजन के लिये पराये उपकार के लिये बना रक्खे हैं और मीठी बोली बोलते हैं वे यमराज की बात भी नहीं सुनते हैं ४० और जो मनुष्य अपने परिश्रम से उत्पन्न किये हुए धन से इकट्ठे किये हुए धान्य को सुशील ब्राह्मण को दान करता है, पृथ्वी उस पर धन की धार छोड़ती है और प्रसन्न होती है ४१ अन्नदाता सबसे पहिले स्वर्ग को जाता है, सत्यवादी उसके पीछे जाता है और विना मांगे दान करनेवाले को भी स्वर्ग मिलता है ये तीनों बराबर हैं ४२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिरने फिर मार्कण्डेयजी से पूछा कि ४३ महाराज! यमलोक का मार्ग और उससे नरलोक का अन्तर क्या है और किस प्रकार का है और प्रमाण उसका क्या है और मनुष्य किस उपाय से उस मार्ग के पार जा सकता है?, यह सब वृत्तान्त मुझको सुनाइये ४४ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! तुम्हारा प्रश्न धर्मरूपी बड़ा गुह्य, पवित्र और ऋषियोंकी स्तुतिके योग्य है। उसका उत्तर सुनो ४५ यमलोक का मार्ग और उससे नरलोक का अन्तर छियासी सहस्र योजन है ४६ उस मार्ग में जो आकाश में है वृक्ष, छाया, जल और स्थान कोई नहीं है जहां थका हुआ और दुखी मनुष्य विश्राम करे। उसके देखनेसे डर लगताहै। यमराज की आज्ञा से यमदूत प्राणी को बलसे उसी मार्ग

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से यमलोक को ले जाते हैं ४७।४८ परन्तु मनुष्य आदि सब जीव जो ब्राह्मणों को घोड़ा आदि दान करते हैं वे सुखपूर्वक उस मार्ग में होकर जाते हैं ४९ जो छत्रदान करते हैं उनको मार्ग में धूप नहीं सताती है ५० अन्नदान करनेवाला उस मार्ग में तृप्त रहता है और अन्न न देनेवाला क्षुधा से पीड़ित जाता है। वस्त्रदान करनेवाला वस्त्र पहिरे हुए जाता है और वस्त्रदान न करनेवाला नंगा रहता है ५१ सुवर्ण का दान करनेवाला अलंकृत होकर सुखपूर्वक जाता है और पृथ्वी का दाता सब मनोकामना पाता हुआ सुखपूर्वक यात्रा करता है ५२ खेतीदान करनेवाले मनुष्यों को उस मार्ग में क्लेश नहीं होता है और गृहदान देनेवाले विमान में बैठकर जाते हैं ५३ जलदान करनेवालों को उस मार्ग में तृषा नहीं लगती है और प्रसन्न रहते हैं और दीपदान करनेवालों के मार्ग में प्रकाश रहता है ५४ गोदान करनेवाले मनुष्य सब पापों से छूटकर सुखपूर्वक जाते हैं और एक मास उपवास करनेवाले हंसयुक्त और छः रात्रि व्रत रखनेवाला मयूरयुक्त विमानों में बैठकर उस मार्ग के पार होते हैं और जो मनुष्य एकभुक्त से तीन रात्रि व्यतीत करता है और बीच में कुछ नहीं खाता है उसको अनामय लोक मिलते हैं और प्रेतलोक में उसको सुख प्राप्त होता है ५५।५७ ऐसे पुण्यात्मा मनुष्यों को मार्ग में पुष्पोदका नाम नदी मिलती है। उसमें वे लोग शीतल और अमृत के समान जल पीते हैं ५८ हे महाराज! पापी जीवों के लिये वही नदी मलमूत्रादि युक्त हो जाती है। इस प्रकार से वह नदी सब मनोकामनाएँ पूरी करनेवाली है ५९ इससे हे युधिष्ठिर! तुमभी ऐसे मनुष्य को यथाविधि अवश्य पूजो जो मार्ग चलते चलते क्षीणशरीर और जो धूलि से भरा हुआ अङ्ग होकर अन्नदाता को पूछता हुआ आशा के साथ तुम्हारे स्थान पर आवे वही अतिथि और वही ब्राह्मण है ६०। ६१ मार्ग चलनेवाले अतिथि के पीछे पीछे इन्द्रादिक देवता भी चलते हैं सो जहां अतिथि का पूजन होता है वहां वे देवता भी प्रसन्न होते हैं और पूजन न होने से निराश होकर चले जाते हैं ६२ इससे हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! तुमभी यथोक्त विधान से अवश्य अतिथि का पूजन करो। हमने इस बात को सैकड़ों प्रकार से कहा अब तुम और क्या सुना चाहते हो ६३ युधिष्ठिर बोले हे धर्मज्ञ, प्रभो! मैं आपकी कही हुई पवित्र और धर्मयुक्त कथा को बारम्बार सुना चाहता हूं ६४ मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ। हे राजन्! हमारी कही हुई धर्मोपदेशिनी और पापविध्वंसिनी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कथा सुनिये ६५ ज्येष्ठपुष्कर में कपिला गोदान करने का जो फल होता है वह वेदपाठी ब्राह्मणों के चरण धोने में होता है ६६ और पृथ्वी जब तक ब्राह्मणों के चरणोदक से गीली बनी रहती है तबतक पितर कमलपत्र से जल पीते हैं ६७ ब्राह्मण के स्वागत से सब अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण धोने से पितर और भोजन कराने से प्रजापति तृप्त होजाते हैं ६८ हे युधिष्ठिर ! मनुष्य को गोदान उस समय करना उचित है जिस समय गौ ब्याये और बछड़े के केवल दो पांव और मुख दीखें क्योंकि जबतक बछड़ा अन्तरिक्ष में रहता है अर्थात् योनि में रह कर गर्भ को पूरा पूरा नहीं छोड़ता है तब तक गौ पृथ्वीरूप रहती है। ऐसे समय पर दान करने से उस गाय और बछड़े के जितने रोम हैं उतनेही सहस्र वर्ष तक दाता स्वर्गलोक में वास करता है ६९।७१ हे भरतवंशिन् ! जो मनुष्य काली गाय को सुवर्ण की नाक और खुर बनवाकर तिलसहित सब रत्नों से अलंकृत करके दान करता है और लेनेवाला उस गाय को फिर साधू को दे देता है वह मनुष्य फलों के फल पाता है और उसको ऐसा जानना चाहिये मानो उसने समुद्र, पर्वत और वनों सहित संपूर्ण पृथ्वी दान की है ७२।७४ और तारने में उस ब्राह्मण को समर्थ समझना उचित है जो भोजन के पात्रको अपने से पृथक् रखकर, जांव के भीतर हाथ किये हुए, विना बोले चाले भोजन करे ७५ और जो ब्राह्मण मद्यपी नहीं हैं और संहितापाठी हैं वे सदाही तारण करने में समर्थ हैं ७६ वेदपाठी ब्राह्मण को जो कुछ हव्य और कव्यपदार्थ हैं सब दान देने योग्य हैं। उसको देना ऐसा है मानो अग्नि में हवन किया ७७ वेदपाठी ब्राह्मण शस्त्रप्रहारी नहीं होते हैं कि उनका क्रोध ही इस प्रकार से नाश कर देता है जैसे इन्द्र अपने वज्र से असुरों को मार डालता है ७८ हे निष्पाप, युधिष्ठिर ! यह धर्मसम्बन्धी कथा हमने तुमसे कही। नैमिषारण्यवासी मुनिलोग इस कथा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे ७९ और शोक, भय, क्रोध और पाप से रहित होगये थे। इस कथा को सुनकर मनुष्य मुक्ति पाता है ८० उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर बोले हे महाराज ! वह कौनसा शौच है जिससे वेदपाठी शुद्ध होजाते हैं, कृपा करके उसको वर्णन कीजिये ८१ मार्कण्डेयजी बोले कि शौच तीन हैं। प्रथम वाक्शौच अर्थात् पवित्र वाणी बोलना, दूसरा कर्मशौच अर्थात् सदैव अच्छे कर्म करना और तीसरा जलात्मक शौच अर्थात् शास्त्र की रीति से देही को शुद्ध करना। इन तीनों शौचों के करनेवाले मनुष्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

निस्संदेह स्वर्गीय हैं ८२ जो ब्राह्मण प्रातःकाल और सन्ध्यासमय सन्ध्योपासनपूर्वक गायत्री का जप करता है वह उस गायत्री देवी के प्रभाव से पवित्र और नष्टकिल्बिष होकर इस पृथ्वी को सागरसहित दान लेने पर भी खण्डित नहीं हो सक्ता है ८३। ८४ और उसको सूर्यादि ग्रह अरिष्टकारक होने पर भी बाधा नहीं कर सक्ते हैं किन्तु सौम्य और बड़े कल्याणकारी हो जाते हैं ८५ और मांसाहारी भयानक राक्षस भी उसको भय नहीं पहुँचासक्ते हैं ८६ वेदपाठी ब्राह्मणों को वेद पढ़ाने, यज्ञ कराने और दूसरे का दान लेनेसे दोष नहीं होता है क्योंकि ब्राह्मण जलती हुई अग्नि के समान है ८७ और ब्राह्मण चाहे सुवेद हो अथवा दुर्वेद हो, प्राकृत हो अथवा संस्कृत हो, कैसा ही हो उसका अपमान करना किसी अवस्था में उचित नहीं है क्योंकि वह राख में छिपी हुई अग्नि के समान होता है और जैसे अग्नि श्मशान भूमि में भी दूषित नहीं होती है इसी प्रकार से ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो, चाहे अविद्वान् किन्तु उसको बड़ा देवता ही समझना चाहिये ८८।८९ और जिस नगर में उत्तम ब्राह्मण नहीं रहते हैं वह उत्तम प्राकार अर्थात् शहरपनाह और पुरद्वार अर्थात् नगर में घुसने का दरवाज़ा और अनेक प्रकार के प्रासाद अर्थात् महलों के होनेपर भी सुशोभित नहीं होताहै ९० हे नरनायक! नगर उसीको समझना चाहिये जहाँ वेदज्ञ, व्रतसम्पन्न, ज्ञानवान् और तपस्वी वेदपाठी ब्राह्मण रहते हों ९१ हे युधिष्ठिर! वन अथवा व्रज में जहाँ जहाँ शास्त्री ब्राह्मण रहते हों वहाँ-वहाँ तीर्थस्थान और नगर समझना चाहिये ९२ मनुष्य के पाप तपस्वी ब्राह्मण और रक्षा करनेवाले राजा के पूजनेसे तुरंत दूर हो जाते हैं ९३ ज्ञानीलोग तीथस्थान और त्रिसुपर्ण आदि पवित्र मन्त्रों के पाठ और सत्पुरुषों के साथ बातचीत करने को परम श्रेष्ठ कहते हैं ९४ और सन्तलोग यह मानते हैं कि आत्मा सत्संग के वाक्यरूपी जलसे पवित्र हो जाताहै ९५ तीन दण्ड धारण करना, जटा रखाना, मौन रहना, मुण्डन करवाना, बल्कल अथवा मृगचर्म का वस्त्र रखना, व्रत करना, स्नान करना, अग्निहोत्र करना, वन में रहना और शरीर को सुखाना ये सब विना निर्मल चित्त हुए मिथ्या और निरर्थक हैं ९६।९७ सो चित्त की शुद्धि होना विना विषय और भोगों के त्यागे कठिन है, जो विषय नेत्र आदि छः इन्द्रियों में वर्त्तमान रहते हैं ९८ हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! विकारयुक्त मनको जीतना बहुत कठिन है परंतु जो मनुष्य मन, वचन, कर्म और बुद्धि से भी कभी पाप नहीं करते हैं वे बड़े महात्मा और तपस्वी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हैं। शरीर का सुखाना कुछ तपस्या नहीं है ६६ और जो लोग शुक्रवृत्ति से जीविका उत्पन्न करते हैं और पुत्रादि के पोषण और पालन करने के लिये यत्न नहीं करते हैं वे निष्पाप कदापि नहीं हैं क्योंकि भोजन छोड़ देना कोई तपस्या नहीं है १०० जो मुनि अपने घर में पवित्रता से रहता है और शरीर त्याग तक दयावान् रहता है वह सब पापों से छूट जाता है १ भोजन न करने और व्रत रखने से पापकर्म दूर नहीं होते हैं किन्तु इस मांस और रुधिर का आश्रय रखनेवाले शरीर को पीड़ा होती है २ और विना जाने हुए कर्म के करने से क्लेश होता है और पाप दूर नहीं होते हैं और अग्नि विना भाव के मनुष्य के दुष्कर्मों को भस्म नहीं करती है ३ मनुष्य पुण्यकर्म करने से निस्संदेह मोक्ष का अधिकारी होता है और अनशन अर्थात् निराहार व्रत करने से भी एक प्रकार की शुद्धि होती है परंतु इन व्रतों को अथवा फल मूल का आहार करने और मौन रहने, वायुभक्षण करने, शिर मुड़ाने, कुटी को त्यागने, जटा रखाने, स्थण्डिलपर सोने, अग्नि तपने, जल में घुसे रहने और पृथ्वीपर सोने से कदापि मनुष्य मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता है ४ । ६ यह उत्तमपद केवल ज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है जिसके होते ही जरा,मरण और व्याधि ये सब दूर होजाते हैं७और आत्मा फिर इस प्रकारसे ज्ञान रूपी अग्नि से जले हुए क्लेशों से पीड़ित नहीं होता है जैसे अग्नि से जले हुए पदार्थ फिर सजीव नहीं होसकते हैं ८ संसारी सब शरीर इसप्रकारसे नाशवान् हैं जैसे समुद्र में उठाहुआ फेन फिर नाश हो जाता है सो जो कोई पूरे अथवा आधे श्लोक के उपदेश से सर्वव्यापी आत्मा को जान लेता है वही सिद्ध अर्थ है ६। १० दो अक्षर तत्त्व से अथवा श्लोकमन्त्र पदों से वा वेद ब्राह्मणों से अथवा दूसरे सहस्रों उपनिषदों से प्रत्यगात्मा का केवलीभाव जानकर कोई एक ब्रह्मज्ञानी परमपद को पहुँचता है ११ और 'अहं ब्रह्मास्मि' यह अनुभव ही मोक्ष का लक्षण है अर्थात् प्रत्यय है और जिन मनुष्यों के आत्मा में संशयरूपी द्विविधा लगी हुई है उनका न यह लोक सुधरता है न परलोक और सुख भी उनको नहीं मिलता है १२ और जो मनुष्य वेद के अर्थ को समझता है और उसके तात्पर्य को पूरा पूरा जानता है उसको वेदोक्त कर्मों से ऐसा उद्वेग होता है जैसे दावानल से मनुष्यों को भय होता है १३ सो हे युधिष्ठिर! जो तुम एकाक्षर प्रणवसे बँधे हुए ज्ञानको वेदोक्त युक्तियों के द्वारा चाहते हो तो शुष्क तर्क को छोड़कर श्रुति स्मृति का आश्रय करो क्योंकि उस ज्ञानसाधन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के वेदविपरीत होनेसे तत्त्वज्ञान की सिद्धि नहीं होगी १४ मनुष्य को प्रथम यत्न से वेदों का जानना उचित है क्योंकि वेद तत्त्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं। उनके जानने से आत्मज्ञान होता है। वही आत्मज्ञान ज्ञानियों का जानने-योग्य पदार्थ अर्थात् ब्रह्मज्ञान है १५ और देवताओं की आयु और कर्मों का फल और शरीरधारियों का प्रभाव युग युग के अनुसार घटता बढ़ता रहता है १६ इन्द्रियों की निर्मलता के कारण से अनशन व्रत का त्याग करना उचित है इससे इन्द्रियों के विषयों को रोकना ही बड़ा दिव्य अनशन व्रत है १७ मनुष्य को तप करने से स्वर्ग मिलता है, दान करने से अच्छे भोग भोगने को प्राप्त होते हैं, ज्ञान से मोक्ष मिलता है और तीर्थयात्रा से पाप दूर होते हैं १८ वैशंपायन-जी बोले हे राजेन्द्र, जनमेजय! यह सुनकर महायशस्वी राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि महाराज! मैं प्रधान और उत्तम विधि को सुनना चाहता हूं १९ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र! तुम दानधर्म का वृत्तान्त सुना चाहते हो, यह धर्म सबसे उत्तम होने के कारण से मुझको भी अभीष्ट है, सुनो। अब मैं श्रुति और स्मृति से प्रकट होनेवाली दान की गुप्तबातों का प्रकाश करता हूं। श्राद्ध करना पीपल की छाया में जहां पीपल के पत्तों से हवा भी होती हो अच्छा है २०। २१ और अन्न आदि द्रव्यों का मनुष्य के जीवन अर्थात् प्राण पालने के लिये देना एक लाख कन्यादान करने के समान है। इस दान का नाश कभी नहीं होता है २२ और जो मनुष्य धर्म-शाला बनवाकर उसमें योग्य मनुष्यों को बसाता है वह सब यज्ञों के करने का फल पाता है २३ और प्रतिस्रोत तीर्थ पर अर्थात् उस स्थान पर जहां पूर्व को बहनेवाली नदियां पश्चिम की ओर बहती हों, घोड़ों का दान करना अक्षय फल का देनेवाला है और अन्न की इच्छा रखनेवाले अतिथिरूपी इन्द्र को अन्नदान देने से भी अक्षयफल प्राप्त होता है और पीपल की छाया में भी श्राद्ध करने से महाधुर के समान सब पाप दूर हो जाते हैं और ब्राह्मण को ग्रहण में दान देना अक्षयफल का देनेवाला और मंगलरूप है २४ दान देना सदा उत्तम है परंतु पर्व में अर्थात् अमावस-पूनो को देने से दुगुना और ऋतु ऋतु में देने से दशगुना और वर्ष के प्रारंभ में देने से सौगुना और सूर्य के विषुवत् रेखा पर जाने के समय अर्थात् सूर्य के मेष और तुला पर आने पर देने से अनन्तगुना फल होता है और मकर, कर्क, धन, मिथुन, कन्या और मीन की संक्रान्ति

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और सूर्य और चन्द्र ग्रहणों में दान करने से दान का फल अक्षय प्राप्त होता है २५। २६ और जो मनुष्य पृथ्वीदान नहीं करता है उसको भोगने को भूमि और जो यान अर्थात् सवारी नहीं देता है उसको चढ़ने को सवारी नहीं मिलती है अर्थात् जो मनुष्य ब्राह्मणों को जिस जिस कामना से जो जो पदार्थ देता है जन्म लेने पर वही वही पदार्थ उसको भोगने को मिलते हैं २७ सुवर्ण अग्नि का पुत्र अर्थात् अग्नि के वीर्य से उत्पन्न हुआ है और पृथ्वी वैष्णवी है और गायें सूर्य की पुत्री हैं इससे सुवर्ण, पृथ्वी और गौओं को दान करना तीनों लोक दान करने के समान हैं २८ सो हे युधिष्ठिर! दान से श्रेष्ठधर्म न कोई हुआ है न है और होनहार भी नहीं है। इससे बुद्धिमान् लोग संसार में दान को प्रधान और श्रेष्ठ कहते हैं॥ १२९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनद्विशततमोऽध्यायः॥ १९९॥

दोसौ का अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से धौन्धुमार उपाख्यान में उत्तङ्कऋषि का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर ने इन्द्रद्युम्न के स्वर्ग प्राप्त होने का वृत्तान्त सुनकर महाभाग तपस्वी और दीर्घ आयुष्मान् मार्कण्डेयजी से फिर पूछा। कि हे धर्मज्ञ, महाराज! आप सब देवता, दानव, राजऋषि और सनातन ऋषियों के वंशों को अच्छी तरह जानते हैं १। ३ हे मुनिनायक, द्विजोत्तम! मेरी समझ से इस लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको आप न जानते हों। मनुष्य, उरग और राक्षसों की भी सब कथाएँ आपको विदित हैं ४ हे द्विजसत्तम! देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और अप्सराओं के चरित्र भी आपसे छिपे नहीं हैं इससे मैं आपसे यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं कि इक्ष्वाकुवंशी कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार क्योंकर धरा गया था। हे भार्गवसत्तम! उसके नाम के बदलने का क्या कारण था ५।७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर के उक्त प्रकार के प्रश्न को सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे महीपते, युधिष्ठिर! यह धौन्धुमार आख्यान बड़ा धर्मोपदेशक है सुनिये। मैं राजा कुवलाश्व के धुन्धुमार नाम होने का वृत्तान्त कहता हूं ८। १० हे तात, महाराज! उत्तङ्कनामी एक महात्मा महाऋषि थे। उनका आश्रम मरुधन्व देश में है। उन्होंने बहुत वर्षों तक विष्णुभगवान् की कठिन तपस्या की थी ११।१२ भगवान् ने उनकी तपस्या से प्रसन्नहोकर उनको

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रत्यक्ष आकर अपने दर्शन दिये, उनको देखते ही उत्तङ्क स्तुति करने लगे १३ उत्तङ्कजी बोले कि हे महातेजस्विन्, देव ! आप सब प्रजा, देवता, असुर, मानव, जड़, चैतन्य, ब्रह्मा, वेद और जो कुछ और पदार्थ हैं सबके उत्पन्न करनेवाले हैं। आकाश आपका शिर है, सूर्य चन्द्रमा आपके नेत्र हैं १४।१५ हे अविनाशिन्, मधुसूदनजी ! वायु आपका श्वास है अग्नि आपका तेज है, सब दिशा आपकी भुजा हैं, समुद्र आपकी कुक्षि है, पर्वत आपके घुटनू हैं, पृथ्वी आपके पैर हैं और सब औषधियां आपके रोम हैं १६।१७ इन्द्र, चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, असुर और उरग नम्रीभूत होकर आप ही की उपासना और नानास्तवों से स्तुति करते हैं १८ हे भुवनेश्वर ! आपही सर्वव्यापी हैं । बड़े बड़े योगी और महाऋषि आपकी स्तुति करते हैं १९ हे पुरुषोत्तम ! आपकी प्रसन्नता से जगत् स्वस्थ और अप्रसन्नता से भयभीत रहता है, आप अकेले ही सब भयों को दूर कर सक्ते हैं २० हे देव ! आप देवता, मनुष्य और सब प्राणियों को सुख देनेवाले हैं। आपने अपने तीन पराक्रमों से तीनों लोक हरे थे २१ आप ही ने बढ़े हुए असुरों को नाश किया था और आपके ही पराक्रम से देवताओं ने परम निर्वाणपद पाया है २२ आपके क्रोध करने पर बड़े बड़े दैत्यों के इन्द्र आपसे हार गये, आप ही सब प्राणियों के कर्ता और विकर्ता हैं २३ आपका आराधन करके सर्व देवताओं की सुखपूर्वक वृद्धि होती है । मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! इन्द्रियों के स्वामी विष्णु भगवान् उत्तङ्क की उक्त स्तुति को सुनकर महात्मा हृषीकेश विष्णुजी उत्तङ्क से बोले कि मैं प्रसन्न हूं, तू वर मांग २४ उत्तङ्क बोले कि महाराज ! मेरा अभीष्ट पूर्ण हुआ जो मैंने आप जगत् के रचनेवाले, दिव्यरूप, सनातन पुरुष के दर्शन पाये २५ तब विष्णु भगवान् ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! हे द्विज ! मैं तेरी भक्ति और तेरे धैर्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परंतु तुझ को हमसे वरदान लेना अवश्य उचित है २६ यह सुनकर हे भरतसत्तम ! उत्तङ्क ने प्राञ्जली बनाकर कहा कि हे कमललोचन, सर्वशक्तिमन्, भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके यह वरदान दीजिये कि मेरी बुद्धि सदैव धर्म, सत्य और दम में परायण बनी रहे और आपका ध्यान मैं भक्तिपूर्वक किया करूं २७। २८ विष्णु भगवान् बोले कि हे द्विज ! मेरी कृपा से ऐसा ही होगा और योग भी तुझे अपने आप भासित हो जायगा, उस योग से युक्त होकर तू देवता और सब लोकों में बड़ा कार्य करेगा । वह कार्य यह है कि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धुन्धुमारनामी महाअसुर संसार को नाश करने की कामना से बड़ी भारी तपस्या कर रहा है, उस असुर को इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्व का पुत्र कुबलाश्व नामी मेरे योगबल को पाकर हे विप्रर्षे! तेरी आज्ञा से मारेगा और धुन्धमारनाम से विख्यात होगा एवं विष्णु भगवान् उक्त प्रकार से कहकर वहीं अन्तर्धान होगये॥ २६। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः॥ २००॥

दोसौएक का अध्याय।

इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहदश्व की वंशावली और धुन्धदैत्य को मारने की आज्ञा का वर्णन।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! राजा इक्ष्वाकु के मरने पर उसका पुत्र शशाद इस पृथ्वी को पाकर राजा हुआ। राजधानी उसकी अयोध्यापुरी थी १ शशाद के ककुत्स्थनाम बलवान् पुत्र हुआ और ककुत्स्थ के अनेनानामी पुत्र हुआ। अनेना के पृथुनामी पुत्र हुआ और पृथु के विश्वगश्व पुत्र हुआ। उस के अद्रिनामी पुत्र हुआ। अद्रि के युवनाश्व पुत्र हुआ और युवनाश्व के श्राव और श्राव के श्रावस्तकनामी पुत्र हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी बसाई थी। श्रावस्तक के बृहदश्वनामी और बृहदश्व के कुबलाश्वनामी पुत्र हुए। कुबलाश्व गुणों में अपने पिता से अधिक था और उसके इकीस सहस्र पुत्र बड़े बलवान् और विद्यावान् उत्पन्न हुए २। ६ राजा बृहदश्व अपने शूरवीर और धार्मिक पुत्र कुबलाश्व को राज्य देकर तपस्या करने के लिये तपोवन को चला गया ७। ८ हे युधिष्ठिरजी! वहां उसके आने का हाल सुनकर महातेजस्वी और अप्रमेयात्मा उत्तङ्क ऋषि उसके पास गये और उसको वन में तपस्या करने से निषेध करके कहने लगे कि हे राजन्! तुमको अभी प्रजा की रक्षा करना उचित है जिससे हमलोग निर्भय होकर रहें ६। ११ हे राजन्! अभी तुमको वन में जाना उचित नहीं है क्योंकि तुम्हारी रक्षा से पृथ्वी उद्वेगरहित रहती है। वन में तपस्या करने का इतना बड़ा धर्म नहीं है जितना प्रजा के पालन करने का है इससे तुम अभी वन में तप करने की इच्छा मत करो १२।१३ हे राजेन्द्र! पूर्वकाल में राजऋषियों ने जैसा धर्म प्रजापालन करने में नियत किया है, वैसा और काम में नहीं किया है १४ राजा को प्रजा की रक्षा करना अवश्य उचित है इससे तुमको भी प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। देखो, हे राजन्! मैं भय के कारण से तपस्या नहीं कर सक्ता हूं १५ मेरे आश्रम के पास मरुधन्वनामी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

समभूमिदेशों में बालू से भरा हुआ उज्जालकनामी समुद्र है १६ वह बहुत योजन लम्बा और चौड़ा है। वहां मधुकैटभ दैत्यों का पुत्र धुन्धुनामी बड़ा भयानक और महापराक्रमी, पृथ्वी के भीतर रहता है १७। १८ हे महाराज! उसने देवता और सबलोकों को नाश करने की कामना से बड़ी उग्र तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान लिया है इससे उसे देवता, दैत्य, राक्षस, यक्ष और गन्धर्व आदि कोई नहीं मार सकता है, तुम उसको मारकर वन को जाना। ऐसा करने से तुम्हारी बड़ी अचल कीर्ति संसार में रहेगी १६। २२ उस क्रूरकर्मी राक्षस को जब बालुका के भीतर सोते सोते एक वर्ष व्यतीत हो जाता है तब उसका श्वास बढ़ने लगता है २३ उससे पृथ्वी, वन और पर्वतोंसहित कांपने लगती है और ऐसी धूल उड़ती है कि सूर्यतक पहुँचकर सूर्य के मार्ग में भी उड़ती हुई दिखाई देती है। यह भूकंप सात दिनतक रहता है। इससे हे राजन्! मैं आश्रम में रह नहीं सकता हूं। तुम संसार की भलाई के हित से उस दैत्य को मारो २४। २६ मेरी समझ से तुम्हीं उसको मार सकते हो, उस के मारे जाने पर सब लोकों में स्वस्थता हो जायगी २७ हे महीपते! तुम्हारे तेज को विष्णुभगवान् अपने तेज से बढ़ावेंगे। मुझको उन्होंने यह वरदान आगे दिया था २८ कि जो राजा इस दैत्य को मारेगा, उसके शरीर में वैष्णवी तेज प्रवेश करेगा २६ इससे हे राजेन्द्र! तुम उस दुस्सह वैष्णवी तेज को धारण करके उस पराक्रमी और भयानक दैत्य का वध करो ३० हे पृथ्वीपाल! अल्प तेजस्वी मनुष्य उसको सैकड़ों वर्ष में भी दग्ध नहीं कर सकता है॥ ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०१॥

दोसौदो का अध्याय।

धुन्धुदैत्य के पिता मधुकैटभ दैत्यों का उत्पन्न होना और मारा जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! राजऋषि बृहदश्व उत्तङ्क के उक्त वचनों को सुनकर हाथ जोड़कर बोला १ कि हे ब्रह्मन्! आपका आना निष्फल नहीं है, मेरा कुवलाश्वनामी पुत्र आपके इस काम को करेगा। वह बड़ा बुद्धिमान्, अप्रमित पराक्रमी और शीघ्र काम करनेवाला है २। ३ और ऐसे शूरवीर पुत्रों से युक्त है जिनकी भुजा परिघशस्त्र के समान है। हे ब्रह्मन्! मुझको अब जाने की आज्ञा दीजिये क्योंकि मैं अस्त्रों को त्याग चुका हूं ४ यह सुनकर उत्तङ्क ने कहा बहुत अच्छा, जाइये। तब बृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्व को उत्तङ्क

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

का प्रिय काम करने का उपदेश करके वन को चला गया ५ इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे तपस्विन्, महाराज! यह महापराक्रमी दैत्य कौन और किसका पुत्र और किसका पौत्र था। मैंने आजतक ऐसा पराक्रमी दैत्य कोई नहीं सुना इसके वृत्तान्त को मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये ६।७ मार्कण्डेयजी बोले बहुत अच्छा, सुनिये। हे नरेश! हम सब वृत्तान्त विस्तारसहित कहते हैं ८ हे भरतर्षभ! जब महाप्रलय हो गया और सब जड़ चैतन्य जीव नाश होकर एकार्णव होगया तब श्रीविष्णु भगवान् जिनको बुद्धिमान् मुनि जगत् की उत्पत्ति का स्थान, सनातन, अव्यय और सबलोकों का ईश्वर बतलाते हैं, अमित तेजवस्वी शेषनाग के फण से इस पृथ्वी को व्याप्त करके आप जल के भीतर उसी फण पर सो गये ६।१२ उस समय विष्णु भगवान् की नाभि से एक कमल प्रकट हुआ जिसकी प्रभा सूर्य के सदृश थी। उस कमल में लोकगुरु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और जिनके चारमुख, चारवेद १३। १५ अपने तेज से दुराधर्ष और बड़े पराक्रमी थे। कुछ काल में मधु और कैटभनामी दो दैत्य बड़े पराक्रमी प्रकट हुए और उन्होंने उस नागशय्या पर, जो कई योजन चौड़ी और लम्बी थी, उन विष्णु भगवान् को सोते हुए देखा जो किरीट, कौस्तुभमणि और पीताम्बर धारण किये हुए सहस्रसूर्यों के समान तेज से परम शोभित और दर्शनीय थे १६।१६ और उसी समय कमल पर कमललोचन ब्रह्माजी को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ २० और उन दोनों ने अपार बलशाली ब्रह्माजी को डराया उन के डर से ब्रह्माजी ने कमल को हिलाया जिसके कारण से विष्णु-भगवान् जाग उठे और उन्होंने जगते ही उन दोनों दैत्यों को देखा २१।२२ और उनसे कहा कि हे महापराक्रमी, दैत्यो! तुम दोनों अच्छे आये, मेरा चित्त तुमसे प्रीति करने और तुमको वरदान देने को चाहता है २३ वे गर्वसे भरे हुए दैत्य यह सुनकर हँसते हुए दोनों वीर मधुसूदनजी से कहने लगे २४ कि हे सुरोत्तम! हम वरदाता हैं, तुमको जो इच्छा हो सो वरमांगो। हम तुम्हारी मनो-कामना पूरी करेंगे २५ भगवान् बोले बहुत अच्छा तुम दोनों बड़े पराक्रमी हो तुम्हारे समान दूसरा नहीं है। मैं ही तुमसे यहवरदान मांगता हूं कि तुम दोनों मेरे हाथ से मारे जाओ। यह वरदान मैंने लोक के हित के लिये मांगा है २६।२७ मधुकैटभ बोले कि हे पुरुषोत्तम! हम दोनों सत्यवादी हैं, हमने कभी स्वैरअवस्था में भी झूठ नहीं कहा है, अब भी हम अपनी बात को झूठ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नहीं कर सकते हैं। हमारे समान बल, रूप, शूरता, शम, तप, दान, शील और सत्य में दूसरा नहीं है। यह बड़ा उपद्रव हमको प्राप्त हुआ। परंतु जो हुआ सो हुआ निस्संदेह काल की मर्यादा को नांघना कठिन है। अब आप अपना काम कीजिये परन्तु हमारा वध अनावृत आकाश में कीजिये और हमको यह वरदान दीजिये कि हम दोनों आपके पुत्रभाव को पावें और जो कुछ हमने सुना है वह मिथ्या न होवे २८। ३३ यह सुनकर भगवान् बोले कि बहुत अच्छा, मैं ऐसाही करूंगा। इसके पीछे गोविन्द, मधुसूदन भगवान् ने जब पृथ्वी और आकाश में कोई स्थान अनावृत नहीं देखा तब अपनी दोनों जङ्घाओं पर जो अनावृत थीं, उन दैत्यों के शिर रखकर तीक्ष्णचक्र से काट डाले॥ ३४। ३५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२॥

दोसौतीन का अध्याय।

धुन्धुदैत्य का वरदान पाना और राजा कुबलाश्व के हाथ से मारा जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे महाराज, युधिष्ठिर! उन दोनों दैत्यों का धुन्धुनामी एक पुत्र महातेजस्वी, बड़ा बलवान् और पराक्रमी था। उसने एक पैर से बड़ी भारी तपस्या की यहां तक कि उसके शरीर में केवल धमनीमात्र रह गई। तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उस दैत्य से कहा कि वरदान मांग। उस दैत्य ने सर्वशक्तिमान् ब्रह्मा से कहा कि महाराज! मुझको देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षस कोई न मार सकें यह वरदान दीजिये। ब्रह्माजी ने कहा अच्छा, हमने तुझको यही वरदान दिया, अब तू जा। यह सुनकर वह अपना मस्तक ब्रह्माजी के चरणों पर रखकर चल दिया १।४ और अपने बाप के वध को याद करता हुआ महाबलशाली शूरवीर वह दैत्य विष्णुभगवान् के पास पहुँचा ५ और सब देवता और गन्धर्वों को जीतकर देवता और विष्णुभगवान् को बारम्बार दुःख दिया ६ हे भरतर्षभ! इसके पीछे वह दैत्य उज्जालकनामी बालू से भरे हुए समुद्र के देश में पहुँचा और उत्तङ्कऋषि के आश्रम के निकट पृथ्वी के भीतर बालू से छिपा हुआ संसार को नाश करने के लिये अपने तपोबल से रहने लगा। उसके श्वास के साथ अग्नि की ज्वाला निकलती थी, उसको मारने के लिये राजा कुबलाश्व जो कि नरनायक होकर वैरियों का विनाश करनेवाला था वह अपने इक्कीसों सहस्र पुत्र, सेना और वाहन सहित उत्तङ्कऋषि के साथ साथ वहां गया ७। १२ उस समय सर्वशक्तिमान् विष्णु भगवान् ने उत्तङ्क की प्रेरणा और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

संसार का हित करने के लिये अपने तेज से उस राजा के शरीर में प्रवेश किया १३ उस दुराधर्ष के चलने के समय स्वर्ग में बड़ाभारी शब्द होने लगा कि यह श्रीमान् राजा अब धुन्धुमारनाम से प्रसिद्ध होगा १४ देवताओं ने फूलों की वर्षा की और उनकी दुन्दुभी विना बजाये बजने लगी १५ वायु शीतल, मन्द और सुगन्धित होकर चलने लगी और धूलिरहित पृथ्वी को करते हुए इन्द्र ने पानी की वर्षा की १६ उस समय हे युधिष्ठिर! सब देवता अपने अपने विमानों पर चढ़े हुए उस स्थान पर आगये जहां वह महादानव धुन्धुदैत्य सोता था और महाऋषि और गन्धर्व भी देवताओं के पास कुबलाश्व और धुन्धुदैत्य का युद्ध देखने के लिये आगये १७। १८ इसके अनन्तर हे कौरव्य! वह महाबली राजा नारायण के तेज से वृद्धि पाकर अपने पुत्रोंसहित दिशाओं को व्याप्त करता हुआ वहां आ पहुँचा और उस बालू के समुद्र को पुत्रों से खुदवाना प्रारम्भ किया। सातवें दिन उसने उस महापराक्रमी दैत्य को बालू के भीतर छिपा हुआ पाया। हे भरतर्षभ महाराज! उसका शरीर बड़ा लम्बा, चौड़ा और सूर्य के समान दीप्त था और वह पश्चिम दिशा को रोके हुए सो रहा था। कुबलाश्व के पुत्रों ने उस कालाग्नि के समान प्रभावान् दैत्य को चारों ओर से घेर लिया १९। २३ और उसपर तीक्ष्ण बाण, गदा, मुशल, पट्टिश, परिघ और खड्ग आदि शस्त्रों का प्रहार किया २४ उनके लगने से वह दैत्य क्रोधित होकर खड़ा हो गया और उन राजपुत्रों के छोड़े हुए शस्त्रों को खागया २५ इसके पीछे उस दैत्य ने अपने मुख से महाप्रलय की संवर्तकनाम अग्नि के समान ज्वाला छोड़ी और उनसे उसने उन राजपुत्रों को एक क्षणभर में इस प्रकार से भस्म कर दिया जैसे पहिले कपिलमुनि ने राजा सगर के पुत्रों को क्रोधित होकर जला डाला था। यह बात एक आश्चर्य की सी हो गई। जब वे राजपुत्र भस्म हो गये तब महातेजस्वी राजा कुबलाश्व आप उस दूसरे कुम्भकर्ण के समान दैत्य के सम्मुख गया २६। २९ उस समय उस दैत्य के शरीर से बहुतसा जल झरने लगा। राजा ने उस जलरूपी तेज को पान कर लिया और योग से उस अग्नि को जल के द्वारा शान्त कर दिया और सबलोकों की भलाई के लिये उस क्रूर पराक्रमी दैत्य को ब्रह्मास्त्र से मारकर दग्ध करडाला। उस देवशत्रु महाअसुर को जलाकर वहां राजर्षि कुबलाश्व दूसरे इन्द्र के समान शोभित हो गया और धुन्धुमारनाम से संसार में विख्यात हुआ। उस समय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रसन्न हुए सब देवता और महाऋषियों ने उससे कहा कि तुमको जो इच्छा हो सो वर मांगो । यह सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर नम्रता से हाथ जोड़कर कहा ३१।३५ कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों को धन दिया करूं, शत्रु मुझको जीत न सके, विष्णु भगवान् से मेरी मित्रता हो जाय, किसी जीव से द्रोह न करूं, धर्म में मेरी सदैव प्रीति रहे और मैं स्वर्ग में अक्षय वास पाऊं । यह सुनकर सब देवता, ऋषि, गन्धर्व और उत्तङ्क ने कहा कि ऐसा ही होगा । इसके पीछे सब देवता और महाऋषि उस राजा को अनेक प्रकार के आशीर्वाद देते हुए अपने अपने स्थानों को चले गये । हे युधिष्ठिर ! युद्ध हो चुकने पर उस राजा के तीन पुत्र दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और चन्द्राश्व रह गये थे, उन्हीं तीनों से इक्ष्वाकु के वंश की परम्परा चली आती है । सो हे युधिष्ठिर ! उक्त प्रकार से धुन्धुदैत्य मधुकैटभ दैत्यों का बेटा राजा कुबलाश्व के हाथ से मारा गया था और उसको मारने के कारण से उस राजा का नाम धुन्धुमार विख्यात हुआ था ३६ । ४२ यह धुन्धुमार उपाख्यान जो तुमने हमसे पूछा था, हमने कहा । जो कोई इस पवित्र और विष्णुकीर्तन के समान फल देनेवाले उपाख्यान को पर्वकाल में सुनेगा, वह पुत्रवान्, आयुष्मान् और ऐश्वर्यवान् होगा और किसी व्याधि से उसको भय न होगा ॥ ४३ । ४५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥

दोसौचार का अध्याय ।

पतिव्रता का माहात्म्य और माता पिता की सेवा करने के फल का वर्णन करना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उक्त कथा के सुनने के पीछे राजा युधिष्ठिर ने महातेजस्वी मार्कण्डेयजी से यह धर्मप्रश्न पूछा कि हे भगवन्, महाराज ! मैं आपके मुखारविन्द से स्त्रियों का उत्तम माहात्म्य और सूक्ष्मधर्म विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ । २ हे विप्रर्षे ! इस संसार में सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी और अग्नि प्रत्यक्ष दीखते हैं और पिता, माता, गुरु और जो कुछ देवताओं के रचे हुए पदार्थ हैं वे भी दृष्टि आते हैं सो जैसे ये सब बड़े माननीय हैं उसी प्रकार से एक पति रखनेवाली स्त्रियां भी आदर करने के योग्य हैं, परंतु पतिव्रता स्त्रियों की सेवा मुझको बड़ी कठिन दिखाई देती है ३ । ५ क्योंकि वे मन और इन्द्रियों को रोककर पति को देवता के समान ध्यान करती

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हैं। मुझको उनका यह कर्म बहुत कठिन दिखाई देता है। इससे आप मुझको पतिव्रताओं का माहात्म्य सुनाइये ६। ७ हे द्विजवर्य्य! मनुष्य को माता पिता की सेवा करना और स्त्री को पति की सेवा करना उचित है, परंतु स्त्रियों के कठिन धर्म से अति कठिन दूसरा धर्म मुझको दिखाई नहीं देता है ८ हे ब्रह्मन्! साधु आचारवाली स्त्रियां जो जो काम करती हैं वे सब निस्संदेह बड़े कठिन हैं और इसी प्रकार से माता पिता की सेवा करना भी कठिन है परंतु स्त्रियां एक पति रखकर और सत्य बोलकर दश महीने कोखि में गर्भ धारण करती हैं। हे द्विजनायक! बड़े बड़े दुःख उठाकर पुत्रों को उपजाकर बड़े स्नेह से पालती हैं। स्त्रियों का इससे और क्या अद्भुत कर्म होगा ६। १२ और जो जो बर्ताव क्रूरपुरुषों में होते हैं और निन्दित मनुष्य जैसे जैसे कर्म करते हैं वे भी मुझे बड़े कठिन दीखते हैं इससे मैं आपसे क्षत्रियधर्म के आचार का वृत्तान्त सुना चाहता हूं। कृपा करके जो कुछ मैंने पूछा है उसे वर्णन कीजिये। मैं विनयपूर्वक आपसे पूछता हूं १३। १५ मार्कण्डेयजी बोले हे भरतश्रेष्ठ! बहुत अच्छा, हम तुम्हारे सब दुर्लभ प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक देते हैं सुनो १६ कोई मनुष्य माता को और कोई पिता को अधिक जानते हैं परंतु दोनों की सेवा एकसी ही करना उचित है। देखो, माता बड़े बड़े कष्ट उठाकर पुत्र को पालती है और पिता भी तप और देवताओं की पूजा और क्षमा, अनुष्ठान आदि अनेक उपाय करके पुत्र का कल्याण चाहता रहता है। हे भरतवंशिन्! माता पिता दोनों इस प्रकार से कष्ट सहकर इस आशा से पुत्र को पालकर बड़ा करते हैं कि वह यश, कीर्ति और ऐश्वर्य को बढ़ावेगा और प्रजा का पालन करेगा १७। २० सो हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! जो पुत्र अपने माता और पिता की उस आशा को सफल कर दिखाता है उसीको धर्म का जाननेवाला समझना चाहिये और जिस मनुष्य के माता और पिता सदैव प्रसन्न रहते हैं उसकी इस लोक और परलोक दोनों लोकों में कीर्ति रहती है। अब स्त्रियों की व्यवस्था सुनो। स्त्रियों को अपने पति की सेवा के सिवाय कोई यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध और व्रत आदि करना उचित नहीं है। उसको पति की सेवा ही से स्वर्ग मिलता है। अब हम तुमसे पतिव्रताओं के धर्म का वृत्तान्त वर्णन करते हैं उसको भी सावधानता से सुनो॥ २१। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०४॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ पांचवाँ अध्याय ।

कौशिक ब्राह्मण और एक पतिव्रता स्त्री का संवाद वर्णन ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! कौशिक नामी कोई एक बड़ा तपस्वी, वेदपाठी और धर्मशील ब्राह्मण था १ वह द्विजनायक वेदों को सब अङ्ग और उपनिषदों समेत पढ़ता था । एक दिन वह किसी पेड़ की जड़ पर बैठा हुआ वेद पाठ कर रहा था २ उस वृक्ष के ऊपर एक बलाका अर्थात् बगला पक्षिणी गुप्त बैठी हुई थी । उस पक्षिणी ने उस ब्राह्मण के ऊपर बीट कर दी ३ तब उस ब्राह्मण ने उस चिड़िया पर क्रोध करके शाप दिया और उसकी ओर अत्यन्त क्रोध से देखा । वह चिड़िया उस ब्राह्मण के शाप से निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसको देखकर वह ब्राह्मण दया से विचारने लगा कि क्रोध में मैंने यह बुरा काम किया जो इसके प्राण लिये ४ । ६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार से अनेक बातें विचारता और कहता हुआ वह विद्वान् ब्राह्मण भीख मांगने के लिये ग्राम में चला गया और पवित्र कुलजनों के घर जाकर भीख मांगने लगा । मांगते मांगते वह उस घर पर पहुँचा जहां से पहिले भी कभी भीख ले आया था और वहां यह कहकर घर के द्वारपर खड़ा होरहा कि भिक्षा दो । भीतर से एक स्त्री ने उसको उत्तर दिया कि थोड़ी देर ठहरो, मैं बर्तन धो रही हूं । इनको धोकर तुझे भिक्षा लाती हूं । इसी अवसर में उस स्त्री का पति जो उस समय बहुत भूखा था अकस्मात् आगया । हे भरतसत्तम ! उसको देखकर वह श्यामनयनी साध्वी स्त्री उस ब्राह्मण को भीख डालना भूल गई और अपने पति को पाद्य, आचमन और आसन देकर उसकी सेवा करने लगी ७ । ११ हे युधिष्ठिर ! सुन्दर भोजन, मधुर व्यञ्जन और शीतल जल से उसे अच्छी तरह तृप्त किया और उसकी जूंठन को आप भोजन किया । इस प्रकार से वह स्त्री सदैव प्रीतिपूर्वक अपने पति को देव के समान जानकर उसके चित्त की वृत्ति के अनुसार सब काम करती थी और मन, वाणी और कर्म से अपने चित्त को पति के काम में अनन्य करके उसके समीप रहती थी १२ । १३ आचार उस स्त्री के साधु थे और वह पति की सेवा प्रीतिपूर्वक सब भावों से करती थी और बड़ी चतुर, कुटुम्ब का हित चाहनेवाली, पति की आज्ञा पर चलनेवाली, जितेन्द्रिय तथा देवता, अतिथि और सासु-श्वशुर की सेवा करनेवाली थी । सो जब वह स्त्री अपने पति की सेवा सब प्रकार से कर चुकी तब उसको उस ब्राह्मण की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

याद आई और वह लज्जित होती हुई भिक्षा लेकर शीघ्र बाहर निकली १४।१७ उसको देखकर वह ब्राह्मण बोला कि हे सुन्दरि ! तूने मुझको भीख देने के लिये खड़ा करके इतना विलम्ब किस कारण से लगाया, मुझे बिदा क्यों नहीं कर दिया १८ मार्कण्डेयजी बोले कि हे मनुजेन्द्र ! यह सुनकर और उस ब्राह्मण को क्रोध से संतप्त, तेज से प्रज्वलित देखकर वह स्त्री शान्तिपूर्वक बोली १९ कि हे महाराज ! आप क्षमा कीजिये, मैं अपने पति को सबसे बड़ा देवता समझती हूं, इसलिये उस भूखे व थके हुए की सेवा करने लग गई और आपको भिक्षा डालने न आसकी २० ब्राह्मण बोला अच्छा, ब्राह्मण बड़े नहीं हैं । तूने अपने पति को बड़ा ठहराया है, तू गृहस्थी होकर ब्राह्मणों का अपमान करती है, तू यह नहीं जानती है कि ब्राह्मण को इन्द्र भी प्रणाम करता है फिर भूतल में संसारी मनुष्यों की किनमें गिनती है । तैंने अभी वृद्ध लोगों से उपदेश नहीं पाया है । अरी ! ब्राह्मण अग्नि के समान हैं, अपने तेज से इस पृथ्वी को भी भस्म कर सक्ते हैं २१ । २२ यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री बोली कि हे तपस्विन्, महाराज ! आप क्रोध छोड़ दीजिये इस क्रोध की दृष्टि से आप मेरा कुछ नहीं कर सक्ते हैं । मैं कुछ बलाका पक्षिणी तो नहीं हूं जिसको आपने भस्म कर दिया था २३ हे विप्रजी ! यह मेरा अपराध क्षमा करने के योग्य है । ब्राह्मण निःसंदेह मनस्वी होकर देवताओं के समान हैं, मैं उनका अपमान नहीं करती हूं और उन बुद्धिमान् ब्राह्मणों के तेज और माहात्म्य को भी जानती हूं २४ । २५ ब्राह्मणों के क्रोध की अग्नि दण्डकवन में अभी तक नहीं बुझी है । ब्राह्मणों ने क्रोध से खारी समुद्र को पी लिया था और ब्राह्मणों का अपमान करने के ही कारण से अगस्त्यजी ने वातापी दैत्य को पचा डाला था सो मैंने महात्मा ब्राह्मणों के बड़े बड़े प्रभाव सुने हैं और मैं जानती भी हूं कि उनका प्रसाद और क्रोध बहुत बड़ा है । हे ब्रह्मन् ! इस मेरे अत्याचार में आप क्षमा करने योग्य हैं २६ । २९ परन्तु मैं पति को सब देवताओं में परमदेवता जानती हूं और उसी की सेवा करने का धर्म मुझको प्यारा लगता है । इससे हे द्विजोत्तम ! मैं पति की सेवा के धर्म को पूरा पूरा करती हूं और उसके फल को आप प्रत्यक्ष देख लीजिये कि मुझको उस बलाका पक्षिणी का वृत्तान्त पूरा पूरा मालूम होगया जिसको आपने क्रोध से भस्म कर डाला था । इससे आपको मेरे ऊपर क्षमा करना उचित है । मनुष्य के शरीर में क्रोध शत्रुरूप होता है ३०।३२ जो कोई उसको

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

त्याग देता है और जो सत्यवादी, गुरुभक्त, शान्तस्वरूप, मारते हुए का न मारनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मतत्पर, वेदपाठी, पवित्र, काम और क्रोध को वश में करनेवाला, सबको अपनी आत्मा के समान समझनेवाला, धर्मप्रिय, वेद पढ़ने-वाला, वेद पढ़ानेवाला, यज्ञ करनेवाला, यज्ञ करानेवाला, यथाशक्ति दान करने-वाला, ब्रह्मचारी और जप का करनेवाला होता है। देवता उसीको ब्राह्मण कहते हैं ३३। ३८ सत्यवादी झूंठ कभी नहीं बोलना चाहते हैं और ब्राह्मणों की कुशल की बात कहना और वेदपाठ, इन्द्रियों का रोंकना और दम का आचार रखना ब्राह्मणों का सनातन धर्म है। धर्मज्ञ लोग सत्य, आर्जव अर्थात् कुटिलतारहित धर्म को परम धर्म कहते हैं। सनातन धर्म का जानना बहुत कठिन है, वह धर्म केवल सत्य में स्थित है। वृद्धलोग ऐसा उपदेश करते हैं कि जो धर्म किया जाय वह ऐसा न चाहिये कि उसका प्रमाण श्रुति में भी मिले ३९। ४१ क्योंकि बहुधा धर्म सूक्ष्म भी होता है। सो हे भगवन्! आप भी धर्मज्ञ, वेदपाठी और पवित्र हैं ४२ परंतु आप अभी धर्म को तत्त्वपूर्वक नहीं जानते हैं। हे विप्र! यदि परम धर्म को नहीं जानते हो तो ४३ आपको उचित है कि आप मिथिला-पुरी में जाकर धर्मव्याध से परमधर्म पूछें। वह सत्यवादी जितेन्द्रिय और माता पिता की सेवा करनेवाला है। वह आपको सब धर्मों को बतावेगा ४४ अब आप इच्छापूर्वक वहां जाइये, आपका कल्याण हो और मेरे कहने सुनने को क्षमा कीजिये। धर्म जाननेवालों के निकट स्त्रियाँ सब से अवध्य हैं ४५। ४६ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे शोभने! तेरा कल्याण और भला हो, मेरा सब क्रोध जाता रहा। मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं और यद्यपि तैंने मुझसे अनेक निन्दा वचन कहे परंतु मैं उन सबको अपना कल्याण समझता हूं। अच्छा अब मैं जाता हूं और अपने कार्य को साधन करता हूं ४७ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह द्विजसत्तम कौशिक ब्राह्मण उस स्त्री से बिदा होकर अपनी आत्मा की निन्दा करता हुआ अपने घर को गया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥

दोसौ छठाँ अध्याय।

कौशिक ब्राह्मण का मिथिलापुरी में जाकर धर्मव्याध के शिष्टाचार धर्म का वर्णन करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह ब्राह्मण उस स्त्री के कहे हुए आश्चर्यरूप वचनों को संपूर्णता से सुनकर चिन्ता करता हुआ अपनी आत्मा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की निन्दा करने लगा और ऐसा हो गया मानो अपराधी है १ और विचार करने लगा कि चिन्ता करने से मनुष्य धर्म की सूक्ष्मगति को जान सकता है इससे मुझे चाहिये कि मैं मिथिलापुरी को अभी जाऊं और वहां जो शुद्ध अन्तःकरण और धर्म का जाननेवाला व्याध रहता है, उससे धर्म की व्यवस्था पूछूं। ऐसा विचारकर वह ब्राह्मण बलाका के भस्म होने का पता देने के कारण से उस स्त्री के धर्मरूपी वचनों में श्रद्धा करके मिथिलापुरी को चल दिया और अनेक वन, ग्राम और नगरों में घूमता हुआ राजा जनक की उस पुरी में जा पहुँचा। वहां के निवासी बड़े धर्मात्मा और पुष्ट थे और प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। जहां तहां उस पुरी में यज्ञस्थान बने हुए थे और राजमन्दिर, गोपुर, अटारियां और प्राकार अर्थात् शहरपनाह से वह नगर परम सुशोभित होरहा था और अनेक प्रकार के रमणीक विमान, चौड़ी चौड़ी गलियां और घोड़े, हाथी और योद्धाओं से बड़ा रमणीक दीखता था और उसमें नित्य उत्सव हुआ करते थे। वह ब्राह्मण उस पुरी की शोभा को देखता हुआ भीतर गया और वहां उसने ब्राह्मणों से उस व्याध का घर पूछा, ब्राह्मणों ने उसे बता दिया कि वह घर है। तब वह वहां चला गया और उस व्याध को उसने मृग और भैंसों के मांस को वधस्थान में बेंचते हुए देखा परंतु गाहकों की भीड़ भाड़ के कारण से वह वहां नहीं गया किंतु एक एकान्तस्थान में खड़ा होरहा २।११ उसी समय वह व्याध उस ब्राह्मण के आने के वृत्तान्त को जानकर शीघ्र उठकर उसके पास चला आया और कहने लगा कि हे भगवन्, द्विजोत्तम, महाराज ! आपका आना शुभ हो। मैं आपको दण्डवत् करता हूं और मैं ही व्याध हूं, कहिये मुझको क्या आज्ञा है १२। १३ आप जो यहां पतिव्रता स्त्री के कहने से आये हैं उस सब वृत्तान्त को मैं जानता हूं। यह सुनकर वह ब्राह्मण बड़े आश्चर्य में आगया और उस व्याध को भी पतिव्रता के समान त्रिकालदर्शी जानकर कहने लगा कि यह दूसरा आश्चर्य है। इसके पीछे उस व्याध ने यह विचारकर कि वह स्थान अच्छा नहीं है, उस ब्राह्मण से कहा कि हे भगवन् ! जो तुम्हारी इच्छा हो तो घर चलो १४। १६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! व्याध का वचन सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोला बहुत अच्छा चलिये। तब वह व्याध ब्राह्मण को आगे आगे करके अपने घर पर लिवा ले गया १७ और पाद्य, आचमन देकर उसे आसन पर बड़े आदर से बैठाया १८ इसके उपरान्त सुखपूर्वक बैठने पर उस ब्राह्मण ने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

व्याध से कहा कि आपका कर्म मुझे आपके योग्य नहीं दीखता है इससे मुझे बड़ा दुःख है । व्याध बोला कि महाराज ! यह कर्म हमारे कुल का आचरण और बापदादों का पद है । हम अपने धर्मपर चलते हैं इससे आप इस बात का दुःख न मानिये १६।२० हे द्विजोत्तम ! विधाता ने पूर्वकाल से हमारे लिये जो कर्म रचा है उसको और अपने वृद्ध माता, पिता की सेवा में तत्पर रहताहूं २१ सत्य कहता हूं । कि मैं दूसरों के गुणों में दोष नहीं लगाता हूं, यथाशक्ति दान भी देता हूं और जो अन्न देवता, भृत्य और अतिथि आदि को देकर शेष रहता है, उसीमें अपना निर्वाह कर लेता हूं २२ इसके सिवाय मैं किसीमें कोई दोष हो तो भी नहीं कहता हूं और मिथ्या दोष तो कभी लगाता ही नहीं । हे महाराज ! पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म बड़ा बलवान् होता है और करनेवाले के पीछे चलता है २३ संसार में जीविका उत्पन्न करने के लिये खेती, गोरक्षा, वाणिज्य, दण्डनीति और तीनों विद्याओं का जानना है, सो सब वर्णों के मनुष्य अपने अपने वर्ण के अनुसार कर्म करके जीविका उत्पन्न करते हैं अर्थात् शूद्र सेवा से, वैश्य खेती से, क्षत्रिय संग्राम से और ब्राह्मण ब्रह्मचर्य, तप, मन्त्र और सत्य से जीविका उत्पन्न करते हैं । राजा इन चारों वर्णों पर शासन करता है और इनमें से जो मनुष्य कोई कर्म नहीं करता है उसको कर्म से युक्त करता है २४ । २६ मनुष्य को राजा से भय करना अवश्य है क्योंकि वह विपरीत कर्म करनेवाली प्रजा को उस कर्म करने से रोकता है । हे द्विजोत्तम !देखिये, यहां राजा जनक का राज्य है । कोई मनुष्य इस राज्य में विपरीत कर्म नहीं करता है किंतु सब वर्णों के मनुष्य अपना अपना कर्म ही करते हैं २७।२८ कारण यह है कि यह राजा धर्मात्माओं से ग्लानि नहीं करता है और खोटा काम करनेवाले को उसका पुत्र भी हो तो भी विना दण्ड दिये नहीं रहता है २६ और राज्यदण्ड और लक्ष्मी आदि सब राजधर्मों को धर्मपूर्वक करता है और अपनी लक्ष्मी को धर्म से ही बढ़ाना चाहता है और चारों वर्णों की रक्षा करता है ३०।३१ और मैं उन वाराह, मृग और भैंसों के मांस को बेचता हूं जो दूसरे मनुष्य मारकर लाते हैं, कुछ अपने आप मैं इनका वध नहीं करता हूं ३२ इसके सिवाय मैं मांस खाता भी नहीं हूं और स्त्री के पास भी ऋतुकाल पर ही जाता हूं और व्रत भी करता हूं और रात्रि के समय भोजन किया करता हूं ३३ अशीलवान् पुरुष शीलवान् और हिंसक धार्मिक हो जाया करते हैं ३४ जब राजाओं का आचार खोटा हो जाता है तब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धर्म कम हो जाता है और अधर्म अधिक होने लगता है। उस अधर्म से प्रजा का नाश हो जाता है और प्रजा के मनुष्य कोई भयानक, कोई कुबड़ा, कोई मोटा, कोई पतला, कोई नपुंसक, कोई अन्धा, कोई बहिरा और कोई स्तब्धलोचन होने लगते हैं, परंतु यह हमारा राजा जनक सब प्रजा को बड़े धर्म से पालन करता है ३५। ३७ और आप भी धर्म पर चलकर प्रजा पर अनुग्रह रखता है। प्रायः बहुत से मनुष्य मेरी निन्दा और बहुत से प्रशंसा किया करते हैं ३८ परंतु मैं उन दोनों को अपने साधु कर्मों से प्रसन्न रखता हूं। राजा वही है जो अपनी सेना के लिये स्थान बनवाता है और अपने व्यय के लिये धर्म से धन उत्पन्न करता है ३९ और जो राजा जितेन्द्रिय और उत्थानशील अर्थात् उद्यमी होता है वह सिवाय धर्म के और प्रकार से जीविका उपार्जन नहीं करता है और यथाशक्ति सदैव अन्नदान देना, क्षमा रखना, धर्म पर सदैव चलना और प्राणियों की सब अवस्थाओं में यथायोग्य पूजा करना। ये गुण मनुष्य में संसारी भोगों को विना त्यागे नहीं आसक्ते हैं ४०। ४१ मनुष्य को उचित है कि मिथ्या बोलना छोड़ दे, जो कोई किसी काम को कहे उसका वह काम कर दे और काम, द्वेष और भय के कारण से धर्म को कभी न छोड़े ४२ जो कोई काम अपनी इच्छा के अनुकूल हो तो प्रसन्न न होवे और विपरीत काम होने से चित्त म्लान न करे और जो अर्थ के साधन में कोई कष्ट आन पड़े तो उस कष्ट से मोहित होकर धर्म को न छोड़े ४३ जो काम विपरीत हो उसको दुबारा न करे और जिस काम में अपना और दूसरे का कल्याण दीखे उसे अवश्य करे ४४ पापियों की संगति में जाकर आप भी पापी न हो जाय किन्तु साधु ही रहे क्योंकि पापी अपने आप ही नष्ट हो जाता है ४५ और जो लोग पवित्र पुरुषों से यह कह कर हँसते हैं कि यह कर्म असाधु और व्यसनी पुरुषों का है, धर्म नहीं है और धर्म में किंचितमात्र भी श्रद्धा नहीं करते हैं वे निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं। हे महाराज! आप पापी मनुष्यों को इस प्रकार से निःसार समझिये जैसे वायु भरी हुई चर्म की धौंकनी अर्थात् वायु के निकलने पर फिर फूली हुई नहीं रहती है ४६। ४७ मूढ़ और घमण्डी मनुष्यों के विचार में कोई सारांश नहीं होता है। यह बात तुमको अन्तरात्मा से इस प्रकार से प्रतीत हो सकती है जैसे सूर्य से दिन प्रतीत होता है ४८ मूर्ख केवल अपनी प्रशंसा आप करने से शोभा नहीं पाता है और पण्डित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मलिन होने पर भी अपनी विद्या का प्रकाश करता है ४६ हमने इस पृथ्वी पर किसी मूर्ख को जो पराई निन्दा और अपनी स्तुति करता है, गुणवान् नहीं देखा ५० जो मनुष्य किसी पाप कर्म को करता है और करके उसका पश्चात्ताप करता है, वह पिछले किये हुए पाप से छूट जाता है और जो यह संकल्प करता है कि फिर ऐसा पाप न करूंगा वह उस किये हुए पाप का फल नहीं भोगता है ५१ हे द्विजवरोत्तम! ऐसी भी श्रुति है कि मनुष्य जप, तप आदि और उपायों से भी पाप से छूट जाता है। जो मनुष्य धार्मिक होकर अज्ञान से हिंसा आदि पाप कर्म करता है वह प्रमाद से किये जाने पर मनुष्य के धर्म को नाश कर देता है ५२। ५३ और जो मनुष्य पाप कर्म करके ऐसा मानता है कि उस पाप का करनेवाला मैं नहीं हूं दूसरा है, उसको उसके भीतर रहनेवाले देवता मारते हैं और जो पुरुष श्रद्धावान् होता है और दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाता है और साधुओं के छिद्र को वस्त्र के समान ढकने का उपाय करता है, उसका कल्याण होता है और जो मनुष्य पाप करके उससे छूटने का उपाय करता है, उसका वह पाप इस प्रकार से दूर हो जाता है जैसे बादल में छिपा हुआ चन्द्रमा बादल के हट जाने से निर्मल निकल आता है ५४। ५६ और जैसे सूर्य के उदय होने से अँधेरा दूर होजाता है, उसी प्रकार से मोक्ष का उपाय करनेवाले मनुष्य के सब पाप दूर होजाते हैं ५७ हे महाराज! पाप का मूल लोभ है, लोभी और शास्त्र को न जाननेवाले मनुष्य निश्चय पाप करते हैं ५८ अधर्मी मनुष्य पाखण्डरूपी धर्म से इस प्रकार से भरे हुए होते हैं जैसे घास फूस से भरा हुआ कूप। वे लोग बाहर की इन्द्रियों को रोकना और स्नान आदि धर्मसम्बन्धी वार्त्ता करते हैं, परंतु शिष्टाचार बड़ा दुर्लभ पदार्थ है वह उनमें नहीं होता है ५६ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! उक्त कथा को सुनकर उस ब्राह्मण ने धर्मव्याध से पूछा कि हे धर्मविदांवर, व्याध! मैं शिष्टाचार को कैसे जान सक्ता हूं, आप कृपा करके इस वृत्तान्त को मुझे यथावत् सुनाइये ६०।६१ व्याध बोला कि महाराज! यज्ञ, तप, दान, वेद और सत्य ये पांचों पवित्र कर्म शिष्टाचार में सदैव गिने जाते हैं ६२ जो मनुष्य काम, क्रोध, दम्भ, लोभ और कुटिलता को त्यागकर धर्म में परायण रहते हैं, वे ही शिष्टसंमत होकर शिष्टपुरुष हैं ६३ ऐसे लोग स्वभाव ही से जप और यज्ञ करते रहते हैं और कोई धर्म अपनी कल्पना से नहीं करते हैं। आचार का पालन भी शिष्ट होने का दूसरा लक्षण है ६४ सो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जो शिष्टाचारवान् पुरुष हैं उनकी वृत्ति सदैव गुरु सेवा, सत्य, दान और क्रोध के त्याग में रहती है ६५ विना इनके किये शिष्टाचार में मन रखनेवाले मनुष्य को शिष्टवृत्ति पाना दुर्लभ है ६६ वेद का सार सत्य है और सत्य का सार दम अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से रोकना है और दम का सार त्याग है, यही सार शिष्टाचार में सदा गिना जाता है ६७ जो मनुष्य बुद्धिमान् होकर मोह के कारण से धर्म की निन्दा करते हैं, उनके बर्ताव पर चलनेवाला मनुष्य बहुत क्लेश पाता है ६८ और जो मनुष्य शिष्टकर्म में निरत होकर श्रुति, त्याग और सत्यपरायण तथा धर्मात्मा होते हैं, वे धर्मार्थदर्शी उपाध्याय के मत के अनुसार कर्म करके परबुद्धि अर्थात् जो पदार्थ सबसे परे है उसको प्राप्त करते हैं ६९ । ७० सो हे ब्राह्मण ! तुम नास्तिक, क्रूरकर्मी, पापी और मर्यादा को छोड़कर चलनेवाले पुरुषों को त्याग कर और ज्ञान में आश्रित होकर धर्मात्माओं का सत्संग करो ७१ और इस जन्म-मरणरूपी नदी को, जिसमें काम और लोभरूपी बड़े बड़े ग्राह हैं और पांचों इन्द्रियरूपी जल भरा हुआ है, धृतिरूपी नाव पर चढ़कर उतर जावो ७२ जैसे श्वेत वस्त्र पर सब रंग सुगमता से चढ़ जाते हैं, उसी प्रकार से शिष्टाचार रखनेवाले मनुष्य के हृदय में क्रम से इकट्ठा किया हुआ ज्ञान-योगरूपी धर्म विना परिश्रम दृढ़ हो जाता है ७३ हिंसा न करना परमधर्म और प्राणियों का बड़ा हित है, वह अहिंसा का धर्म सत्य से केवल हो सकता है, इससे सत्य में स्थिर होने से सब सुकर्मों में प्रवृत्ति हो जाती है ७४ और शिष्टाचारों में सत्य ही सबसे भारी है और आचार सत्पुरुषों का धर्म और सन्तों का लक्षण है ७५ जिस जीव का जैसा स्वभाव होता है, उसका वैसा ही स्वभाव बना रहता है और जिस मनुष्य का चित्त अपने वश में नहीं होता है, वह पापी काम और क्रोध आदि दोषों को शीघ्र ग्रहण कर लेता है ७६ जिस कर्म का आरम्भ न्याय के अनुसार है, उसीका नाम धर्म है और जो अनाचार है वही अधर्म है और जो मनुष्य क्रोधहीन, दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला, अहंकार और मत्सरता-रहित, सीधा, समदर्शी, वेदपाठी, पवित्र, वृत्तिमान्, मनस्वी, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय है वही शिष्टाचार रखनेवाला है ७७ । ७८ ऐसे कठिन-कर्मी, सत्कृती, ज्ञानी और शिष्टाचारवान् मनुष्यों के हिंसात्मक कर्म अर्थात् पाप नाश हो जाते हैं और वे आश्चर्यरूप, अनादि, अनवच्छिन्न और नित्य धर्म को धर्म से बर्तते हुए स्वर्ग प्राप्त करते हैं ८० । ८१ जो सन्त आस्तिक बुद्धि रखनेवाले, मानहीन,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्राह्मणों के पूजक और वेदविहित मार्ग पर चलनेवाले हैं वे निस्संदेह स्वर्गगामी हैं ८२ धर्म के लक्षण तीन हैं। वेदोक्त धर्म १ शास्त्रोक्त धर्म २ और शिष्टपुरुषों का शिष्टाचार ३ और विद्याओं की समाप्ति, तीर्थस्नान, क्षमा, सत्य, सीधापन और शौच यह सत्पुरुषों का आचारदर्शन है और सब जीवों पर दया करना, अहिंसा और ब्राह्मणों से प्रीति रखना, कठोर वचन न बोलना और शुभ-अशुभ कर्मों के संचय में विपाक अर्थात् पाप पुण्य की क्षय को जानना और न्यायपूर्वक सबपर एकदृष्टि रखना, ये लक्षण शिष्टपुरुष और संसारका हित चाहनेवालों के हैं ८३।८६ और हिंसा न करना, धर्म रखना, ब्रह्मके मार्ग का चिन्तन करना, दान करना, दीनों पर अनुग्रह करना, सबका पूज्यहोना, वेदरूपीधन रखना, तपकरना, सबपर दया करना ये भी स्वर्ग को जीतनेवाले शिष्टपुरुषों के आचार हैं ८७।८८ ऐसे दान में निष्ठा रखनेवाले पुरुष इस लोक में लक्ष्मी और परलोक में सुखपातेहैं और सत्पुरुषों की संगति करनेवाले सन्तलोग स्त्री और भृत्योंको दुःख होने पर भी यथाशक्ति दान करते हैं और अपने हित और इस लोक के धर्म को देखकर अपने कर्म पर आरूढ़ रहकर सदैव वृद्धि पाते रहते हैं और अहिंसा, सत्य वचन, दया, सीधापन, द्रोह न करना, अभिमान को त्यागना, लज्जा, क्षमा और इन्द्रियोंको जीतना ये उन सन्तलोगों के गुण होतेहैं जो सन्त बुद्धिमान्, धृतिमान्, दयावान् और कामद्वेषरहित हैं, उनकी गणना लोकसाक्षियों में है। उत्तम पुरुषों के तीन पद हैं ८९। ९३ द्रोह न करना १ दान करना २ और सदैव सत्य बोलना ३ दयावान् सन्तलोग इस लोक में संतुष्ट रहकर धर्मसम्बन्धी उत्तम गति पाते हैं और जो महात्मा शिष्टाचारी हैं और जिन्होंने धर्म का निश्चय अच्छे प्रकार से किया है ९४। ९५ उनके आचरण ये हैं कि दूसरे के गुणों में दोष न लगाना, क्षमाकरना, शान्तस्वरूप रहना, संतोष होना, प्रिय बोलना और काम, क्रोध को त्यागना ९६ शिष्टाचार शास्त्रविहित सत्पुरुषों का उत्तम स्वर्ग है, धर्म में प्रीति रखनेवाले मनुष्य सदैव इसी मार्गपर चलते हैं ९७ और ज्ञानरूपी मन्दिरपर चढ़कर इससंसार के नानाप्रकार के वृत्तान्तों को देखकर बड़े भय से छूटजाते हैं और सब पुण्य और पापों से निश्चिन्त होकर मोक्ष पाते हैं। हे ब्राह्मण, महाराज! आपके पूछने के अनुसार मैंने अपनी बुद्धि और शास्त्र के अनुसार शिष्टाचार के गुण कहे॥ ९८।९९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौसातवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक से पूर्वजन्म के कर्मों की प्रबलता कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! उक्त कथा को कहने के उपरान्त धर्मव्याध ने उस ब्राह्मण से फिर कहा कि महाराज! होनहार बड़ी बलवान् है और पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। देखिये, यह पूर्वजन्म के पापों का ही फल है जो मैं इस वधिक के घोरकर्म को करता हूं और यत्न करने पर भी अपने इस दोष को दूर नहीं करसक्ता हूं १। ३ हे द्विजोत्तम! मैं इस कर्म के करने में केवल निमित्तमात्र हूं क्योंकि जिन मारे हुए जीवों का मांस मैं बेचता हूं उनके मांस को भक्षण करने में धर्म होता है और उस मांस से देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों का पूजन भी होता है ४। ५ वेद की यह श्रुति सुनी जाती है कि औषध, पशु, मृग, पक्षी और अन्न ये सब पदार्थ मनुष्य के भोजन के लिये निर्मित हैं ६ देखो, उशीनर के पुत्र राजा शिबि ने अपना मांस दान करने से स्वर्गलोक पाया था ७ और पूर्वकाल में राजा रन्तिदेव के रसोई के घर में दो सहस्र पशु नित्य मारे जाते थे ८ और मांससहित अन्नदान करने के कारण से उस राजा रन्तिदेव की बड़ी कीर्ति संसार में हुई थी और उसके यहां चातुर्मास में नित्य पशु मारे जाते थे ९। १० यह भी श्रुति सुनी जाती है कि अग्नि भी मांस ही चाहती है। देखो, यज्ञों में ब्राह्मणलोग पशुओं को मन्त्रों से संस्कृत करके सदैव मारा करते थे। उन्होंने भी स्वर्ग पाया था ११ हे द्विजोत्तम! जो पूर्वकाल में अग्निदेव मांस की इच्छा न करते तो मांस कोई नहीं खाता १२। १३ और मुनिलोगों ने अब भी मांस भक्षण करने की यह विधि कही है कि जो पुरुष विधि और श्राद्ध के अनुसार देवता और पितरों को देकर मांस खाता है उसको मांस भक्षण करने का दोष नहीं होता है १४ और श्रुति भी ऐसी सुनी जाती है कि उक्त प्रकार से मांस खाना मांसभक्षण में नहीं गिना जाता है और जो ब्राह्मण स्त्री के पास ऋतुकाल में जाता है और अन्य समय नहीं जाता है वह ब्रह्मचारी है १५ सत्यज्ञान के मार्ग का विचार करके मांस का भक्षण कहा गया है। देखो, राजा सौदास ने शाप से अभिभूत होकर बहुत से मनुष्यों को मारकर उनका मांस भक्षण किया था। ऐसी अवस्था में मैं यह विचार कर कि यह हमारा धर्म है, इस कर्म को नहीं छोड़ता हूं और इसको अपने पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल जान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्राह्मणों के पकर अपना पेट पालता हूं १६ । १७ अपने धर्म को छोड़ना बड़ा वामी हैं ८ इससे अपने कर्म में रत रहना ही धर्म है १८ कर्म के निर्णय करने का ईश्वरकी यह विधि बहुधा देखी गई है कि पूर्वजन्म में कियेहुए कर्म का फल देहधारी को अवश्य मिलता है १६ क्रूरकर्मी पुरुष को अपनी बुद्धि से यह बात विचारना उचित है कि मैं शुभकर्म किस प्रकार से करूं जिससे पराभव से छूटजाऊं २० ऐसा विचार करने पर उसको उस कर्म के निर्णय करने में बहुत प्रकारकी बातें दीखेंगी और तब वह कहेगा कि मैं दान देताहूं, सत्य बोलताहूं, गुरु की सेवा करता हूं, ब्राह्मणों का पूजन करताहूं, धर्म में निरत रहता हूं और अभिमान और अतिवाद नहीं करता हूं २१ । २२ परंतु उपजीवन के लिये क्या कर्म किया जाय ? बहुत से मनुष्य कहते हैं कि खेती से जीविका उत्पन्न करना बहुत श्रेष्ठ है परंतु उसमें बड़ी हिंसा होती है; क्योंकि हल चलाने और पृथ्वी पर सोने से बहुत से जीव मारेजाते हैं २३ इसके सिवाय चावल आदि धान्य और बीज जो खाये जाते हैं वे भी तो जीव ही हैं सो जैसे उनको काटकर खाते हैं उसी प्रकार से पशुओं को भी मारकर भक्षण करते हैं और मनुष्य, वृक्ष और औषधियों को भी काटते हैं उनमें भी बहुत से जीव रहते हैं और जल भी जीवों से भरा हुआ है ऐसी अवस्था में तुम क्या विचार करोगे; सिवाय इसके कुछ नहीं कि इस जगत् में सब जीव एक दूसरे का आहार हैं २४ । २७ देखो, मछली मछली को खालेती है और बहुत से और जीव ऐसे हैं जिनका भक्ष्य सिवाय दूसरे जीव के और कुछ नहीं है इससे सिवाय इस बात के और क्या जाना जा सकता है कि एक प्राणी दूसरे प्राणी को भक्षण करनेवाला है। पृथ्वी और आकाश में कोई स्थान ऐसा नहीं है जो जीवों से खाली हो सो मनुष्य चलते, फिरते, उठते, बैठते और सोते में अनेक जीवों को मार डालते हैं इससे यह विदित होता है कि मनुष्य हिंसा से बच नहीं सकता है और संसार में कोई जीव अहिंसक नहीं है। पूर्वकाल में यह अहिंसा का शब्द केवल विस्मित मनुष्यों ने कहा है २८ । ३३ हे द्विजसत्तम ! यतीलोग भी हिंसा से बचे हुए नहीं हैं। वे भी हिंसा करते हैं परंतु हां, यत्न करने से हिंसा कम हो सकती है ३४ देखो, जो लोग अच्छे कुलों में उत्पन्न होते हैं और गुणवान् होते हैं वे भी घोरकर्म करते हैं और उन कर्मों के करने पर लज्जा नहीं करते हैं ३५ देखो, मित्र मित्र को और शत्रु शत्रु को अच्छे मार्ग में प्रवृत्त देखकर देख नहीं सकते हैं और एक भाई दूसरे को बढ़ा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हुआ देखकर प्रसन्न नहीं होता है उसी प्रकार से पण्डिताई के अभिमान से अज्ञानीलोग गुरुओं की भी निन्दा करते हैं इस प्रकार से इस संसार में धर्म और अधर्म से युक्त बहुत सी बातें दीखती हैं। उनमें धर्म और अधर्म का विचार करके कोई पार नहीं पासकता है इससे जो मनुष्य अपने धर्म और कर्म में निरत रहता है वही सुयश पाता है॥ ३६। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०७॥

दोसौआठवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक से धर्म की सूक्ष्मगति और कर्मानुसार फल का कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इस के उपरान्त उस धर्मव्याध ने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से फिर कहा १ कि महाराज! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म, अनेक शाखा रखनेवाली और अनन्त है और वेद में उसका प्रमाण और वृद्धों का उपदेश इस प्रकार से है कि प्राणों के मारे जाने और विवाह के समय झूठ बोलना सत्य के समान है, झूंठ नहीं है २। ३ और जिस विपरीत कर्म से जीवों का परमहित होता हो वह कर्म भी निश्चय सत्य है। इसीमें धर्म की सूक्ष्म गति को देखलो ४ मनुष्य को शुभ और अशुभ कर्मों का फल निश्चय मिलता है, उसमें जो पण्डित नहीं होता है वह अपने कर्म के दोष को न जानकर दुःख पाने पर देवताओं की निन्दा करता है ५। ६ हे द्विजोत्तम! अज्ञानी, कपटी और चपल पुरुषों को दुःख और सुख का विपर्यास सदैव होता रहता है ७ उसको बुद्धि, गुरु, शिक्षा और पौरुष रोक नहीं सकते हैं और जो पौरुष का फल दूसरे के आधीन न होता तो मनुष्य जिस कामना को चाहता वही पूरी होती। देखो, सन्तलोग जो सावधान, चतुर, बुद्धिमान् और उपाधि रहित हैं कोई कर्म नहीं करते हैं। बहुत से मनुष्य निरन्तर प्राणियों की हिंसा करने में लगे रहते हैं ८। १० बहुत से जगत् को ठगते फिरते हैं और सुख से रहते हैं और बहुत से कोई काम नहीं करते हैं और लक्ष्मीवान् होते हैं ११ बहुत से ऐसे भी हैं कि अनेक कर्म करते हैं परंतु उनकी कामना पूरी नहीं होती है, बहुत से मनुष्य पुत्र के लिये देवताओं की पूजा और तप करते हैं और फिर दश महीने गर्भ धारण करने पर उनके कुलकलङ्की पुत्र उत्पन्न होता है और बहुत से मङ्गल के साथ उत्पन्न होते हैं और बाप दादे के इकट्ठा किए हुए ऐश्वर्य को भोगते हैं और मनुष्य के जो रोग उत्पन्न होते हैं वे निस्संदेह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कर्म ही से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को उन रोगों से इस प्रकार से पीड़ा होती है जैसे व्याधाओं से मृग पीड़ित होते हैं। उन रोगों को कुशल वैद्य औषधियों से दूर कर देते हैं। बहुत से ऐसे भी हैं कि उनके पास सब उत्तम पदार्थ भोगने को हैं परंतु उनको ऐसे रोग लगे हुए हैं कि वे उन पदार्थों को भोग नहीं सकते हैं और बहुत से भुजा का बल रखने पर भी क्लेश पाते हैं १२। १७ यहां तक कि भोजन भी दुःख से मिलता है इस प्रकार से यह सहायहीन संसार पूर्वकर्मों के कारण से मोह, शोक, आधि और व्याधि से व्याप्त है परंतु वशित्व के होने से मनुष्य न मरता है, न वृद्ध होता है और न अप्रिय प्राप्त करता है किन्तु उसकी सब कामना पूरी होती है और उसकी इच्छा सब लोकों के ऊपर ऊपर जाने की रहती है १८। २० हां, जो लोग अपनी शक्ति के अनुसार यत्न करते हैं उनको वैसा नहीं होता है। बहुत से मनुष्यों के नक्षत्र और मङ्गलीय ग्रह एक से होते हैं परंतु उनके कर्मसंधि से फल एकसा नहीं मिलता है हे ब्रह्मन्! कोई मनुष्य अपने आप मिली हुई वस्तु का स्वामी नहीं है अर्थात् विना यत्न कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती है इससे संसार में कार्य की सिद्धि विना कर्म किये नहीं होती है २१। २२ वेद के अनुसार मनुष्य का शरीर नाशवान् और जीव सनातन है २३ सो मरने पर मनुष्य के शरीर का तो नाश हो जाता है परंतु जीवात्मा कर्म के बन्धन से बँधा हुआ दूसरी योनि में जाकर जन्म ले लेता है २४ यह सुनकर ब्राह्मण बोला कि हे कर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीव किस प्रकार से सनातन है मैं इस बात को तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूं २५ व्याध बोला कि अज्ञानी लोग जो यह कहते हैं कि फलाना मरगया, यह मिथ्या है, जीव का नाश कभी नहीं होता है किंतु वह देहान्तर में चला जाताहै सो जीव के देह बदलने का ही नाम पञ्चत्व है २६ इस संसार में कर्म का नाश नहीं होता है और उसको कर्त्ता के सिवाय और कोई नहीं भोगता है २७ इससे जब मनुष्य अपने कर्मानुसार दूसरा जन्म लेता है तब पापी, नीचकर्मी और पुण्यात्मा पुण्यकर्मी होता है २८ ब्राह्मण बोला कि वह जीव योनि में किस प्रकार से जन्म लेता है और पुण्य पाप के अनुसार पवित्र और अपवित्र जाति में कैसे प्राप्त होता है २९ व्याध बोला कि यह कर्म गर्भाधान से सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है, इसका वृत्तान्त संक्षेप रीति से इस प्रकार से है कि जब जीव जन्म लेने को होता है तब कर्म के अनुसार पापी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पापयोनि में और पुण्यात्मा पुण्ययोनि में उत्पन्न होता है ३०। ३१ जो केवल पुण्यकर्म ही करनेवाला है उसको देवभाव मिलता है और जो पाप और पुण्य दोनों का कर्त्ता है वह मनुष्ययोनि में जन्म लेता है और जिसने केवल तामस कर्म ही किये हैं वह नीच योनियों में उत्पन्न होकर नरकगामी और पापी होता है ३२ और कर्म के बन्धन से बँधा हुआ होने के कारण से जन्म-मृत्यु और बुढ़ापे के दुःखों को उठाता हुआ पशु, पक्षी और कीड़े मकोड़ों की अनेक योनियों में जन्म ले लेकर नरक भोगता हुआ चक्कर खाया करता है ३३। ३४ अर्थात् यह जीव कर्मानुसार अपवित्रयोनि में जन्म लेकर दुःख भोगकर जब दूसरा जन्म लेता है तब उस जन्म में नवीन कर्मों को करके इस प्रकार से उन कर्मों से जन्म जन्मान्तरों में पीड़ा पाता है जैसे रोगी कुपथ्य खाकर रोग को बढ़ाकर दुःखी होता है ३५। ३७ और निरन्तर दुःख पाने पर भी अपने को दुःखरहित और सुखी मानता है। इस प्रकार से वह कर्मों से शुद्ध होने पर भी बन्धन से नहीं छूटता है और दुःखी होकर इस संसार में चक्र के समान घूमा करता है ३८। ३९ और जब वही मनुष्य कर्मों से शुद्ध होकर बन्धन से छूट जाता है तब तपस्या आदि कर्म करता है और उन कर्मों के प्रभाव से बन्धन से छूट कर शुद्ध होकर उन लोकों को पाता है जिनमें शुभकर्मी मनुष्य जाते हैं और वहां चिन्तारहित होकर सुख भोगते हैं ४०। ४१ पापी मनुष्य पापकर्म को करते करते उस पाप का अन्त नहीं पासकता है इससे मनुष्य को पापकर्म त्यागकर पुण्यकर्म करना उचित है जो मनुष्य दूसरे के गुणों में दोष नहीं लगाता है और कृतज्ञ होता है उसका सर्वथा कल्याण होता है ४२ और वह सुख, धर्म, अर्थ और स्वर्गलोग पाता है और जिस मनुष्य ने संस्कारों से इन्द्रियों को जीत लिया है और शौच आदि कर्म किये हैं और मन को वश में कर लिया है वह ज्ञानी इसलोक और परलोक दोनों में सुख पाताहै ४३ इससे हे द्विज! मनुष्य को उचित है कि सत्पुरुषों के धर्म पर चले, शिष्टलोगों की की हुई क्रियाओं को करे और अपनी आजीविका विना किसी को क्लेश दिये उपार्जन करे ४४ उपदेशकर्ता ऐसे होने चाहियें जो शास्त्र में विज्ञानी और विचक्षण हों और उचित आचार से कोई क्रिया करने से धर्म नष्ट नहीं होता है ४५ हे द्विजसत्तम! ज्ञानीलोग केवल धर्म ही करते हैं और धर्म ही से अपनी जीविका उत्पन्न करते हैं और उस धर्म से उत्पन्न किये हुये धन से भी दान आदि कर्मों के द्वारा धर्म की ही जड़

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को सींचते हैं और फिर उस धर्म के गुण को देखते हैं। इस प्रकार से धर्म करनेवाले का चित्त प्रसन्न रहता है और इसलोक में उसका चित्त मित्रवर्गों में संतुष्ट और परलोक में सुख पाता है और उसको प्रभुता भी मिलती है, धर्म का यही फलहै। धर्मात्मा उस फल को पाकर संतोष नहीं करते हैं अर्थात् धर्म से तृप्त न होकर फिर धर्म ही करते हैं और धर्म से तृप्त न होने के कारण से वैराग्य उत्पन्न होजाता है, उस वैराग्य के कारण से फिर वह राग और द्वेष आदि दोषों के वश में नहीं हो सकता है ४६। ५० और धर्म को न छोड़कर वैराग्य में तत्पर रहता है और संसार को नाशवान् जानकर सब पदार्थों के त्याग करने का यत्न करताहै ५१ और केवलदैव के आश्रयपर न रहकर मोक्ष पानेका यत्न करता है। इसप्रकार से मनुष्य पापकर्मों को छोड़कर वैरागी हो जाता है ५२ और धार्मिक होकर मोक्ष पाता है सो मोक्ष का साधन जीव का तप अर्थात् ज्ञान है और ज्ञान का मूल इन्द्रियों को वश में करना है जिसको शम और दम कहते हैं ५३ यह इन्द्रियों का निरोध और सत्य, दम ऐसे धर्म हैं कि इनसे मनुष्य को परमपद जिसको 'ब्रह्मपद' कहते हैं मिलता है और मनुष्य की सब कामना पूरी होती हैं ५४ यह सुनकर ब्राह्मण ने उस व्याध से पूछा कि श्रेष्ठधर्मी इन्द्रिय क्या पदार्थ हैं, उनका निग्रह क्यों कर होता है और उस निग्रह का क्या फल है और वह फल कैसे मिलता है कृपा करके यह सब तत्त्वपूर्वक कहिये मैं भी इसको जानना चाहता हूं ॥ ५५ । ५६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥

दोसौनववाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से इन्द्रियों के स्वरूप, विषय और विषयों का फल कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! ब्राह्मण के उक्त प्रकार से पूछनेपर धर्मव्याधने जो उत्तर दिया उसको सुनो। धर्मव्याध बोला कि हे विप्र! मनुष्यों का मन पहिले विज्ञान के लिये प्रवृत्त होता है, जब ज्ञान हो जाता है तब काम और क्रोध आकर वर्त्तमान हो जाते हैं, उनसे उसे अर्थ के लिये यत्न करना पड़ताहै और वह बड़े बड़े कामोंको प्रारम्भ कर देताहै और गन्ध आदि अनेक इष्टपदार्थों का अभ्यासी हो जाता है १। २ इष्ट पदार्थों का अभ्यासी होने से राग उत्पन्न हो जाता है और उस राग से द्वेष द्वेष से लोभ और लोभ से मोह प्रकट हो जाते हैं ४ इस प्रकार से जब मनुष्य की बुद्धि लोभ से अभिभूत और राग द्वेष से हत हो जाती है तब मनुष्य दम्भ से धर्म करने लगता है ५ इससे फिर उसकी रुचि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दम्भ ही से धन उत्पन्न करने की हो जाती है और दम्भ के उपायों से धन मिलने पर उसको दम्भ ही अच्छा लगता है और वह सुहृद् और पण्डितों से रोके जाने पर भी पाप ही करना चाहता है ६ । ७ और सबको वेद का प्रमाण देकर उत्तर देता है और अपना बर्त्ताव उसपर नहीं रखताहै फिर वह राग और द्वेषसे उत्पन्न हुए तीनप्रकार के अधर्मों पर चलने लगता है ८ पापकर्म का शोचना १ पापकर्म की ही बातचीत करना २ और पाप ही करना ३ इन अधर्मों में प्रवृत्त होने पर उस मनुष्य के सब साधु गुण नष्ट होजाते हैं ९ जो पापकर्मी मनुष्य तुल्य शीलवान् पुरुषों से मित्रता करते हैं वे भी दुःखपाते हैं और परलोक में आपत्ति भोगते हैं १० यह तो पापियों की गति है। अब धर्मात्माओं का वृत्तान्त सुनो जो मनुष्य पहिले ही से उक्त दोषों को जानकर त्याग कर देता है और उन दोषों के सुख दुःखको समझकर साधुओं की संगति करताहै उसकी बुद्धि धर्म से विपरीत नहीं होती है और वह जो कुछ काम प्रारम्भ करता है वह सब अच्छा ही होता है ११।१२ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे व्याध! तुम्हारे वाक्य बड़े प्यारे और धर्मयुक्त हैं, मेरी समझ में तुम्हारे समान वक्ता नहीं है इससे मैं जानता हूं कि तुम दिव्य प्रभाव रखनेवाले महाऋषि हो १३ व्याध बोला कि महाराज! महाभाग ब्राह्मण और पितर सबसे प्रथम भोजन करते हैं इससे ज्ञानी मनुष्य को अपने सर्व शरीर से उन दोनों का प्रिय करना उचित है १४ उस प्रियको मैं तुमसे ब्राह्मणों को नमस्कारकरके कहताहूं उसका नाम ब्राह्मीविद्या है सुनो १५ यह विश्व जगत् ही सर्वरूप और कर्म से अलभ्य है और यही महाभूतात्मक ब्रह्म है जिससे परे कोई नहीं है १६ और पांच महाभूत हैं अर्थात् आकाश १ वायु २ अग्नि ३ जल ४ और पृथ्वी ५ और उन पांचों के पांच गुण हैं अर्थात् शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गन्ध ५ और छठा चैतन्यस्वरूप मन, सातवीं बुद्धि, आठवाँ अहंकार और नवीं, दशवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं पांचों इन्द्रियाँ, चौदहवाँ जीवात्मा पन्द्रहवाँ सतोगुण, सोलहवाँ रजोगुण और सत्रहवाँ तमोगुण इन सत्रहों की अव्यक्त संज्ञा है। ये सब व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप इन्द्रियार्थ हैं अर्थात् बाहर और भीतर की इन्द्रियों के ग्राह्य हैं और इनमें व्यक्त और अव्यक्तमय चौबीस गुण हैं अर्थात् उक्त अव्यक्तसंज्ञक सत्रह नामोंकी राशि में से जो बाहरकी इन्द्रियों के ग्रहण योग्य हैं और जो भीतर की इन्द्रियों के ग्राह्य हैं उन दोनों में २४ गुण हैं और इनसे जो विविक्तहै उसीका नाम ब्रह्म है। हे ब्राह्मण! जो कुछ तुमने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पूछा था वह सब हम सुना चुके। अब और क्या सुनना चाहते हो॥ १७। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०६॥

दोसौदशवाँ अध्याय।

पञ्चमहाभूतों के पृथक् पृथक् गुण और इन्द्रियों के निरोधन करने और न करने का फल।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! धर्मव्याध के उक्त वचनों को सुनकर उस ब्राह्मण ने पूछा कि हे श्रेष्ठधर्मिन्! मैं पांचों महाभूतों के गुणों को पृथक्पृथक् सुना चाहता हूं, कृपा करके वर्णन कीजिये १। २ व्याध बोला कि हे द्विजोत्तम! बहुत श्रेष्ठ, सुनिये। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांचों को पञ्चमहाभूत कहते हैं गुण उनके ये हैं ३ शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ और गन्ध ५ ये पांच गुण पृथ्वी में हैं और शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ और रस ४ ये गुण जल में हैं और शब्द १ स्पर्श २ और रूप ३ ये तीनों अग्नि के गुण हैं और वायु में दोही गुण हैं। शब्द १ और स्पर्श २ तथा आकाश में केवल एक ही गुण है अर्थात् शब्द ४। ७ हे ब्रह्मन्! इस प्रकार से पांचों भूतों में सब पन्द्रह गुण हैं और ये पन्द्रहों गुण सब संसारी जीवों के शरीरों में बसते हैं जिसके कारण से यह संसार स्थित है ८ और एक दूसरे के विना रह नहीं सकते हैं और जब जीवात्मा इनको त्याग देता है तब शरीर का नाश हो जाता है और जीवात्मा काल से दूसरी देह धारण कर लेता है इस प्रकार से इस संसार में क्रमपूर्वक जीवन और मरण हुआ करता है ९। १० और जहां देखिये तहां ही वीर्य आदि पञ्चतत्त्व से उत्पन्न हुई धातु दीखती हैं जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है ११ जो कर्म इन्द्रियों से किये जाते हैं उन को व्यक्त कहते हैं और जिनको इन्द्रियां नहीं करती हैं किन्तु लिङ्ग शरीर से ग्रहण किये जाते हैं वे अव्यक्त कहलाते हैं १२ जब मनुष्य शब्दादि वियोगों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों को रोक कर तपस्या करताहै तब उसको आत्मा लोकमें व्याप्त और लोक आत्मा में व्याप्त दिखाई देने लगता है और ब्रह्मज्ञानी होने के कारण से उसे कर्म करने पर भी सब भूत दिखाई देते हैं १३। १४ और फिर उस सदा और सब अवस्थाओं में सब प्राणियों को देखनेवाले ब्रह्मरूप पुरुष को पाप और पुण्य का फल नहीं होता है १५ क्लेश का मूल अविद्या है इससे मनुष्य को ज्ञानमार्ग में विद्या का वश करना अवश्य है। भगवान् ने जीवन्मुक्त आत्मा को आदि अन्तरहित, आत्मयोनि, अविनाशी, अमूर्ति और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उपमाहीन कहा है १६। १७ सो हे ब्राह्मण! इस सबकी जड़ तपस्या है और तपस्या विना इन्द्रियों को वश में किये नहीं हो सकती है १८ इन्द्रियां ही स्वर्ग और नरक को लेजानेवाली हैं क्योंकि इन्द्रियों का निरोध करके तप करने से स्वर्ग और इन्द्रियों को विषयों में लिप्त करने से नरक प्राप्त होता है १९ यह सब योग की विधि हैं तप, स्वर्ग और नरक सबकी मूल इन्द्रियां ही हैं २० इन का प्रसंग करने से निस्संदेह दोष उत्पन्न होजाते हैं और इनके निरोध से परम सिद्धि प्राप्त होती है २१ जो कोई शरीर की छः इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में कर लेता है वह पाप और अनर्थ के फल को नहीं भोगता है २२ हे ब्राह्मण! तुम इस शरीर को रथ समझो और आत्मा को रथी और इन्द्रियों को रथ के घोड़े जानो, सो जो मनुष्य सावधान, धैर्यधारी और कुशली होता है वह रथी के समान उस रथ के घोड़ों को शुद्धमार्ग में हांकता हुआ सुखपूर्वक जाता है २३ और जिसको बुद्धि में युक्त अश्वरूपी छः चञ्चल इन्द्रियों की बागडोर थांभना आता है वही इस शरीररूपी रथ का उत्तम सारथी है २४ प्रयोजन यह है कि जैसे रथ के घोड़ों को हांकने पर जो मनुष्य उनको जहां चाहे तहां रोक सकता है और जिधर चाहे उधर मोड़ सकताहै उसीको समझना चाहिये कि यह घोड़ों को वश में करसकता है। इसी प्रकार से अश्वरूपी इन्द्रियों को भी जो रोक सकता है वही उनको जीत सकता है २५ और जिस पुरुष का मन इन घूमनेवाली इन्द्रियों के पीछे पीछे लगा फिरता है उसकी बुद्धि इसप्रकार से नष्ट हो जाती है जैसे जलमें वायु से नाव बही चली जाती है २६ रागी मनुष्य शब्द आदि इन्द्रियों के छः विषयों को अच्छा जानकर उनमें लिप्त होकर दुःखपाता है और विरागी उन्हीं विषयों को सिद्धान्तपूर्वक त्याग कर आत्मा को जगन्मय और जगत् को आत्मामय समझकर अपनी ज्ञानदृष्टि के द्वारा सर्वव्यापी ब्रह्म को ध्यान करने के कारण से परमपद पाता है ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥

दोसौग्यारहवाँ अध्याय।

सतोगुण आदि तीनों गुणों का वृत्तान्त और तीनों गुण रखनेवाले पुरुषों का लक्षण।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से सूक्ष्म ब्रह्म का वृत्तान्त कह चुका तब उस ब्राह्मण ने फिर सूक्ष्म ब्रह्म ही का हाल पूछा और कहा कि आप कृपा करके सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गुणों का वृत्तान्त तत्त्वपूर्वक कथन कीजिये १। २ व्याध बोला बहुत श्रेष्ठ, सुनिये। मैं तीनों गुणों को पृथक् पृथक् कहता हूं ३ इन तीनों में तमोगुण मोह-रूपी है, रजोगुण मोह में प्रवृत्त करनेवाला है और सतोगुण प्रकाशमान और श्रेष्ठ है ४ शील स्वभाव का स्वप्नवत् होना, अविद्या का बहुत होना, ज्ञान का नाम न जानना, किसी बात का चेत न रखना, इन्द्रियों को खोटे मार्गों में लगाना और क्रोध बहुत करना ये तामसी मनुष्य के लक्षण हैं और अपनी बात को प्रवृत्त करना, मन्त्री होना, दूसरे के दोष को न देखना, तृष्णा बहुत रखना, किसी को नमस्कार आदि न करना और अभिमान बहुत करना रजोगुणी अर्थात् राजसी मनुष्य के लक्षण हैं ५। ६ और ज्ञान को बहुत प्रकार से जानना, धैर्य रखना, लोभ न करना, दूसरे के दोष को न देखना, क्रोध न करना और इन्द्रियों को जीतना ये सतोगुणी अर्थात् सात्त्विकी पुरुषों के लक्षण हैं ७ सात्त्विकी मनुष्य को हृदय में ज्ञान के आने पर लोकवृत्त से क्लेश होता है परन्तु जब वह ब्रह्मको जान लेताहै तब लोकवृत्त की निन्दा करने लगताहै ८ और उसका अहंकार मृदु और अकौटिल्य शुद्ध हो जाता है और उसके हृदय में विरागी के लक्षण पहिले से ही आकर वर्तमान हो जाते हैं ९ और उसको फिर द्वन्द्व अर्थात् मान और अपमान होने का विचार नहीं रहता है और न किसी बात का संशय होताहै १० सद्गुणों को ग्रहण करने से शूद्रभी वैश्य और क्षत्री हो सकता है और आर्जवपर चलनेवाले को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होताहै। हे ब्राह्मण! ये सब गुण हम तुमसे कह चुके अब और क्या सुना चाहते हो ॥ ११।१२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २११ ॥

दोसौबारहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक ब्राह्मण से प्राणादि वायु, अग्नि और जीवात्मा का हाल कहना।

ब्राह्मण बोला कि हे व्याध! अब मैं यह सुना चाहता हूं कि अग्नि पृथ्वी सम्बन्धी धातु में प्राप्त होकर शरीर की अभिमानिनी क्योंकर होती है और शरीर को नाड़ियों के मार्ग से किस प्रकार से चेष्टित करती है। मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! उक्त प्रश्न को सुनकर व्याध कहने लगा कि अग्नि मूर्द्धा में बसकर देह का पालन करती है और प्राणअग्नि मूर्द्धा में रहकर चेष्टित रहती है १। २ भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों प्राण में ही स्थित हैं। सबभूतों में प्राण ही श्रेष्ठ है, उसी ब्रह्मयोनि प्राण की हम उपासना करते हैं वही सब भूतों का कार्य कारण

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रूप आत्मा है, वही सनातन पुरुष है, वही महाबुद्धि अहंकार और प्राणियों का विषय है और देह के भीतर बाहर की इन्द्रियों का पालन करनेवाला है अर्थात् इन्द्रियां उसी के प्रभाव से चैतन्य हैं ४। ६ और बस्ति, नाभि और गुदा की अग्नि में आश्रित होकर अपाननाम वायु रहती है, वही मूत्र और विष्ठा को बाहर निकाल देती है ७ और कण्ठ में उदानवायु रहती है उसका काम चलना, फिरना, बोझ उठाना और यत्न करना है ८ और सर्वाङ्ग की संधि संधि में व्याननाम वायु है जो वायु अग्नि और धातुगत है उसका नाम समान है, वह अन्न आदि रस और त्वचा आदि धातु और पित्त आदि दोषों को परिणाम देती हुई घूमा करती है ९। १० और छहों वायुओं के आपस में मिलने से एक ऊष्मा उत्पन्न होती है उसको जठराग्नि कहते हैं। वही प्राणियों के भोजन को पचाती है ११ और जब प्राण और अपान वायु समान और उदानवायु में आ मिलती हैं तब अग्नि उनसे युक्त होकर इस शरीर को वृद्धावस्था आदि परिणामों को पहुंचाती है १२ और वायु से उत्पन्न अग्नि अपानवायु से मिलकर पचेहुये अन्न को गिरा देती है और अग्नि के वेग को लेजानेवाली प्राणवायु गुदा में प्रवेश होकर अपानवायु को ताड़ित करती है और फिर ऊपर को उछल कर अग्नि में आ मिलती है १३। १४ नाभि के नीचे पक्व अन्न का स्थान और ऊपर आमाशय अर्थात् अपक्व अन्न का आशय है और बीच में प्राण आदि सब वायुओं के रहने का स्थान है १५ और तिरछी, ऊंची और नीची नाड़ियां जो देह में फैली हुई हैं वे उस पके हुये अन्न के रस को प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, कूर्म, कृकल, नाग, देवदत्त और धनंजयनामी दशों वायुओं के द्वारा शरीर के सब स्थानों में पहुँचाती हैं १६ यह योगियों का मार्ग है। इसीके द्वारा समदर्शी और धीर योगीलोग परब्रह्म को प्राप्त होते हैं और प्राणों को मूर्द्धा में चढ़ा लेते हैं। इस प्रकार से प्राण और अपानवायु सब शरीर में व्याप्त हैं १७ इस स्थूल शरीर में ग्यारह विकार अर्थात् दश इन्द्रियां, एक मन, सोलह कला और संभार अर्थात् श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक हैं और उसमें जो अग्नि सदा स्थित रहती हैं वही आत्मा है। योगी लोग उसी को जीतकर वश में करते हैं १८। १९ और उस स्थूल शरीर को प्रकाश करनेवाली अग्नि में जो देवता इस प्रकार से रहता है जैसे कमल पर जल की बूंद। वही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणयुक्त

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

क्षेत्रज्ञ जीव है और जो निर्गुण है अर्थात् जिसमें उक्त तीनों गुणों में से कोई गुण नहीं हैं वह परमात्मा है। जीव और परमात्मा बिम्ब और प्रतिबिम्ब के समान हैं। जीव चैतन्य और गुणमय सबको चेष्टित करनेवाला है और जो उससे परे है उसको क्षेत्र के जाननेवाले सातों भुवनों का रचनेवाला कहते हैं २०।२२ इस प्रकार से वह भूतात्मा सब भूतों में अपना प्रकाश कर रहा है और ज्ञानी लोग उसको अपनी सूक्ष्म और उत्तम बुद्धि से देखते हैं २३ जो मनुष्य चित्त को शुद्ध करके सब शुभ और अशुभ कर्मों को छोड़ देता है वह प्रसन्नता से आत्मा में स्थित होकर मोक्ष पाता है २४ जिस प्रकार मनुष्य तृप्त होकर सुखपूर्वक सोता है और जैसे निर्वातस्थान में जलाया हुआ दीपक अच्छा प्रकाश करता है उसीप्रकार से जो थोड़ा आहार करनेवाला मनुष्य अपने चित्त को शुद्ध करके पिछली और अगली रात्रि में मन लगाकर अपने हृदय में ब्रह्म का ध्यान करता है वह मन-रूपी दीपकसे निर्गुण आत्मा को अपने शरीर में निरन्तर देखता है और संसार से मुक्त होजाता है २५।२७ लोभ और क्रोध को वश में करना सब उपायों से उत्तम तप है और संसार से उद्धार करने के लिये बड़ा सुन्दर मार्ग है २८ तप को क्रोध से, धर्म को मत्सरता से, विद्या को मान और अपमान से और आत्मा को प्रमाद से रक्षित करना अवश्य उचित है २९ अहिंसा बड़ा धर्म, क्षमा बड़ा बल, आत्मज्ञान परमज्ञान और सत्य बड़ा व्रत है ३० सत्य बोलना बड़ा उत्तम पदार्थ कल्याणकारी और हितकारी है ३१ जो मनुष्य किसी क्रिया का आरम्भ विना आशा और बन्धन के करता है और जो होम इत्यादि विना फल चाहे करता है वह बड़ा त्यागी और बुद्धिमान् है ३२ इससे इस योग को सुनावै नहीं किन्तु इसके सिद्ध करने का यत्न करे और चित्त के योग और वियोग को ब्रह्मयोग जाने ३३ मनुष्य को उचित है कि हिंसा न करे, किसी से वैर न करे और सबसे मित्रता रक्खे ३४ अपने पास कुछ न रखना, संतोष करना, निराशित्व होना, चपलता न करना, यही परमज्ञान और उत्तम आत्मज्ञान है ३५ सब संगतों को छोड़कर यतव्रत होकर रहने से मनुष्य को परलोक में शोकरहित और निश्चल स्थान मिलता है ३६ तपस्वी, जितेन्द्रिय, शुद्ध अन्तःकरण, सत्संगी, ज्ञानी और अजित के जीतने की इच्छा रखनेवाले को इस ज्ञान की भावना करना उचित है ३७ गुण को अगुण जानना, किसी का संग न रखना, एक ही कार्य अर्थात् ब्रह्म का चिन्तन करना और अन्तर न रखना यह ब्रह्मज्ञान की वृत्ति का

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एक पद सुख है ३८ जो पुरुष सुख दुःख और संग को छोड़ देता है वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ३९ हे कौशिक! जो कुछ ज्ञान मैंने सुना था वह सब तुमसे कह सुनाया। अब तुम्हारी इच्छा और क्या सुनने की है॥ ४०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१२॥

दोसौतेरहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का कौशिक को अपने घर ले जाना और माता-पिता की सेवा का महत्त्व बताना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से मोक्षधर्म वर्णन कर चुका तब कौशिक ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर उस धर्मव्याध से कहा कि हे व्याध! तुमने जितनी बातें कही हैं वह सब न्याययुक्त हैं। मैं जानता हूं कि संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसको तुम न जानते हो १।२ यह सुनकर व्याध बोला कि महाराज! मैं जो धर्म करता हूं और जिस धर्म से मैंने यह सिद्धि पाई है, उसे मैं आपको प्रत्यक्ष दिखाता हूं ३ हे भगवन्! उठिये, मेरे साथ घर के भीतर चलिये और मेरे माता पिता को देखिये ४ यह सुनकर वह ब्राह्मण व्याध के साथ भीतर गया और वहां उसने एक बड़ा रमणीक और मनोहर स्थान देखा जिसमें चार कोठे बने हुए थे ५ और देवमन्दिर के तुल्य शोभायमान था, वहां उत्तम गन्ध आरही थी और बहुतसे बैठने को आसन और सोने को शयन अर्थात् सुन्दर सुन्दर चारपाई आदि रक्खीहुई थीं ६ वहीं उस व्याधके माता और पिता श्वेतवस्त्र पहिरेहुए सुन्दर आसनों पर भोजन आदि से संतुष्ट बैठेहुए थे ७ उन दोनों को देखकर धर्मव्याधने अपना मस्तक उनके चरणों पर रख दिया तब वे दोनों वृद्ध बोले हे धर्मज्ञ, पुत्र! उठ हम तेरे शौच से प्रसन्न हैं परमेश्वर करे तेरी बड़ी उमर हो और धर्म तेरी सब प्रकार से रक्षा करे ८ तेरी इच्छा के अनुसार तुझे ज्ञानदृष्टि हो और मेधानाम की श्रेष्ठ बुद्धि तेरे हृदय में रहे। हे सुपुत्र! तू हमारी पूजा समय समयपर बहुत अच्छी तरह से करता है ९ और हमारे समान किसी देवता को भी देवता नहीं जानता है, ब्राह्मणों में जो शम और दम अर्थात् इन्द्रिय आदि को वश में करना गुण होते हैं वेभी तुझमें स्थित हैं उन गुणों से और हम दोनों के पूजन से तेरे पितामह और प्रपितामह भी तुझसे बहुत प्रसन्न हैं। तू सेवा करने में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं करता है किंतु मन, वाणी और कर्म से हमारी सेवा करता है और इससमय तेरी बुद्धि भी और प्रकार की नहीं देख पड़ती है १०।१२ हे पुत्र!

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तैंने हमारी सेवा जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी से भी अधिक की है। परशुरामजी ने भी अपने माता पिता की ऐसी ही सेवा की थी १३ इसके उपरान्त उसधर्म व्याध ने उन दोनों से कौशिक ब्राह्मण के आने का वृत्तान्त कहा तब उन दोनों ने उस ब्राह्मणसे कुशल पूछकर उसका पूजन किया। उस ब्राह्मणने उन दोनोंके पूजन को बड़े आदर से लिया और उनसे पूछा कि आप अपने पुत्र और भृत्य अर्थात् नौकर चाकरों सहित प्रसन्न और आरोग्य हैं १४। १५ यह सुनकर वे वृद्ध बोले कि हां महाराज आपकी कृपा से हम और हमारे सब नौकर चाकर प्रसन्न हैं और आपभी निर्विघ्नतासे आये हैं १६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे धर्मराज! यह सुनकर उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर कहा कि बहुत श्रेष्ठ है यही चाहिये। तदनन्तर धर्मव्याध बोला महाराज! ये दोनों मेरे माता पिता हैं इन्हींको मैं अपना परमदेवता जानता हूं और जो कुछ पूजन आदि देवताओं के निमित्त करना योग्य है वह सब मैं इनके ही अर्थ करता हूं १७। १८ और ये दोनों वृद्ध मेरे पूज्य इस प्रकार से हैं जैसे इन्द्रादिक तेंतीसों देवता सब संसार के पूज्य हैं १९ और जैसे ब्राह्मणलोग धन संग्रह करके देवताओं को भेंट कर देते हैं उसी प्रकार से मैं भी निरालस होकर इन दोनों को अपना कमाया हुआ धन अर्पण कर देता हूं २० हे ब्रह्मन्! ये ही मेरे परम देवता हैं, मैं इनको सदैव फल, पुष्प और रत्नों से संतुष्ट करता रहता हूँ २१ इन्हीं को मैं अग्नि समझता हूं, इन्हींको मैं चारों वेद जानता हूं, ये ही मेरे यज्ञ हैं और येही सब कुछ हैं २२ प्राण, धन, स्त्री, पुत्र और सुहृद आदि जो कुछ मेरे पास हैं सब इन्हींके निमित्त हैं। इनकी पूजा मैं नित्य अपनी स्त्री और पुत्रोंसहित करता हूँ २३ हे द्विजसत्तम! मैं आप इनको स्नान कराता हूं और इनके चरण धोताहूं और आप ही भोजन कराताहूं २४ कोई बात कभी इनके प्रतिकूल होकर नहीं करता हूं किन्तु सदैव अनुकूल ही रहता हूं और इनका प्रिय काम करने में अधर्म भी हो तो भी अन्यथा नहीं करता हूं इन्हींकी इच्छा के अनुसार करता हूं २५ इनका कैसा ही काम हो मैं उसको धर्म ही समझकर करता हूं और इनकी सेवा आलस्य छोड़कर करता हूं २६ हे महाराज! ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्य के बड़े पांच ही हैं पिता १ माता २ अग्नि ३ आत्मा ४ और गुरु ५। हे द्विजोत्तम! जो कोई इन पांचों को प्रसन्न रखता है उससे सब अग्नियां तृप्त रहती हैं, गृहस्थी के लिये यह धर्म सनातन है॥ २७। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१३॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौचौदहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का ब्राह्मण को मातापिता की सेवा का उपदेश देना और अपने पूर्वजन्म की कथा कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! वह धर्मव्याध उक्त प्रकार से माता और पिता की सेवा का हाल कहकर उस ब्राह्मण से बोला कि महाराज! आपसे जो उस पतिव्रता, जितेन्द्रिय और सत्यशीला स्त्री ने कहा था कि तुम मिथिला-पुरी में धर्मव्याध के पास जाओ, वह तुमको ज्ञान उपदेश करेगा। वह सब वृत्तान्त मुझको दिव्य दृष्टि से विदित हो गया था। यह प्रभाव माता पिता की सेवारूपी तप का ही है १। २ ब्राह्मण बोला कि हे धर्मज्ञ! मैं उस सत्यवती पतिव्रता के वचन को याद करके अपने मन से तुमको बड़ा गुणधाम समझता हूं ४ व्याध बोला कि आप सत्य कहते हैं उस पतिव्रता ने मेरा संपूर्ण वृत्तान्त जानकर आपसे मेरे पास आने को कहा था ५ और आपके अनुग्रह से मैंने भी उसका सब वृत्तान्त जान लिया। अब मैं आपके हितकी बात कहता हूं उसको आप सुनिये ६ आपने यह बड़ा अनुचित किया है जो आप अपने माता पिता का अपमान करके उनकी विना आज्ञा वेद पढ़ने के लिये घर से निकल कर चले आये हैं। आपके शोक में वे दोनों प्राणी अन्धे हो गये हैं ७। ८ इससे अब तुम शीघ्र जाकर उनको अपनी सेवा से प्रसन्न करो तुम तपस्वी महात्मा और धर्मात्मा हो, तुमको इस धर्म का उल्लंघन करना उचित नहीं है ९ विना माता पिता की सेवा तुम्हारा यह सब करना निरर्थक है इससे हे विप्रर्षे! तुम मेरे वचनको मानकर अब शीघ्र अपने घरको जाओ और उन दोनों को प्रसन्न करो, इसके विपरीत करना तुमको योग्य नहीं है। यह बात तुम्हारे कल्याण की है १० यह सुनकर ब्राह्मण बोला तुम्हारा कहना निस्संदेह सत्य है, तुम धर्मचारी होकर गुणवान् हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूं ११ व्याध बोला कि हे ब्राह्मण! तुम देवता के तुल्य हो क्योंकि जिस धर्म को तुम करते हो वह पुण्यमय सनातन और दिव्य है जो कि अशुद्ध अन्तःकरणवाले मनुष्यों को दुःख से प्राप्त हो सकता है १२ अब तुम आलस्य छोड़कर शीघ्र अपने माता पिता के पास जाओ और उनकी पूजा करो। मेरी समझ में इससे श्रेष्ठ दूसरा धर्म नहीं है १३ ब्राह्मण बोला कि मेरा बड़ा प्रारब्ध था जो मैं यहां आया और आपसे मेरा मिलाप हुआ। आप ऐसे धर्मदर्शी मनुष्य संसार में दुर्लभ हैं १४ कहीं सहस्रों में एक मनुष्य धर्मात्मा होता है और नहीं भी होता है।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

में आपके सत्य से बहुत प्रसन्न हुआ, ईश्वर करे आपका कल्याण हो १५ आपने मुझ नरक में गिरे हुए का उद्धार किया है, यह कुछ भवितव्य ही था जो मुझको आपके दर्शन हुए १६ आपने मुझ ब्राह्मण को इस प्रकार से तारा है जैसे स्वर्ग से गिरे हुए राजा ययाति को उसके सत्पुरुष देवताओं ने तारा था १७ अब मैं आपके कहने के अनुसार माता-पिता की सेवा करूंगा, जिन मनुष्यों का अन्तःकरण अशुद्ध होता है वे धर्म और अधर्म का निश्चय नहीं कर सकते हैं १८ और शूद्र को सनातन धर्म का ऐसा ज्ञान होना जैसा आपको है बहुत दुर्लभ है इससे मैं जानता हूं कि आप शूद्र नहीं हैं, कृपा करके अपने शूद्र होने का वृत्तान्त तत्त्वपूर्वक कहिये, मैं उस सब सत्य वृत्तान्त को सुना चाहता हूं। यह सुनकर व्याध बोला कि बहुत श्रेष्ठ मेरे पूर्वजन्म के वृत्तान्त को सुनिये मैं ब्राह्मणों के वचन को निस्संदेह उल्लंघन नहीं करता हूं १६। २१ पूर्वजन्म में मैं ब्राह्मण था और वेदपाठियों में बड़ा प्रवीण और वेद के अङ्गों का पारगामी था २२ परंतु अपने अपराध के कारण से मैंने यह देह पाई है। वह यह है कि एक धनुषविद्या का जाननेवाला राजा मेरा मित्र था २३ उसके सत्संग में मैंने भी धनुषविद्या परिश्रम करके सीख ली। एकदिन वह राजा मुझको और अपने योद्धाओं समेत मन्त्रियों को साथ लेकर अहेर खेलने को गया और वन में एक आश्रम के निकट उसने बहुत से मृग मारे २४। २५ उसी समय मैंने भी एक बाण एक मृग पर चलाया और वह बाण उस आश्रम में रहनेवाले ऋषि के जा लगा २६ हे ब्रह्मन्! उसके लगते ही वह ऋषि गिर पड़ा और दुःख से पुकार कर कहने लगा कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया मुझको मारकर यह किसने अपने ऊपर अपराध लिया है २७ इसके पीछे मैं उसको मृग जानकर उसके पास गया और पृथ्वी पर पीड़ा से पड़े हुए और चिल्लाते हुए उस तपस्वी ब्राह्मण को अपने बाण से बिंधा हुआ देखकर महा दुःखी हुआ और मैंने उससे विनय की कि महाराज! यह अपराध विना जाने मुझसे हुआ है, कृपा करके क्षमा कीजिये २८। ३० हे द्विज! तब उस ऋषि ने महाक्रोधित होकर मुझको शाप दिया कि तू इस क्रूरकर्म के करने से शूद्रयोनि पाकर व्याध होगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ पन्द्रहवाँ अध्याय।

धर्मव्याध का अपना पूर्वजन्म कहना तथा ब्राह्मण का माता पिता की सेवा करना।

व्याध बोला कि हे कौशिक! जब मुझको उस ऋषि ने उक्त प्रकार से शाप दिया तब मैंने अपनी वाणी से उस ऋषि को प्रसन्न करके विनय की कि महाराज! मेरी रक्षा कीजिये १ हे भगवन्! यह अपराध मुझसे अनजान में बन पड़ा है आप अपनी कृपा से इसको क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हूजिये २ तब उस ऋषि ने मुझसे कहा कि हमारा शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता है परंतु मैं तुझ पर अनुग्रह करके यह वरदान देता हूं कि शूद्रयोनि पानेपर भी तू धर्मज्ञ रहेगा और अपने माता पिता की सेवा करेगा उस सेवा से तुझको बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी और पूर्वजन्म का हाल भी तुझको याद रहेगा और देहान्त होने पर स्वर्गलोक पावेगा ३। ५ और शाप के निवृत्त होने पर फिर तू ब्राह्मण ही हो जायगा सो हे कौशिक! उस ऋषि ने मुझको उक्त प्रकार से शाप दिया और मेरे ऊपर कृपा भी की इसके उपरान्त मैंने उसके शरीर में से बाण खींच लिया ६। ७ और उसको उसके आश्रम में ले गया परंतु वह जीता न बचा। हे कौशिक! मेरे पूर्वजन्म का यही वृत्तान्त है। अब मुझको शीघ्र स्वर्ग को जाना है ८। ९ ब्राह्मण बोला हे बुद्धिमन्! संसार में सुख दुःख पाते ही हैं, आप उत्कण्ठा न कीजिये, तुम तत्त्व के ज्ञाता और धर्मपरायण हो, तुमने बड़ा दुष्कृत कर्म किया है, यह जो कर्म तुम करते हो उसको कोई दोष जाति के कारण से नहीं है। अब तुम कुछकाल वास करो, उपरान्त तुमको ब्राह्मणदेह मिलेगी १०। १२ अब से मैं तुमको निश्चय ब्राह्मण मानता हूं क्योंकि जो ब्राह्मण ज्ञानी है परंतु कर्म उसके विपरीत और खोटे हैं और वह मानी, पाखण्डी और कुकर्मी भी है तो वह शूद्र ही के समान है और जो शूद्र जितेन्द्रिय, सत्यवादी और धर्मात्मा है उसको मैं ब्राह्मण ही जानता हूं क्योंकि कर्म ही शूद्र और ब्राह्मण है। खोटे कर्म करने से सबको ही दुर्गति मिलती है १३। १५ मेरी समझ में तुम सब प्रकार से दोषरहित हो इससे तुमको किसी प्रकार का शोक करना उचित नहीं है। तुमसे धर्मात्मा जो संसारी और परलोक-सम्बन्धी धर्म के ज्ञाता हैं, कभी विषाद नहीं करते हैं १६ यह सुनकर व्याध बोला कि विज्ञानीलोग मन के दुःख को ज्ञान से और शरीर की पीड़ा को औषधि से दूर कर देते हैं और जो अल्पबुद्धि होते हैं वे अनिष्ट के आने और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रिय के चले जाने से मानसी दुःख उठाते हैं १७। १८ सो यह सुख दुःख अथवा वियोग का मिलना न मिलना एक ही के साथ नहीं है किंतु सब प्राणियों के साथ लगा हुआ है इससे सोच करने से दुःख के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। जो लोग सुख और दुःख दोनों को त्याग देते हैं वे ही बुद्धिमान् और ज्ञानी हैं और उन्हीं की वृद्धि होती है। संतोष न करना अज्ञानियों का काम है, पण्डित सदैव संतोष करके रहता है १६। २२ संतोष में बड़ा सुख है और असंतोष का अन्त नहीं है इससे ज्ञानी लोग परमगति को देखकर सोच कभी नहीं करते हैं २३ और मनुष्य को विषाद करना भी उचित नहीं है, यह विषाद बड़ा तीव्र विष है। वह ज्ञानी को इस प्रकार से मार डालता है जैसे क्रोधित सर्प बालक को नहीं छोड़ता है २४ जो मनुष्य पराक्रम करने के समय विषाद करता है वह तेजहीन हो जाता है और उसके शरीर में पुरुषार्थ नहीं रहता है २५ और किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलता है। वैराग लेने से कुछ नहीं होता है २६ इससे मनुष्य को उचित है कि दुःख को दूर करने का उपाय करे, शोच न करे, शुभ कर्म करे और किसी बात का व्यसन न रक्खे २७ और जो मनुष्य सब प्राणियों में किसी प्रकार का भाव न रखकर तत्त्वज्ञान से परमब्रह्म को प्राप्त हो गया है वह अपना चित्त परमगति में लगाकर किसी बात का सोच नहीं करता है २८ इससे हे ब्राह्मण! मैं किसी बात का सोच नहीं करता हूं किंतु समय देख रहा हूं। मुझको किसी बात की पीड़ा नहीं होती है २६ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे व्याध! तुम बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान् हो। अब मुझको तुम्हारी ओर का कुछ सोच नहीं है, तुम बड़े धर्मज्ञ हो। मुझको अब आज्ञा दो मैं जाना चाहता हूं, तुम्हारा कल्याण हो और धर्म तुम्हारी रक्षा करे ३०। ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! यह सुनकर उस व्याध ने हाथ जोड़कर कहा कि बहुत अच्छा जाइये, तब वह ब्राह्मण उसकी परिक्रमा करके चल दिया ३२ और अच्छा उपदेश पाने के कारण से उसने घर पहुँचकर अपने माता और पिता की सेवा करना आरम्भ कर दिया ३३ हे धर्मपुत्र, युधिष्ठिर! यह सब धर्मकथा जो तुमने हमसे पूछी थी वह हमने वर्णन की जिसमें पतिव्रता और ब्राह्मण का माहात्म्य और माता पिता की सेवा करने का फल कथन किया है ३४। ३५ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे मुनिसत्तम! हे ब्रह्मन्! आपने यह बड़ी अद्भुत धर्मकथा कही इससे उत्तम दूसरी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कथा मैं नहीं जानता हूं ३६ हे भगवन्! इसको सुनते सुनते इतना समय मुझको एक मुहूर्त के समान जान पड़ता है और धर्म की उत्तम उत्तम बातों को सुनने से मेरा मन तृप्त नहीं होता है॥ ३७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१५॥

दोसौ सोलहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिराऋषि के अग्निरूप होजाने का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर जब महर्षि मार्कण्डेयजी से उक्त कथा सुन चुका, तब उसने मार्कण्डेयजी से फिर पूछा कि महाराज! अगले समय में अग्निदेव किस प्रकार से जल में घुस गये थे और अग्नि के नष्ट होजाने पर महातेजस्वी अङ्गिराऋषि ने अग्नि होकर हव्य किस प्रकार से ग्रहण की थी १। २ अग्नि तो एक ही है परंतु कर्म में इसके अनेक रूप कैसे हो जाते हैं? इसके सिवाय यह भी कथन कीजिये कि कार्त्तिकेयजी का जन्म कैसे हुआ और वह कैसे अग्निपुत्र कहलाये और कृत्तिका और गङ्गाजी में रुद्र भगवान् से कैसे उत्पन्न हुए ३।४ हे भार्गवसत्तम! इस कथा को मैं ठीक ठीक सुना चाहता हूं मुझको बड़ा आश्चर्य है ५ यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले बहुत श्रेष्ठ, इस पुरातन इतिहास को सुनिये। अग्निदेव जल में तपस्या करने को प्रवेश किये हुए थे और उन्होंने ही अपना अङ्गिरारूप धारण किया था जिसकी प्रभा से संपूर्ण अंधकार दूर हो गया था। वृत्तान्त उसका इस प्रकार से है ६। ७ कि हे महाबाहो! अगले समय में महाभागी अङ्गिराऋषि ने बड़ा भारी तप किया था, उस तपसे उनका तेज ऐसा हो गया कि उसके सम्मुख अग्नि का तेज भी मन्द और उससे सब जगत् प्रकाशित हो गया ८ तब अग्निदेव ने अङ्गिराऋषि के तेज से संतप्त होकर बड़ी ग्लानि मानी और यह चिन्ता की कि ब्रह्माजी ने अब संसार के लिये दूसरी अग्नि उत्पन्न की है ९। १० तपस्या करते हुए मेरा अग्नित्व अर्थात् अग्नि होने का भाव निश्चय नष्ट हो गया। अब मैं क्या उपाय करूं? जिससे फिर अग्नि मैं ही रहूं ११ अग्नि यही चिन्ता कर रहे थे कि इतने में उसने महामुनि अङ्गिराऋषि को देखा उनको देखते ही अग्नि भयभीत होकर धीरे से हट गये तब अङ्गिराऋषि ने अग्नि से कहा कि तुम लोकभावन फिर अग्नि होजाओ क्योंकि तुम लोकों में विज्ञात हो, तुमको ही ब्रह्माजी ने प्रथम उत्पन्न किया है, तुम अन्धकार दूर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करनेवाले हो इससे तुम शीघ्र अपना स्थान प्राप्त करो १२। १४ यह सुनकर अग्नि बोले कि अब मेरी कीर्त्ति नष्ट हो गई है, आप अग्नि उत्पन्न हुए हैं, आपको ही सब कोई अग्नि कहेगा, मुझको कोई अग्नि न जानेगा १५ इससे मैं अपने अग्नित्व को त्यागे देता हूं, आप ही प्रथम अग्नि हो जाइये। मैं दूसरी अग्नि होकर रहूंगा १६ यह सुनकर अङ्गिरा बोले कि तुम ही हव्य ग्रहण करो और प्रजा को स्वर्ग देनेवाले और अँधेरे को दूर करनेवाले अग्निरूप से रहो और मुझको अपना बड़ा पुत्र बना लो १७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! यह सुनकर अग्नि ने अङ्गिराऋषि को अपना पुत्र बना लिया और अङ्गिरा ऋषि के बृहस्पतिनामी पुत्र उत्पन्न हुआ १८ देवता उस अग्नि और आङ्गिरस पुत्र बृहस्पति के उत्पन्न होने के वृत्तान्त को जानकर बृहस्पति के पास आये और उससे उन्होंने उसके उत्पन्न होने का कारण पूछा! बृहस्पतिजी ने सब कारण कह सुनाया। उसको सुनकर सब देवताओं ने बृहस्पतिजी के वचन को अङ्गीकार किया अर्थात् उनको अपना गुरु माना १९। २० हे युधिष्ठिर! अब मैं ब्राह्मणों के अनेक कर्मों के कारण से अग्नि के अनेक रूप होने का वृत्तान्त कहता हूं॥ २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१६॥

दोसौ सत्रहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अङ्गिरा की संतान का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब हम तुमसे अङ्गिरा की संतान का वृत्तान्त कहते हैं। अङ्गिरा ब्रह्मा से तीसरे पुत्र थे और उनकी स्त्री का नाम सुभा था। उनका प्रथमपुत्र बृहस्पति हुआ जो बड़ा तेजस्वी, यशस्वी, वेदपाठी, तत्त्ववेत्ता, स्फूर्तिमान् और विचारवान् था १। २ फिर भानमती नाम एक कन्या हुई। यह कन्या अङ्गिरा की पहिली पुत्री थी और स्वरूप में अपने सब भाई और बहिनों से असदृशी थी ३ इसके पीछे दूसरी कन्या हुई, वह सब प्राणियों को प्यारी थी इस कारण से उसका नाम रागा हुआ ४ फिर तीसरी कन्या सिनीबाली नाम उत्पन्न हुई। उसका स्वरूप दृश्य और अदृश्य चन्द्रकला के समान था और प्राणियों ने उसे कपर्द्दिसुता नाम से भी विख्यात किया ५ चौथी पुत्री अर्चिष्मती नाम हुई जिसकी प्रभा से मनुष्य रात्रि में देख सके हैं और पाँचवीं हविष्मती नाम कन्या हुई जिसमें हवन करने से देवता तृप्त होते

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हैं। अङ्गिरा की छठी कन्या का नाम माहिष्मती, सातवीं का महामती और आठवीं का कुहू था। कुहू नाम होने का कारण यह है कि मनुष्य उसे देखकर चकित से हो जाते थे ॥ ६ । ८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥

दोसौ अठारहवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से बृहस्पति की संतान का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! बृहस्पतिजी की भार्या का नाम चान्द्रमसी था। उसके छह अग्नि और एक पुत्री उत्पन्न हुई १ उनमें से पहले पुत्र का नाम शंयुनाम अग्नि है जिसको हवन में पहिली आहुति दी जाती है। यह अग्नि चातुर्मास में पूजने योग्य है और अश्वमेध यज्ञ में जो पहिले ही पहिल पशुवध किया जाता है उसका हवन इसी अग्नि में होता है २ । ३ इस शंयु अग्नि का विवाह धर्मराज की सत्यानाम कन्या से हुआ जो स्वरूप में असदृशी और पतिव्रता थी। उसके दीप्तअग्नि नामक एक पुत्र और तीन कन्यायें बड़ी सुव्रता हुईं ४ दीप्त अग्नि भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध है और शंयु का पहिला पुत्र है और यज्ञ में उसकी पूजा पहिले घृत से होती है ५ शंयु के दूसरे पुत्र का नाम भरत अग्नि है इसमें सब पौर्णमास्य अर्थात् पशु और सोमनाम यज्ञों में हविषआज्य की आहुति दी जाती है ६ शंयु की तीन कन्या और थीं जिनका पति भरत हुआ उस भरत के भरतनामी एक पुत्र और भरतिनामी एक कन्या उत्पन्न हुई ७ इस भरत प्रजापति के पावकनामी पुत्र हुआ और महाफल देने के महत्त्व से वह महान्नाम से भी विख्यात हुआ ८ और भारद्वाज अग्नि की स्त्री का नाम वीरा था, उससे वीरनामी अग्नि उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण लोग उसकी पूजा सोमयज्ञ में घृत से करते हैं ९ और जिस अग्नि की पूजा सोम सहित हविष की दूसरी आहुति से होती है वह रथप्रभूरथाध्वान और कुम्भरेता नाम से प्रसिद्ध है १० इस अग्नि की स्त्री शरयूनाम हुई उससे सिद्धनामी एक पुत्र हुआ जिसने अपनी तीव्रप्रभा से सूर्य को भी ढक दिया था। यह सिद्ध अग्नि आग्नेय यज्ञ में आह्वान करने से शीघ्र प्रकट हो जाता है ११ बृहस्पतिजी के दूसरे पुत्र का नाम निश्च्यवन है जिसका यश, तेज और लक्ष्मी कभी कम नहीं होती है। यह निश्च्यवन सदा पृथ्वी की स्तुति किया करता है १२ और इसके पुत्र का नाम सत्य है यह सत्य अग्नि निष्पाप तेज से प्रज्वलित और विशुद्ध है और यही

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अग्नि शापित जीवों की निष्कृति अर्थात् शुद्ध करता है इससे इसका नाम निष्कृति अग्नि भी है और वह गृह और आराम आदि स्थानों में व्याप्त है १३।१४ इस सत्य अग्नि के पुत्र का नाम स्वन है जिसके कारण से मनुष्य पीड़ित होकर दुःख से पुकारते हैं १५ बृहस्पति के तीसरे पुत्र का नाम विश्वजित् अग्नि है। यह अग्नि सब जगत् की बुद्धि में स्थित रहता है १६ चौथे पुत्र का नाम विश्वभुक् है, यह अग्नि सब देहधारियों के शरीर में रहकर भोजन पचाता है १७ पांचवें पुत्र का नाम बड़वाग्नि है जो जल को सुखा देता है और दारुण ऊर्ध्वगति अर्थात् उदानवायु और प्राणवायु में रहता है। ब्रह्मचारी, व्रती और मन को जीतनेवाले ब्राह्मण इस अग्नि की पूजा पाकयज्ञों में अर्थात् स्मार्तकर्मों में करते हैं, नरक से तारनेवाली गोमती इसी अग्नि की प्रिया हुई थी और इसी अग्नि में धर्मात्मा लोग गृह्यकर्म करते हैं १८।२० बृहस्पति के छठे पुत्र का नाम स्विष्टकृत् अग्नि है जिसकी हवि जलद्वारा गृह में नित्य दी जाती है और उससे घृतस्विष्ट हो जाता है २१ इस प्रकार से बृहस्पति के पुत्रों का वृत्तान्त समाप्त हुआ। अब उनकी स्वाहा नाम कन्या की संतान का वर्णन करते हैं जो बड़ी भयानक क्रूर और सब प्राणियों में स्थित है। उसकी उत्पत्ति सब प्राणियों के उस पसीने से है जो शान्तरूप जीवों की देह में क्रोधरूपी अग्नि के तेज से निकल आता है। इस स्वाहा का स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि इसके सदृश स्वर्ग में दूसरी स्त्री स्वरूपवती नहीं है और इसी कारण से उसके पुत्र का नाम कामाग्नि है २२।२३ दूसरा पुत्र इसका अमोघनामी है जो क्रोध को लिए हुये धनुष और माला धारण किये रथ में बैठकर शत्रुओं को मारता है २४ इसके तीसरे पुत्र का नाम उक्थ अर्थात् मोक्ष के देनेवाले यज्ञ की अग्नि है। यह उक्थ तीन उक्थों से अभिष्टुत अर्थात् स्तूयमान एक शरीर जो कर्मों को करने से उक्थ है, दूसरा प्राण जो शरीर को धारण करने के कारण से उक्थ है और तीसरा परमात्मा जो प्राणों को धारण करने से उक्थ है इस उक्थ अग्नि के पुत्र का नाम महावाच है जिसको वेद के आचार्य विश्राम देनेवाला अर्थात् मोक्ष का कारण कहते हैं॥२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१८॥

दोसौ उन्नीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से उक्थ अग्नि के पुत्रों का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह उक्थ अग्नि बड़ा तेजस्वी है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और प्राण, प्राण का पुत्र, काश्यप, वाशिष्ठ, अग्नि, आङ्गिरस और च्यवन नाम से प्रसिद्ध है। उसने इस प्रयोजन से बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या की थी कि मेरे एक पुत्र ब्रह्माजी के तुल्य यशस्वी और धर्मिष्ठ होवे १। २ उससे वह महा प्रज्वलित तेज उत्पन्न हुआ जिसको पांचों महाव्याहृति ध्यान करती हैं और जो सृष्टि का कर्ता और पांच वर्ण रखनेवाला है ३ अर्थात् उसका शिर प्रज्वलित अग्नि है दोनों भुजायें सूर्य के सदृश हैं त्वचा और नेत्र सुवर्ण के समान हैं और दोनों जांघें काली हैं ४ उसके ये पांचों वर्ण तप के कारण से हुए थे और इसीसे उसका नाम पाञ्चजन्य रक्खा गया और उसके पांच वंश उत्पन्न हुए ५ इस पाञ्चजन्य ने सहस्रवर्ष तक बड़ी उग्र तपस्या की और उससे पितरों की घोर अग्नि दक्षिणाग्निनामी उत्पन्न हुई ६ और उसके मुख से बृहद्रथन्तर और मूर्द्धा जो आयु आदि के हरनेवाले उत्पन्न हुए नाभि से शिव, बल से इन्द्र, प्राण से वायु और अग्नि और भुजाओं से उदात्त और अनुदात्त नाम वेद के स्वर और विश्वेभूत उत्पन्न हुए। इनके पीछे उसने पितरों के पांच पुत्र उत्पन्न किये ७। ८ वे ये हैं प्रणधी १ जो बृहद्रथ का पुत्र है, महत्तर २ जो कश्यप का पुत्र है, भानु ३ जो आङ्गिरा का पुत्र है, सौभर ४ जो सुवर्चस का पुत्र है और अनुदात्त ५ जो प्राण का पुत्र है। ये पांचों पच्चीस करके विख्यात हैं। इसके उपरान्त पाञ्चजन्य ने जिसका नाम तप भी है क्योंकि वह तप से उत्पन्न हुआ था, यज्ञ चुरानेवाले पन्द्रह देवता उत्पन्न किये। नाम उनके ये हैं सुभीम १ अतिभीम २ भीम ३ भीमबल ४ अबल ५ सुमित्र ६ मित्रवन्त ७ मित्रज्ञ ८ मित्रवर्द्धन ९ मित्रधर्मा १० सुर ११ प्रवीर १२ वीर १३ सुरेश १४ और सुवर्चस १५ इनमें से पांच पिछले देवताओं के मारनेवाले हैं और पन्द्रहों पांच पांच करके तीनविधि से स्थित हैं और इस लोक में रहकर यज्ञ करनेवालों की स्वर्गता को चुरा लेते हैं ९। १४ और उनके अभीष्ट को पूरा नहीं होने देते और यज्ञ की अग्नियों से ईर्ष्या मानकर यज्ञ के हव्य को नष्ट कर डालते हैं और हर लेजाते हैं १५ इसी कारण से कुशल पुरुषों ने यज्ञ की वेदी से बाहिर इनका भाग यज्ञ में प्रवृत्त कर दिया है ऐसा करने से फिर ये अग्नि के समीप नहीं आते हैं १६ नहीं तो यज्ञ के प्रारम्भ होने पर ये देवता यजमान के होमे हुए घृत को अपने पंखों से ऊपर ही ऊपर चुरा ले जाते हैं परंतु जब मन्त्रों से इनको शान्त कर दिया जाता है तब ऐसा नहीं करते हैं १७ इन पन्द्रह देवताओं के उत्पन्न होने के पीछे तप अर्थात्

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पाञ्चजन्य के बृहदुक्थनामी पुत्र हुआ । वह पृथ्वी में उपाश्रित हो गया । सत्पुरुष हवन करने के समय उसकी पूजा पृथ्वी में करते हैं १८ और रथन्तर अग्नि भी तप का पुत्र कहलाता है अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेद के ऋत्विज् इसी अग्नि में हवन करने से विराट् की प्राप्ति समझते हैं । इस प्रकार से वह महायशा पाञ्चजन्य उक्त पुत्रों को पाकर परम प्रसन्न हुआ ॥ १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

दोसौ बीसवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से अग्नियों की उत्पत्ति आदि का वृत्तान्त कहना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! शंयुअग्नि का भरत अग्निनाम पौत्र बड़े नियम से उत्पन्न हुआ था और सब प्रजा को पालन करने के कारण से उसका भरत नाम रक्खा गया था और वही पुष्टिमतिनामी अग्नि भी है जो प्रसन्न होने पर पुष्टि देता है १ और तप अर्थात् पाञ्चजन्य का जो तीसरा पुत्र शिवनामी है वह शक्तिपूजा से तृप्त होता है और सब दुःखी जीवों को कल्याण का देनेवाला और आप भी कल्याणरूप है २ और पुरन्दरनामी पुत्र भी बड़ी तपस्या करने की इच्छा से तपनाम अग्नि के बढ़े हुए ऐश्वर्य को देखकर तपही से उत्पन्न हुआ था और उष्मानाम अग्नि भी तप से ही उत्पन्न हुआ था । यह अग्नि सब प्राणियों में व्यापक है और मनु नाम अग्नि को प्रजापति का अधिकार हुआ था ३ । ४ वेदपारग ब्राह्मण कहते हैं कि इसके पीछे शंभु और आवसथ्यनामी अग्नि भी उत्पन्न हुआ ५ इनके उत्पन्न होने के पीछे तप अग्नि ने पञ्चयज्ञ अग्नियों को उत्पन्न किया जिनकी प्रभा सुवर्ण के तुल्य है ६ और किरणधारी सूर्य अग्नि ने अस्त होने के समय घोर असुर और ऐसे मनुष्य जिनकी क्रिया और और मनुष्यों से पृथक् थीं उत्पन्न किये ७ और अङ्गिराके वंश में तप अग्निका मनुनामी पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसको वेदपारग ब्राह्मण बृहद्भानु नाम से कहते हैं ८ इस बृहद्भानु अग्नि की दो स्त्रियां थीं सुप्रजा १ और बृहद्भासा २ ये दोनों सूर्य की पुत्री थीं और इनके छह पुत्र उत्पन्न हुए । उनकी वंशावली इस प्रकार से है ६ पहिला पुत्र तो बलदनामी था जो दुर्बल प्राणियों के प्राण को देता है और दूसरे पुत्र का नाम मन्यु है जो प्राणियों में दारुण क्रोधरूप से रहता है । दर्श और पौर्णमास यज्ञों में इसी अग्नि में होम किया जाता है और जो अग्नि विष्णुनाम से प्रसिद्ध है वह धृतिमान्नामी आङ्गिरा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वंशी है १०। १२ दोनों उक्त पुत्र तो भानु के सुप्रजा स्त्री से हुए थे। अब शेष तीन पुत्र जो बृहद्भासा से उत्पन्न हुए उनके नाम इस प्रकार से हैं। पहिला पुत्र आग्रयणनामी है, हवन में उसको इन्द्र के साथ आहुति मिलती है। दूसरा निरग्रह है जो चातुर्मास के पर्वों में अष्टहवियों का उद्भव स्थान है और तीसरे का नाम अग्निस्तुभ है १३। १४ इसके अनन्तर भानु का विवाह निशानाम स्त्री से हुआ, उससे एक कन्या और पांच अग्नि उत्पन्न हुए। उनके नाम अग्नीषोम आदि हैं १५ और जिस अग्नि की पूजा चातुर्मास के पर्वों में सुन्दर हवि से इन्द्र के साथ होती है उसका नाम वैश्वानर अग्नि है १६ और जो अग्नि जीवों के शरीर में रहकर आहार को पचाता है उसका नाम विश्वपति है और वह मनु अग्नि का दूसरा पुत्र है १७ और जो स्विष्टकृतनाम अग्नि है उससे घृतस्विष्ट हो जाता है और जो कन्या इस अग्नि की कर्म से भार्या हुई थी उसका नाम रोहिणी है और वह हिरण्यकशिपु की पुत्री है और जो अग्नि शब्द रूप का साधन है अर्थात् जिससे योगीलोग शब्द का साधन करते हैं और जो जीवों के प्राणों में आश्रय करके शरीर को अनेक कर्मों में युक्त करती है उसका नाम सन्निहित अग्नि है और वही प्रजापति भी है और संन्यासी लोग जिसको कपिलनामी महाऋषि कहते हैं वह कपिलनामी अग्नि है जो सांख्ययोग का प्रवर्तक है १८। २१ और संसार में प्राणीलोग जिस अग्नि में मनुजी का भाग हवन करते हैं उसका नाम अग्रणी अग्नि है २२ हे युधिष्ठिर! इन उक्त अग्नियों के सिवाय और और भी अग्नि अग्निहोत्र के प्रायश्चित्त के दूर करने के लिये उत्पन्न की गई हैं २३ सो जब कभी ऐसा हो कि दो अग्नि वायु से परस्पर स्पर्श हो जायँ अथवा दक्षिणाग्नि का संसर्ग दूसरी अग्नि से हो जाय या अग्निहोत्र की अग्नि असंस्कृत घर की अग्नि से छूजाय तो अग्नि को शुद्ध करने के लिये अष्टाकपाल हवि से अर्थात् उस हवि से जो आठ कपालों में बनाई गई हो, हवन करना चाहिये २४। २६ और जो अग्निहोत्र की अग्नि को रजस्वला स्त्री छूले तो वसुमान् अग्नि को स्थापित करके अष्टाकपाल हवि से हवन करना उचित है २७ और जब किसी जीव का मरना सुनने में आवे अथवा कोई पशु मरजाय तब सुरमति अग्नि को स्थापित करके अष्टाकपाल हवि से हवन करना उचित है २८ और जो ब्राह्मण किसी प्रकार से दुःखी होकर तीन दिन अग्निहोत्र न करसके तो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उत्तर अग्नि को स्थापित करके उक्त हवि से हवन करे २६ और जो कोई मनुष्य दर्श अथवा पौर्णमास नाम यज्ञों की प्रतिष्ठा करे परंतु पीछे वे यज्ञ किसी कारण से बन्द होजायँ तो पथिकृत् अग्नि की स्थापना करके उक्त हवि से हवन करे ३० और जब सूतक की अग्नि का अग्निहोत्र की अग्नि से स्पर्श होजाय तो अग्नितम नाम अग्नि को स्थापित करके उक्त हवि से हवन करना उचित है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥

दोसौ इक्कीसवाँ अध्याय।

अग्नि की वंशावली और उसका जल में प्रविष्ट होकर फिर प्रकट होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जल में जो सहनाम अग्नि है जिसको भूपति और भुवभर्त्ता कहते हैं, उसकी प्यारी स्त्री का नाम मुदिता था। उससे परम अद्भुत अग्नि उत्पन्न हुई १ ब्राह्मणलोग इसी अग्नि को प्राणियों का स्वामी, आत्मा और भुवनभर्त्ता कहते हैं २ यही अग्नि आकाश आदि भूत और ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म का स्वामी है और महातेजस्वी है ३ और जिस अग्निका नाम गृहपति है उसकी यज्ञ में सदैव पूजा होती है और वही यज्ञ में होमी हुई हव्य को धारण करता है ४ और जो पावक जल से सम्बन्ध रखनेवाले सहनाम अग्नि का पुत्र है, वह महाभाग तीनों लोकों का हर्ता, बड़ा अद्भुत भूपति, भुवभर्ता और महातत्त्व का स्वामी है ५ उस अग्नि का नाम जो आकाश आदि जड़रूपी महाभूतों का धारण करनेवाला और जल को सुखानेवाला है भरत प्रसिद्ध हुआ। यही भरत अग्नि अग्निष्टोमयज्ञ में स्थापन किया जाता है ६ और देवता लोग इसीकी स्तुति करते हैं। एक समय भृगुजी के शापरूपी दोष को अपने निकट आते हुए देखकर वह अग्नि भयभीत होकर समुद्र में घुस गया ७ तब देवता उसको ढूंढ़ने लगे और उन्होंने उसको पाया तब उसने अपने निकट अङ्गिराऋषि को देखकर कहा ८ कि हे वीर! तुम देवताओं की हव्य को धारण करो और अग्निभाव को प्राप्त हो जाओ, यह मेरा प्रिय काम है। तुम इसको अवश्य करो ९ ऐसा कहकर अग्नि कहीं अन्य देश को चला गया। उस समय इस भेद को मछलियों ने प्रकट कर दिया तब अग्नि ने क्रोधित होकर उनको शाप दिया कि देहधारी तुमको नानाप्रकार

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से भक्षण किया करेंगे और अङ्गिराऋषि से भी सब वृत्तान्त कह दिया १०।११ उस समय देवताओं ने अनेक हित की बातें कहकर अग्नि को समझाया परंतु अग्नि ने हव्य धारण करने की इच्छा नहीं की किन्तु अपना शरीर भी त्याग दिया १२ और पृथ्वी में प्रवेश होकर अनेक प्रकार की धातुओं को उत्पन्न किया १३ उसके यूप अर्थात् यज्ञस्तम्भ से गन्धसहित तेज, हाड़ों से देवदारु, श्लेष्मा से स्फटिक, पित्त से मरकत मणि, यकृत् से लोहा और अन्य अङ्गों से नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुई और प्रजा को काष्ठ, पाषाण और लोह आदि अनेक वस्तुओं से सम्पन्न कर दिया और उसके नखपटल और शिर के बाल विद्रुमरूप हो गये। इस प्रकार से अग्नि अपने शरीर को त्यागकर और उससे उक्त पदार्थों को उत्पन्न करके तपस्या करने लगा १४। १६ उससे वह बहुत ही प्रज्वलित स्वरूप हो गया परंतु भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषियों ने अपने तीव्रतप से अग्नि को भयभीत करदिया और वह डरकर समुद्र में घुस गया। उसके नष्ट होजाने से संसार महाभयभीत होकर अङ्गिराऋषि के पास आश्रित हो गया और देवता आदि सबने अङ्गिरा-ऋषि की पूजा की १७। १८ उस समय अङ्गिराऋषि ने सबके देखते देखते समुद्र को मथ डाला और उसमें से अग्नि को निकालकर सब लोकों की रचना की १९ इस प्रकार से पूर्वकाल में अग्नि नष्ट हो गया था और उसको अङ्गिराऋषि ने फिर आह्वान किया था। वही अग्नि सब प्राणियों के हव्य को धारण करता है २० हे भरतवंशिन्! उसीने अनेक देशों में भ्रमण करके अनेक प्रकार के वेदोक्तस्थान उत्पन्न किये २१ सिन्धुनद, पञ्चनद, देविका, सरस्वती, गङ्गा, शतकुम्भा, सरयू, गण्डकी, चर्मण्वती, महीमेध्या, मेधातिथि, ताम्रावती, वेत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदावरी, वेणा, उपवेणा, भीमा, बड़वा, भारती, सुप्रयोगा, कावेरी, मुर्मरा, तुङ्गवेणा, कृष्णवेणा, कपिला और शोण आदि नदियां उन स्थानों की माता हैं २२। २६ और जो ऊपर अद्भुतनाम अग्नि कह आये हैं उसकी भार्या का नाम प्रिया था और उससे विभूरसिनामी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसको आदिले जितने अग्नि हमने कहे हैं उतने ही सोमयाग हैं २७ अत्रिऋषि के भी मानसी सात पुत्र उत्पन्न हुए थे सो जिस समय अत्रि ने पुत्रों को उत्पन्न करने की इच्छा की उस समय उन्होंने अपने चित्त में अग्नियों को धारण कर लिया २८ उससे उनके शरीर से अनेक अग्नियां

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

निकलीं। हे युधिष्ठिर! तिमिरनाशक और श्रीमान् अग्नि के उत्पन्न होने का वृत्तान्त उक्त प्रकार से था। वेद में जो माहात्म्य अग्नि का लिखा है वही सब अग्नियों का माहात्म्य समझो क्योंकि सब अग्नि एक ही स्वरूप हैं अर्थात् सबको एक प्रथम अग्नि अङ्गिरा ही समझना चाहिये २६। ३१ उसीके शरीर से सब अग्नियां ज्योतिष्टोम अग्नि के समान निकली हैं। अब अग्नि की वंशावली हो चुकी। यही अग्नि नानाप्रकार के मन्त्रों से पूजित होकर देहधारियों के हव्य को धारण करता है॥ ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२१॥

दोसौ बाईसवाँ अध्याय।

कार्त्तिकेय के जन्म की कथा और इन्द्र का एक स्त्री को केशीदैत्य से बचाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! हम तुमसे अग्नियों के नाना प्रकार के वंशों का वृत्तान्त कह चुके। अब बुद्धिमान् कार्त्तिकेय के जन्म की कथा सुनो १ कार्त्तिकेय ब्रह्मऋषियों की स्त्रियों से उत्पन्न हुए थे और अद्भुत अग्नि के पुत्र बड़े तेजस्वी, कीर्त्तिमान् और ब्रह्मण्य थे २ कथा उनके जन्म की इस प्रकार से है कि अगले समयों में एक समय देवता और दानवों का युद्ध हुआ था। दानव देवताओं को सदैव जीतते ही हैं सो दानवों ने देवताओं की बहुत सी सेना शस्त्रों से मार डाली। उसको देखकर इन्द्र ने विचार किया कि किसी को सेनापति करना चाहिये ३। ४ परंतु वह सेनापति ऐसा बली हो कि दानवों से सेना की रक्षा कर सके ५ इन्द्र मानसपर्वत पर इसी अर्थ को ध्यान लगाये हुए विचार कर रहा था कि इतने में उसने एक स्त्री का करुणाशब्द सुना ६ जो आर्तवाणी से यह पुकारकर कह रही थी कि कोई यहां आकर मुझे बचाओ, मैं बचानेवाले की भार्या होकर रहूँगी अथवा वह जिस किसी दूसरे को मुझे दे देगा उसीको मैं अपना पति कर लूंगी ७ यह सुनकर इन्द्र उस स्त्री के पास गया और देखता क्या है कि केशी नाम दैत्य माथे पर किरीट बांधे, हाथों में गदा लिये, पहाड़सी देह बनाये उस स्त्री का हाथ पकड़े हुए खड़ा हुआ है। इन्द्र ने यह देखकर उस स्त्री को धैर्य दिया कि अब तू मत डरै, मैं आगया हूं और उस दैत्य से कहा कि अरे नीच! तू इस कन्या को किसलिये हरना चाहता है, हट अलग हो, मैं वज्रधारी इन्द्र हूं। मेरे होते हुए तू इसको बाधा नहीं कर सकता है ८। १० केशी बोला कि हे इन्द्र! इस स्त्री को मैं चाहता

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हूं इससे जो तुमको अपने प्राण रखने हों तो इसको छोड़कर शीघ्र अपने स्थान को चले जाओ ११ यह कहकर केशी ने इन्द्र को मारने की इच्छा से गदा चलाई, इन्द्र ने उसको अपने वज्र से मारकर बीच में से दो टूक कर दिया १२ तब केशी ने एक पर्वत के शिखर को उठाकर इन्द्र के ऊपर फेंका। इन्द्र ने उसको भी वज्र से गिरा दिया और वह खंड खंड होकर केशी के ऊपर जा पड़ा। केशी उससे ताड़ित और पीड़ित होकर कन्या को छोड़कर भागा। जब वह दूर निकल गया तब इन्द्र ने उससे पूछा कि हे सुन्दरि ! तू कौन है, किसकी बेटी है और यहां क्या कर रही है ?॥ १३। १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२२॥

दोसौ तेईसवाँ अध्याय।

इन्द्र का ब्रह्माजी से देवसेना का पति पूछना, अग्नि का सप्तऋषियों की स्त्रियों पर कामासक्त होना।

इन्द्र की बात को सुनकर उस कन्या ने उत्तर दिया कि हे देवेन्द्र ! मैं प्रजापति की बेटी हूं, नाम मेरा देवसेना है और दैत्यसेनानामी मेरी एक बहिन थी, उसको यह केशी दैत्य पहिले इस प्रकार से हरकर ले गया कि हम दोनों बहिन पिता की आज्ञा लेकर सखियों के साथ साथ विहार करने की इच्छा से इस मानसपर्वत पर आई थीं। यह केशी दैत्य बहुत दिनों से हम दोनों को हरना चाहता था, आज इसका दाँव लग गया सो मेरी उस बहिन को तो हरकर ले गया जो इस दैत्य को चाहती भी थी और मैं तुम्हारी कृपा से बच गई। अब मैं चाहती हूं तुम मुझे कोई दुर्जयपति बतलाओ १। ४ यह सुनकर इन्द्र बोला तू मेरी मौसी है क्योंकि मेरी भाभी दाक्षायणी है इससे तू पहले अपने पराक्रम का वर्णन कर ५ कन्या बोली कि हे महाबाहो ! मैं तो अबला हूं परंतु मेरा पति पिता के वरदान से महाबली जिसको देवता और असुर दोनों नमस्कार करेंगे होनेवाला है ६ इन्द्र ने पूछा भला हे देवि ! उस तेरे पति में कैसा बल होगा मैं भी जानना चाहता हूं ७ कन्या बोली कि वह अत्यन्तपराक्रमी महाबलशाली तुम सब देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस और दुष्ट दैत्यों का जीतनेवाला और बड़ा ब्रह्मण्य होकर कीर्तिवर्धक होगा ८। ९ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! उस कन्या की उक्त बात को सुनकर इन्द्र दुःखी होकर चिन्ता करने लगा कि इस देवी को इसकी रुचि के अनुकूल पति मिलना दुर्लभ है १०

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसी अवसर में इन्द्र देखता क्या है कि उदयाचल पहाड़ पर चन्द्रमा सूर्य में मिल गया और अमावास्या प्रवृत्त होगई और रौद्रमुहूर्त्त में देवता और असुरों का संग्राम उदयाचल पर होने लगा। बादल लाल लाल होगये, समुद्र का पानी भी रक्तवर्ण होगया; अग्नि, भृगु और अंगिरा ऋषियों के मन्त्रों से होमे हुए हव्य को ग्रहण करके सूर्य में लय होगई और चौबिसों पर्व सूर्य के पास स्थित होगये। इस प्रकार से सूर्य चन्द्रमा की एकता और रौद्रसम वायु को देख कर इन्द्र चिन्ता करने लगा और कहने लगा कि इस सूर्य और चन्द्रमा के घोर परिवेषण से यह सूचित होता है कि आज ही रात्रि के अन्त पर बड़ा भारी युद्ध होगा ११। १७ नदी और समुद्र के लाल हो जाने से हम जानते हैं कि बहुत रक्त बहेगा, इनका पानी पीने के योग्य नहीं रहा और शृगालिनी सूर्य की ओर मुख करके बोल रही है और सूर्य और चन्द्रमा का यह मिलाप भी बड़ा अद्भुत है इससे जो चन्द्रमा के अथवा अग्नि के पुत्र उत्पन्न हो तो वह निःसंदेह इस देवी के योग्य पति होगा। यह विचारकर इन्द्र देवसेना को साथ लिये हुए ब्रह्मलोक को चला गया १८। २१ और ब्रह्माजी के पास जाकर नमस्कार किया और कहा कि महाराज! आप इस कन्या के योग्य पति बतलाइये २२ ब्रह्माजी बोले कि हे देवेन्द्र! तुमने अपने मन में जैसा विचारा है वैसा ही पराक्रमी बालक उत्पन्न होगा। उसका विवाह इस देवी से होगा और वही देवताओं की सेना का सेनापति होगा २३। २४ यह सुनकर इन्द्र ब्रह्माजी को नमस्कार करके उस कन्यासहित वहां से चला आया और सब देवताओंसहित सोमपान करने और यज्ञ में भाग लेने की इच्छा से वहां गया जहां वशिष्ठ आदि बड़े बड़े देवऋषि अग्नि को प्रज्वलित करके यज्ञ कर रहे थे। इन्द्रादिक देवताओं के वहां पहुँचने पर ऋषियों ने अग्नि का आवाहन करके हव्य होमना प्रारम्भ किया, उसी समय अद्भुतनाम अग्नि सूर्य से निकल कर वहां चले आये और ऋषियों के हाथ से मन्त्रों से होमे हुए अनेक प्रकार के हव्य को ले लेकर देवताओं को देने लगे २५। ३० जब यज्ञ समाप्त होगया और अग्नि होत्रशाला से अपने लोक को जाने लगा तब उसने उस स्थान में उन महात्मा ऋषियों की स्त्रियों को जो सुवर्ण की सी कान्ति, चन्द्रमा की सी निर्मलता, अग्नि की ज्वाला के सदृश प्रभा और तारागणों की सी छवि रखने-वाली अपने आश्रम में सुखपूर्वक बैठी और सो रही थीं देखा ३१। ३२ उनके

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

स्वरूप को देखते ही अग्नि कामासक्त होगया और उसकी सब इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं, तब वह विचार करने लगा कि मुझको इस प्रकार से क्षोभ करना उचित नहीं हैं क्योंकि ये ऋषियों की स्त्रियां साध्वी हैं, मुझे विना कारण इनकी ओर देखना अथवा इनसे बातचीत करना उचित नहीं है इससे यह बात अच्छी है कि मैं होम के स्थान में रहकर इन स्त्रियों को निरन्तर देखा करूं ३३ । ३५ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! अग्नि ऐसा विचार करके होत्रशाला में चला गया और अपनी लपटों से उन स्त्रियों को स्पर्श करके वहां रहने लगा और उनके स्वरूप पर मोहित होकर दिनरात उनको देखने लगा । इस प्रकार से जब बहुत दिन व्यतीत होगये तब अग्नि कामदेव से संतप्त होकर, ब्राह्मणों की स्त्रियों का मिलना असंभव जानकर, देहत्याग करने के लिये वन में चला गया ३६ । ३८ वहां उसको अकेला देखकर दक्ष की पुत्री स्वाहा जो अग्नि को बहुत दिनों से चाहती थी और अपना अवसर देख रही थी, विचार करने लगी कि इस समय अग्नि वन में अकेला और कामाग्नि से पीड़ित है, यदि इस समय में मैं ऋषियों की स्त्रियों का स्वरूप धारण करके अग्नि के पास जाऊं तो उसको अपने वश में करके अपने मनोरथ को सिद्ध कर लूं ॥ ३९ । ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥

दोसौ चौबीसवाँ अध्याय ।

स्वाहा का अग्नि के साथ विहार करना और उससे कार्त्तिकेय का जन्म होना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! स्वाहा ने उक्त प्रकार से विचारकर अंगिरा की स्त्री शिवानाम का रूप धारण किया जो बड़ी स्वरूपवती थी और वन में अग्नि के पास जाकर कहने लगी कि हे अग्नि ! मैं कामदेव से बहुत दुःखी हूं तुमको मुझे चाहना उचित है १ । २ मैं अंगिराऋषि की शिवानामी भार्या हूं, मुझे श्रेष्ठ स्त्रियों ने तुम्हारे पास भेजा है, जो तुम मुझसे प्रीति न करोगे तो मुझे मरी हुई पावोगे ३ यह सुनकर अग्नि बोला कि हे सुन्दरि ! तैंने और उन सप्तऋषियों की दूसरी स्त्रियों ने जिन्होंने तुझे भेजा है मुझको कामाग्नि से पीड़ित कैसे जान लिया ४ शिवा बोली हम सदैव से तुमको चाहती थीं, परंतु डरती थीं । अब तुम्हारी चेष्टा से तुम्हारी चित्त की वृत्ति को जानकर मेरी उन सब बहिनों ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । वे मेरी बाट देख रही होंगी इससे तुम शीघ्र मेरे साथ कामकलोल करो, मैं एतदर्थ ही तुम्हारे पास आई हूं ५ । ६

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मार्कण्डेयजीबोले हे युधिष्ठिर! इसके उपरान्त अग्निने उस शिवारूपी स्वाहा के साथ विहार किया। जब विहार कर चुके तब स्वाहा ने अग्नि का वीर्य हाथ में ले लिया और विचार किया कि जो कोई मुझको इस रूप से वन में देखेगा वह ब्राह्मणियों को लाञ्छन लगावेगा। इससे यह बात उत्तम है कि मैं गरुड़ी पक्षी का स्वरूप धारण करके इस वीर्य की रक्षा करती हुई निकल चलूं। मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! ऐसा विचार कर उसने शीघ्र अपना स्वरूप गरुड़ी पक्षी का बना लिया और वहां से वीर्य को लिये हुए श्वेतपर्वत की पृष्ठ पर पहुँची जहां जाना बड़ा कठिन है और जहां राक्षस, पिशाच, राक्षसी बड़े बड़े भयानक भूत और दृष्टि में विष और सात शिर रखनेवाले सर्प रहते हैं ७। १२ वहां वह उस वीर्य को एक सुनहले कुण्ड में डालकर शीघ्र दूसरे ऋषि की स्त्री का स्वरूप धरकर अग्नि के पास पहुँची और फिर उक्त प्रकार से विहार करके वीर्य को लेकर सुवर्णकुण्ड में डाल गई। इस प्रकार से स्वाहा ने उस प्रतिपदा के दिन छह बार छह ऋषियों की स्त्रियों का स्वरूप बारी बारी से धारण करके अग्नि के साथ काम-कलोल की और प्रति बार वीर्य को ले लेकर उसी कुण्डमें डाल डाल गई परंतु सातवीं बार अरुन्धती का रूप धारण न कर सकी क्योंकि वह बड़ी तपस्विनी और पतिव्रता थी। अग्नि के उस तेजयुक्त वीर्य से द्वितीया के दिन एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके छह शिर, बारह कान, बारह भुजा, एक ग्रीवा और एक पेट था और वह तृतीया को बालकरूप रहा १३। १८ चौथ को उस बालक के सब अङ्ग पूरे होगये और वह ऐसा दीखने लगा मानों बादलों में उदय हुआ प्रातःकाल का लाल लाल सूर्य है। तब उस स्कन्दनामी कुमार ने अपने हाथ में वह धनुष ले लिया जिसको देखकर संसारी जीवों के रोम खड़े होगये थे और पहले समय में महादेवजी ने जिससे असुरों को मारा था और महामेघों के सदृश गर्जने लगा जिससे सब संसारी जीव मोहित होगये और चित्र और ऐरावतनामी सर्प आकाशमार्ग से वहां आन पहुँचे। उस बालक ने उनको दो हाथों से पकड़ लिया और तीसरे से शक्ति, चौथेसे ताम्रचूड़ और पांचवें हाथसे कुक्कुट को ग्रहण करके भयानक शब्द से गर्जने और क्रीड़ा करने लगा १९।२५ इसके पीछे उस दृढ़पराक्रमी कुमार ने अपने दो हाथों में उत्तम शंख लेकर धमाया और दो हाथों से आकाश को अनेक प्रकार से मथा। उस समय वह अमेय आत्मा और अद्भुत पराक्रमी कुमार उस पहाड़ के शिखर पर बैठा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor.

हुआ और अपने छहों मुखों से दिशाओं को देखता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो उदयाचल पर सूर्य उदय हुआ है और लोकों को अपने मुखों से ग्रसना चाहता है। उसी समय कुमार ने फिर भयानक शब्द किया उसको सुनकर बहुत से मनुष्य गिर पड़े और बहुत से भय से कांपते हुए उसकी शरण गये २६।३० उस कुमार ने उन शरणागत ब्राह्मणों को अपना पार्षद बनाया और उठकर उनको धैर्य देकर धनुष को चढ़ाकर उस श्वेतपर्वत पर बाण छोड़े, उन बाणों ने हिमालय के पुत्र क्रौंचपर्वत को भेदन किया और वह पहाड़ खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पीड़ित होकर चिल्लाने लगा। उसके गिरने से दूसरे पर्वत भी भय से आर्त शब्द करने लगे और उसके ऊपर रहनेवाले हंस और गृध्र आदि पक्षी उड़ उड़कर मेरु पर्वत पर चले गये ३१।३४ वह श्रेष्ठ बली उन पर्वतों के आर्त शब्द को सुनकर दुःखी नहीं हुआ किंतु अपनी शक्ति को उठाकर गर्जने लगा और उस शक्ति को श्वेत-पर्वत के बड़े शिखर में मारा उससे वह पर्वत फट गया और भयभीत होकर दूसरे पर्वतों सहित उछल कर आकाश में चला गया। उस समय पृथ्वी चारों ओर से फट गई और महादुःखी होकर उस स्कन्दनामी कुमार की शरण आई और उससे आश्वासित होकर फिर ज्यों की त्यों स्थित हो गई और पहाड़ भी उसको नमस्कार कर फिर पृथ्वी पर जहां के तहां जम गये। इसके उप-रान्त शुक्लपक्ष की पञ्चमी को सब जगत् ने स्कन्द नाम कुमार का भजन किया॥ ३५। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२४॥

दोसौ पच्चीसवाँ अध्याय।

स्कन्द की उत्पत्ति से उत्पातों का होना, सप्तऋषियों का अपनी स्त्रियों को त्यागना, देवताओं का स्कन्द के मारने के लिये लोकमाताओं का भेजना, उनका स्कन्द की शरण में जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! उस महापराक्रमी कुमार के उत्पन्न होने से पृथ्वी पर अनेकानेक बड़े बड़े घोररूप उत्पात उठे १ स्त्री-पुरुष आपस में वैरभाव मानने लगे। ग्रह दिशा और आकाश दीप्त होगये और पृथ्वी बड़ा शब्द करने लगी तब ऋषियों ने इन उत्पातों को देखकर लोकों की शान्ति की २।३ इसके पीछे उस चैत्ररथ वन में रहनेवाले मनुष्य आपस में कहने लगे कि अग्नि ने सप्त ऋषियों की स्त्रियों के साथ समागम करके बड़ा अनर्थ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

किया। वे लोग यह नहीं जानते थे कि यह कर्म स्वाहा का किया हुआ है क्योंकि उन्होंने केवल सप्त ऋषियों की स्त्रियों के ही रूप से स्वाहा को जाते हुए देखा था और उनमें से बहुत से पुरुषों ने जिन्होंने स्वाहा को गरुड़ी पक्षी के स्वरूप में देखा था, गरुड़ी से कहा कि इस अनर्थ की उत्पन्न करनेवाली तू है। यह सुनकर गरुड़ी अपने आश्रम को चली गई और वहां जाकर उसने स्कन्दनामी कुमार से कहा कि मैं तेरी माता हूं ४।७ इसके पीछे सप्तऋषियों ने वनवासी मनुष्यों से यह सुनकर कि वह तेजस्वी पुत्र हमारी छह स्त्रियों से उत्पन्न हुआ है, अरुन्धती को छोड़ सब स्त्रियों को त्याग कर दिया। यह हाल स्वाहा सुनकर सप्तऋषियों के पास गई और बोली कि यह वृत्तान्त मेरा जाना हुआ है, यह कुमार मेरा पुत्र है, आप इन स्त्रियों को न त्यागिये परंतु सप्तऋषियों ने उसकी बात को न माना। इस वृत्तान्त को विश्वामित्र पूरा पूरा जानते थे क्योंकि उन्होंने यज्ञशाला में अग्नि को काम के वशीभूत देखा था और वन में भी अग्नि के पीछे पीछे जाकर स्वाहा का संपूर्ण चरित्र देखा था ८।११ सो जब वह कुमार उत्पन्न होगया तब विश्वामित्र ने उसके पास जाकर उसके जातकर्म आदि सब संस्कार किये और उसकी स्तुति, माहात्म्य, कुक्कुट, शक्ति और पार्षदों के साधन करने की विधि संसार के हित के लिये रची, तब से विश्वामित्र उस कुमार के परमप्रिय होगये १२।१५ इसके पीछे विश्वामित्र ने सप्तऋषियों से आकर स्वाहा का सब वृत्तान्त कहा और उपदेश किया कि तुम्हारी स्त्रियां निरपराध हैं तुम उनको मत त्यागो परंतु उन ऋषियोंने लोकापवाद के भयसे उन स्त्रियोंको ग्रहण नहीं किया किंतु त्याग ही कर दिया १६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके अनन्तर देवता उस स्कन्द के उत्पन्न होने का हाल सुनकर इन्द्र से बोले कि इस कुमार का पराक्रम असह्य है इससे इसके मारने का शीघ्र यत्न कीजिये नहीं तो यह सब लोकों को जीतकर हम सबको अपने वश में कर लेगा और आप इन्द्र हो जायगा १७।१८ यह सुनकर इन्द्र बोला कि वह बालक बड़ा पराक्रमी है, अपने बल से इस संसार को उत्पन्न करनेवाले का भी नाश कर सकता है इससे मैं उसके मारने के यत्न करने में प्रसन्न नहीं हूं। देवता बोले कि तुममें इतना पराक्रम नहीं है जो उसे मार सको इससे ऐसी बातें कह रहे हो। अच्छा, सब लोकमाताएँ जो अपने पास कामरूपी बड़ा बल रखती हैं वे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जायँ और उस बालक का वध करें। यह सुन कर सब लोकमाताएँ 'तथास्तु' कहकर चल दीं। जब वहां पहुँचीं जहां वह कुमार था तब वे उस कुमार के अपरमित बल को देखकर व्याकुल होगईं और कहने लगीं कि इसको बल से वशमें करना दुर्लभहै ऐसा कहकर उन सबने उसी कुमार की शरण ली १६।२२ और वे सब उससे बोलीं कि हे महाबलशालिन्! तू हमारा पुत्र है, हम सब स्नेह से तेरे पास आई हैं, तू हम सबको पुत्रभाव से प्रसन्न कर २३ यह सुनकर उस कुमार ने स्तन पीने की इच्छा से उन सबकी पूजा की और उनके मनोरथ को पूरा किया इतनेही में वहां उस कुमार का पिता अग्नि भी जा पहुँचा। कुमार ने उसका आदर किया और वह सब लोकमाताओं सहित सत्कार पाकर उस कुमार को अपनी गोद में लेकर बैठ गया, उसकी रक्षा करने लगा और क्रोध समुद्भवनाम की धात्री ने जिसके हाथमें शूल रहताहै उसकी रक्षा पुत्रके समान की और रक्तसमुद्रकी कन्या ने जो बड़ी क्रूर और रक्त पीनेवालीथी उस कुमारमें पुत्रभाव मानकर बड़ी प्रीति से उसकी रक्षा की और नैगमेयनाम अग्नि ने छागमुख बनकर उस कुमार को इस प्रकार से खिलाया जैसे कोई बालक को खिलौनों से खिलाता है॥ २४। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२५॥

दोसौ छब्बीसवाँ अध्याय।

इन्द्र का स्कन्द से युद्ध में हारकर स्कन्द की शरण जाना, स्कन्द का इन्द्र को अभय कर देना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! जब उक्त प्रकार से सब ग्रह, उपग्रह, ऋषि, देव, माता और अग्नि आदि पार्षद और अन्य स्वर्गवासी माताएँ उस स्कन्द को घेरकर वहां स्थित होगईं तब इन्द्र अपने विजय को संदिग्ध देख-कर विजय की इच्छा से ऐरावत हाथी पर चढ़कर वज्र लिये हुए सब देवताओं सहित स्कन्द को मारने के लिये वहां गया १।४ स्कन्द उस बड़ी दारुण देवसेना को जो अनेक प्रकार की ध्वजा, वाहन, धनुष और अनेक प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत होकर शोभित थी बड़ा शब्द करती हुई अपने मारने को आती हुई देखकर इन्द्र से युद्ध करने के लिये चलदिया और इन्द्र भी मुख्य देवता और महाऋषियों सहित देवताओं की सेना को लिये हुए उसके निकट जा पहुँचा ५।८ और वहां उसने और सब देवताओं ने सिंहनाद किया। उसको सुन-कर स्कन्द भी सागर के समान गर्जा उसकी गर्जन में वह सब देवताओं की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सेना अचेतसी होकर उसको मारने की इच्छा से इधर उधर घूमने लगी। स्कन्द ने उस सेना को अपने मारने का यत्न करने में तत्पर देखकर अपने मुख से बड़ी भारी ज्वाला छोड़ी ९। ११ देवता अपने आयुध और वाहनों सहित उस ज्वाला से कम्पित और अस्त हुए तारागणों के सदृश निष्प्रभ होकर गिर पड़े और सबने इन्द्र को त्यागकर उस अग्निपुत्र स्कन्द की शरण ली तब वह ज्वाला नष्ट होगई और देवताओं का दुःख दूर हो गया। यह देख-कर इन्द्र ने स्कन्द के दाहिनी बग़ल में वज्र मारा। वह वज्र स्कन्द की देह को फोड़ कर पार हो गया और उसके शरीर से एक दूसरा पुरुष निकला जो सुनहरी कवच, शक्ति और दिव्य कुण्डल धारण किये हुए था, नाम उसका विशाख था क्योंकि वह स्कन्द की देह में वज्र के प्रवेश होने से उत्पन्न हुआ था। इन्द्र उस काल अग्नि के सदृश दूसरे पुरुष को देखकर भयभीत होगया और उसने भी स्कन्द की शरण ली। तब स्कन्द ने इन्द्र को देवताओं सहित अभय कर दिया और देवता उस समय प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे॥ १२।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२६॥

दोसौ सत्ताईसवाँ अध्याय।

स्कन्द के कुमार और कन्याओं के उत्पन्न होने और माताओं का लोक में पूज्य होने का वृत्तान्त।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब हम तुमसे स्कन्द के उन अद्भुत दर्शन कुमारों का वृत्तान्त कहते हैं जो वज्र का प्रहार होने पर स्कन्द के पास गये थे। ये सब कुमार बड़े भयानक हैं और गर्भ में जन्म लेनेवाले बालकों के प्राण हर ले जाते हैं। वज्र के प्रहार से बहुत से कुमार और बड़ी बलवान् कन्या उत्पन्न हुई थी, उन सब कुमार और कन्याओं ने विशाख को अपना पिता करके माना। उस समय उनकी रक्षा के लिये विशाख ने अपना मुख छाग अर्थात् बकरी का-सा बना लिया। इस प्रकार से वह भद्रशाख अर्थात् स्कन्द उन सब माताओं के देखते देखते पुत्र और पुत्रियों से युक्त होगया। तदनन्तर लोग पृथ्वीपर स्कन्दकुमारको उन सब कुमारोंका पिता और अग्नि को रुद्र और स्वाहा को उमादेवी कहने लगे १। ५ जो मनुष्य पुत्रवान् हैं अथवा जिनको पुत्र होने की इच्छा है वे उक्त कुमारों की सदैव पूजा करते हैं। इसके पीछे जो कन्याएँ तपनाम अग्नि से उत्पन्न हुई थीं वे सब स्कन्द के पास आईं और कहने लगीं कि हम सब अब क्या करें, हमारी इच्छा है कि हम सब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लोकों की माता और पूज्य होजावें। यह सुनकर स्कन्द बोला कि बहुत अच्छा तुम सब अपना अपना रूप पृथक् पृथक् करके लोकों का कल्याण और अकल्याणरूप माता होजाओ ६।८ यह सुनकर वे सब माता स्कन्द को पुत्रभाव से मानकर चली गईं। नाम उनके ये हैं काकी १ हलिमा २ मालिनी ३ बृंहिता ४ आर्या ५ पलाला ६ और वैमित्रा ७ ये सब बालकों की माताएँ कहलाती हैं। स्कन्द की कृपा से इन सातों के शिशुनामी बड़ा भयंकर और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था। हे युधिष्ठिर! इस वृत्तान्त का नाम स्कन्दमातोद्भववीराष्टक है और छागमुख को भी गिनने से नवक भी अर्थात् नव वीरों का वृत्तान्त रखनेवाला कहलाता है। यह छागमुख स्कन्द ही का है और उसके छह शिरों के बीच में है। माताओं के गण इसी मुख की पूजा करते हैं और यही मुख स्कन्द के छहों मुखों में श्रेष्ठ गिना जाता है और स्कन्द का नाम भद्रशाख दिव्यशक्ति छोड़ने के कारण से हुआ था ६।१४ यह सब उक्त वृत्तान्त शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को हुआ था और छठ को बड़ा घोरयुद्ध वर्त्तमान हुआ ॥ १५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

दोसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय।

स्कन्द का सेनापति होने का अभिषेक होना और देवसेना से विवाह होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! जिस समय उस श्वेत पर्वत पर स्कन्द सुनहरी कवच, सुनहरी माला, सुनहरी चूड़, मुकुट और रक्तवस्त्र धारण किये हुए विराजमान थे और सुवर्ण वर्ण नेत्र अत्यन्त प्रभा और उज्ज्वल कुण्डलों से सुशोभित थे उस समय उस वरदाता, शूरवीर, युवान सब लक्षणों से युक्त स्कन्द की लक्ष्मी ने अपने साक्षात् स्वरूप से वहां आकर सेवा करी और वह लक्ष्मी से युक्त होने पर ऐसा दीखने लगा मानो पौर्णमासी का चन्द्रमा उदय हुआ है १।४ उसी समय वहां महाऋषियों ने आकर उस महाबलशाली की पूजा की और उससे यह कहा कि ५ हे हिरण्यगर्भ! तेरा कल्याण हो, तू लोकों में आनन्द करता है और तैंने अपनी छह रात्रि की आयु में ही सब लोकों को अपने वश में कर लिया है ६ तैंने ही तीनों लोकों को अभय किया है इससे अब तू इन्द्र का अधिकार ग्रहण कर ले ७ यह सुनकर स्कन्द बोला हे तपोधन, ऋषियो! देवेन्द्र सब लोकों का क्या काम करता है और देवताओं की रक्षा किस प्रकार से करता है ८ ऋषि बोले, देवेन्द्र

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्राणियों के बल, तेज और सन्तान को धारण करता है और प्रसन्न होने पर प्राणियों की सब मनोकामनाओं को पूर्ण करता है ९ सबको आज्ञा देना भी उसी का काम है, वही दुर्वृत्त जीवों को मार डालता है और वृत्तस्थ पुरुषों को इच्छानुसार भोग्य पदार्थ देता है १० जहां सूर्य नहीं है वहां वही सूर्य हो जाता है और जहां चन्द्रमा नहीं है वहां वही चन्द्रमा का काम देताहै और कारण पाकर अग्नि, पृथ्वी, जल और वायुरूप भी धारण करता है ११ वह बड़ा बली है, वही ये सब काम करता है। तू भी बलवानों में श्रेष्ठ है इससे तू हम सबों का इन्द्र हो १२ यह सुनकर इन्द्र ने भी स्कन्द से कहा कि तू हम सबको सुख देनेवाला है और इन्द्रपदवी पाने के योग्य है इससे चल अब तेरा अभिषेक करें १३ स्कन्द बोला कि हे इन्द्र! मैं इन्द्रपदवी नहीं चाहता हूं, तू ही अव्यग्रचित्त होकर तीनों लोकों के राज्य का शासनकर, मैं तेरा किंकर होकर रहूंगा १४ इन्द्र बोला कि हे वीर! तेरा पराक्रम बड़ा अद्भुत है तू उस पराक्रम से देवशत्रुओं का वध कीजियो, संसार तेरी सबलता और मेरी अबलता और इन्द्रासनपर बैठने की अयोग्यता को देखकर मेरा अपमानकरेगा और हम दोनों में परस्पर भेद करादेगा उस भेद से लोककी दो अवस्थाएँ हो जायँगी और दो अवस्थाएँ होनेसे आपस में शत्रुता होजायगा, उस शत्रुतासे हम दोनों में विग्रह होगा और उस विग्रह में तू अपने बलसे मुझे जीत लेगा इससे तू ही विना विचार किये इन्द्रासन पर बैठ १५।१८ स्कन्द बोला हे इन्द्र! तेरा कल्याण हो, तू ही मेरा और सब लोकों का राजा है। जो तू मुझको आज्ञा दे, सो मैं करूं १९ इन्द्र बोला कि हे महाबल! जो तू निश्चय करके सत्य सत्य कहता है तो मैं तेरे वाक्य के अनुसार इन्द्रपदवी पर रह सकता हूं २० और जो तू मुझसे आज्ञा पूछता है कि मैं क्या करूं तो मेरी यह आज्ञा है कि तू देवताओं की सेना का सेनापति होकर रह २१ यह सुनकर स्कन्द बोला बहुत श्रेष्ठ; अब तू दानवों के मारने, देवताओं का काम करने और गो-ब्राह्मण का हित करने के लिये सेनापति होने का मेरा अभिषेक कर दे २२ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! सब देवताओं समेत इन्द्र ने यह सुनकर उसका अभिषेक कर दिया और वह सेनापति का अभिषेक पाकर और ऋषियों से पूजित होकर अत्यन्त सुशोभित हो गया २३ और सुनहरी छत्र के नीचे बैठा हुआ ऐसा दीखने लगा मानो अग्निमण्डल में सूर्य विराजमान है २४ उस समय शिवजी ने स्वयं वहां आकर विश्वकर्मा की बनाई

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हुई सुनहरी माला उसके गले में बांध दी २५ और पार्वती सहित बड़ी प्रसन्नता से उसकी पूजा की २६ शिवजी को ब्राह्मणों ने अग्निरूप भी कहा है इससे स्कन्द शिवजी का पुत्र कहलाया। शिवजी ने एक समय अपना वीर्य छोड़ दिया था, वही वीर्य श्वेत पर्वत हो गया और उसपर कृत्तिकाओं ने अग्नि की इन्द्रिय निर्माण की थी और शिवजी अग्नि में प्रवेश हो गये थे इससे वह स्कन्द शिवजी, अग्नि, स्वाहा और छह स्त्रियों से उत्पन्न होने के कारण से रुद्रपुत्र कहलाया २७। ३० हे भरतवंशिन्! उस समय लाल वस्त्रों के धारण करने से उस अग्निपुत्र की ऐसी छवि दीखने लगी मानो दो लाल बादलों में सूर्य प्रकाश कर रहा है ३१ अग्नि ने उसी समय उसको एक कुक्कुट का चिह्न रखनेवाली ऊंची और लाल ध्वजा दी जो उसके रथ में कालाग्नि के समान अलंकृत दीखती है ३२ जीवों में चेष्टा, बल, शान्ति और प्रभा होना, उस शक्ति का कारण है जो देवताओं के जय की बढ़ानेवाली और स्कन्द के आगे चलनेवाली है ३३ और स्कन्द की देह के साथ एक कवच भी उत्पन्न हुआ था, वह कवच उसकी देह में प्रवेश हो गया। जब स्कन्द युद्ध करना चाहता है तब वह कवच देह से निकलकर प्रकट हो जाता है ३४ यह स्कन्द बड़ा गुणवान् था। शक्ति, धर्म, बल, तेज, कान्ति, सत्य, ब्रह्मण्य, असंमोह, भक्तों की रक्षा करना, शत्रुओं को मारना और संसार की रक्षा करना ये गुण उसकी देह के ही साथ उत्पन्न हुए थे ३५। ३७ अभिषेक होने के पीछे स्कन्द के मुखारविन्द की छवि पूर्णचन्द्रमा की-सी हो गई और वेदध्वनि, देवताओं के बाजे, गन्धर्वों के गीत, अप्सराओं के नाच, पिशाच और हृष्ट-पुष्ट देवताओं के वहां इकट्ठा होने से उस स्थान की बड़ी अद्भुत शोभा होगई। उन सबके बीच में स्कन्द बैठा हुआ ऐसा दीखता था मानों अन्धकार दूर करनेवाला दूसरा सूर्य है। इसके पीछे सब देवताओं की संपूर्ण सेना जिसकी संख्या सहस्रों की थी, यह कहती हुई स्कन्दजी के सम्मुख आई कि आप हमारे स्वामी हैं। स्कन्द उस सेना को पाकर और उससे पूजित होकर प्रसन्न हुआ और उसने सब सेनाओं के देवताओं को सान्त्वना दी ३८। ४४ इसके उपरान्त इन्द्र ने उस देवसेना कन्या को याद किया जिसको उसने केशी दैत्य से छुटाया था और यह विचारकर कि ब्रह्माजी ने उस कन्या का पति यही स्कन्द रचा है, उसने उस कन्या

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को बुलवाकर स्कन्द से कहा कि यह कन्या है, तेरे उत्पन्न होने से पहिले ही ब्रह्माजी ने कहा था कि यह स्कन्द की पत्नी होगी। इससे तू विधिवत् इसके दाहिने हाथ को अपने हस्तकमल से ग्रहण कर। यह सुनकर स्कन्द ने विधिपूर्वक उस कन्या का पाणिग्रहण किया और बृहस्पतिजी ने पाणिग्रहण कराया और होम किया इस प्रकार से मनुष्यों को वह देवसेना स्कन्द की पटरानी विदित हुई ४५। ४६ यह पाणिग्रहण षष्ठी के दिन हुआ था, ब्राह्मण लोग इसी षष्ठी को सुख और लक्ष्मी की दात्री कहते हैं और सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्त और अपराजित नाम से प्रसिद्ध करते हैं। देवसेना स्कन्द को पति पाकर सेवा में युक्त होकर रहने लगी। वह पञ्चमी तिथि जिसमें लक्ष्मी ने स्कन्दजी की सेवा की थी, श्रीपंचमी नाम से विख्यात हुई और वह षष्ठी जिसको स्कन्द का अभिषेक और विवाह हुआ बड़ी तिथि गिनी जाती है ५०। ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२८॥

दोसौ उन्तीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दरूपी बाल ग्रहों का वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके अनन्तर सप्तऋषियों की छहों स्त्रियां जो धर्मयुक्त और महाव्रता थीं उस श्रीयुक्त कुमार का वृत्तान्त सुनकर उसके पास आईं और उससे कहने लगीं कि हे पुत्र! हमारे देवसदृश पतियों ने हमको क्रोध से विना कारण त्याग दिया है इससे हम सब पुण्यस्थान से गिर गई हैं। त्याग करने का कारण यह था कि किसीने उनसे यह जाकर कह दिया कि तू हम सबसे उत्पन्न हुआ है इससे हे स्कन्द! तुझको हम सबकी रक्षा करना उचित है १। ४ हे सर्वकर्मसमर्थ! हम चाहती हैं कि तेरी कृपा से हमको स्वर्ग में अक्षय वास मिले। तू हमारा पुत्र है, हमको तुझसे बड़ी प्रीति है इससे तू अब हमारा उक्त काम करके हमसे अनृण हो जा ५ यह सुनकर स्कन्द बोला कि तुम सब मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूं, तुम्हारी इच्छा सब पूरी होगी ६ मार्कण्डेयजी बोले इसके पीछे इन्द्र ने कुछ कहना चाहा परंतु कहते कहते चुप हो रहा तब स्कन्द ने इन्द्र से कहा कि क्या कार्य है, कहते क्यों नहीं हो? इन्द्र बोला ७ कि जो अभिजित् नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र की छोटी बहिन है वह अपनी बड़ी बहिन अर्थात् रोहिणी से ईर्ष्या करके बड़ी बनने के लिये वन में तपस्या करने को चली गई है। उसके आकाश में से चले जाने के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कारण मैं नहीं जानता हूं कि नक्षत्रोंकी गणना काल के अनुसार क्योंकर की जावे। आप और ब्रह्माजी विचार कीजिये कि अब किस नक्षत्र का काल समझा जावे ८। ९ यह सुनकर कृत्तिका स्वर्ग को चली गई जिसका देवता अग्नि है और जो आकाश में सात शिर से प्रकाश करती है। तब ब्रह्माजी ने काल की कल्पना इस प्रकार से की कि उस काल के आगे में धनिष्ठा थी अब रोहिणी पूर्व हो गई १०। ११ इसके पीछे गरुड़ी ने स्कंद से आकर कहा कि तू मेरा पिण्डदाता पुत्र है, मैं तेरे साथ रहना चाहती हूं १२ स्कन्द बोला कि हे देवि! तू निःसंदेह मेरी माता है, मैं तुझको नमस्कार करता हूँ। तू अपनी पुत्रवधू के साथ रह और पुत्रस्नेह से जो तेरी इच्छा में हो सो मुझे आज्ञा कर १३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे सब माताओं ने वहां आकर स्कन्द से कहा कि पण्डितलोग हम सबको लोकमाता नाम से स्तुति करते हैं, इससे हम तेरी माता होना चाहती हैं, तू हमारी पूजा कर। यह सुनकर स्कन्द बोला कि तुम मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूं। जो कुछ तुम्हारे मन में काम हो और वह मुझसे होसकता हो उसको कहो १४। १५ माता बोलीं कि इसलोक की जो पहिली माताएँ हैं उनका स्थान हम पावें और सब लोकों में हमारी पूजा होवे और उनको कोई न पूजे और उन माताओं ने जो सन्तान हमारी हर ली है वह भी हमको मिल जाय १६।१७ यह सुनकर स्कन्द बोला कि मेरी दीहुई प्रजाका सेवन करना तुमको उचित नहीं है, फिर मैं तुमको कौन सी प्रजा दूं जिसको तुम भी चाहती हो १८ यह सुनकर माता बोलीं कि हम यह चाहती हैं कि पहिली माताओं की सन्तान और उनके स्वामियों को भक्षणकरें १९ स्कन्द बोला कि यह बात तो तुमने बड़ी कठिन कही, परंतु लो मैं तुमको प्रजा देता हूं, साधुलोग तुमको नमस्कार करेंगे और तुम प्रजाकी रक्षा करना २० माता बोलीं कि हे स्कन्द! तेरा कल्याण हो, हम तेरे कहने के अनुसार प्रजा की रक्षा चारोंओर से करेंगी परंतु हम सब तेरे साथ बहुत दिनों तक बसना चाहती हैं २१ स्कन्द बोला कि जबतक मनुष्य के पुत्रोंकी आयु सोलह वर्षकी न हो जाय तबतक तुम अनेक प्रकारके रूप धारणकरके उनको बाधा करो २२ मैं तुमको रौद्र तेज देता हूं उसको धारणकरके तुम संसार में पूजितहोकर सुख से वास करो २३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे स्कन्द के शरीर से अग्नि के समान प्रकाशित मनुष्य की संतानको भक्षण करनेके लिये एक पुरुष

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

गिरपड़ा और स्कन्द की आज्ञा से वह रौद्ररूप हो गया। ब्राह्मण लोग उसको स्कन्दापस्मार ग्रह कहते हैं और गरुड़ी शकुनिनामी ग्रह विख्यातहुआ २५।२६ और जो पूतनानाम राक्षसीथी वह पूतनानामी ग्रह समझो। यह निशाचरी बड़ी घोररूपा और दुःखदायिकाहै। यह शीत पूतनानाम से भी प्रसिद्ध है और स्त्रियों के गर्भ को बाधा करती है २७। २८ और रेवती को अदितिनाम से भी कहते हैं। उसका रैवतनामी ग्रह हुआ। यह ग्रह भी बालकों को बाधा करता है २६ और जो दितिनामी दैत्योंकी माताहै उसको मुखमुण्डिकानामी ग्रह कहते हैं, यह ग्रह बालकों के मांस से सदैव प्रसन्न रहता है ३० और जो स्कन्द के कुमार और कुमारियां कहआये हैं वे भी बड़े बड़े ग्रह हैं और स्त्रियों के गर्भको भक्षण करते हैं ३१ और जो उन कुमारी स्त्रियों के पति हैं वे बड़े रौद्रकर्मी हैं, वे बालकों को तुरंत ग्रहण कर लेते हैं ३२ और जो गौओं की माता सुरभि विख्यात है उसपर चढ़कर शकुनिनामी ग्रह बालकों को भक्षण करता है ३३ हे जनाधिप ! सरमानाम देवी जो कुत्तों की माता है स्त्रियों के गर्भ को हरकर ले जाती है ३४ और जो करञ्जनिलयानामी वृक्षों की माता है वह बड़ी सौम्य और वरदात्री है और प्राणियों पर दया भी करती है। मनुष्य पुत्र की कामना से उसकी पूजा करञ्ज के वृक्षपर करते हैं। इन अठारहों ग्रहों को मधु और मांस बड़ा प्रिय है और ये दश दिन तक बालक उत्पन्न होने के स्थान में रहते हैं और कद्रू माता गर्भिणी स्त्री के गर्भ में सूक्ष्मरूप से प्रवेश होजाती है ३५। ३७ और उस गर्भ को भक्षण करके उसके बदले में सर्प उत्पन्न कर देती है। और गन्धर्वोंकी माता स्त्रियोंके गर्भको निकालकर लेजाती है और तब वह स्त्री गर्भ धारणकरके शून्यगर्भ होजाती है और अप्सराओं की माता गर्भ को पकड़कर बैठ रहती है तब संसार में लोग उस गर्भ को उपनष्ट कहते हैं और जो माता लाल समुद्र की कन्या है वह स्कन्द की धात्री है ३८। ४० नाम उसका लोहितायनहै, उसकी पूजा कदम्बके वृक्ष में होती है और जैसे पुरुषो में रुद्रहैं उसी प्रकारसे स्त्रियों में आर्या देवी है ४१ वह लड़कोंकी माताहै, पृथक् पृथक् कामनाओं से उसकी पूजा पृथक् पृथक् विधि से होती है। हे युधिष्ठिर ! ये सब ग्रह हमने वर्णन किये। जब तक बालकों की सोलह वर्ष की आयु नहीं होती है तब तक ये सब ग्रह बालकों को बाधा करते हैं। जितनी माताओं के नाम और पुरुषग्रह हमने ऊपर कहेहैं वे सब स्कन्दग्रह नामसे प्रसिद्ध हैं। देहधारियोंको इन ग्रहोंका जानना

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अवश्यहै। स्नान कराने, धूपदेने, पूजा करने, बलि देने और भेंट चढ़ाने से येसब ग्रह शान्त हो जाते हैं। विशेष करके स्कन्द की पूजा करना अति उत्तम है। ऐसा करने से ये ग्रह मनुष्य का कल्याण करते हैं ४२। ४५ और पूजा आदि पाकर आयु और बल देते हैं। अब मैं महेश्वर को नमस्कार करके उन ग्रहों का वृत्तान्त कहता हूं जो सोलहवर्ष के पीछे मनुष्य को बाधा करते हैं ४६ जो मनुष्य जागते अथवा सोते में किसी देवता के स्वरूप को देखकर बावला होजाता है वह देवग्रह का कारण है ४७ और जो मनुष्य अपने किसी पितृ के स्वरूप को सोते अथवा जागते में देखकर उन्मत्त होजाता है उसको पितृग्रह का दोष समझना चाहिये ४८ और जो मनुष्य किसी सिद्धपुरुष का अपमान करता है और उसके शाप से बावला होजाता है वह सिद्धग्रह का दोष है ४९ और जो पुरुष अच्छी सुगन्धित वस्तुओं को सूंघकर अथवा स्वादिष्ठ रसों को चाखकर बावला हो जाता है उसको राक्षसग्रह का दोष समझना चाहिये ५० और जो मनुष्य गन्धर्वों के शरीर में प्रवेश करने से उन्मत्त होजाता है वह गान्धर्व ग्रह का दोषहै ५१ और जो पुरुष पिशाच के लगने से सिड़ी हो जाता है उसका कारण पैशाचग्रह है ५२ और जिस मनुष्य के शरीर में यक्ष प्रवेश होकर मनुष्य को बावला सा कर देते हैं उसको यक्षग्रह का कारण समझना उचित है ५३ और जिस मनुष्य का चित्त वात, पित्त और कफ के दोष से तथा क्रोध से मोहित हो जाता है और उसको उन्माद होजाता है उसका उपाय शास्त्र की रीति से करना उचित है ५४ और जो मनुष्य घोरस्वरूप को देखकर भय से उन्मत्त होजाता है उसका उपाय सान्त्वन अर्थात् धैर्य देना है ५५ सब ग्रह तीन प्रकार के हैं। कोई भोजन चाहते हैं, कोई क्रीड़ा करना चाहते हैं और कोई को भोग-विलास करने की इच्छा रहती है ५६ ये ग्रह मनुष्य को सत्तरवर्ष तक की आयु तक बाधा करते हैं, उपरान्त बुढ़ापे का ज्वरही ग्रहरूपी होता है ५७ जो मनुष्य जितेन्द्रिय, पवित्र, आस्तिक और श्रद्धावान् होता है उसको ये ग्रह कभी बाधा नहीं करते हैं ५८ और देवभक्त और शिवजी की पूजा करनेवाले मनुष्यों के निकट ये ग्रह कभी नहीं जाते हैं। हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से यह मनुष्यों के ग्रहों की कथा पूरी हुई॥ ५९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२९॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ तीसवां अध्याय।

स्वाहा और स्कन्द का संवाद होना, स्कन्द से दानवों का युद्ध में हार जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब स्कन्द ने उक्तप्रकार से सब माताओं का उपकार किया तब स्वाहा ने उसके पास आकर कहा कि हे स्कन्द! तू मेरा औरस पुत्र है १ मैं चाहती हूं कि तू मुझसे ऐसी प्रीतिकर जैसी औरस पुत्र की माता से प्रीति होती है। यह सुनकर स्कन्द बोला कि तू कैसी प्रीति चाहती है २ स्वाहा बोली कि मैं दक्ष की प्यारी पुत्री हूं, नाम मेरा स्वाहा है, बालापन से मेरा मन अग्नि की ओर लगा हुआ था परंतु अग्नि मुझ कामिनी को अभी तक नहीं जानते हैं। मैं अग्नि के साथ सदैव वास करना चाहती हूं ३। ४ यह सुनकर स्कन्द बोला कि अब से जो कुछ हव्य अथवा कव्य ब्राह्मण लोग अग्नि में होमा करेंगे वह तेरा नाम लेकर अर्थात् स्वाहा कहकर होमेंगे। इस प्रकार से अग्नि सदैव तेरे साथ रहेंगे ५। ६ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! स्कन्द के उक्त प्रकार से कहने पर स्वाहा प्रसन्न होकर अपने पति अग्नि से युक्त हो गई और उसने स्कन्द की पूजा की ७ इसके पीछे ब्रह्माजी ने स्कन्द से कहा कि अब तुम अपने पिता महादेवजी के पास भी हो आवो ८ उन्होंने ही उमा-सहित अग्नि और स्वाहा में प्रवेश होकर संसार के हित के लिये तुमको उत्पन्न किया है ९ महादेवजी ने पहिले उमादेवी की योनि में वीर्य स्थापन किया था उस वीर्य में से कुछ तो इस पर्वत पर गिरपड़ा जिससे मिञ्जिकानाम स्त्री और मिञ्जकनामी पुरुष उत्पन्न हुआ था और कुछ वीर्य लालसमुद्र में, कुछ सूर्य की किरणों पर, कुछ पृथ्वी पर और कुछ वृक्षों पर भी गिरा था। इस प्रकार से वह वीर्य पांच युक्त स्थानों पर गिरा था और उससे नानाप्रकार के गुण उत्पन्न हुए थे १०।१२ वे ही घोररूप और मांसभक्षी गण तुम्हारे पार्षद हैं। यह सुनकर वह पितृवत्सल स्कन्द महादेवजी के पास गया और उसने पार्वती सहित महादेवजी की पूजा की १३ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य किसी व्याधि की शान्ति अथवा धन चाहे, उसको उक्त पांच स्थानों से उत्पन्न हुए गणों की पूजा आकके फूलों से करनी चाहिये १४ और जो मनुष्य बालकों का हित चाहे, उसे महादेवजी से उत्पन्न हुए मिञ्जिका स्त्री और मिञ्जकनाम पुरुषों को नमस्कार करना उचित है १५ और जो वृद्धिका नाम स्त्रियां वृक्षों पर वीर्य गिरने से उत्पन्नहुई थीं उनकी पूजा संतान चाहनेवाले पुरुषों को करना उचित है १६ इसप्रकार से पिशाचों के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

असंख्य गण हैं। अब स्कन्दको पताका और घण्टा मिलनेका वृत्तान्त सुनो १७ ऐरावत हाथी के दो घण्टे थे, नाम उनका वैजयन्त था। इन्द्र ने उनमें से एक घण्टा स्कन्द को और एक विशाख को दिया और उन दोनों के रथों की पताका लालरंग की थीं १८।१९ और देवताओं ने जो खिलौने दिये थे उनसे स्कन्द क्रीड़ा किया करता और उस सुनहले पर्वतपर देवता और पिशाचों के गणों से संवृत और लक्ष्मी से युक्त होकर परम शोभा को प्राप्त था २०। २१ और वह पर्वत भी उस वीर से ऐसा सुशोभित हो गया था मानो अंशुमान् सूर्य मन्दराचल पर्वतपर प्रकाश कर रहा है २२ उस श्वेत पर्वत पर फूले फले हुए संतानक, करवीर, पारिजात, अशोक और कदम्ब आदि अनेक वृक्षों के पृथक् पृथक् वन थे। उनमें अनेक प्रकार के मृग और पक्षी रहते थे २३। २४ और वह देवऋषि और देवताओं के गण के गण जिनके बोलनेका शब्द बादल की गर्जन और तूर्यबाजे की लय के समान होता था, वहां विहार किया करते थे और गन्धर्व बड़ी मधुरवाणी से गाते थे और अप्सराएँ अनेक भाव बताकर नाचती थीं, जितने जीव वहां थे सब प्रसन्न थे। इस प्रकार से उस श्वेतपर्वत पर उस समय इन्द्रसहित सब जगत् रहता था और स्कन्द को देखकर सब प्रसन्न होते थे और कोई किसी प्रकार की ग्लानि नहीं मानता था २५। २७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! स्कन्द का सेनापति के अधिकार पर अभिषेक होजाने पर महादेवजी पार्वतीसहित सूर्यवर्ण रथ में बैठकर भद्रवट की ओर चले। उस रथ में सहस्रसिंह जुते हुए थे २८। २९ जब वह रथ हांका गया तब वे सुन्दर केसरी सिंह सबको डराते और गर्जते हुए रथ को लेकर आकाशमार्ग से चलने लगे। उस समय उस रथ में शिवजी पार्वतीसहित बैठे हुए ऐसे दीखते थे मानो इन्द्र धनुषयुक्त बादल में बिजली सहित सूर्य प्रकाश कर रहा है। उस समय कुबेरजी पुष्पक विमान में बैठकर गुह्यकों को साथ में लिये हुए शिवजी के आगे आगे होलिये। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर देवताओं को साथ में लिये हुए पीछे पीछे चला और अमोघनामी यक्ष जृम्भक, ग्रह और यक्ष राक्षसों को लिए हुए दाहिनी ओर शिवजी के साथ साथ हो लिया। उसकी दाहिनी ओर बहुत से चित्रयोद्धी देवता और अष्टवसु थे। इसी प्रकार से यमराज भी मृत्यु और सब व्याधियों को संग लिये हुए उनके साथ में हो लिये और यमराज के पीछे पीछे तीन फल रखनेवाला

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शिवजी का शूल हो लिया। उसके साथ में जल के ईश्वर वरुण नानाप्रकार के जलजीवों को साथ लिये हुए जा रहे थे और उस विजयशूल के पीछे पीछे शिवजी का पट्टिश चला जाता था ३०।३६ और वह गदा मुसल और शक्ति आदि उत्तम शस्त्रों से युक्त था। उसके पीछे पीछे शिवजी का छत्र था जिसकी प्रभा बड़ी उत्तम थी ४० उसके पीछे कमण्डलु भी, महाऋषियों को साथ में लिये हुए था और कमण्डलु की दाहिनी ओर दण्ड जाता था। इन सबके पीछे शिवजी का उत्तम रथ था। उनके साथ में भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषि थे और अपने तेज से सब देवताओं को प्रसन्न करते हुए चले जाते थे और ऋषि, देवता, गन्धर्व, सर्प, नदी, ह्रद, समुद्र, अप्सरा, नक्षत्र, ग्रह, देवताओं के कुमार और अनेक सुन्दर स्त्रियां उनके पीछे पीछे फूलों की वर्षा करती हुई जाती थीं ४१।४५ और पर्जन्यदेवता भी शिवजी को नमस्कार करके उनके साथ साथ हो लिये। उस समय चन्द्रमा ने पाण्डुर वर्ण छत्र शिवजी के ऊपर लगा लिया, वायु अग्नि चमर ढुराने लगे, इन्द्र पीछे से राजऋषियों सहित उनकी स्तुति करने लगा और गौरी, विद्या, गान्धारी, केशिनी, मित्रा और सावित्री आदि सब माताएँ पार्वतीजी के पीछे पीछे जाती थीं, इन्द्रादिक देवता सेना के मुखपर रहकर शिवजी की आज्ञा का पालन करते थे और राक्षसग्रह पताका लिये हुए सेना के आगे आगे जाते थे ४६।५० और उस सेना के साथ में शिवजी का सखा पिङ्गलनामी यक्षों का राजा भी था जो सदैव श्मशान में रहता है। इस प्रकार से शिवजी जिनको ईश, रुद्र और पितामह भी कहते हैं और सब संसारी जीव अनेक भावों से पूजते हैं, संपूर्ण देवताओं की सेना को लिये हुए जा रहे थे और उनके पीछे पीछे स्कन्दजी देवसेनासहित थे। उस समय शिवजी ने स्कन्द से कहा कि तुम आलस्य छोड़कर देवताओं की सातवें समुदाय की रक्षा करना। स्कन्द बोला बहुत श्रेष्ठ, ऐसा ही करूंगा और जो कुछ आज्ञा हो सो भी कहिये विलम्ब मत कीजिये ५१।५६ शिवजी बोले कि हे पुत्र! तुझको मुझे सबकामोंमें देखना उचितहै मेरेदर्शन और मेरी भक्ति से तेरा कल्याण होगा ५७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! शिवजीने उक्तप्रकार से कहकर स्कन्द को बिदा कर दिया। उसके चले जाने के पीछे बहुत से उत्पात होने लगे ५८ आकाश नक्षत्रोंसहित अकस्मात् प्रज्वलित होगया, पृथ्वी बजने और हिलनेलगी, जगत् का स्वरूप अन्धकार के सदृश होगया। इन उत्पातों को देखकर शिवजी, पार्वती

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और सब देव, दानव और महाऋषि मोहित और भयभीत हो गये । उसी समय उन सबोंने अपने सम्मुख पहाड़ और बादलों के समान बड़ी भारी असंख्य सेना उमड़ती हुई आती देखा । उस सेना के राक्षस अनेक प्रकार के शस्त्र लिये हुए थे और गर्जते हुए सम्मुख चले आ रहे थे ५६ । ६२ थोड़ी देर में वह सेना निकट आगई और उसके राक्षसों ने बाण, पर्वत, शतघ्नी, खड्ग, परिघ और गदा आदि अनेक शस्त्रों की वर्षा शिवजी और देवताओं के ऊपर की। उससे देवताओं की सेना के घोड़े, हाथी, आयुध और रथ सब नष्ट होगये और वह सेना दानवों से पीड़ित होकर विमुख होगई और भागने लगी । उस समय देवताओं को कोई सहायक न दीखा और वे दैत्यों के शस्त्रों से मर मरकर इस प्रकार से गिर गये जैसे अग्नि लग जाने से सब वन नष्ट हो जाता है । उस समय इन्द्र ने देवताओं को धैर्य दिया और कहा कि तुम शूरवीर हो, भय मत करो और अपने-अपने हथियार ले लो ६३ । ६६ और अपनी अपनी शक्ति के अनुसार पराक्रम करो और इन दुर्वृत्त घोर दर्शनवाले दानवों को जीतलो, तुमको कौन व्यथा दे सकता है ७० तुम हमारे साथ दैत्यों के सम्मुख चलो । मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! देवता इन्द्र की उक्त बात को सुनकर इन्द्र का आश्रय लेकर दानवों से युद्ध करने लगे और मरुत्, साध्यगण और अष्ट वसुओं को साथ लेकर दैत्यों के सम्मुख गये और अस्त्र, शस्त्र और बाण छोड़ने लगे । उस समय देवताओं के बाणों ने दैत्यों के शरीरों को छेद छेदकर चलनी कर दिया और वे बाण उनका रुधिर पी पीकर पृथ्वी पर सर्पों के समान गिरने लगे । तब बहुत से दैत्यों के उक्त प्रकार से मारे जाने और रणभूमि पर गिरने पर दैत्यों की सेना भयभीत होकर विमुख हो गई और देवता प्रसन्न होकर हथियार उठा उठाकर शब्द करने और बाजे बजाने लगे । इस प्रकार से उन दोनों का बड़ा दारुण युद्ध हुआ और परस्पर देवता और दैत्यों के मारे जाने से रुधिर और मांस की कीचड़ हो गई। कभी देवता प्रबल होकर दैत्यों को मारते थे और कभी दानव उग्ररूप होकर देवताओं के साथ अनीति करते थे और दोनों ओर योद्धा लोग भेरी आदि बाजों को बजाते और सिंहनाद करते थे । इसके पीछे महिष नाम दानव हाथ में पर्वत लिये हुए दैत्यों की सेना से आवृत वहां आया । उसको देखकर देवता भयभीत होकर भागने लगे परंतु उस दैत्य ने उस पर्वत को देवताओं के ऊपर फेंक दिया, उससे दशसहस्र देवता दबकर पृथ्वी पर गिर पड़े ७१ ।८४

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तदनन्तर वह महिष दैत्य दानवों को साथ लिये हुए रणभूमि में इस प्रकार से देवताओं को डराने लगा जैसे सिंह किसी छोटे से मृग को भयभीत करे ८५ उसको देखकर इन्द्रादिक सब देवता अपने २ शस्त्र और अपनी २ ध्वजा छोड़ छोड़कर भागे ८६ तब वह दैत्य शीघ्रता से शिवजी के रथ के समीप चला गया और उसने रथ का कूबर पकड़ लिया ८७ उस समय पृथ्वी और आकाश में से भय का शब्द होने लगा और सब महाऋषि मोहित हो गये ८८ और दैत्य अपनी विजय जानकर प्रसन्नता से गर्जने लगे ८९ तब शिवजी ने उस दैत्य पर प्रहार किया और उसकी मृत्यु स्कन्द को याद किया। उस समय महिष शिवजी के रथ को पकड़े हुए देवताओं को डराने और दैत्यों को प्रसन्न करने के लिये गर्जने लगा। उसी समय वहां स्कन्दजी लाल वस्त्र, लाल माला, लाल भूषण और सुनहरी कवच धारण किये हुए सूर्य के तुल्य रथ में बैठकर आ पहुँचे। उनका मुखारविन्द क्रोध की ज्वाला से सूर्य के सदृश प्रकाशमान था, उनको देखते ही दैत्यों की सब सेना अकस्मात् भागी ९०।९४ तब स्कन्दजी ने अपनी प्रज्वलित शक्ति लेकर महिष दैत्य के मारी उससे उस दैत्य का शिर धड़ से अलग हो गया और वह दैत्य निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ९५।९६ उसके शिर के गिरने से सोलह योजन तक राह न रही परंतु अब उत्तर कुरुदेशी मनुष्य उस मार्ग से सुखपूर्वक जा सकते हैं। स्कन्दजी की शक्ति उन दैत्यों को मारकर फिर स्कन्दजी के हाथ में ही आजाती थी। इस प्रकार से स्कन्दजी ने सहस्रों दैत्यों को क्षणभर में मारकर गिरा दिया। बहुत से दानवों को महादेवजी ने बाणों से मार डाला और शेष बचे हुए दैत्यों को स्कन्दजी के भयानक पार्षदों ने मार मारकर खा लिया और प्रसन्नता से उनका रुधिर पी पीकर रणभूमि पर दैत्यों का नाम न रहने दिया। इस प्रकार से स्कन्दजी ने क्षणभर में सब दैत्यों को ऐसे नाश कर दिया जैसे सूर्य अन्धकार को, अग्नि वृक्षों को और वायु बादलों को विनष्ट कर देता है ९७।२ उस समय स्कन्दजी शिवजी को दण्डवत् करके, देवताओं से पूजित होकर, इस प्रकार से शोभित दीखते थे मानो सूर्य अपनी किरणों को फैलाये हुए प्रकाश कर रहा है ३ उसी काल में इन्द्र ने शिवजी के समीप स्कन्दजी से कहा कि हे महाबाहो! आज तेरे हाथ से यह महिषासुर दैत्य जो ब्रह्माजी से वरदान पाकर देवताओं को तृणवत् समझता था और जिससे हम सब महादुःखी थे मारा गया और इसके तुल्य पराक्रमी और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भी सौ दैत्य तेरे हाथ से बध हुए और तेरे पार्षदों ने सैकड़ों दैत्यों के समूहों को भक्षण कर लिया, तू भी उमापतिजी के समान रण में अजेय है। यह तेरा पहिला कर्म संसार में विख्यात होगा ४। ८ और तीनों लोकों में तेरी कीर्ति बनी रहेगी और सब देवता तेरी आज्ञा में रहेंगे ६ इन्द्र इस प्रकार से कहकर शिवजी से आज्ञा लेकर देवताओं सहित अपने स्थान को लौट गया १० और शिवजी भद्रवट को चले गये और चलते समय सब देवताओं से कह गये कि स्कन्द को मेरे सदृश ही समझना ११ महाऋषियों ने उस समय स्कन्दजी की पूजा की, इसप्रकार से उस अग्निनन्दन स्कन्द ने एक ही दिन में त्रिलोकी को जीत लिया १२ जो ब्राह्मण स्कन्दजी की इस कथा को पाठ करेगा वह इस लोक में आनन्दपूर्वक रहकर अन्त में स्कन्दजी के लोक में जायगा ॥ ११३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३० ॥

दोसौ इकतीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर से स्कन्दजी के नाम कहना और स्कन्दजी की स्तुति करना।

उक्त कथा को सुनकर युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से पूछा कि हे भगवन्, महाराज! मैं महात्मा स्कन्दजी के नाम सुना चाहता हूँ जो तीनों लोकों में विख्यात हैं १ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! महातपस्वी मार्कण्डेयजी उक्त प्रश्न को सुनकर स्कन्दजी के नामों को इस प्रकार से कहने लगे २ ॥

आग्नेयश्चैव स्कन्दश्च दीप्तकीर्तिरनामयः। मयूरकेतुर्धर्मात्मा भूतेशो महिषार्दनः ॥ ३ ॥
कामजित् कामदः कान्तः सत्यवाग्भुवनेश्वरः। शिशुः शीघ्रः शुचिश्चण्डो दीप्तवर्णः शुभाननः॥ ४ ॥
अमोघस्त्वनघो रौद्रः प्रियश्चन्द्राननस्तथा। दीप्तशक्तिः प्रशान्तात्मा भद्रकृत् कूटमोहनः ॥५॥
षष्ठीप्रियश्च धर्मात्मा पवित्रो मातृवत्सलः। कन्याभर्त्ता विभक्तश्च स्वाहेयो रेवतीसुतः ॥६॥
प्रभुर्नेता विशाखश्च नैगमेयः सुदुश्चरः। सुव्रतो ललितश्चैव बालक्रीडनकप्रियः ॥ ७ ॥
खचारी ब्रह्मचारी च शूरः शरवणोद्भवः। विश्वामित्रप्रियश्चैव देवसेनाप्रियस्तथा ॥ ८ ॥
वासुदेवप्रियश्चैव प्रियः प्रियकृदेव तु। नामान्येतानि दिव्यानि कार्त्तिकेयस्य यः पठेत् ॥
स्वर्गं कीर्तिं धनञ्चैव स लभेन्नात्र संशयः ॥ ९ ॥

इन नामों को पाठ करनेवाले मनुष्य को स्वर्ग, कीर्ति और धन अवश्य मिलता है। इसके उपरान्त मार्कण्डेयजी बोले कि अब मैं अपनी शक्ति के अनुसार स्कन्दजी की स्तुति करता हूँ तुम भी उसको सुनो। हे स्कन्द! तुम ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों में साधु और ब्रह्मज अर्थात् वेदोक्त गर्भाधान आदि कर्मों से उत्पन्न होनेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मवित् अर्थात् वेदार्थ के जाननेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मेश अर्थात् ब्रह्मकर्म में निष्ठावान् हो, तुम्हीं ब्रह्मवतांवरिष्ठ अर्थात् ज्ञानियोंमें

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

श्रेष्ठ हो, तुम्हीं ब्रह्मप्रिय अर्थात् कर्म-उपासना में तत्पर हो, तुम्हीं ब्राह्मणव्रती अर्थात् ब्राह्मणों का व्रत रखनेवाले हो, तुम्हीं ब्रह्मज्ञ अर्थात् शुद्ध ब्रह्म के जाननेवाले हो, तुम्हीं ब्राह्मणों के नेता अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्त करानेवाले हो १० । ११ तुम्हीं स्वाहा हो, तुम्हीं स्वधा हो, तुम्हीं पवित्र हो, मन्त्रों से तुम्हारी ही स्तुति की जाती है, छह जिह्वा भी तुम्हारे ही हैं, तुम्हीं वर्ष हो, तुम्हीं छह ऋतु हो, दोनों पक्ष और सब दिशाएँ भी तुम्हाराही स्वरूप हैं १२ तुम्हारे नेत्र और मुख कमलके सदृश हैं, तुम्हारे ही सहस्रभुजा और सहस्रमुख हैं, लोकपाल भी तुम्हीं हो, तुम्हीं परम हवि हो, तुम्हीं देवता और असुरों को उत्पन्न करनेवाले हो १३ तुम्हीं सेना के अधिपति हो, तुम्हीं प्रचण्ड हो, तुम्हीं प्रभु हो, तुम्हीं विभु हो, तुम्हीं शत्रु को जीतनेवाले हो, तुम्हारे सहस्रों स्वरूप हैं, पृथ्वी भी तुम्हीं हो और सहस्र तुष्टि और सहस्रों रूप धारण करके संसारी पदार्थों को भोगनेवाले भी तुम्हीं हो १४ तुम्हारे सहस्रों स्वरूप हैं और सहस्र शिर हैं, सहस्रों ही तुम्हारे पैर हैं, तुम्हीं शक्तिधारी और गङ्गा, स्वाहा, पृथ्वी और कृत्तिका के पुत्र हो १५ तुम्हीं षडानन हो और अपनी इच्छा के अनुसार नानाप्रकारके रूप धारण कर सकते हो, तुम्हीं कुक्कुट के साथ क्रीड़ा करते हो, तुम्हीं दक्ष हो, तुम्हीं चन्द्रमा हो, तुम्हीं मरुत् हो तुम्हीं धर्म हो, हिमालय और इन्द्र भी तुम्हीं हो १६ तुम सनातन पुरुषों के भी सनातन हो, प्रभुओं के प्रभु हो, उग्र धनुर्द्धारी हो, मोक्षकर्त्ता, दैत्यों के प्राणहर्त्ता और देवताओं के श्रेष्ठ शत्रुओं को जीतनेवाले हो १७ संसार में जिसको सूक्ष्मरूपी और परमतप कहते हैं वह भी तुम्हीं हो, तुम्हीं सगुण और निर्गुण ब्रह्म के जाननेवाले हो, तुम्हीं सगुण और निर्गुण ब्रह्म हो, चारों पदार्थों के देनेवाले भी तुम्हीं हो, यह जगत् तुम्हारे ही तेज से व्याप्त हो रहा है और तुम्हीं लोकों के नाथ हो । हे प्रभो ! हे द्वादशनेत्र ! हे द्वादशभुजा रखनेवाले ! मैंने तुम्हारी यह स्तुति अपनी शक्ति के अनुसार की है, इससे आगे आपके भेद को जानने की मेरी शक्ति नहीं है १८ । १९ जो मनुष्य स्कन्दजी के जन्म की कथा को सावधानी से पढ़ेगा अथवा ब्राह्मणों को सुनावेगा या आप ब्राह्मणों से सुनेगा वह इस लोक में धन, आयु, यश, शत्रु से जय, पुष्टि, तुष्टि और पुत्रादिकों को पावेगा और अन्त समय में स्कन्दजी के लोक को जावेगा ॥ २० । २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ बत्तीसवाँ अध्याय।

पति के वश करने का प्रश्न और पति की सेवा का वृत्तान्त कहना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जहां पर महात्मा पाण्डव और वेदपाठी ब्राह्मण बैठे हुए उक्त संवाद सुन रहे थे वहां से सत्यभामा और द्रौपदी उठकर एकान्त में चली गईं और बहुत दिनों के पीछे मिलने के कारण से एक दूसरी से मधुरवाणी से बोलती और हँसती हुई बड़ी प्रसन्नता से पास पास बैठ गईं १। २ और मधुवंशी और कौरवों की कथा परस्पर कहने लगीं। इसके पीछे श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा ने जो सत्राजित की बेटी थी द्रौपदी से कहा कि तुम इन पाण्डवों के पास किस प्रकार से रहती हो ३। ४ ये पाण्डव जवान और बड़े वीर और दृढ़ शरीर हैं, मूर्ति इनकी कामदेव की-सी है परन्तु ये तुम्हारे वश में रहकर कोप नहीं करते हैं किन्तु तेरे चन्द्रमा से मुख को चकोर की भाँति निरन्तर देखा करते हैं इससे मैं जानना चाहती हूँ कि तुम कौन से व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, औषधि, विद्या, जप, होम अथवा अञ्जन का साधन करती हो जिससे ये वीर तेरे वशीभूत हो रहे हैं ५। ७ मैं भी श्रीकृष्णजी को अपने वश में करने के लिये उस सौभाग्य के बढ़ानेवाले यत्न को करना चाहती हूँ ८ इस प्रकार से कहकर यशस्विनी सत्यभामा चुप हो रही तब बड़भागिनी पतिव्रता द्रौपदी बोली ९ कि हे सत्यभामे! कृष्ण की प्यारी पटरानी होकर तुमको ऐसी नीच स्त्रियों की सी बातें पूछना उचित नहीं है, ये बातें खोटी स्त्रियां ही करती हैं उसका उत्तर मैं तुमको क्या दूं १०। ११ जिस समय पति को यह जान पड़ा कि यह स्त्री हमारे लिये मन्त्र से उपाय कर रही है उसी समय से वह उस स्त्री से अप्रसन्न हो जाता है और उसके प्रसन्न न रहने से स्त्री के चित्त को उसकी ओर से ऐसा भय रहता है जैसा घर में रहनेवाले सर्प से डर बना रहता है १२ भय के होने पर चित्त स्वस्थ नहीं रहता और चित्त के स्वस्थ न रहने से सुख नहीं हो सकता है इससे तुम निश्चय जानो कि पति को स्त्री मन्त्र आदि उपायों से कभी अपने वश में नहीं कर सकती है १३ बहुतसी स्त्रियां बड़ी पापिनी और दुष्ट होती हैं, वे पति को मार डालने की इच्छा से विष दे देती हैं और ऐसी औषधियां और चूर्ण आदि देती हैं जिनको खाने अथवा लगाने से ही पति के शरीर में रोग उत्पन्न होजाते हैं और उन रोगों से वे मर जाते हैं। बहुधा पापिनी स्त्रियों ने अपने पति को अन्धे, बहिरे, नपुंसक, जड़,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कोढ़ी, पतित, रोगी और जलोदर के रोगी कर डाले हैं १४। १६ और उनको अनेक दूषण लगाये हैं परन्तु स्त्री को अपने पति का अप्रिय करना किसी अवस्था में उचित नहीं है १७ अब जो बर्त्ताव मैं पाण्डवों के साथ में करती हूं उसको सुनो। हे सत्यभामे! मैं काम, क्रोध और अहंकार को छोड़-कर सावधानी से पाण्डवों की सेवा करती हूं और अपनी सवति के होने से बुरा न मानकर सेवा में तत्पर रहती हूं १८। १६ और ईर्ष्या और अभिमान को त्यागकर चित्त लगाकर उनकी सेवा करने के लिये तैयार रहती हूं और वही काम करती हूं जिसको वे चाहते हैं २० खोटा वचन कभी नहीं बोलती हूं, न खोटी दृष्टि से देखती हूं और खोटी संगति में भी नहीं बैठती हूं किंतु इन महारथी और उग्र पराक्रमी पाण्डवों की सेवा सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के तुल्य जानकर करती हूं और सदा अपने हृदय के भाव से मर्यादापूर्वक वचन बोलती हूं २१। २२ और सिवाय इनके किसी दूसरे देवता, गन्धर्व अथवा किसी युवा, धनवान्, सुन्दर और अलंकृत मनुष्य को पुरुष नहीं जानती हूं २३ और पाण्डवों को स्नान, भोजन और शयन कराकर सेवकों को भोजन कराती हूं और सबके पीछे मैं भोजन करती हूं और सोती हूं २४ जब मेरे पति किसी ग्राम से अथवा कहीं बाहर से घर में आते हैं तब मैं उनको जल और आसन देकर प्रसन्न करती हूं २५ अपने घर को शुद्ध रखती हूं और कूड़ा करकट नहीं रहने देती हूं और पति के लिये सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन समय पर बनाकर भोजन कराती हूं २६ अपने मुख से तिरस्कार के योग्य वचन कभी नहीं निकालती हूं, दुष्ट स्त्रियों के पास नहीं बैठती हूं और आलस्य छोड़कर नित्य पति की आज्ञा के अनुसार चलती हूं २७ और विना हँसी के कभी नहीं हँसती हूं, घर के द्वार पर भी सदैव खड़ी नहीं रहती हूं और न घर के आरामों में देर तक रहती हूं २८ बहुत हँसना और अति क्रोध करना मैंने सदैव से छोड़ रक्खा है, केवल एक पति की सेवा करने ही में निरत रहती हूं २६ और मैं कभी किसी अवस्था में यह नहीं चाहती हूं कि पति से अलग होकर रहूं और जब कभी पति कुटुम्ब के किसी काम के लिये परदेश भी जाता है ३० तब मैं गन्ध लगाना और फूलों के हार पहिरना छोड़कर व्रत किया करती हूं और जिस पदार्थ को पति खाता या पीता नहीं है उसको मैं भी छोड़ देती हूं ३१ और अपने को अलंकृत करके और पति के प्रियहित में अपना चित्त लगाकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जितेन्द्रिय होकर वही काम करती हूं जिसके करने की पति की आज्ञा होती है ३२ पहले समय में मेरी सासु ने मुझसे बलि, श्राद्ध पर्वों में स्थालीपाक, मान्यों का मान करना और कुटुम्ब-धर्मों को करने की शिक्षा की थी, मैं उन सब धर्मों को आलस्य छोड़कर करती हूं ३३। ३४ और अपनी आत्मा से नीति और नियममें आश्रित रहकर इन सत्पुरुष, सत्यशील, सत्यधर्म के पालन करनेवाले और सर्प के सदृश क्रोध करनेवाले पतियों की सेवा करती हूं। स्त्री का आश्रय केवल पति है, उसकी सेवा करना सनातन धर्म है और उसी धर्मपर मैं बर्त्ताव करती हूं ३५। ३६ स्त्री का देवता पति ही है, वही स्त्री की गति है, ऐसे पति की कौन अभागी स्त्री अवज्ञा करेगी। हे सत्यभामे! मैं तो अपने पतियों की किसी बात का भी उल्लंघन नहीं करती हूं, न उनसे पहले भोजन करती हूं और न उनसे अधिक अपना शृंगार करती हूं, ३७ और अपनी सासु कुन्ती की कभी निन्दा नहीं करती हूं, इस कारण से मेरे पति मेरे वशीभूत रहते हैं और जो मेरी सत्यवादिनी आर्या कुन्ती सासु है उसकी भी सेवा मैं स्वयं सब प्रकारसे करतीहूं, उसकी कभी निन्दा नहीं करती हूं और उसको विना भोजन कराये भोजन नहीं करती हूं, बिना पिलाये कुछ आप नहीं पीती हूं, और उसको विना पहिराये वस्त्र भी नहीं पहिरती हूं ३८। ४१ आगे राजा युधिष्ठिर के यहां आठ सहस्र ब्राह्मण सुनहरे पात्रों में नित्य भोजन किया करते थे ४२ और अट्ठासी सहस्र स्नातक और गृहस्थी ब्राह्मणों का और भी पालन होता था जिन प्रत्येक की सेवा के लिये तीस तीस दासी नियत कर दी गई थीं और दशसहस्र ऊर्ध्वरेता संन्यासी भी रहते थे जिनको सुनहरे पात्रों से भोजन परोसा जाता था। मैं उन सबको वैश्वदैविक कर्म हो जाने के पीछे नित्य सबसे पहिले अन्न, वस्त्र, पान और जो कुछ और देने के योग्य पदार्थ होता था देती थी ४३। ४५ इसके सिवाय महात्मा युधिष्ठिर के यहां एकलक्ष दासी परमसुन्दरी, नाचने गाने में निपुण, उत्तम उत्तम वस्त्र और मणिजटित कम्बुकेयूर आदि गहने पहिरे हुए रहतीथीं, मैं अकेली उन सबके नाम, स्वरूप, भोजन, वस्त्र और करने न करने के कृत्यों को जाने रहती थी ४६। ४८ वे दासियां दिन रात हाथ में पात्र लिये हुए अतिथियों को भोजन कराया करती थीं ४९ और जो एकलाख घोड़े और एकलाख हाथी युधिष्ठिर के पीछे चला करते थे उनकी संख्या और खर्च आदि का हिसाब भी मैं ही रखती थी और गोपाल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से लेकर जितने महलों के सेवक थे उन सबके किये और विना किये कामों को जाने रहती थी ५०।५२ और राज्य का जो कुछ लाभ और व्यय होता था उसको भी मैं ही समझती थी ५३ इसप्रकार से पाण्डवों ने सब कुटुम्ब का भार मेरेही ऊपर रख दिया था परन्तु मैं सब सुखों को त्यागकर उस बोझे को दिनरात लिये रहती थी ५४।५५ और अपने पतियों के समुद्ररूपी भण्डारको केवल मैं ही जानती थी ५६ बहुधा मैं भूखी और प्यासी रहती थी और पाण्डवों की सेवा करती थी इसप्रकार से मुझको दिन और रात एकसे ही थे। सो हे सत्यभामे! पति के मन को पहचानकर काम करना और खोटी स्त्रियों के आचरणों को न करना, न उनके करने की इच्छा करना, इनके सिवाय मुझको और वशीकरण नहीं आता है। पति को वशीभूत करने का यही बड़ा यत्न है ५७।५८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सत्यभामा द्रौपदी की उक्त धर्मयुक्त बातों को सुनकर सत्कारपूर्वक द्रौपदी से कहने लगी ६० कि द्रौपदि! मैं तुमसे प्रार्थना करके कहती हूं कि तुम मेरा अपराध क्षमा करो और मेरे प्रश्न को सखियों का हास्य समझो, मैंने केवल हँसी से ही यह बात पूछी थी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥

दोसौ तैंतीसवाँ अध्याय।

द्रौपदी का सत्यभामा से पति को वश में करने का उपाय बतलाना।

द्रौपदी बोली हे सखि! अब मैं पति के चित्त को अपने हाथ में ले लेने का उपाय कहती हूं, जो तू भी उस उपाय को करेगी तो निःसंदेह कृष्ण को अपनी सौतों से छीन लेगी अर्थात् कृष्ण तेरेही वश में रहेंगे १ हे सखि! सब देवताओं में पति के समान दूसरा देवता नहीं है, उसको प्रसन्न करने तथा उसकी कृपा से सब मनोकामनाएँ स्त्री की पूरी होती हैं और जो वह पति अप्रसन्न रहे तो निस्संदेह स्त्री का नाश हो जाता है २ संतान का होना, नानाप्रकार के भोग भोगना, अच्छी सेज पर सोना, अच्छे अच्छे आसनों पर बैठना, उत्तम उत्तम वस्त्र पहिरना, सुन्दर सुन्दर माला गले में डाले रहना, सुगन्धित गन्ध अंग में लगाना और संसार में कीर्त्ति और अन्त समय पर स्वर्गलोक मिलना केवल पति की सेवा ही से स्त्री को प्राप्त हो सकते हैं ३ हे सखि! सुख से सुख मिलना बहुत कठिन है; हां, दुःख से सुख प्राप्त हो सकता है इससे तू प्रेमपूर्वक अपनी देह को क्लेश देकर श्रीकृष्णजी की सेवा कर ४ और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

स्वादिष्ठ भोजन, सुन्दर माला, सुगन्धित गन्ध और चतुराई के और और कामों से उनको प्रसन्न कर जिससे उनको यह निश्चय हो जाय कि यह मेरे सिवाय दूसरे को नहीं चाहती है। ऐसा निश्चय करने पर वे सिवाय तेरे, तेरी दूसरी सौति के पास न जायँगे ५ जिससमय तुझको श्रीकृष्ण के घर में आने का शब्द सुनाई दे उसी समय तू उठकर खड़ी हो जाया कर और जब वे भीतर घर के आजायँ तब शीघ्रता से उनको पाद्य और आसन देकर उनकी पूजा किया कर ६ हे सत्यभामे! जब कभी वे दासी को किसी काम की आज्ञा दें तब भी तू उठकर आपही उस काम को कर दिया कर, ऐसा करने से श्रीकृष्ण को यह प्रतीत हो जायगा कि यह मुझको मन से चाहती है ७ और श्रीकृष्ण तेरे पास बैठकर जो कुछ बात कहा करें उसको प्रकट कभी न किया कर, चाहे वह प्रकट ही करने के योग्य हो और जो तेरी कोई सौत श्रीकृष्ण से तेरी कोई भलाई अथवा बुराई कह दे तो तू उसपर कुछ ध्यान न किया कर ८ और जो मनुष्य तेरे पति के मित्र अथवा प्रिय और हितकारी हों उनको किसी न किसी उपायसे भोजन करादियाकर और जो तेरे पतिके शत्रु अथवा अहितकारी हों उनसे कभी बोला भी मत करे ९ और मद प्रमाद को छोड़कर चित्त को रोककर, मौन रहाकर और अकेले में और पुरुष की तो क्या गणना है प्रद्युम्न और साम्ब आदि कुमारों के साथभी कभी मत बैठाकर १० और क्रूर, बहुत भोजन करनेवाली, चोर, दुष्ट और चपल स्त्रियों की संगति को त्यागकर ऐसी स्त्रियों के पास बैठाकर जो कुलीन, पापरहित और सती होवें ११ हे सत्यभामे! यह व्रत यश का दाता, सौभाग्य का प्रकाशकर्त्ता, स्वर्ग का देनेवाला और शत्रुओं का नाश करनेवाला है। तू भी बहुमूल्यवाले आभरण और गन्ध आदि धारण करके इस व्रत को करके अपने पति की सेवा कर॥ १२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३३॥

दोसौ चौंतीसवाँ अध्याय।

द्रौपदी और सत्यभामा का परस्पर संवाद व श्रीकृष्णजी का द्वारका-गमन।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्णजी पाण्डवों सहित मार्कण्डेयजी की कही हुई कथाओं को सुनकर, सब महात्मा ब्राह्मण और पाण्डवों से बातचीत करके, बिदा होकर जब रथपर सवार होने लगे तब उन्होंने सत्यभामा को बुलाया १।२ उस समय सत्यभामा द्रौपदी से प्रीतिपूर्वक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मिलकर अपने हृदय के प्रियभाव से द्रौपदी से बोली ३ कि हे द्रौपदि ! तू चिंता मतकर और न अपने चित्त में किसी प्रकार का दुःख मान। थोड़े ही दिनों में तेरे देवतातुल्य पति पृथ्वी को अपने पराक्रम से जीत लेंगे और तू उनके साथ आनन्द से सुन्दर भोग भोगेगी ४ हे श्यामलोचने ! तेरे समान शील-वती और उत्तम लक्षणों से युक्त स्त्रियां बहुत दिनों तक क्लेश नहीं पाती हैं ५ मैंने सुना है कि तू अपने पतियों के साथ इस पृथ्वी को निष्कण्टक होकर भोगेगी ६ हे द्रौपदि ! तू देखेगी कि युधिष्ठिर दुर्योधन को मारकर और वैर का बदला लेकर इस पृथ्वी को फिर प्राप्त करेगा ७ और जो कौरवकुल की स्त्रियां घमण्ड से तुझे वनवासिनी जानकर हँसी थीं उनको तू शीघ्र ही नष्टसंकल्प देखेगी ८ हे द्रौपदि ! जैसा जिसने तेरा अप्रिय किया है वे सब मरकर यमलोक को जायँगे और प्रतिबिन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन आदि तेरे पांचों पुत्र कुशल हैं, सबने अस्त्रविद्या अच्छी तरह सीखली है और सब अभि-मन्युके समान प्रसन्न हैं और सुभद्रा उन पर तेरे ही समान प्रीति करती है६।१२और तेरे स्नेह में तेरे बालकों को देख देखकर ज्वरहीन रहती है और उनके दुःख से दुःखी और सुखसे सुखी अपने को समझती है १३ और प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी भी उनको अपने मन से चाहती है और श्रीकृष्णजी भी उनपर भानु आदि पुत्रों से विशेष हित रखते हैं १४ और मेरे श्वसुर सदा उनके भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध रखते हैं और बलदेवजी से आदि लेकर सब वृष्णि और अन्धक-वंशी क्षत्री उनपर प्रीति रखते हैं १५ हे भामिनि ! सबका स्नेह तेरे पुत्रों से प्रद्युम्न के समान है। इस प्रकार से सत्यभामा द्रौपदी से प्रीतिपूर्वक बातचीत कर, उसकी परिक्रमा कर, श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रथपर सवार हो गई और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डवों से मिलकर और द्रौपदी को धैर्य देकर, शीघ्रगामी रथ के घोड़ों को हांककर अपने नगर की ओर चल दिये ॥ १६ । १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥

दोसौ पैंतीसवाँ अध्याय।

ब्राह्मण द्वारा पाण्डवों का वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र का दुःखी होना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महा-राज ! पाण्डव जब वन की गरमी, सरदी और वायु को सहते हुए काम्यक-वन में उस सरोवर के किनारे आकर टिके तब उन्होंने क्या किया १. वैशंपा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यनजी बोले कि पाण्डव मार्कण्डेय आदि सब महात्माओं को सरोवर के तटसे बिदा करके जब उस रमणीक वन,पर्वत और नदियों के तट के स्थानों में विहार करने लगे उस समय में उनके पास अनेक पुण्यात्मा और वेदपाठी ऋषि आये। पाण्डवों ने उन सबका यथायोग्य आदर सत्कार किया २। ३ उनमें से एक ब्राह्मण जो कथा कहने में बड़ा निपुण था, देशाटन करता हुआ कौरवों के पास पहुँचा और राजा धृतराष्ट्र से भी मिला। राजा ने उसका सत्कार करके उसे आसन पर बैठाया। उस समय उस ब्राह्मण ने राजा धृतराष्ट्र से पाण्डव और द्रौपदी के वन में दुःखी रहने और गरमी, सरदी और वायु से पीड़ित होनेका सब वृत्तान्त कहा ४। ६ उसको सुनकर राजा दयालु होकर दुःखी हुआ और यह सुनकर कि वे वीर उस वन में दुःखरूपी नदी में भी पड़े हुए प्रसन्न रहते हैं शोक में मग्न होकर श्वास लेने लगा परंतु फिर अपने चित्त को किसी प्रकार से स्वस्थ करके और उन वीरों के दुःख का कारण अपने को समझकर कहने लगा ७। ८ कि न जाने मेरा पवित्र और सत्यवादी ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिर जो सदैव श्रेष्ठ शय्या पर सोता था अब पृथ्वीपर कैसे सोता होगा? देखो, जब वह यहां था तब उसको मागध और सूतों के समूह जगाया करते थे, अब वह पिछली रात्रि में पक्षियों के शब्द को सुनकर जगता होगा ६। १० और भीमसेन वन की धूप और वायु से पीड़ित होकर द्रौपदी के सामने भूमि पर कैसे सोता होगा ११ मैं जानता हूं कि सुकुमार अर्जुन युधिष्ठिर का आज्ञा-नुसारी है, वह दुःखी होकर क्रोध के कारण से रात्रि को सोता नहीं होगा १२ और अपने भाइयों सहित द्रौपदी को दुःखी देखकर उसे रोष के कारण कभी निद्रा न आती होगी किन्तु सर्प के समान श्वास लेता होगा १३ नकुल और सहदेव भी जो सुख के योग्य हैं और अश्विनीकुमारों के सदृश स्वरूप-वान् हैं, शान्त न होंगे परंतु धर्म और सत्यपर स्थित होने के कारण चुपके होंगे १४ और वायुपुत्र भीमसेन भी जो वायु के तुल्य पराक्रमी है, अपने बड़े भाई के कारण धर्मरूपी पाश में बँधकर ऊपर को श्वास ले लेकर क्रोध को सहता होगा १५ मैं जानता हूं कि वह रण में सबसे अधिक योद्धा है परंतु अब धर्म के कारण अपने बल को रोककर मेरे पुत्रों को मारने की इच्छा से समय आनेकी बाट देखता होगा १६ और युधिष्ठिर के छल से जीते जाने पर दुःशा-सन ने जो जो कुवाक्य कहे थे वह उसके चित्त में अवश्य खटकते होंगे और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसके शरीर को इस प्रकार से जला रहे होंगे जैसे सूखे हुए वन को अग्नि भस्म करता है १७ हां, युधिष्ठिर की इच्छा पाप करने की कभी नहीं रहती है और अर्जुन भी तदनुगामी है परंतु वनवास के कारण भीमसेन का क्रोध तो अवश्य इस प्रकार होगा जैसे वायु से अग्नि १८ उससे वह दग्धचित्त होकर अवश्य अपने हाथ से हाथ मलता होगा और मेरे पुत्र और पौत्रों को उस क्रोध की अग्नि में भस्म करने की इच्छा से बड़े बड़े और गरम गरम श्वास लेता होगा १९ जिस समय अर्जुन गाण्डीव धनुष् को लेकर काल-तुल्य भीमसेन और वज्ररूपी बाण मारनेवाले नकुल और सहदेव सहित रण में खड़ा होगा उस समय शत्रु की सेना कभी शेष नहीं रह सकती है २० ये दुर्योधन शकुनि और दुःशासन आदि बड़े मन्दबुद्धि हैं क्योंकि ये मधु अर्थात् लोभ को तो चाहते हैं परंतु मधु का प्रपात अर्थात् लाभ करने की घात को नहीं जानते हैं। देखो, इन्होंने जूआ खेलकर राज्य लिया २१ मनुष्य को शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है इसमें अशुभ कर्म करके मोक्ष मिलना कठिन है २२ देखो, मनुष्य खेत जोतता और बोता है और वर्षा भी ऋतु के अनुसार होती है परंतु खेती में कम अथवा अधिक फल का उत्पन्न होना दैव के आधीन है २३ शकुनि ने तो अशुभ कर्म यह किया कि पाण्डवों की लक्ष्मी छल से जीती और पाण्डवों ने शुभ किया कि उन सबको मारा नहीं परंतु सब खोटे कर्मों का मूल मैं हूं जिसके कारण अब कौरवों का अन्त समय आगया २४ वायु बन्द हो जाती है परंतु फिर भी चलती है, गर्भवती स्त्री के सन्तान अवश्य उत्पन्न होती है और रात्रि के पीछे दिन और दिन के पीछे रात्रि भी अवश्य होती है। इससे कौरवों का होनहार नाश भी अवश्य होगा २५ मनुष्य के हाथ में यह बात नहीं है कि धन को इकट्ठा कर ले अथवा धन उत्पन्न करने का कोई साधन करे या धन किसी को दे नहीं क्योंकि जो धन के उत्पन्न करने के समय में कोई अनर्थ हो जाय तो धन कहां से और क्योंकर इकट्ठा हो सकता है २६ परंतु यह धन बांटा नहीं जा सकता है और गिर जाने अथवा व्यर्थ जाने के भय से इसकी रक्षा भी की जाती है विना रक्षा किये यह अनेक मार्गों से निकल जाता है। ये सब बातें हैं परंतु फिर भी भावी होकर ही रहती है २७ अर्जुन के पराक्रम को देखो कि वह स्वर्गलोक को गया और वहां से चार प्रकार के अस्त्र सीखकर फिर लौट आया २८ सिवाय अर्जुन के और कौन ऐसा होगा जो सदेह स्वर्ग में

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जाकर फिर यहां लौटकर आने की इच्छा करे। वह वीर स्वर्ग में बहुत से कुरुवंशियों को देखकर यहां काल से मरे हुए मनुष्यों को मारने आया है २९ वह अर्जुन बड़ा धनुर्धारी है, जैसा वह है वैसा ही उसका धनुष् और उसीप्रकार के उसके पास अस्त्र हैं। इन तीनों के तेज को संसार में कौन सह सकता है ३० यह सब वृत्तान्त शकुनि ने सुनकर दुर्योधन और कर्ण से जा कहा, दुर्योधन उस वृत्तान्त को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ॥ ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३५॥

दोसौ छत्तीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन से कर्ण, शकुनि का पाण्डवों को अपना वैभव दिखा, उनको दुःखित करने के लिये कहना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! शकुनि ने पूर्व वृत्तान्त को सुनकर दुर्योधन और कर्ण से इस प्रकार आकर कहा कि हे दुर्योधन! तुमने अपने पराक्रम से पाण्डवों को वनवास दिया है, अब तुम इस पृथ्वी को इसप्रकार से भोगो जैसे स्वर्ग में इन्द्र राज्य भोगता है १।२ हे नरनायक! चारों दिशाओं के राजा तुम्हारे वशीभूत हैं और तुमको कर देते हैं ३ और जो ऐश्वर्य प्रथम पाण्डवों के पास था वह तुमने अपने भाइयों सहित सब प्राप्त कर लिया ४ और जो कुछ वैभव इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के पास था वह सब अब तुम्हारे पास है ५ और तुम्हारे शत्रु शोकग्रस्त हैं, उनकी सब लक्ष्मी तुमने बुद्धिबल से ले ली है और वह अब तुम्हारेपास प्रकाश कररही है और इसीप्रकारसे सब राजालोगभी तुम्हारी आज्ञा में चलते हैं और सदैव यह कहा करते हैं कि हमारे लिये क्या आज्ञा है और सम्पूर्ण पृथ्वी वन, पर्वत, ग्राम और नगरों सहित तेरी आज्ञा का पालन करती है और हम लोग भी तुम्हारे ही वश में हैं। अब ब्राह्मणों से वन्दित और राजाओं से पूजित होकर तुम्हारी शोभा ऐसी दीखती है जैसे स्वर्ग में देवताओं के बीच में सूर्य प्रकाश करता है ६।१० और कौरवों से इसप्रकार से युक्त हो जैसे रुद्रों से यमराज, मरुद्गणों से इन्द्र और नक्षत्रों से चन्द्रमा युक्त है ११ एक पाण्डवों ने ही तुम्हारी आज्ञा नहीं मानी, सो हमने सुना है कि हे महाराज! वे लक्ष्मी-हीन और दीनस्वरूप द्वैतवन में एक सरोवर के किनारे वनवासी ब्राह्मणों सहित रहते हैं १२।१३ इससे हमारी इच्छा है, तुम यहां से बड़े वैभव के साथ उन राज्य और लक्ष्मीहीन पाण्डवों को देखने के लिये चलो और उनको अपने सूर्यतुल्य तेज से तपाओ और उनको ऐसा वैभव दिखाओ जिससे वे तुमको कुटुम्बसहित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

देखकर यह जानें कि तुम राजा ययाति की सदृश हो १४।१६ मित्र और शत्रु का भाव यही होता है कि मित्र लक्ष्मी को देखकर प्रसन्न होता है और शत्रु को दारुण दुःख होता है १७ संसार में इससे बढ़कर दूसरा सुख नहीं है जो सुखी मनुष्य अपने दुःखी शत्रुओं को इसप्रकार से देखे जैसे पर्वत के ऊपर का मनुष्य पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य को देखे १८ और जैसा सुख शत्रु को दुःखी देखकर होता है वैसा पुत्र होने अथवा धन मिलने या राज्य पाने से नहीं होता है १६ भला, उस मनुष्य को क्या सुख न होगा जो इस समय में अर्जुन को ऐसी दीन अवस्था में देखे कि वह वृक्षों की छाल और मृगों के चर्म के वस्त्र पहिरे हुए है २० और तुम अपनी स्त्री को भी सुन्दर वस्त्र आदि से अलंकृत करके ले चलो, जिससे मृगों के चर्म धारण करनेवाली द्रौपदी उसे देखकर दुःखी होवे और संसार में जीने की इच्छा न करे २१ और अपने को निर्धन देखकर अपने जीवन को धिक्कार दे। सभा में उसको जैसा दुःख हुआ था उससे अधिक दुःख अब उसे तुम्हारी अलंकृत स्त्री को देखने से होगा २२ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! कर्ण और शकुनि उक्त प्रकार दुर्योधन से कहकर चुप हो रहे ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

दोसौ सैंतीसवां अध्याय।

दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन का आपस में सलाह कर द्वैतवन में जाने का बहाना सोचना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! दुर्योधन कर्ण और शकुनि के उक्त वचनों को सुनकर प्रसन्न हुआ परन्तु दीन होकर यह कहने लगा १ कि हे कर्ण! जो बातें इस समय तुमने कही हैं वे सब मेरे भी चित्त में हैं परंतु पाण्डवों के पास जाने को मुझे आज्ञा न मिलेगी २ क्योंकि राजा धृतराष्ट्र विलाप किया करते हैं और तप के कारण से पाण्डवों को हमसे अधिक जानते हैं ३ और जो राजा को हमारे वहां जाने का प्रयोजन विदित हो जावेगा तो वह हमको कभी जाने की आज्ञा न देगा ४ क्योंकि वह यह जानेगा कि द्वैतवन में हम सब पाण्डवों को मारने की इच्छा से जाना चाहते हैं ५ इसके सिवाय तुमको याद होगा कि जब जूआ हुआ था तब विदुरजी ने हमसे और तुमसे क्या क्या बातें कही थीं, उन बातों और उस विलाप को विचार कर मैं जाने और न जाने का निश्चय नहीं कर सकता हूँ ६ । ७ परन्तु जो मैं किसी यत्न से वन में भीमसेन, अर्जुन और द्रौपदी को दीन अवस्था में देख सकूंगा तो बहुत प्रसन्न होऊँगा ८ और मुझ-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को ऐसा हर्ष इस पृथ्वी के पाने का नहीं हुआ था जैसे वृक्षों की छाल और मृगों के चर्म के वस्त्र पहिरे हुए पाण्डवों को देखकर होगा ९ और जो सुख मुझको उसी अवस्था में द्रौपदी को देखकर होगा उससे बढ़कर मैं दूसरा सुख नहीं समझता हूँ १० जो युधिष्ठिर और भीमसेन मुझको वैभव के साथ देख लें तो मेरा जीना सफल होजाय ११ परंतु मैं क्या करूं, मुझको कोई उपाय ऐसा नहीं दीखता है जिसके बहाने से मैं वहां जाऊं और राजा मुझे वहां जाने की आज्ञा दे दें १२ सो तुम तीनों अर्थात् कर्ण, शकुनि और दुःशासन सलाह करके कोई ऐसा उपाय विचारो जिसके बहाने से हम सब वहां जा सकें १३ और मैं भी प्रातःकाल जाने और न जानेका निश्चय करने की इच्छासे राजा के पास जाऊंगा १४ सो जब मैं वहां बैठ जाऊंगा और भीष्मजी भी वहां आजायँ तब जो कुछ उपाय तुमने विचारा हो उसको कहना १५ उस समय भीष्मजी और पिता के उत्तर को सुनकर उनको समझाऊँगा और द्वैतवन के चलने का निश्चय करूंगा १६ यह सुनकर कर्ण, शकुनि और दुःशासन तीनों अपने-अपने स्थानों को चले गये। जब रात्रि व्यतीत होगई तब कर्ण दुर्योधन के पास आया और हँसकर बोला कि हमने यह उपाय विचारा है कि द्वैतवन में जो घोष अर्थात् घोसी रहते हैं वे सदैव तुम्हारे आने की बाट देखा करते हैं और घोषयात्रा करना अर्थात् घोसियों के ग्रामों में जाना भी राजा को अवश्य उचित है इससे यह बहाना करना कि हम घोषयात्रा को जाते हैं बहुत अच्छा है। इसको सुनकर राजा तुमको अवश्य आज्ञा दे देंगे। यह सुन शकुनि हँसकर बोला कि वाह वाह बहुत अच्छा उपाय सोचा, इस बहाने से राजा अवश्य आज्ञा दे देंगे और जो आज्ञा नहीं देंगे तो उनको समझाकर आज्ञा ले लेंगे। इसके उपरान्त वे सब बहुत प्रसन्न होकर हँसे और आपस में हाथ मिलाकर राजा धृतराष्ट्र के पास जाने को उठ चले ॥ १७। २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥

दोसौ अड़तीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर बड़े वैभव और समाज के साथ द्वैतवन को जाना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय ! उक्तप्रकार से सलाह करके वे सब राजा धृतराष्ट्र के समीप गये और सबने राजा से पूछा कि महाराज ! आप आनन्द से हैं ? राजा ने उनको यथायोग्य उत्तर देकर उनसे कुशल पूछी, तब वे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

राजा के समीप बैठगये। उसी समय दुर्योधन आदि के नियम किये हुए समङ्ग नामी बल्लव ने राजा से जाकर निवेदन किया कि महाराज! गौयें समीप आ पहुँची हैं, उनको देखने को किसी को आज्ञा दीजिये। हे मनुजाधिप! कर्ण और दुःशासन ने राजा से कहा कि महाराज! इन गौओं के देखने और संख्या करने और बछड़ों पर चिह्न लगाने के लिये दुर्योधन जाना चाहता है और उसकी इच्छा उस रमणीक देश में अहेर खेलने की भी है इससे आप उसको वहां जाने की आज्ञा दीजिये १।५ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हे तात, कर्ण! अहेर खेलना और गौओं की गिनती करना तो अच्छा है परंतु बल्लवों का कुछ विश्वास नहीं है, मैंने सुना है कि वे नरोत्तम पाण्डव भी उसी स्थान के समीप हैं। हम लोगों ने उन महारथियों को कपट से जीता है और हमारे कारण से वे वहां दुःखी रहते हैं और तपस्या करते हैं। उनमें युधिष्ठिर तो क्रोधी नहीं है परंतु भीमसेन बड़ा अमर्षी है और द्रौपदी अग्नि के सदृश है और तुम सब गर्व और मोह के वश हो रहे हो। कदाचित् तुम लोग उनका कुछ अपराध करो और वे तुमको अपने तेज से भस्म कर दें अथवा शस्त्रों से मार डालें तो आश्चर्य नहीं है और जो यह माना जाय कि तुमलोग बहुत से हो, तुम्हीं उनको मार डालोगे तो प्रथम तो यह बात असम्भव है और दूसरे कदाचित् ऐसा हो भी जाय तो बड़ी ही नीचता हम सबों की गिनी जायगी। देखो, अर्जुन इन्द्रलोक में बसकर सब अस्त्र सीखकर फिर वनको लौटकर आगया है। पहिले उसने विना अस्त्र पाये सब पृथ्वी को जीत लिया था, अब अस्त्र पाकर वह अवश्य तुम सबको मार डालेगा और जो तुम सबलोग मेरी बात का विश्वास करके वहां सावधानी से रहोगे तो भी तुम्हारा रहना दुःख और भय से युक्त होगा और इन सबके सिवाय ऐसा भी हो तो क्या आश्चर्य है कि कोई सेना का मनुष्य वहां जाकर पाण्डवों का कुछ अपकार करे और उससे दोष खड़ा होजाय। इससे मैं दुर्योधन का स्वयं वहां जाना अच्छा नहीं समझता हूँ, किसी दूसरे मनुष्य को गौओं की संख्या आदि करने को भेज दो ६।१७ यह सुनकर शकुनि बोला कि महाराज! राजा युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा है, वह अपनी सभा में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष तक वनवास के सिवाय कुछ न करेगा और न हम पर क्रोध करेगा और उसके सब छोटे भाई भी धर्मज्ञ और उसकी आज्ञा में चलनेवाले हैं १८। १९ इसके सिवाय हम लोग

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तो अहेर करने और गौओं की संख्या करने और बछड़ों को अङ्कित करने जाते हैं, हमको पाण्डवोंसे क्या प्रयोजनहै। इससे आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये, हम उनके स्थान के निकट भी न जायँगे और न कोई नीच पुरुषों का सा काम करेंगे २०।२१ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! शकुनि के उक्त वचनों को सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने बेचैनहोकर दुर्योधन को जाने की आज्ञा देदी २२ और उनसे आज्ञा पाकर आठ सहस्र रथ, तीस सहस्र हाथी, नौ सहस्र घोड़े और बहुत सहस्र पैदल मनुष्यों को सजवाया और कर्ण, दुःशासन, शकुनि, सब छोटे भाई, सहस्रों स्त्री, अनेक पुरवासी, स्त्री, पुरुष, छकड़े, दूकानें, डेरे, व्यापारी, वन्दीजन और सहस्रों अहेर खेलने में निपुण मनुष्यों को साथ लेकर नगर के बाहर निकला और दो कोसपर जाकर वास अर्थात् मुकाम किया। उसके चलते समय ऐसा शब्द हुआ जैसा वर्षाकाल में प्रचण्ड वायु के चलने का शब्द होता है। उसने वहां उस रात्रि को बसकर दूसरे दिन सब समाज अर्थात् लश्करसहित द्वैतवन को गमन अर्थात् कूच किया ॥ २३। २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥

दोसौ उन्तालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का घोषग्रामों में जा, गौओं की संख्या कर वहां से चलकर द्वैतवन में पहुँचना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके उपरान्त राजा दुर्योधन कुछ काल में कूच मुकाम करता हुआ घोषग्रामों के निकट जा पहुँचा। वहां मनुष्योंने पहिले से जाने हुए उत्तम जल और छाया के स्थानों में दुर्योधन आदि सब भाई और कर्ण के पृथक् पृथक् डेरे खड़े किये। उन लोगोंने वहां वास किया और वहां रहकर दुर्योधन ने गौओं की संख्या की और पहिले वर्ष के अङ्कित बछड़ों को गिना, उपरान्त नये बछड़ों को अङ्कित करके और पुरानों में चलने वाले और न चलनेवालों को लिखकर जो बछड़े तीन वर्षके थे और जिन गौओं के नीचे छोटे छोटे बछड़े थे उन सबों को भी काग़ज़ पर चढ़ाकर, गौओं के सब काम से निवृत्त होकर, वहां विहार करने लगा और सब पुरवासी और सेना के लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार उस वन में देवताओं के तुल्य क्रीड़ा करने लगे १। ७ इसके उपरान्त गाने, बजाने और नाचने में निपुण गोपलोग और सुन्दर सुन्दर शृङ्गार किये हुए अनेक कन्याएँ दुर्योधन के समीप आईं, उसने उन सबको यथायोग्य अन्न पान और धन देकर बिदा किया ८। ६ इसके पीछे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दुर्योधन ने उस वन में अहेर खेली और अनेक व्याघ्र, भैंसा, रीछ, मृग, वाराह और हाथियों को बाणों से मारकर अनेक प्रकार के मृगों को पकड़वाया १०।११ इस प्रकार से वह गोरस आदि का भोजन करता और उन वन, उपवनों को जो मतवाले भौंरों और मोरों से सुशोभित हो रहा था देखता हुआ क्रम-पूर्वक द्वैतवन के सरोवर पर जा पहुँचा १२।१३ जो मतवाले भौंरों की गुंजार, नीलकण्ठ की पुकार और सप्तच्छद, बकुल, पुन्नाग नामी वृक्षों से परम शोभित हो रहा था १४ उस समय हे मनुजाधिप! दुर्योधन का वैभव इन्द्र के समान था और दैव इच्छा से उसी समय राजा युधिष्ठिर द्रौपदी-सहित उसी सरोवर के तट पर वन के फलों से साद्यस्कनामी यज्ञ करने को दीक्षित हुआ था १५।१७ वहां पहुँचकर राजा दुर्योधन ने सहस्रों मनुष्यों को सरोवर के किनारे क्रीड़ा करने के स्थानों को बनाने की आज्ञा दी। वे सब उस आज्ञा को सुनकर 'तथास्तु' कहकर चल दिये और उस सरोवर के निकट द्वैतवन में आ पहुँचे १८।१६ उस समय वहां गन्धर्वों का राजा भी कुबेरभवन से अप्सराओं के गण और देवकुमारों-सहित क्रीड़ा करने को आया था। उसके नौकरों ने दुर्योधन के सैनिकों को द्वैतवन के द्वार पर रोक दिया तब वे उस सरोवर को गन्धर्वों से युक्त देखकर लौट गये और दुर्योधन से सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसको सुनकर दुर्योधन ने सेना के दुर्मद योद्धाओं को आज्ञा दी कि तुम जाकर गन्धर्वों को सरोवर के तट से हटा दो २०।२४ उसकी आज्ञा को सुनकर योद्धालोग सरोवर के तट पर गन्धर्वों के समीप गये और बोले २५ कि राजा धृतराष्ट्र का पुत्र राजा दुर्योधन यहां विहार करने को आता है, तुमलोग यहां से हट जाओ २६ यह सुनकर गन्धर्वों ने हँसकर कहा कि तुम्हारा राजा मन्दबुद्धि है जो हम स्वर्गवासियों को इस प्रकार से आज्ञा देता है जैसे कोई बनिये को आज्ञा दे २७।२८ और तुम भी मन्दबुद्धि और मरनहार दिखाई देते हो जो अज्ञान से उसके कहने से हमलोगों से ऐसा कहते हो २६ जाओ जल्दी दुर्योधन के पास चले जाओ, नहीं तो अभी सब मारे जाओगे ३० यह सुनकर वे योद्धालोग दुर्योधन के पास लौटकर चले आये ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभारते वनपर्वणि नवत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥

दोसौ चालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का गन्धर्वों से युद्ध और रण-क्षेत्र से विरथ हो कर्ण का भागना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! उन मनुष्योंने दुर्योधन के पास

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जाकर जो कुछ गन्धर्वों ने कहा था, वह सब कह सुनाया। दुर्योधन ने उसको सुनकर बड़े क्रोध से सेना के मनुष्यों को आज्ञा दी कि ये गन्धर्व अधर्मी और मेरा अप्रिय करनेवाले हैं। जाओ जो इन्द्र भी देवताओं-सहित क्रीड़ा करता हो तो उनको दण्ड दो १।३ यह सुनकर धृतराष्ट्र के सब पुत्र और सब योद्धा लोग युद्ध के लिये सन्नद्ध होगये और चारों दिशाओं को अपनी गर्जना से पूर्ण करते हुए उस वन के द्वार पर पहुँचे और गन्धर्वों को मारकर उस वन में आगे बढ़ चले ४।५ थोड़ी दूर जाने पर गन्धर्वों की दूसरी समाज ने उनको रोका परंतु उन्होंने उनकी बात की कुछ कान न की और ठट्ठे में उस बातको उड़ाते हुए आगे बढ़ चले। जब किसी उपाय से वे लोग दुर्योधन सहित न ठहरे तब गन्धर्वों ने जाकर अपने राजा चित्रसेन से कहा। उसने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि इन नीचों को अभी जाकर दण्ड दो। यह सुनकर गन्धर्वों की सेना शस्त्र लिये हुए तुरन्त धृतराष्ट्र के पुत्रोंके सम्मुख आ पहुँची। उनको शीघ्रता से आते हुए देखकर सब कौरवी सेना दुर्योधन के देखते हुए भाग चली। उनको विमुख देखकर कर्ण विमुख नहीं हुआ, किन्तु वहीं खड़े होकर उसने क्षुरप्र, विशिख, भल्ल और वत्सदन्त आदि लोहे के बाणों की वर्षा करके उस गन्धर्वों की बड़ी सेना को रोक दिया और अपने बाण चलाने की शीघ्रता से सैकड़ों गन्धर्वों के शिर काट काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये ६।१४ और एक क्षणभर में सब सेना को हटादिया। इसके पीछे मारे जानेपर भी और सहस्रों गन्धर्व उसके सम्मुख आये और उनसे क्षणभर में वह पृथ्वी फिर पूर्ण हो गई। उस समय राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण आदि धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र भी रथों को धड़धड़ाते हुए वहां आगये और कर्ण के रथ को आगे करके गन्धर्वों से युद्ध करने लगे और गन्धर्व भी उनसे भिड़ गये। उस समय कौरवों ने अपने बाणों से गन्धर्वों को ढक दिया १५।२० और थोड़ी देर तुमुल शब्द और रोमहर्षण युद्ध होने के पीछे गन्धर्व ढीले पड़ गये। उनको पीड़ित देखकर कौरव बड़ा शब्द करने लगे और उनका राजा चित्रसेन उनको भयभीत देखकर कौरवों का वध करने के लिये आसन से उठ खड़ा हुआ और चित्रमार्ग से मायास्त्र का प्रयोग करके युद्ध करने लगा २१।२३ उससे सब कौरव मोहित हो गये और उन प्रत्येक को दश दश गन्धर्वों ने घेर लिया। उस समय सब कौरव और उनकी सेना के लोग अपना अपना जी बचाकर भाग गये परंतु हे राजा जनमेजय! सूर्यपुत्र कर्ण पहाड़ के तुल्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अचल खड़ा रहा २५ । २६ और दुर्योधन और शकुनि भी उसके साथ रह गये । इन तीनों ने अत्यन्त घायल होने पर भी गन्धर्वों से बड़ा युद्ध किया २७ इसके उपरान्त कर्ण को मारने की इच्छा से सहस्रों गन्धर्व कर्ण के सम्मुख गये और उन्होंने खड्ग, पट्टिश, शूल और गदा आदि शस्त्रों से उसको चारों ओर से ढक दिया २८ । २९ और उसके रथ को चारों ओर से घेरकर उसके सारथी और रथ के घोड़ों को मार डाला । रथ के सब अङ्गों को उखाड़ उखाड़ कर तिल के समान चूर्ण कर डाला तब कर्ण ढाल तलवार लेकर रथ से कूद पड़ा और विकर्ण के रथ पर बैठकर रण से भाग गया ॥ ३० । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

दोसौ इकतालीसवाँ अध्याय ।

कौरवों का गन्धर्वों के बन्धन में आना व सैनिकों का पाण्डवों की शरण जाना ।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! महारथी कर्ण के भागने पर कौरवों की सब सेना दुर्योधन के देखते हुए भाग गई और दुर्योधन के सब भाई भी विमुख हो गये परंतु दुर्योधन रण से नहीं भागा और उसने धनुष् चढ़ाकर गन्धर्वों की सेना पर बाणों की झड़ी लगा दी और गन्धर्वों ने उस बाणवर्षा को कुछ न समझकर दुर्योधन को मारनेकी इच्छा से उसके रथ को चारों ओर से घेर लिया १ । ४ और बाणों से उसके रथ के घोड़े और सारथी को मारकर ध्वजा आदि सब रथ के अङ्गों को काट काटकर तिल के समान टुकड़े कर डाला ५ इसके पीछे चित्रसेन ने दुर्योधन को जो विरथ होकर पृथ्वी पर पड़ा था, जीता हुआ पकड़ लिया और अन्य गन्धर्व, दुःशासन, विविंशति, चित्रबिन्द, अनुबिंद और सब स्त्रियों को पकड़कर ले गये ६ । ८ उस समय सेना के भागे हुए मनुष्य और छकड़े हांकनेवाले, दुकानदार, रथ हांकने-वाले और दुर्योधन के वृद्धमन्त्री दुःखी होकर चिल्लाते पुकारते हुए पाण्डवों की शरण गये और उनसे बोले कि हे पाण्डवो ! गन्धर्वलोग दुर्योधन, दुःशा-सन, दुर्विषह, दुर्मुख और दुर्जय आदि तुम्हारे भाइयों और सब स्त्रियों को पकड़ कर लिये जाते हैं । हम सब तुम्हारी शरण हैं, जल्दी उठो और उनको गन्धर्वों से छुटाओ ९ । १३ यह सुनकर भीमसेन ने उन दुःखी और युधिष्ठिर से, भिक्षा मांगनेवाले बूढ़े मंत्रियों से कहा कि जो बात हमको घोड़े और हाथियों सहित तैयार होकर यत्नपूर्वक करनी थी वह गन्धर्वों ने कर डाली १४ । १५ जुआ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

खेलनेवालों ने अन्यथा कार्य करने के लिये दुष्टमन्त्र करके जो काम अन्यथा किया था वह काम आज हो गया और हमने जो यह सुना था कि असमर्थ पुरुष के शत्रु को मारनेवाला दूसरा होता है वह भी आज गन्धर्वों ने सत्य करके दिखा दिया। हमारे प्रारब्ध से हमारा हित चाहनेवाला कोई दूसरा पुरुष है जिसने हमारे शिर से यह बोझा बैठे बैठे उतार दिया १६। १८ देखो, हम तो सरदी, गरमी और वायु को वर्षों से सहने के कारण से कृश हो गये हैं और दुःखी हैं तथा वह दुष्ट दुर्योधन ऐसे समय में हम लोगों को अपना वैभव दिखाना चाहता था, उस दुरात्मा के जो जो अधर्मी साथी होंगे उनका अवश्य नाश होगा १६। २० सो हे मन्त्रियो! जिस किसीने तुमसे यह कहा है कि कुन्ती के पुत्र दयावान् हैं, वे रक्षा करेंगे, उसने अधर्म किया २१ यह सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई! यह समय परुष वचन बोलने का नहीं है॥ २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४१॥

दोसौ बयालीसवाँ अध्याय।

गन्धर्वों से दुर्योधन को छुटाने के लिये भाइयों के प्रति युधिष्ठिर का आदेश।

युधिष्ठिर बोले हे तात, वृकोदर, भीमसेन! तुमको इन भयभीत और दुःखी होकर शरण आये हुए कौरवों से ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि जाति में अनेक भेद, अनेक कलह और अनेक वैर आपस में पड़ जाते हैं परंतु कुल का धर्म किसी का नष्ट नहीं होता है १। २ जब कोई बाहर का मनुष्य अपने किसी कुल के मनुष्य को तिरस्कार करता है तब सन्त लोग वैर होने पर भी अपने कुल के मनुष्य का तिरस्कृत होना नहीं देख सकते हैं ३ यह गन्धर्व बड़ा दुर्बुद्धि है जिसने हम सबको बहुत दिनों से यहां बसा हुआ जानने पर भी हमारा अनादर करके यह अप्रिय किया है। हे भीमसेन! दुर्योधन के पकड़े जाने और कुल की स्त्रियों के दूसरे पुरुषों के वश में प्राप्त होने से हमारे कुल की बड़ी निन्दा होगी और हमारा कुल नष्ट गिना जायगा। इससे हे वीर, पाण्डवो! शीघ्र उठकर तैयार होजाओ और अपने कुल की मर्याद और शरणागतों की रक्षा करो ४। ६ और तुम चारों भाई मिलकर दुर्योधन को छुटा लाओ। ये रथ धृतराष्ट्र के पुत्रों के खड़े हुए हैं, सुनहरी ध्वजा और शस्त्र आदि सब युद्ध की सामग्री भी इनमें रक्खी हुई है, तुम इन्हीं रथों को इन्द्रसेन आदि कुशल सारथियों से जुतवाकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लेजाओ और इनपर चढ़कर दुर्योधन को छुटाने के लिये गन्धर्वों से युद्ध करने का यत्न करो ७। १० हे भीमसेन! ऐसा कौनसा क्षत्री होगा जो इस प्रकार से शरण आये हुए क्षत्री की रक्षा अपनी शक्ति से न करे। तुमको उस क्षत्रियधर्म के करने में क्या संदिग्धता है? ११ यह तो समझो कि जो शत्रु भी हाथ जोड़कर अपनी शरण में आवे तो उसकी भी रक्षा करना उचित है और रक्षा भी वही कर सकता है जो श्रेष्ठ होता है १२ हे पाण्डवो! वरदान मिलना, राज्य पाना, पुत्र का जन्म होना और शत्रु को क्लेश से छुटाना चारों एक ही से हैं अर्थात् चारों से एकसा ही सुख होता है १३ इससे बढ़कर और क्या सुख होगा जो दुर्योधन विपत्ति में पड़कर तुम्हारे बाहुबल का आसरा लेकर अपना जीवन चाहता है १४ मैं भी चलता परंतु अब यज्ञ प्रारम्भ हो चुका है इससे यज्ञभंग होने के कारण से मेरा विचार जाने का नहीं है १५ सो हे भीमसेन! अब तुम जल्दी से जाकर साम उपाय करके दुर्योधन को छुटा लाओ १६ और जो वह गन्धर्वराज साम उपाय से न माने तो थोड़ा पराक्रम करके छुटाना और इसपर भी वह न छोड़े तो दण्ड आदि जिस उपाय से हो सके, कौरवों को छुटाकर ले आओ १७। १८ अब मैं तुमसे कुछ विशेष नहीं कह सकता हूँ क्योंकि यज्ञ का प्रारम्भ हो गया है। मेरा इतना ही कहना बहुत है १९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त बातों को सुनकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि "जो गन्धर्व साम वचनों से धृतराष्ट्र के पुत्रों को न छोड़ेंगे तो उनके रुधिर को पृथ्वी पीवेगी।" तब कौरवों का चित्त उस सत्यवादी अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनकर स्थिर हुआ॥ २०। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४२॥

दोसौ तेंतालीसवाँ अध्याय।

भीमादिक पाण्डवों का युधिष्ठिर की आज्ञा से गन्धर्वों से युद्ध करने जाना और युद्ध का प्रारम्भ होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर की बातों को सुनकर नरनायक भीमसेन आदि चारों भाई प्रसन्नमुख होकर खड़े होगये और सबने जाम्बूनद के सुवर्ण के अभेद्य कवच और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारण कर लिये और शीघ्रगामी घोड़े और चतुर सारथियों से युक्त रथों पर बैठकर शीघ्र चल दिये। उस समय वे चारों भाई रथों में बैठे हुए ऐसे दीखते थे मानो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जलती हुई अग्नि है। उनको देखकर कौरवी सेना गर्जने लगी १। ५ और सब महारथी गन्धर्व निर्भय होकर युद्ध करने के लिये खड़े होगये और पाण्डवों को लोकपालों के समान रण के लिये उद्यत देखकर अपनी सेना की व्यूह-रचना करने लगे। इसके पीछे पाण्डव वहां पहुँचकर युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार उन गन्धर्वों से मृदुता के साथ युद्ध करने लगे ६। १० परंतु उन आकाशचारियों ने उस मृदु युद्ध को कुछ न गिना तब अर्जुनने उनसे सान्त्वना-पूर्वक पुकारकर कहा कि हमारे भाई राजा दुर्योधन को छोड़ दो। यह सुनकर गन्धर्वों ने हँसकर कहा कि हमको आज्ञा देनेवाला केवल एक इन्द्र है, उसीकी आज्ञा हम लोग मानते हैं और उसीके बल पर हमलोग निर्भय घूमते हैं सो उस सुरेश्वर ने जैसी आज्ञा हमको दी है वैसा ही हमने किया है। तुम्हारे कहने से हम अन्यथा नहीं कर सकते हैं ११। १५ यह सुनकर अर्जुन बोला कि गन्धर्वों के राजा को ऐसा निन्दित कर्म करना योग्य न था कि वह दूसरे की स्त्रियों को हर ले गया और मनुष्यों से उसने समागम किया, इससे या तो तुमलोग युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को और उनकी स्त्रियों को छोड़ दो, नहीं तो मुझे अपने पराक्रम से तुमसे इनको छुटाना पड़ेगा १६। १६ हे भरतवंशिन्! यह कहकर कुन्तीनन्दन सव्यसाची अर्जुन आकाशचारी गन्धर्वों पर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा और गन्धर्व भी बाणों की वर्षा करते हुए पाण्डवों के सम्मुख हो गये और उन दोनों में बड़ा तुमुल युद्ध होने लगा॥ २०। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४३॥

दोसौ चवालीसवाँ अध्याय।

पाण्डवों का गन्धर्वों से युद्ध होना और गन्धर्वों के राजा चित्रसेन का अर्जुन के पास आना।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! थोड़ी देर पीछे दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता सहस्रों गन्धर्व जो सुवर्ण की माला पहिरे हुए थे दिव्य बाणों की वर्षा करते हुए चले आये और चारों पाण्डवों से भिड़ गये। उस समय एक आश्चर्य सा जान पड़ा। फिर गन्धर्वों ने चारों पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया और चाहा कि जैसे कर्ण और दुर्योधन के रथों के टुकड़े टुकड़े कर डाला था उसी प्रकार से पाण्डवों के रथोंको भी भङ्ग कर दें परंतु पाण्डवों ने उस समय ऐसी बाणवर्षा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की कि गन्धर्व इनके रथ के निकट न आ सके, किन्तु आकाश में चारों ओर फैले हुए स्थित रहे ४। ५ उस समय बलवान् अर्जुन ने क्रोधित होकर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया और आग्नेय अस्त्र के प्रहार से लाखों गन्धर्वों को मार कर यमलोक में पहुँचा दिया ६। ७ हे राजन्! समर में महाबलशाली भीमसेन ने तीक्ष्णबाणों से सैकड़ों गन्धर्व मारकर पृथ्वी पर डाल दिये ८ और नकुल तथा सहदेव ने भी अति कर्कश युद्ध करके गन्धर्वों को रोका और सैकड़ों को मार डाला ६ इस प्रकार दिव्यास्त्रों से मारे जाने पर गन्धर्व धृतराष्ट्र के पुत्रों को लेकर आकाशमार्ग से जाने लगे १० तब अर्जुन ने उनके ऊपर पिंजरे के समान बाणों का ऐसा जाल रच दिया कि वे गन्धर्व ऊपर को आगे न जा सके और क्रोधित होकर अर्जुन पर गदा, शक्ति और खड्ग आदि अस्त्रों की वर्षा करने लगे ११। १२ तब परमास्त्रवेत्ता अर्जुन उन शस्त्रों को अपने बाणों से काट कर गन्धर्वों के अङ्गों को भल्लों से छेदने लगा १३ और उनसे गन्धर्वों के शिर, भुजा और पैर कट कटकर इस प्रकार से गिरने लगे मानो पत्थर वर्षते हैं। उनको देखकर दूसरे मनुष्य भय करने लगे १४ तब महात्मा पाण्डव से पीड्यमान होते हुए गन्धर्वों ने आकाश से बाणों की वर्षा करके अर्जुन को ढक दिया १५ फिर तेजस्वी शत्रुसंतापदायी पाण्डुवंशीय अर्जुन ने अपने बाणों से उस बाणवर्षा को रोककर स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय और सौम्य अस्त्रों का प्रयोग किया १६। १७ और उनसे वे गन्धर्व इस प्रकार से पीड़ित हुए जैसे इन्द्र से युद्ध करने में दैत्य पीड़ा पाते हैं १८ जब ऊपर को भागते थे तब बाणजाल के कारण से नहीं जाने पाते थे और जब नीचे को आते थे तब अर्जुन के मारे हुए भल्लों से व्याकुल होजाते थे। इस प्रकार से उनको भयभीत देखकर चित्रसेन भारी गदा लेकर अर्जुनकी ओर दौड़ा १६। २० अर्जुन ने उसे गदा लिये आते हुए देखकर उसकी गदा के बाणों से सात टुकड़े कर डाले २१ यह देखकर चित्रसेन अर्जुन से गन्धर्वविद्या से अर्थात् अदर्शनशक्ति से युद्ध करने लगा २२ अर्जुन ने उसके चलाये हुए अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से रोंक दिया तब वह बलवान् गन्धर्व अस्त्रों के रुक जाने के कारण से माया करके अन्तर्धान हो गया २३। २४ और अर्जुन पर प्रहार करने लगा। तब अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों से आकाशचारी बाणों को अभिमन्त्रित किया और उनसे उसको मारने लगा और फिर शब्दवेधी बाण

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मारकर अर्जुन ने उसकी अन्तर्धान शक्ति को दूर कर दिया २५। २६ तब चित्र-सेन अर्जुन के अस्त्रों से ताड़ित होकर अर्जुन के सम्मुख चला आया और बोला कि मैं तुम्हारा सखा चित्रसेननामी गन्धर्व हूं। यह सुनकर और युद्ध में अपने दुर्बल सखा को देखकर, अर्जुन ने अपने प्रयोग किये हुए अस्त्रों का संहार कर लिया और अर्जुन को अस्त्र लौटाते हुए देखकर और सब भीमादिक योद्धाओं ने भी अपने अपने रथ के घोड़ों को रोककर बाण चलाना बन्द कर दिया और चित्रसेन, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपने अपने रथों पर बैठे हुए एक दूसरे की कुशल पूछने लगे॥ २७। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४४॥

दोसौ पैंतालीसवाँ अध्याय।

चित्रसेन-पाण्डव-संवाद तथा दुर्योधन का छूटना व लज्जित होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे अर्जुन ने हँसकर चित्र-सेन से सब गन्धर्वों की सेना के बीच में पूछा कि हे वीर! तैंने दुर्योधन को स्त्रियों सहित क्यों पकड़ा है और इसके छोड़ने में तेरा क्या निश्चय है १। २ यह सुनकर चित्रसेन बोला कि दुरात्मा दुर्योधन और कर्ण घर से यह सलाह करके चले थे कि हमलोग उन अनाथ के तुल्य और वनवासी पाण्डवों को चल कर अपना वैभव दिखावें और तुम्हारी और यशस्विनी द्रौपदी की हँसी करें। इन्द्र को इन लोगों का यह अभिप्राय विदित हो गया इससे उसने मुझको आज्ञा दी कि तू अभी जाकर दुर्योधन को मन्त्री सहित बांधकर ले आ और युद्ध में अर्जुन की भाइयों सहित रक्षा कीजियो ३। ६ अर्जुन तेरा प्रिय सखा और शिष्य भी है। यह सुनकर हे पाण्डव! मैं शीघ्र यहां चला आया। अब इस दुरात्मा को इन्द्र की आज्ञा के अनुसार बांधकर स्वर्ग में ले जाऊंगा ७। ८ यह सुनकर अर्जुन बोला कि जो तुमको मेरा प्रिय करना है तो युधिष्ठिर के कहने के अनुसार दुर्योधन को छोड़ दो, यह हमारा भाई है ६ चित्रसेन बोला कि हे धनंजय! यह पापी जो कि सदैव मतवाला रहता है वह युधिष्ठिर और द्रौपदी का ठगनेवाला है अतः छोड़ने के योग्य नहीं है १० युधिष्ठिर को इसके आने का प्रयोजन विदित नहीं है इससे उसने इसके छुड़ाने की आज्ञा दी है। अब वहां चलकर उससे भी सब हाल कह दो फिर जैसा वह कहे वैसा कहना ११ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे वे सब युधिष्ठिर के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पास गये और युधिष्ठिर से सब वृत्तान्त कह सुनाया १२ उसको सुनकर युधिष्ठिर ने गन्धर्वों की प्रशंसा की और दुर्योधन को छोड़ने की आज्ञा दी १३ । १४ और गन्धर्वों को यह कहकर बिदा किया कि हे तात ! यह दुरात्मा दुर्योधन मन्त्री और भाइयों सहित प्रारब्ध से आप ऐसे समर्थों के हाथ से मारा नहीं गया और आपने मेरे ऊपर यह बड़ा उपकार किया कि इस दुरात्मा को छोड़ दिया, नहीं तो संसार में हमारे कुल का निरादर हो जाता १५ हम आपके दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न हुए अब जो कुछ आपकी कामना हो उसे कहिये और उसको पाकर अपने स्थान को जाइये । यह सुनकर सब गन्धर्व प्रसन्न होकर चले गये और इन्द्र ने अमृत वर्षाकर कौरवों के हाथ से मरे हुए गन्धर्वों को जिला दिया १६ । १८ और पाण्डव उस कठिन कर्म अर्थात् अपने स्वजातीय मनुष्य और स्त्रियों को छुटाकर प्रसन्न हुए १६ और कौरवों की स्त्रियों और लड़कों से पूजित होकर ऐसे सुशोभित हो गये मानो यज्ञ में अग्नि स्थापित की गई है २० इसके पीछे युधिष्ठिर ने नम्रता से दुर्योधन और उसके भाइयों से कहा कि हे तात ! फिर ऐसा साहस कभी न करना, विना बिचारे हुए काम करनेवाले मनुष्य वृद्धि नहीं पाते हैं २१ । २२ अब तुम कुशलपूर्वक सब भाइयों सहित जहां इच्छा हो वहां जावो और वैर को छोड़ दो २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! दुर्योधन युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर रोगी के तुल्य गतेन्द्रिय, लज्जित और म्लानचित्त होकर युधिष्ठिर को प्रणाम करके अपने नगर की ओर चला गया और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर भाइयों सहित ब्राह्मणों से पूजित होकर इस प्रकार से तपस्वी ऋषियों से युक्त हुआ मानो देवताओं से युक्त इन्द्र विराजमान है और वहीं रहकर उस द्वैतवन में विहार करने लगा ॥ २४ । २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

दोसौ छियालीसवाँ अध्याय ।

दुर्योधन का युधिष्ठिर से बिदा होकर राह में ठहरना और वहां आकर कर्ण का मिलना ।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज ! मैं जानता हूँ कि वह मानी, दुरात्मा, घमंडी, अपनी बड़ाई आप करनेवाला, हर प्रकार से पाण्डवों का अपमान करनेवाला, पापी, अहंकारी और दुष्ट दुर्योधन शत्रुओं से पकड़े जाने और पाण्डवों के छुटाने पर लज्जा और शोक के कारण से बड़ी कठिनता से अपने नगर को गया होगा; कृपा करके

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसके हस्तिनापुर में जाने का हाल वर्णन कीजिये १। ४ वैशंपायनजी बोले बहुत श्रेष्ठ, सुनिये। राजा दुर्योधन युधिष्ठिर से बिदा होकर लज्जा से नीचे को मुख किये हुए नष्टबुद्धि होकर बड़े दुःख और पीड़ा से अपने पराभव की चिन्ता करता हुआ अपने नगर की ओर चल दिया और उसकी चतुरङ्गिणी सेना उसके पीछे-पीछे हो ली ५। ६ मार्ग में उसने एक स्थानपर जहाँ जल और घास का सुपास था यान अर्थात् सवारी को छोड़ दिया और अपनी इच्छा के अनुसार एक रमणीक भूमिभाग में उतर पड़ा ७ वहां उसने हाथी, घोड़ों और प्यादों को यथायोग्य स्थान पर ठहरवा दिया और आप एक पर्यंक पर जा बैठा। जब रात्रि थोड़ी रहगई तब उसके पास कर्ण आया और उसने उसे राहु से ग्रसित चन्द्रमा के तुल्य बैठा हुआ देखकर कहा कि हे गान्धारीनन्दन ! हमारा बड़ा प्रारब्ध है जो तुम हम जीते हुए फिर आन मिले और तुमने कामरूपी गन्धर्वों को विजय कर लिया ८। १० और यह भी प्रारब्ध की बात है जो तुम्हारे महारथी और शत्रुओं को जीतनेवाले भाई भी विद्यमान हैं ११ मैं तुम्हारे देखते हुए गन्धर्वों से युद्ध करने गया था परंतु भागती हुई सेना को रोक न सका और आप भी बाणों से घायल होकर भाग गया परंतु मैं इस बात को बड़ी ही अद्भुत समझता हूँ कि तुम उस अमानुष युद्ध में से स्त्री, सेना और वाहनों सहित अक्षय और निर्विघ्न होकर चले आये १२। १४ जो काम आज तुमने और तुम्हारे भाइयों ने युद्ध में किया है उसका करनेवाला दूसरा मनुष्य संसार में नहीं है १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर दुर्योधन गद्गद हो गया और कर्ण से विलख कर कहने लगा॥ १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४६॥

दोसौ सैंतालीसवाँ अध्याय।

दुर्योधन का कर्ण से अपने पकड़े जाने और पाण्डवों के युद्ध करने का वृत्तान्त कहना।

दुर्योधन बोला हे कर्ण ! मैं तेरी बात की इस कारण से निन्दा नहीं करता हूं कि तू न जानने के कारण से यह समझ रहा है कि मैंने गन्धर्वों को विजय किया है १ परंतु इसका वृत्तान्त इस प्रकार से है कि मैं और मेरे भाई बहुत देर तक गन्धर्वों से युद्ध किया किये और दोनों ओर के योद्धा मारे गये परन्तु जब वे शूरवीर गन्धर्व आकाश में स्थित होकर माया से युद्ध करने लगे तब हमारा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उनका युद्ध तुल्य नहीं रहा और गन्धर्व मुझको भृत्य, अमात्य, पुत्र, स्त्री, सेना और वाहनों सहित पराजय करके बांध ले गये और आकाश में स्थित हो गये। हमको वहां बड़ा कष्ट रहा। इसी अवसर में हमारी सेना के कुछ मनुष्य और हमारे मन्त्री दुःखी होकर शरण देनेवाले पाण्डवों के समीप गये और उन्होंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि गन्धर्वलोग राजा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को पुत्र, स्त्री और छोटे भाइयों सहित बांधकर आकाशमार्ग से लिये जाते हैं, तुमलोग जल्दी जाकर उनको छुटाओ जिससे कुरुकुल की स्त्रियों का परामर्श न होने पावे। यह सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयों को प्रसन्न करके हम सबको छुटाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा से वे पुरुषोत्तम पाण्डव वहां चले आये २। ६ और समर्थ होने पर भी गन्धर्वों से याचना की कि इनको छोड़ दो परंतु गन्धर्वों ने हमको नहीं छोड़ा तब उन बलोन्मत्त भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने गन्धर्वों के ऊपर बाणों की वर्षा की १०। ११ तब हर्षित मनवाले गन्धर्वलोग रण छोड़कर हमलोगों को खींचकर आकाश में ले गये। वहां हमने आकाश को बाणों के जालों से ढका हुआ और अर्जुन को अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ देखा १२। १३ उस समय गन्धर्वों का राजा चित्रसेन सब दिशाओं को अर्जुन के तीक्ष्णबाणों से घिरी हुई देखकर अर्जुन के समीप चला गया। वह अर्जुन का सखा था इससे उसने अर्जुन आदि पाण्डवों से और पाण्डवों ने उससे क्षेमकुशल पूछी। उपरान्त वे आपस में एक दूसरे से मिले और कवच उतारकर सब गन्धर्व पाण्डव वीरों के साथ जा मिले। उस समय अर्जुन ने चित्रसेन की पूजा की और चित्रसेन ने अर्जुन को पूजा॥ १४। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वाणि सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४७॥

दोसौ अड़तालीसवाँ अध्याय।

दुश्शासन को राज्य देकर मरने पर उतारू दुर्योधन को कर्ण का समझाना।

दुर्योधन बोला हे कर्ण! इसके पीछे अर्जुन चित्रसेन से मिलकर हँसता हुआ वीरता के साथ बोला १ कि हे गन्धर्वराज! तुमको उचित है कि हमारे भाइयों को छोड़ दो, पाण्डवों के जीते हुए ये धर्षणा के योग्य नहीं हैं २ यह सुनकर गन्धर्वों के राजा चित्रसेन ने अर्जुन से वह बात कही जो हम तुम सलाह करके घर से चले थे कि हम चलकर दुःखी पाण्डवों को अपना वैभव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दिखावेंगे। उस बात को सुनकर मुझको ऐसी लज्जा आई कि मैंने यह चाहा कि जो पृथ्वी में कोई बिल भी होता तो उसी में मैं घुस जाता। इसके पीछे गन्धर्व हम सबको बँधा हुआ युधिष्ठिर के पास ले गये और उससे भी हमारे दुर्मन्त्र का हाल कहा। हाय! मैं दीन स्वरूप से बँधुआ के सदृश स्त्री के सामने युधिष्ठिर के समीप लाया गया। अब इससे अधिक और क्या दुःख होगा कि जिनका मैंने सदैव निरादर किया और जिनका मैं परमशत्रु हूँ उन्हीं ने ही मुझको छुटाया और जीवदान दिया, इससे तो मैं युद्ध में मारा जाता तो अच्छा होता क्योंकि गन्धर्वों के हाथ से मारे जाने पर संसार में मेरा यश होता और इन्द्रलोक में मुझे अक्षयलोक मिलते। अब इस अवस्था में मेरा जीना अच्छा नहीं है, इससे जो निश्चय अब मैंने अपने मन में किया है हे नरोत्तमो! उसको सुनो ९। १० मैं शरीर के त्याग होने तक यहीं रहकर विना अन्न जल के व्रत करूंगा और शत्रुओं से निराकृत होकर नगर को नहीं जाऊंगा क्योंकि मैं शत्रुओं का मानखण्डन और मित्रों का मानमण्डन करनेवाला हूं। तुम सबलोग और कर्ण आदि मित्र और भाई दुश्शासन को आगे करके नगर को लौट जावो ११। १३ मैं शत्रुओं का हर्ष बढ़ानेवाला और मित्रों का दुःखदायी कहलाकर, हस्तिनापुर में पहुँचकर, राजा से क्या कहूंगा १४ और भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, संजय, बाह्लीक, सौमदत्ति और अन्य अन्य वृद्धलोग, ब्राह्मण और श्रेष्ठ, मुख्य और उदासीन पुरवासी मुझसे क्या कहेंगे और मैं उनको क्या उत्तर दूंगा १५। १६ और मैंने शत्रुओं के शिर पर स्थित होकर और उनकी छाती पर पांव धरकर इस समय में अपने दोष से आपही नीचा देखा, इसका उत्तर मैं नगर में जाकर क्या दूंगा १७ जो लोग दुर्वृत्त होते हैं वे लक्ष्मी और विद्या पाकर मुझ घमंडी के समान ऐश्वर्य को बहुत दिनोंतक नहीं भोग सकते हैं १८ मैं बड़ा दुर्बुद्धि हूं, यह अयोग्य और नीच कर्म करके मैंने अपने आप अपने को दुःख में डाला है १९ इससे मैं अपने प्राणों को रख नहीं सकता हूं, अब मैं प्राण त्याग करने का ही नियम करूंगा। मुझसा अभिमानी मनुष्य असामर्थ्यता में अपने शत्रु पाण्डवों से छुटाये जाने और अपमान की दृष्टि से देखे और हँसे जाने पर क्योंकर जीने की इच्छा करे २०। २१ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त प्रकार से कहने के उपरान्त दुर्योधन दुश्शासन से बोला हे भाई! सुन २२

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

में तेरा राज्याभिषेक करता हूं, तू राज्य को ले और कर्ण और शकुनि की सहायता से पृथ्वी का राज्य कर २३ और जैसे इन्द्र मरुद्गणों का पालन करता और देवताओं को जीविका देता है इसी प्रकार से तू भी अपने भाइयों को पालियो और जीविका दीजियो २४। २५ और प्रमाद को छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करियो और भाई, बन्धु, सुहृद्, स्वजातीय और गुरु आदि सबका पालन यथायोग्य करियो और सबको प्रसन्न रखियो। यह कहकर दुर्योधन ने दुश्शासन को कण्ठ से लगा लिया और आज्ञा दी कि जाओ राज्य करो २६। २७ यह सुनकर दुश्शासन ने बड़े भाई को दण्डवत् की और आंखों में आंसूभर दीन होकर और हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से कहने लगा भाई प्रसन्न होवो, यह कह कर और दुःखी होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा २८। २६ और अपने आंसुओं से बड़े भाई के चरणों को धोकर बोला मुझसे यह नहीं होगा ३० हे भाई! चाहे पृथ्वी फटजाय, आकाश के दो टूक होजायँ, सूर्य की प्रभा जाती रहे, चन्द्रमा की शीतलता नष्ट हो जाय, वायु का वेग बन्द होजाय, हिमालय पहाड़ अपनी जगह को छोड़ दे, समुद्र का जल सूख जाय और अग्नि की उष्णता जाती रहे परंतु आपके विना मैं पृथ्वी का राज्य नहीं करूंगा। हे भाई! प्रसन्न हो प्रसन्न हो ३१। ३३ हमारे कुल में आप सौ वर्ष तक राज्य करें इस प्रकार से कहकर दुश्शासन डकराकर रोने लगा ३४ इस प्रकार उन दोनों भाइयों को दुःखी देखकर कर्ण ने खिन्नचित्त होकर कहा कि तुम दोनों जने प्राकृतपुरुषों की भांति अज्ञानता से क्यों इतना विषाद करते हो ३५। ३६ जो मनुष्य शोक की चिन्ता रखता है उसका विषाद कभी दूर नहीं होता है। हां, शोक करना उस अवस्था में ठीक है जब उस शोक से दुःख दूर होता हो ३७ ऐसी अवस्था में तुम दोनों क्या तात्पर्य विचार कर शोक कर रहे हो। भाइयो! धैर्य धारण करो, शोक करने से तुम्हारे शत्रु और प्रसन्न होंगे ३८ पाण्डवों ने जो तुमको छुटाया सो कोई अयोग्य बात नहीं की। राजा का प्रिय करना देशनिवासियों का धर्म है ३६ वे तुम्हारे राज्य में सुखपूर्वक रहते हैं और तुमसे पालित हैं, ऐसी अवस्था में प्राकृत मनुष्यों की भांति शोक करना तुमको अयोग्य है ४० हे दुर्योधन! तुम्हारे शरीर त्याग के नियम को सुनकर तुम्हारे सब भाई व्याकुल हैं। उठो, चलो और अपने भाइयों को धैर्य दो ॥४१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणिषष्ठचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४८॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ उंचासवाँ अध्याय।

कर्ण का दुर्योधन को समझाना और दुर्योधन का देह त्याग करने से अपना मन न हटाना।

कर्ण बोला कि हे राजा दुर्योधन! मैं जानता हूं कि इस समय तुम्हारी बुद्धि न्यून हो गई है। पाण्डवों ने क्या आश्चर्य किया जो शत्रुओं से तुमको छुटाया। देशवासी और सेना के लोगों का यह परम धर्म है कि जाने अथवा विना जाने राजा का प्रिय काम करें। बहुधा ऐसा होता है कि सेना के प्रधान लोग शत्रु की सेना को डराते हैं सेना के मनुष्य उनको पकड़ भी लेते हैं और सेना के लोग उनको छुटाते भी हैं। सो देशवासी और सेनाजीवी मनुष्यों का तो यह धर्म ही है कि राजा के हित के लिये ठीक यत्न करें। इस कारण से जो दैवइच्छा से आपके देश में रहनेवाले पाण्डवों ने तुमको गन्धर्वों से छुटाया भी तो उसमें तुमको क्या रोना है। वे कुछ तुम्हारे पीछे चढ़ाई करके तो आयेही न थे। हां, यह सत्य है कि वे बड़े शूरवीर और युद्ध में भागनेवाले नहीं हैं और उन्होंने तुम्हारी सहायता की परंतु वे पहिले तुम्हारे दास हो चुके हैं और जो तुम ऐसाही जानते हो तो उनके रत्नों को क्यों भोगते हो १। ८ देखो, पाण्डवों ने कभी देहत्याग करने का नियम नहीं किया। यह समझकर अब तुम उठ खड़े हो देर मत करो, तुमको शोक करना किसी अवस्था में योग्य नहीं है ९ देशवासियों को राजा का प्रिय करना अवश्य उचित है। उसमें तुम्हारे रोने की कोई बात नहीं है १० हे राजेन्द्र! जो तुम मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुम्हारे चरणों में यहीं पड़ा रहूंगा और तुम्हारे विना कभी अपने प्राणों को नहीं रक्खूंगा। परन्तु हे नरपाल! तुम्हारे शरीर त्याग करने के नियम को सुनकर सब राजा तुम्हारी हँसी करेंगे ११। १२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से कर्ण ने बहुत कुछ कहा परंतु दुर्योधन ने स्वर्ग जाने की इच्छा से अपना मन नहीं फेरा॥ १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४९॥

दोसौ पचासवाँ अध्याय।

दैत्यों का यज्ञ की कृत्या के द्वारा दुर्योधन को पाताललोक में बुलवाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे उस अन्न-जल विना मरने पर उतारू, दुःखी और क्रोधी राजा दुर्योधन को शान्त करने के लिये सुबल के पुत्र शकुनि ने कहा १ कि हे दुर्योधन! कर्ण ने बहुत अच्छा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कहा है, उसे सुनकर तुमको मानना उचित है और मेरी हरी हुई लक्ष्मी को मोह से छोड़कर अज्ञान से शरीर त्याग करना उचित नहीं है। मैं जानता हूं कि अभी तुमने बड़ों का सत्संग नहीं किया २। ३ जो मनुष्य अकस्मात् उठे हुए हर्ष या शोक को नहीं रोकता है उसकी लक्ष्मी इस प्रकार से नष्ट हो जाती है जैसे जल में डालने से कच्चा घड़ा टूट जाता है ४ और जो राजा डरपोक, क्लीब, दीर्घसूत्री, हठी और व्यसनी होता है उसको प्रजा नहीं चाहती है ५ इससे हे दुर्योधन! तुमको विपरीत अवस्था में शोक करना उचित नहीं है। पाण्डवों ने अपना धर्म ही निबाहा है, तुमको उसे अन्यथा जानकर अपना शरीर नष्ट करना न चाहिये ६ हे राजेन्द्र! यह अवस्था ऐसी है कि तुम प्रसन्न होकर पाण्डवों का सत्कार करो परंतु तुम और उलटा शोक करते हो ७ इससे प्रसन्न होकर उठ खड़े हो और अपने शरीर को मत त्यागो और सुकृत को जानकर पाण्डवों का राज्य पाण्डवों को दे दो। इसमें तुम्हारा धर्म और यश होगा ८ और कृतज्ञ कहलाओगे। पाण्डवों के साथ सुभ्रातृता करने और उनको स्थापन करके उनके पिता का राज्य उनको देने से तुमको बड़ा सुख होगा ९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त बातों को सुनकर दुर्योधन ने अपने चरणों पर पड़े हुए दुःशासन को अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर प्रीति से अपने हृदय में लगा लिया १०। ११ और कर्ण तथा शकुनि के उपदेश करनेपर भी वह राज्य से अपने चित्त को वैराग्याविष्ट करके अपने सुहृदों से कहने लगा १२। १३ कि अब मुझे धर्म, धन, सुख, ऐश्वर्य, आज्ञा और भोगों से कुछ काम नहीं है। तुम लोग मेरे संकल्प को नष्ट न करो १४ मैंने अपनी मति को प्रायोपवेशन में दृढ़ कर लिया है। तुम लोग सब घर को चले जाओ और जो मेरे गुरु हैं उनकी सेवा करो १५ यह सुनकर सब लोगों ने उत्तर दिया कि जो तुम्हारी गति है, वही हमारी भी है। हमलोग तुम्हारे विना नगर में क्योंकर घुस सकते हैं १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से राजा दुर्योधन को भाई और सुहृदों ने अनेक प्रकार से समझाया परंतु वह अपने निश्चय से नहीं हटा किन्तु कुशासन बिछाकर और जलको स्पर्श करके पवित्रता से पृथ्वी पर बैठ गया और स्वर्ग मिलने की इच्छा से नियमपूर्वक मौनव्रत धारण कर लिया और मन से अपने समीप चिता बनाकर सब क्रियाओं को त्याग कर दिया। उस समय उसके मन के निश्चय को जानकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पातालवासी रौद्र दानवों ने, जिनको पहिले देवताओं ने जीत लिया था, अपने पक्ष की क्षय जानकर दुर्योधन को बुलाने के लिये अग्निविस्तार और नवकुंड आदि यज्ञ की रचना की और उपनिषदों की क्रियाओं के अनुसार बृहस्पति और शुक्र के उपदेश किये हुए अथर्वणवेद के मन्त्रों से यज्ञ में हवन और जप करना प्रारम्भ कर दिया और वेदवेदाङ्ग के जाननेवाले ब्राह्मण दूध की बनी हुई हव्य को होमने लगे १७। २४ जब यज्ञ समाप्त होगया तब अग्निकुंड से परजृम्भनामी एक कृत्या निकली और वह बोली मुझे क्या आज्ञा है २५ यह सुनकर दैत्यों ने प्रसन्न होकर उस कृत्या से कहा कि राजा दुर्योधन को जो प्रायोपविष्ट है यहां ले आ। यह सुनकर वह बोली कि बहुत श्रेष्ठ, यह कह कर वह एक घड़ी में वहां जापहुँची जहां दुर्योधन था और उसे रसातल को ले जाकर दो घड़ी में दैत्यों के सामने खड़ा कर दिया २६। २८ वह समय रात्रि का था दानव उस समय में दुर्योधन को देखकर प्रसन्न हुए और प्रफुल्लनेत्र होकर अभिमान-सहित कहने लगे ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥

दोसौ इक्यावनवाँ अध्याय।

दुर्योधन को समझाकर, दैत्यों का उसके स्थानपर भिजवा देना।

दानव बोले हे दुर्योधन! तैंने शूरवीर और महात्माओं से युक्त होने पर प्रायोपवेशन का साहस किस कारण से किया है। जो पुरुष अपना शरीर त्याग करता है वह निन्दित और नरकगामी होता है १।२ तुमसे बुद्धिमान् को ऐसा विरुद्ध कर्म करना उचित नहीं है जो जड़ को काटनेवाला और पापमय है ३ इससे हे राजन्! तुम अपनी इस बुद्धि को त्याग दो। यह बुद्धि धर्म, अर्थ और सुख का नाश करनेवाली; यश प्रताप और पराक्रम को नष्ट करनेवाली और शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली है ४ अब तुम अपने शरीर के दिव्य होने और निर्माण होने का वृत्तान्त हमसे सुनकर धैर्य करो ५ तुमको हमलोगों ने पूर्वकाल में शिवजी की तपस्या करके पाया था। तेरे ऊपर का आधा धड़ वज्र का बनाया गया है, उसमें अस्त्र-शस्त्र कुछ प्रवेश नहीं हो सकता है और नीचे का धड़ पुष्पमय ऐसा सुन्दर रचा गया है कि उसको देखकर स्त्री मोहित होजाय ६। ७ इससे तुम्हारा यह शरीर दिव्य है मानुषी नहीं है और देवी और महेश्वर से संयुक्त है ८ और भगदत्त आदि बड़े बड़े शूरवीर क्षत्रिय जो सब दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता हैं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तुम्हारे शत्रुओं को मारेंगे ९ इससे तुम किसी प्रकार का विषाद मत करो, तुमको किसी प्रकार का भय नहीं है। तुम्हारी सहायता के लिये बड़े बड़े वीर दानवों ने पृथ्वी पर जन्म लिया है १० और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि शूरवीरों के शरीरों में भी दूर से दानव प्रवेश करेंगे। उनके कारण से वे पाण्डवों पर कृपा छोड़ कर तुम्हारी ओर से तुम्हारे वैरियों से युद्ध करेंगे ११ और दानवों से आविष्ट और विमूढ़चित्त एवं निर्दयी होकर पुत्र, भाई, पिता, बान्धव, शिष्य, स्वजातीय, बालक और वृद्धों पर परस्पर में यह शब्द कह कहकर शस्त्र-प्रहार करेंगे कि मेरे जीते तू बच नहीं सकता है। अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके सब मनुष्यों को मार डालेंगे और महात्मा पाण्डव भी युद्ध करेंगे १२। १६ परंतु जिन महाबली दैत्यों ने क्षत्रियों के यहां जन्म लिया है वे उन भीष्मादिकों का वध कर डालेंगे १७ और तुम्हारे शत्रुओं से गदा, मुशल, शूल और और अनेक प्रकार के अस्त्र ले लेकर युद्ध करेंगे १८ और जो तुम्हारे चित्त में अर्जुन की ओर से भय लगा हुआ है उसका उपाय हमने यह रचा है १९ कि मरे हुए नरकासुर की आत्मा को हमने कर्ण की मूर्त्ति में उपाश्रित कर दिया है, वह अपने पिछले वैर को याद करके अर्जुन और श्रीकृष्ण से युद्ध करेगा २० वह महारथी और बड़ा प्रहार करनेवाला है, तेरे सब शत्रु और अर्जुन को वही रण में मारकर विजय करेगा २१ इसी बात को जानकर इन्द्र अर्जुन की रक्षा के लिये छल से कर्ण का कवच और कर्ण के कुण्डल हरकर ले जायगा परंतु हमने भी सहस्रों दैत्य और राक्षसों को आज्ञा दे दी है। उन्होंने पृथ्वी पर जन्म ले लिया है और वे संसप्तक नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अर्जुन को मारेंगे इससे तुम शोक मत करो। तुम इस पृथ्वी को शत्रु रहित शासन करोगे। तुमको विषाद करना उचित नहीं है। तुम्हारे नष्ट हो जाने पर हमारा पक्षक्षय हो जायगा २२। २५ इससे हे वीर! अब तुम जाओ और दूसरी बुद्धि को अपने हृदय में न आने दो। पाण्डव देवताओं की गति और तुम सर्वदा हमारी गति हो २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे दैत्य उक्त प्रकार से कहकर दुर्योधन से पुत्रभाव से मिले और उन्होंने उसे धैर्य देकर और उसकी बुद्धि को स्थिर करके उसे जाने की आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तेरी जय होवे २७। २८ इसके पीछे कृत्या ने उसको फिर उसी स्थान पर पहुँचा दिया जहां उसने शरीर त्याग करने का नियम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लिया था २९ और वहां वह उसे बैठाकर आशीर्वाद देकर, दुर्योधन से अनुज्ञात हो, वहीं अन्तर्धान हो गई ३० उसके चले जाने पर दुर्योधन ने अपने शोक के संपूर्ण कारणों को स्वप्नवत् जाना और उसकी बुद्धि में यह निश्चय हो गया कि मैं पाण्डवों को विजय करूँगा और तब से कर्ण और संसप्तकों को यह समझने लगा कि ये अर्जुन का वध करेंगे। इस प्रकार से उस दुर्मति की पाण्डवों के विजय करने की आशा दृढ़ हो गई और नरकासुर के अन्तरात्मा से आविष्ट होनेके कारण से कर्ण की बुद्धि भी अर्जुन के वध करने में क्रूर हो गई और संसप्तक भी राक्षसों से नष्टचित्त होकर अर्जुन को मारने की इच्छा करने लगे और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि भी दानवों से मूढ़चित्त होकर पाण्डवों पर पहिले की समान प्रीति न रखने लगे। दुर्योधन ने इस वृत्तान्त को किसी से नहीं कहा किन्तु गुप्त ही रक्खा ३१। ३७ इसके पीछे जब रात्रि कुछ थोड़ी-सी रह गई तब कर्ण दुर्योधन के पास आया और हाथ जोड़कर बोला कि हे कौरव! मनुष्य मरने पर शत्रु को किसी प्रकार से नहीं जीत सकता है और जीवते मनुष्य का कल्याण होता है। मरने पर न जय मिलती है, न कल्याण मिलता है इससे यह समय विषाद अथवा भय करने या मरने का नहीं है। यह कहकर कर्ण ने दुर्योधन का हाथ पकड़ लिया और बोला कि उठो क्या सोते हो और किस कारण से शोच कर रहे हो? तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को तपाकर अब अपनी मृत्यु चाहते हो ३८। ४१ तुमको अर्जुन का पराक्रम देखकर भय हुआ है इससे मैं अपने आयुधों को छूकर तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि तेरहवें वर्ष में युद्ध होने पर मैं अर्जुन को मारूंगा और पाण्डवों को तेरे वश में कर दूंगा ४२।४३ इस प्रकार से कर्ण के समझाने और दैत्यों के उपदेश करने से दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी बुद्धि को स्थिर करके सेना को तैयार कराया ४४। ४५ और वह सेना रथ, घोड़े और हाथियों सहित गङ्गाजी के प्रवाह के तुल्य वहां से चल दी ४६ और रथ आदि वाहन, श्वेत श्वेत छत्र, पताका और पाण्डुरवर्ण चामरों से बड़ी सुशोभित दीखने लगी ४७ उस सेना के आगे आगे राजा दुर्योधन सार्वभौम राजा युधिष्ठिर के तुल्य ब्राह्मणों के आशीर्वादों को लेता हुआ और अपनी कृपादृष्टि से मनुष्यों के नमस्कार और अंजलियों को अङ्गीकार करता हुआ चला ४८।४९ कर्ण और शकुनि उसके साथ साथ हो लिये और उसके सब भाई और भूरि-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

श्रवा, सोमदत्त और बाह्लीक आदि कौरव रथ, घोड़े और हाथी आदि अनेक सवारियों पर बैठे हुए उसके पीछे पीछे चले। इस प्रकार से थोड़े ही काल में दुर्योधन अपने नगर में जा पहुँचा ॥ ५० । ५२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥

दोसौबावनवाँ अध्याय।

भीष्मकृत निन्दा सुन, अपना पराक्रम दिखाने के लिये कर्ण का दिग्विजय प्रस्थान।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज! पाण्डवों के वन में वास करने पर दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र और कर्ण, शकुनि, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ने क्या किया १ । २ वैशंपायनजी बोले कि जब दुर्योधन पाण्डवों के द्वारा गन्धर्वों से छूटकर, पाण्डवों से बिदा होकर हस्तिनापुर में आया तब भीष्मजी ने उससे कहा कि हे तात! हमने तुमसे पहिले ही, जब तुम तपोवन को जाने लगे थे, कहा था कि हमको तुम्हारा वहां जाना अच्छा नहीं दीखता है परंतु तुमने हमारा कहना न माना और वहां चले गये। इसी कारण से वहां तुमको बलवान् शत्रुओं ने बांध लिया और उनसे तुमको पाण्डवों ने छुटाया, तुमको लज्जा तो न आती होगी ? देखो तुम सबके पुकारने पर भी कर्ण तुम्हारी आँखों के सामने गन्धर्वों से डरकर भाग गया ३ । ७ अब तो तुमको इस सूतपुत्र कर्ण और महात्मा पाण्डवों का पराक्रम विदित हो गया। यह कर्ण धनुर्वेद, शूरवीरता और धर्म में पाण्डवों का चौथाई भी नहीं है ८ । ९ इससे हे दुर्योधन! मेरी समझ में उन महात्मा पाण्डवों से संधि कर लेना ही उचित है जिससे इस कुल की बढ़ोतरी होवे १० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुर्योधन हँसकर चुप हो रहा और शकुनि-सहित उठकर चल दिया ११ और कर्णसमेत दुःशासन भी उठकर उसके पीछे चले गये १२ भीष्मजी उनको गये हुए देखकर लज्जा से व्रीडित होकर अपने स्थान को चले आये १३ उनके चले जाने पर दुर्योधन फिर वहीं चला आया और अपने मन्त्रियों से पूछने लगा १४ कि किस काम के करने से हमारा कल्याण और सुकृत होगा इसको विचार कर कहो १५ तब कर्ण बोला कि भीष्मजी सदा मेरी निन्दा और पाण्डवों की बड़ाई किया करते हैं १६ और कारण उसका यह है कि तुमसे वे द्वेष रखते हैं और तुम्हारे कारण से हमसे भी द्वेष मानकर हमारी निन्दा पर उतरे हैं १७ सो हे दुर्योधन! मैं उस

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वचन को सह नहीं सकता हूं। देखो, अभी उन्होंने तुम्हारे ही सामने पाण्डवों की बड़ाई और तुम्हारी निन्दा की। इससे अब तुम मुझको आज्ञा दो तो मैं सेना आदि लेकर इस पृथ्वी को जिसे चार पाण्डवों ने विजय किया था, पर्वत और वनों सहित अकेला जाकर विजय करूं जिससे यह अधम भीष्म, जो अनिन्दित की निन्दा और अयोग्यों की बड़ाई करता है, मेरे और तुम्हारे बल को देखे १८। २२ हे राजन्! मैं आयुधों को छूकर सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम्हारी विजय होगी, तुम मुझको आज्ञा दो २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुर्योधन ने बड़ी प्रसन्नता से कहा २४ कि मैं धन्य हूं, तुम मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करते हो, जो सदैव मेरा हित चाहते हो। मेरा जन्म अब सफल है २५ और जब तुम्हारी इच्छा हो तभी तुम पृथ्वी के विजय करने को चले जाओ और जो कुछ मुझसे कहो सो मैं करूं २६ यह सुनकर कर्ण ने कहा कि हमारी यात्रा की सब सामग्री तैयार कर दो २७ दुर्योधन ने उसी प्रकार किया और सब सामग्री के इकट्ठा होने पर कर्ण शुभ नक्षत्र और शुभ तिथि को मङ्गलद्रव्य और सुगन्धित तैल से स्नान करके, ब्राह्मणों से पूजित होकर, अपनी प्रशंसा सुनता हुआ, रथ में बैठकर, रथ के शब्द से तीनों लोकों को शब्दित करता हुआ चल दिया ॥ २८ । २९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥

दोसौतिरपनवाँ अध्याय।

कर्ण का सब पृथ्वी को जीतकर, सब राजाओं से कर लेकर, हस्तिनापुर को आना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! महाधनुर्धारी कर्ण ने बड़ी सेना को लेकर राजा द्रुपद का नगर जो बड़ा रमणीय था जा घेरा और बड़ा भारी युद्ध करके द्रुपद को अपने वश में कर लिया और उससे नाना प्रकार के रत्न और सोना चांदी लेकर उससे कर देने का नियम करलिया और उसके आज्ञाकारी राजाओं को भी वश में करके उनसे भी कर ठहरा लिया और वहां से उत्तर दिशा को चल दिया। उस दिशा में उसने राजा भगदत्त को जीता और अन्य अन्य समीपवर्ती राजाओं को विजय करके हिमालय पहाड़ पर चढ़ गया और वहां के पर्वतीय सब राजाओं को भी जीतकर सबसे कर देने का नियम कर लिया १ । ६ फिर पहाड़ से उतर कर पूर्व दिया को चल दिशा और अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मण्डिक, मिथिल, मागध, कर्कखण्ड, आवशीर, योध्य, अहिच्छत्र, वत्सभूमि, केवली, मृत्तिकावती

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मोहन, पत्तन, त्रिपुर और कोशल आदि देशों के सब राजाओं को विजय करके और सबसे कर लेकर दक्षिण दिशा को चल दिया और वहां के सब महारथी राजाओं को भी जीतकर दाक्षिणात्य देशों में पहुँचा और वहां उसने राजा रुक्मी से युद्ध किया ७। ११ रुक्मी ने सूतपुत्र कर्ण से तुमुल युद्ध करके कहा कि हे राजेन्द्र! मैं तेरे पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ, अब मैं तेरा विघ्न करना नहीं चाहता हूं। मैंने यह युद्ध केवल प्रतिज्ञा पूरी करने को किया था १२। १३ अब मैं तुझको जितना तुझे चाहिये सुवर्ण देता हूं। यह सुनकर कर्ण उससे मिलाप करके पाण्ड्य और अन्य श्रीशैल देशों की ओर चला गया १४ और वहां के राजाओं को जीतकर केरल, नील और वेणुदारि के पुत्र आदि सब राजाओं को विजय किया और सब दक्षिणदेशीय राजाओं से कर देने का नियम कर लिया। वहां से चलकर उसने शिशुपाल के पुत्र और उसके देश के समीपवर्ती राजाओं को भी वश में कर लिया और अवन्तिदेशीय राजाओं को साम से और वृष्णिवंशियों को मिलाप से वश में करके पश्चिम दिशा को चला गया १५। १७ वहां उसने यवन और खर्बर आदि सब पश्चिमदेशीय राजाओं को विजय किया और सबसे कर देने का नियम कर लिया। इसके पीछे उसने म्लेच्छ, आटविक, पर्वतनिवासी, भद्र, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक, यवन और अग्निजित् आदि सब गणों को जीतकर अपने वश में कर लिया। इस प्रकार से कर्ण चारों दिशाओं के राजाओं को जीतकर और सब पृथ्वी को अपने वश में करके हस्तिनापुर को लौट आया १८। २२ दुर्योधन उसके आने का हाल सुनकर पिता, भाई और बान्धवों सहित आगे गया और उसकी पूजा करके उसे लिवा लाया और उसके विजय की डौंड़ी नगर में पिटवा दी। इसके पीछे दुर्योधन ने प्रसन्नता से कहा कि जो ऐश्वर्य मुझको तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुआ है वह भीष्म, द्रोणाचार्य और वाह्लीक से भी प्राप्त नहीं हुआ २३। २५ हे कर्ण! तुमसे बहुत क्या कहूं, मैं तुम ऐसे नाथ को पाकर सनाथ हूं २६ वे पाण्डव और दूसरे राजा लोग तेरी सोलहवीं कला के सदृश भी नहीं हैं २७ अब तुम चलकर धृतराष्ट्र और गान्धारी का दर्शन इस प्रकार से करो जैसे इन्द्र अदिति का दर्शन करता है २८ इसके पीछे नगर में बहुत हलहला शब्द और हाहाकार हुआ। बहुतों ने कर्ण और दुर्योधन की प्रशंसा की, बहुतों ने निन्दा की और बहुत से चुप हो रहे २९। ३१ हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वह शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण पहाड़, वन, पत्तन, नगर, द्वीप और अनूप देशों से पूर्ण पृथ्वी को जीतकर और थोड़े ही काल में सब राजाओं को अपने वश में करके, अक्षय धन को लेकर, राजा के पास आया ३२। ३३ और दुर्योधन के साथ घर के भीतर गांधारी और धृतराष्ट्र के पास गया। वहां उसने धृतराष्ट्र के दोनों चरणों में पुत्र के समान वन्दना की और धृतराष्ट्र ने भी उसे प्रेम से मिलकर बिदा किया ३४। ३५ हे भरतवंशिन्! तब से राजा धृतराष्ट्र और शकुनि यह समझने लगे कि कर्ण ने पाण्डवों को युद्ध में जीत लिया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५३ ॥

दोसौ चौवनवाँ अध्याय।

दुर्योधन का वैष्णवयज्ञ करने के लिये शिल्पियों से सुवर्ण का हल बनवाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सूतपुत्र कर्ण पृथ्वी को जीतकर राजा दुर्योधन से कहने लगा कि हे राजन्! अब मैं जो कुछ तुमसे कहूं उसे सुनो और समझो और उसीके अनुसार करो १। २ यह संपूर्ण पृथ्वी अब तुम्हारी है, शत्रु तुम्हारा अब कोई नहीं रहा। अब तुम इस पृथ्वी को इन्द्र के समान पालन करो ३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर राजा दुर्योधन बोला कि हे कर्ण। जिस मनुष्य के सहायक और हित में अनुरक्त तुमसे शूरवीर हैं उसको कोई बात दुर्लभ नहीं है। अब मैं और भी एक बात चाहता हूं उसको भी यथार्थता से सुनो ४। ५ हे सूतनन्दन, कर्ण! वह यह है कि पाण्डवों के श्रेष्ठ और बड़े राजसूययज्ञ को देखकर मेरी भी इच्छा यज्ञ करने की है, तुम्हारी इसमें क्या सलाह है ६ कर्ण यह सुनकर राजा से बोला कि हे नृपोत्तम! सब राजा इस समय तुम्हारे वश में हैं, तुम श्रेष्ठ ब्राह्मणों से पूछकर यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो और वेदपारग ऋत्विजों से विधिपूर्वक यज्ञ की रचना करावो, तुम्हारा यज्ञ अन्नपान से युक्त, समृद्ध, गुण रखनेवाला होगा ७। १० हे मनुजाधिप! यह सुनकर दुर्योधन ने पुरोहित को बुलाकर कहा ११ कि आप पूर्ण दक्षिणावाला श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ मुझको न्यायसहित विधिपूर्वक कराइये १२ यह सुनकर वह बोला कि हे नरपाल! जबतक राजा युधिष्ठिर जीता है तबतक तुम्हारे कुल में दूसरा मनुष्य राजसूय यज्ञ नहीं कर सकता है और इसके सिवाय तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र भी अभी विद्यमान हैं १३। १४ इससे भी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हे नृपोत्तम ! तुमको वह यज्ञ करना अनुचित है इससे राजसूय यज्ञ के समान दूसरा और यज्ञ है उसको तुम करो । उस यज्ञ की विधि इस प्रकार है कि जो जो राजा तुमको कर देते हैं उनसे कर में शुद्ध किया हुआ और विना शुद्ध किया हुआ सुवर्ण लेकर उसका हल बनवाओ और उस हल से यज्ञस्थान की पृथ्वी जोतकर वहां यज्ञ की सब सामग्री और बनाया हुआ अन्न रक्खो और वहीं यथाविधि यज्ञ करो १५ । १६ यह यज्ञ सत्पुरुषों के योग्य है, इस यज्ञ का नाम वैष्णवयज्ञ है, इसको सिवाय पुरातन विष्णुजी के आजतक और किसी ने नहीं किया है २० यह यज्ञ राजसूय यज्ञ के समान सब और यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ है । हे भारत ! हमारी सलाह इसी कल्याणकारी यज्ञ के कराने की है । इसके करने से तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी और यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा २१ यह सुनकर महीपति दुर्योधन कर्ण और अपने भाइयों से बोला कि मुझे तो जो कुछ ब्राह्मण कहें सब अङ्गीकार है परंतु अब जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो वह शीघ्र करो २२ । २३ यह सुनकर सबने उत्तर दिया कि आपका विचार अच्छा है । तब राजा ने क्रमानुसार शिल्पियों को हल बनाने की आज्ञा दी और उन्होंने आज्ञा के अनुसार विधिपूर्वक हल बनाकर तैयार कर दिया २४ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्व्वणि चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥

दोसौ पचपनवाँ अध्याय ।

यज्ञ समाप्त होने पर सबका बिदा होना और दुर्योधन का नगर में आना ।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके उपरान्त मन्त्री, शिल्पी और महाज्ञानी विदुरजी ने भी दुर्योधन से निवेदन किया कि हे राजन्, महाराज ! यज्ञ की सब सामग्री हो गई है, हल भी सुवर्ण का बनकर तैयार हो गया है और मुहूर्त भी यज्ञ करने का आ पहुँचा है १ । २ हे प्रजाधिप ! यह सुनकर राजाधिराज दुर्योधन ने यज्ञ के प्रारम्भ करने की आज्ञा दी और दुर्योधन के दीक्षित होने पर वह यज्ञ यथाविधि होने लगा ३ । ४ उस समय धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और यशस्विनी गान्धारी ने प्रसन्न होकर राजालोगों और ब्राह्मणों को न्यौता देने के लिए जल्दी चलनेवाले दूत जहां तहां भेज दिये ५ । ६ वे दूत आज्ञा और उपदेश के अनुसार न्यौता देने को चल दिये । उसी समय एक दूत से दुःशासन ने बुलाकर कहा कि तुम शीघ्र द्वैतवन को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चले जावो और वहां के ब्राह्मण और पापी पाण्डवों को विधिपूर्वक न्यौता दे आवो ७। ८ यह सुनकर वह दूत पाण्डवों के पास गया और प्रणाम करके बोला कि महाराज, नृपोत्तम! राजा दुर्योधन ने अपने पराक्रम से धन जीतकर यज्ञ रचा है, उस यज्ञ में जहां तहां से राजा लोग और ब्राह्मण चले जा रहे हैं ९। १० महात्मा कौरवों ने आपके पास मुझे निमन्त्रण करने के लिये भेजा है, सो आपभी चलकर उस यज्ञको देखिये। यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बड़े प्रारब्ध की बात है जो पिछले पुरखावों की कीर्त्ति का बढ़ानेवाला राजा दुर्योधन यज्ञ करता है। हम भी चलते परंतु अब हम क्योंकर चल सकते हैं, हमको तेरह वर्ष तक अपनी प्रतिज्ञा पालन करनी है ११। १४ यह सुनकर भीमसेन बोला कि राजा युधिष्ठिर तो तेरह वर्ष बीतने पर युद्धरूपी यज्ञ में अस्त्र-शस्त्र की प्रज्वलित अग्नि में उन सबको होमने के लिये आवेंगे और जब युधिष्ठिर की क्रोधरूपी अग्नि बढ़ेगी और उस अग्नि में भस्म होते हुए धृतराष्ट्र के पुत्र जलने लगेंगे तब मैं भी क्रोधरूपी हवि को उनके ऊपर होमने को आऊंगा। तू दुर्योधन से जाकर ऐसे ही कहि दीजो १५। १७ इसके पीछे पाण्डवों ने और कुछ नहीं कहा और उस दूत ने वहां से आकर सब हाल दुर्योधन को कह सुनाया १८ तदनन्तर देश देश के राजा और ब्राह्मण हस्तिनापुर में आकर इकट्ठे हुए १९ उन सबकी पूजा कौरवों ने शास्त्र की रीति से की और वे प्रसन्न होकर यज्ञ देखने लगे २० उस समय राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी को प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि तुम ऐसा प्रबन्ध करो कि यज्ञशाला में सब मनुष्य अन्न आदि से तृप्त और सुखी रहें २१। २२ यह सुनकर धर्मवेत्ता, विद्वान् विदुरजी ने सब वर्णों के मनुष्यों का यथायोग्य आदर सत्कार किया और भक्ष्य अर्थात् खाने के पदार्थ, पेय अर्थात् पीने के पदार्थ, अन्न, गन्धमाला और अनेक प्रकार के वस्त्रों से सबको युक्त कर दिया २३। २४ इस प्रकार से सब राजा लोग और सहस्रों ब्राह्मण यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त रहा किये, उपरान्त उन सबको नानाप्रकार का धन देकर बिदा किया और दुर्योधन ने सब भाइयों-सहित कर्ण और शकुनि के साथ नगर में प्रवेश किया ॥ २५। २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ छप्पनवाँ अध्याय।

कर्ण का अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा करना, उसे सुनकर युधिष्ठिर का शोच करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! नगर में प्रवेश करने के समय सूतलोग दुर्योधन की स्तुति करने लगे और मनुष्यों ने उस महाधनुर्धर राजसत्तम की प्रशंसा की १ इसके पीछे सब लोगों ने चन्दन से लिप्त खीलें मार्ग में बिछा दीं और कहने लगे कि हे नृप! प्रारब्ध से तुम्हारा यह यज्ञ निर्विघ्नता से समाप्त हुआ २ उसी समय दूसरी जाति के मनुष्य जो कि उचित कहना नहीं जानते थे, उन्होंने कहा कि हे राजन्! तुम्हारा यह यज्ञ राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के सदृश तो कहां सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं है। ऐसा वहां कितेक वातिक लोगों ने उस जनाधिपति से कहा ३।४ और सुहृदों ने कहा कि यह यज्ञ सब यज्ञों से अधिक है। ययाति, नहुष, मान्धाता और भरत इसी यज्ञ को करके शुद्ध होकर स्वर्गलोक को गये थे। इस प्रकार से राजा दुर्योधन सुहृदों के कहे हुए शुभ वचनों को सुनता हुआ अपने घर में प्रविष्ट हुआ और माता पिता के चरणों में बन्दना करके भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और बुद्धिमान् विदुरजी को प्रणाम करके सुन्दर आसन पर बैठ गया। उसके भाइयों ने उसको नमस्कार किया और वे सब उसके चारों ओर बैठ गये। उस समय कर्ण ने उठकर उससे कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! प्रारब्ध से तुम्हारा यह वैष्णवयज्ञ समाप्त हुआ ५।६ अब जब युद्ध में पाण्डव मारे जायँगे और तुम राजसूययज्ञ कर लोगे तब मैं फिर तुम्हारी पूजा करूंगा १० यह सुनकर दुर्योधन बोला तुमने पाण्डवों के विषय में यह सत्य वार्ता कही कि उनके मारे जाने और मेरा राजसूययज्ञ करने पर फिर मैं इसी प्रकार से वृद्धि पाऊंगा। यह कहकर दुर्योधन कर्ण से मिला और राजसूययज्ञ करने की चिन्ता करने लगा ११।१३ तब उसने सब पास बैठे हुए कौरवों से पूछा कि हे कौरवो! मैं पाण्डवों को मारकर कब उससे श्रेष्ठ राजसूययज्ञ को करूंगा? यह सुनकर कर्ण बोला कि सुनिये १४।१५ जब तक मैं अर्जुन को न मार लूंगा तब तक अपने पैर किसी से न धुलाऊंगा और मांसभक्षण और सुरापान भी नहीं करूंगा १६ और जो कोई मुझसे कुछ मांगेगा उससे यह नहीं कहूंगा कि मैं तुझको वह नहीं दे सकता हूं। यह प्रतिज्ञा सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्रों ने बड़े हर्ष से बड़ा कोलाहल किया और सबने यह समझ लिया कि पाण्डव जीत लिये गये १७।१८ इसके पीछे हे राजेन्द्र! दुर्यो-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धन ने कर्ण को बिदा किया और आप चैत्ररथ वन के समान अपने घर में चला गया १६ उसके चले जाने पर और सब लोग भी अपने अपने घरोंको चले गये और पाण्डव दूत की बात की चिन्ता में मग्न रहकर सुखपूर्वक नहीं बसे। इसके पीछे पाण्डवों ने दूत से सुना कि कर्ण ने अर्जुन के मारने की प्रतिज्ञा की है। उसको सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़ा उद्विग्न हुआ और पिछले क्लेशों को याद करके और कर्ण को बड़ा पराक्रमी और अभेद्य कवचधारी जानकर उसको चैन नहीं पड़ा २०।२३ और उसी चिन्ता में उसको द्वैतवन का सरोवर जहां बहुत से व्याल और मृग रहते थे छोड़ना पड़ा २४ और राजा दुर्योधन यज्ञ करने के पीछे अपने वीर भाई और भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य सहित राज्यशासन करने लगा २५ और सूतपुत्र समरशोभी कर्ण से मिलकर राजाओं का प्रिय काम करने लगा २६ इसके पीछे उसने बहुत से यज्ञों में ब्राह्मणों की पूजा बहुत सी दक्षिणा से की और धन को यह समझकर कि इसके होने में दो ही प्रयोजन हैं, भोग करना और दान देना। उसने अपने भाइयों का भी आदर सत्कार किया ॥ २७ । २८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥

दोसौ सत्तावनवाँ अध्याय।

द्वैतवन के मृगों का युधिष्ठिर से वनान्तर जाने की स्वप्न में प्रार्थना करना व उनका काम्यकवन में जाना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि हे मुनि-नायक! महाबलशाली पाण्डवों ने दुर्योधन को छुटाने के पीछे उस वन में क्या किया, वह मुझसे कहने योग्य हो १ वैशंपायनजी बोले कि हे राजन्! इसके पीछे एक दिन द्वैतवन में पाण्डव सो रहे थे, रात्रि के अन्त होने के समय युधिष्ठिर को द्वैतवन के मारने से बचे हुए मृगों ने स्वप्न में अपने दर्शन दिये २ उन कांपते हुए और हाथ जोड़े हुए मृगों को देखकर राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि तुम कौन हो और क्या चाहते हो? जो कुछ कहना चाहते हो सो कहो ३ यह सुनकर मृग बोले कि हे भरतवंशिन्, महाराज! हमलोग इस द्वैतवन के वासी मृग हैं, मरते मरते हमहीं बच रहे हैं। इससे हमलोगों की आप से प्रार्थना है कि आप अपने निवास को बदल दीजिये जिससे हम मारे न जावें ४। ५ आपके अस्त्रवेत्ता शूरवीर चारों भाइयों ने हम वनवासियों के कुलों के मृगों को मारते

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मारते थोड़ा कर डाला है ६ सो हे राजेन्, युधिष्ठिर! हमलोग थोड़े से केवल बीजरूप बच रहे हैं, जो आप अपनी कृपा करें तो हम लोगों की फिर वृद्धि हो जायगी ७ उन भयभीत मृगों की उक्त बातों को सुनकर सब प्राणियों के हितकारी युधिष्ठिर ने दया विचारकर उनसे कहा कि बहुत अच्छा, अब हम ऐसा ही करेंगे ८। ६ इसके पीछे युधिष्ठिर की आंखें खुल गईं, तब उसने मृगों पर दया विचारकर सब भाइयों से कहा कि इस वन के मृगों ने आज स्वप्न में हम से प्रार्थना की है कि हमलोग थोड़े से रह गये हैं, हम पर दया कीजिये सो उन की प्रार्थना सत्य है। हमलोगों को इन वन के मृगों को खाते हुए एक वर्ष और आठ महीने हुए। अब हमको इन पर दया करना उचित है १०। १२ इससे मैं चाहता हूं कि हमलोग अब उससे रमणीक काम्यकवन को चले चलें जहां बहुत से मृग और वन, मरुभूमि के शिर पर तृणबिन्दु सरोवर के पास हैं १३ और वहां रहकर अपने शेष काल को व्यतीत करें। इसके उपरान्त पाण्डव इन्द्रसेन आदि सेवक और ब्राह्मणों सहित चल दिये और ऐसे मार्ग से जिसमें अन्न और जल का सुपास था, उस पवित्र काम्यकनामी तपोवन में जा पहुँचे और उसमें प्रवेश करते हुए ऐसे जान पड़े मानो सुकृती लोग स्वर्ग को जा रहे हैं॥ १४। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५७॥

दोसौ अट्ठावनवाँ अध्याय।

व्यासजी का पाण्डवों को अनेक धर्मों का उपदेश तथा दान की प्रशंसा करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस वन में बसते बसते महात्मा पाण्डवों का ग्यारहवाँ वर्ष बड़े कष्ट से व्यतीत हो गया और उन वीरों ने आने वाले समय की प्रतीक्षा करके सब दुःख सहे और फल-मूल भोजन करते रहे १। २ ग्यारहवाँ वर्ष व्यतीत होने के पीछे राजा युधिष्ठिर के चित्त में अपने अपराध से प्राप्त हुए दुःख की चिन्ता व्याप्त हो गई और उसको उस चिन्ता के कारण से इस प्रकार से नींद नहीं आई जैसे उस मनुष्य को निद्रा नहीं आती है जिसके हृदय में भाले लगे हों और शकुनि आदि ज्वारियों की दुरात्मता और कर्ण के परुष वचनों को याद करके उसने श्वास ले लेकर चित्त में अग्निरूपी क्रोध धारण किया ३। ५ और अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और भीमसेन ने भी युधिष्ठिर के कारण से वन के महादुःखों को सहा परंतु जब प्रतिज्ञा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धर्मचारी का जन्म सफल हो गया १।२ व्यासजी बोले कि हे राजन्! मुद्गल-नामी एक ब्राह्मण कुरुक्षेत्र का निवासी था और बड़ा जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सत्यवादी और दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला था। उसकी वृत्ति शिलोञ्छ थी अर्थात् वह अपना पेट शिला बीनकर जो अन्न लाता था उससे भरता था ३ और क्रियावान्, तपस्वी और अतिथि की पूजा करनेवाला था और कपोतवृत्ति में स्थित होकर इष्टीकृत यज्ञ किया करता था ४ उसने अपनी स्त्री और पुत्रसहित पक्षभर में एक दिन भोजन करने का नियम ले लिया और इस प्रकार से उसने कपोतवृत्ति से अर्थात् कपोत की भांति एक द्रोण धान इकट्ठे कर लिये ५ वह ब्राह्मण मत्सरता से रहित था और दर्शपौर्णमास नाम यज्ञ करता था और जो कुछ अन्न देवता, अतिथियों को देने पर शेष रह जाता था उसी से अपना निर्वाह करता था ६ उसके दिये हुए अन्न को त्रिलोकीनाथ इन्द्र देवताओं सहित ग्रहण करता था ७ एक समय जब पर्वकाल आया तब उस ब्राह्मण ने बड़ी प्रसन्नता से अतिथियों को अन्न दान दिया और मत्सरता न होने के कारण से जो अन्न दान देने से शेष बच रहा वह अतिथियों के दर्शन से और बढ़ गया, इस प्रकार से सैकड़ों ज्ञानी ब्राह्मण भोजन कर गये और उसका अन्न बढ़ता ही चला गया ८। ६ और कारण बढ़ने का यह था कि उस ब्राह्मण ने जो अन्न का त्याग कर दिया था वह त्याग विशुद्ध अर्थात् सच्चे मन से था। इसके पीछे उस ब्राह्मण का हाल दुर्वासा ऋषि ने सुना १० हे पाण्डव! वे उसके पास दिगम्बर, उन्मत्त के समान अपूर्व रूप धारण करके अनेक प्रकार के परुष वचन बोलते हुए आये और उस वेदपाठी ब्राह्मण से बोले ११।१२ कि हे द्विजसत्तम! मैं अन्न के लिये तुम्हारे पास आया हूं। मुद्गल बोला कि आपका आना शुभ हो, आइये। यह कहकर उस ब्राह्मण ने दुर्वासा को बड़ी श्रद्धा से पाद्य और आचमन कराया और अन्न को तैयार करके उनके सामने परोस दिया। दुर्वासा भूख के कारण से उस अन्न को खागये तब उस अतिथि व्रती व धृतव्रती ब्राह्मण ने और अन्न परोसा, वह भी उन्होंने खा लिया। इस प्रकार से जितना अन्न उस ब्राह्मण ने बनाया था सब दुर्वासा ने खा लिया और जो जूंठन बची थी उसको अपने शरीर में लगाकर दुर्वासा चल दिये १३।१७ उस पक्ष में वह ब्राह्मण निराहार रह गया और जब दूसरा पक्ष पूरा हुआ तब फिर दुर्वासा चले आये और उक्त प्रकारसे सब अन्न खा गये १८ इसी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रकार से दुर्वासाजी ने उस ब्राह्मण को क्षुधा से क्रियाहीन करने के लिये छह पक्ष तक ऐसा ही किया और उस ब्राह्मण को कुछ भोजन नहीं मिला परंतु दुर्वासा उसको क्रियाहीन न कर सके। वह अपनी स्त्री और अपने पुत्रसहित वही शिला बीन कर अन्न लाने की वृत्ति करता रहा। क्रोध, मत्सरता, अपमान और संभ्रम छह पक्ष तक भूखा रहने पर भी उस ब्राह्मण के निकट न जा सके १६। २१ तब दुर्वासा उसके मन को विकार-रहित, शुद्ध और निर्मल देखकर प्रसन्न हुए और बोले कि इस लोक में तेरे समान कोई मनुष्य दानी और मत्सरता-रहित नहीं है २२। २३ यह रसों के स्वाद को चाहनेवाली जीभ मनुष्य को रसों की ओर खींचती है और क्षुधा से मनुष्य का धैर्य जाता रहता है और प्राण अन्न के आश्रय रहता है और मन बड़ी कठिनता से वश में होता है और मन और इन्द्रियों को एकाग्र करना भी विना तप के दुर्लभ है और जो वस्तु श्रम से इकट्ठी की जाती है उसको त्यागने में भी मन को बड़ा कष्ट होता है। परंतु हे साधो! तुम में मैंने एक भी बात नहीं पाई। तुमने सबको अपने वश कर लिया है २४।२६ हम तुम से मिलकर बहुत प्रसन्न और अनुगृहीत हुए। तुम उत्तम पुरुष हो, इन्द्रियों को तुमने जीत लिया है और तुम बड़े धैर्यवान् अन्न का विभाग अच्छे प्रकार से करनेवाले, दयावान्, सत्यवादी और धर्मात्मा हो। तुमने अपने शुभ कर्मों से सब लोक जीत लिये। अब तुमको परमगति प्राप्त होगी २७। २८ स्वर्ग-वासी भी तुम्हारे महादान की प्रशंसा करते हैं। तुम सदेह स्वर्ग को जाओगे २६ मुनि दुर्वासा यह कह ही रहे थे कि इतने में देवदूत बड़ा दिव्य विमान जो कि हंस, सारसों के चित्रों से संयुक्त, किंकिणीजालों की मालाओं से विभूषित, काम-गामी, आश्चर्यदायक होकर दिव्य गन्धवाला था उसे लेकर मुद्गल के पास आ पहुँचा और कहने लगा कि हे ब्रह्मर्षे! आप इस विमान पर सवार हूजिये, इसको आपने अपने कर्मों से जीत लिया। आप परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ३०। ३२ यह सुनकर मुद्गल बोला कि हे देवदूत! मैं आपको अपना मित्र बनाके पूछता हूं कि स्वर्गवासी लोग क्या तपस्या करते हैं और स्वर्ग में क्या क्या सुख मिलता है और क्या दोष है? कृपा करके सत्य सत्य जैसा वृत्तान्त हो कहिये। उसको सुनकर मैं अपने स्वर्ग जाने का निश्चय करूंगा॥ ३३। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५६॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ साठवाँ अध्याय।

देवदूत से स्वर्ग के दोष-गुण सुनकर मुद्गल का स्वर्ग को न जाकर निर्वाणपद को पाना।

देवदूत बोला हे महर्षे! आपकी बड़ी अच्छी बुद्धि है जो आप निर्बुद्धि के समान पूछते हैं कि स्वर्ग में क्या दोष और क्या सुख है? स्वर्ग का सुख माननीय और प्राप्त करने के योग्य है। वह स्वर्ग अर्थात् सुखलोक सबसे ऊंचा और सत्पथ है। हे मुद्गल! वहां सत्पुरुष देवयान मार्ग से जाते हैं अर्थात् विमान में बैठकर जाते हैं। झूंठे, नास्तिक तथा तपस्या और यज्ञ न करनेवाले मनुष्य वहां नहीं जा सकते हैं १।३ वहां उन लोगों को वास मिलता है जो धर्मात्मा, चित्त को जीतनेवाले, शान्तस्वरूप, दान्तस्वरूप, मत्सरतारहित, दानी, धर्मपरायण, शूरता से युद्ध में मरनेवाले, शम और दम के अभ्यासी हैं। वहां देवता, साध्यगण, विश्वेदेवा, महाऋषि, यामाधामानाम गण और गन्धर्व, अप्सरा, पृथक् पृथक् शुभ लोक प्रकाशमान, तेजरूपी और सब पदार्थों से परिपूर्ण हैं। ये लोक उन मनुष्यों को मिलते हैं जो पुण्य और सत्पुरुषों के कर्म करते हैं ४।७ वहीं तेंतिस सहस्रयोजन परिधि रखनेवाला सुनहरा पर्वत है और नन्दन-वन आदि देवताओं के विहार करने के वन हैं ८ हे महामुने! पुण्यात्मा लोग वहां जाकर विहार करते हैं और वहां के रहनेवालों को भूंख, प्यास, गरमी, सरदी और भय नहीं जान पड़ते हैं और ग्लानि भी कोई नहीं करता है और न किसी को कुछ अशुभ होता है। चारों ओर से वहां सुखदायी और मनोहर सुगन्ध चली आती है और ऐसे शब्द सुनाई देते हैं जिनसे मन प्रसन्न होता है और कानों को अच्छे लगते हैं और शोक, बुढ़ापा और विलाप किसी को नहीं सताते हैं ६।११ उस लोक में इस लोक के किये हुए कर्मों का फल मिलता है। उन्हीं कर्मों से वहां मनुष्यों को ऐश्वर्य प्राप्त होता है १२ हे मुद्गल! वहां जानेवाले मनुष्यों के शरीर कर्मज और तैजस हो जाते हैं। माता पिता से उत्पन्न हुए शरीर नहीं रहते हैं १३ और शरीर में पसीना अथवा दुर्गन्ध नहीं आती है और न कोई वहां मूत्र और विष्ठा करता है और कपड़े भी वहां के रज से मैले नहीं होते हैं १४ और जो माला वहां पहिरी जाती है, वह कुम्हलाती नहीं है। सदैव उसमें सुगन्ध आया करती है और वहां जानेवालों को चढ़ने के लिये विमान मिलता है और वे लोग ईर्ष्या, शोक, श्रम, मोह और मत्सरतारहित होकर सुखपूर्वक बसते हैं १५।१६ इन लोकों के ऊपर और लोक हैं और उनके ऊपर भी दूसरे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लोक हैं। इस प्रकार से लोक के ऊपर लोक चले गये हैं और नीचे के लोक से ऊपर का लोक विशेष दिव्यगुण रखता है १७ हे ब्रह्मन्! पहिले ब्राह्मणों के लोक बड़े शुभ और तेजरूप हैं। पवित्र ऋषिलोग शुभ कर्म करके वहीं जाते हैं १८ और इन लोकों के ऊपर ऋभुनामी देवताओं के लोक हैं। इन देवताओं की पूजा स्वर्गवासी देवता करते हैं १९ ये लोक स्वयं प्रकाशमान, प्रभारूप और सब कामनाओं के देनेवाले हैं। इन लोकों में स्त्री का दुःख नहीं होता है और मत्सरता का नाम नहीं है २० वहां के उक्त देवता अपना निर्वाह आहुतियों से नहीं करते हैं और न अमृत भोजनकरते हैं। उनके शरीर दिव्य हैं, वहां विग्रह का नाम नहीं है २१ ये देवताओं के देवता सुख नहीं चाहते हैं और सनातन हैं, कल्प के परिवर्तन होने पर उनका नाश नहीं होता है २२ वे न बूढ़े होते हैं, न मरते हैं और उनको हर्ष, प्रीति, सुख, दुःख, राग और द्वेष भी कुछ नहीं होता है २३ उस परा गति को देवता भी चाहा करते हैं। काम्य-पुरुषों को उस गति का मिलना दुर्लभ और अगम्य है २४ ये देवता सब तेंतीस हैं। इनके लोक ज्ञानी मनुष्यों को श्रेष्ठ नियम के साधन और विधिपूर्वक दान करने से मिलते हैं। सो हे मुद्गल! तुम्हारे दान के कारण से यह संपत्ति तुमको सुखपूर्वक मिली है। अब तुम उस संपत्ति को भोगो २५। २६ स्वर्ग के सुख और अनेक लोकों के जो जो गुण थे वे हमने तुमसे कहे। अब उनमें से जो जो दोष हैं उनको भी सुनो २७ हे मुद्गल! स्वर्ग में मनुष्य अपने किये हुए कर्म का फल ही केवल भोगता है और कर्म नहीं कर सक्ता है इससे उस कर्म की दिन दिन जड़ कटती जाती है और जब कर्म का फल पूरा पूरा भोग चुकता है तब क्षीणपुण्य होने से पृथ्वी पर गिरा दिया जाता है। इसको मैं स्वर्ग का दोष समझता हूं २८। २९ क्योंकि नीचे स्थान पर रहनेवाले पुरुषों को जो दुःख परम ऐश्वर्यवान् मनुष्यों को देखकर होता है वह दुष्कर होता है ३० जब मनुष्य स्वर्ग से गिराया जाता है तब उसका ज्ञान मोह से नष्ट हो जाता है और माला के कुम्हलाने और स्वर्ग से गिरने के समय उसको भय होता है ३१ सो हे मुद्गल! ब्रह्मलोक से लेकर सब ऊपर के लोकों में यही एक दारुण दुःख है नहीं तो स्वर्ग आदि लोकों में अयुतों गुण ही गुण हैं ३२ और एक यह भी गुण है कि जब वह स्वर्ग से गिरा दिया जाता है तब पृथ्वी पर भी ऐसी जगह जन्म पाता है जहां उसको सब सुख प्राप्त होते हैं, परंतु जो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वह वहां ज्ञानी न होकर नीचकर्म करता है तो फिर उसको अधमगति प्राप्त होती है ३३ । ३४ हे ब्रह्मन् ! मनुष्य जो कुछ कर्म यहां करता है उसका फल परलोक में भोगता है अर्थात् यह लोक कर्मभूमि और स्वर्गलोक भोगभूमि है ३५ मुद्गल बोले कि हे देवदूत ! तुमने स्वर्लोक के ये बड़े भारी दोष कहे हैं । अब जो दूसरा लोक निर्दोष हो उसे कहिये ३६ देवदूत बोला कि ब्रह्मलोक से ऊपर श्रीविष्णुजी का परम धाम है जोकि शुद्ध, सनातन, ज्योतिस्स्वरूप है जिसे परब्रह्मरूप कहते हैं ३७ वहां दम्भी, लोभी, महाक्रोधी, मोही, द्रोही और विषयी पुरुष नहीं जाते हैं । वहां केवल वे ही मनुष्य वास पाते हैं जो ममता तथा अहंकार से रहित, निर्द्वन्द्व और जितेन्द्रिय होकर ध्यानयोग में परायण रहते हैं ३८ । ३९ यह सब वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में कहा । अब चलिये, देर न करिये ४० व्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! मुद्गल ने उक्त वृत्तान्त को सुनकर विचार करके देवदूत से कहा ४१ कि हे तात ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं, तुम सुखपूर्वक जावो । मुझको सुख अथवा दोषयुक्त स्वर्ग से कुछ काम नहीं है ४२ क्योंकि स्वर्ग से गिरने के समय बड़ा दुःख और दारुण परिताप होता है और स्वर्गवासियों को इस लोक में फिर आना पड़ता है, इसी कारण से मेरी इच्छा स्वर्ग जाने की नहीं है ४३ अब मैं उसी शुद्ध और बड़े स्थान को प्राप्त करने का यत्न करूंगा जहां जाकर मनुष्य को शोक और पीड़ा नहीं होती है और जहां से फिर लौटकर मनुष्य नहीं आता है ४४ यह सुनकर मुद्गल ने देवदूत को विदा कर दिया और आप शिला बीनने की वृत्ति रखकर शम का अभ्यास करने लगा ४५ और निन्दा, स्तुति और ढेला, पत्थर और सुवर्ण को एकसा समझकर ज्ञानयोग से ध्यान में मग्न रहने लगा ४६ उस ध्यान योग से उसे बल अर्थात् परम वैराग्य और उत्तम बुद्धि अर्थात् ज्ञान हो गया और जिससे कि उसको सनातन और निर्वाणपद को देनेवाली सिद्धि प्राप्त हो गई ४७ इस कारण से हे युधिष्ठिर ! तुमभी समृद्ध राज्यके भ्रष्ट होने का शोच मत करो तपसे फिर तुमको राज्य मिलेगा ४८ मनुष्य को सुख के पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख, क्रमपूर्वक चक्रके आरों के समान मिला करता है ४९ सो हे अपार पराक्रमिन् ! तेरह वर्ष के व्यतीत होने पर तुमको फिर बाप दादे का राज्य मिलेगा । तुम किसी बात की चिन्ता मत करो ५० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भगवान् व्यासजी उक्त प्रकार से कहकर तप करने को अपने आश्रम को चले गये ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ एकसठवाँ अध्याय।

दुर्वासा ऋषि का शिष्यों सहित आना व दुर्योधन का उनकी सेवा कर उनसे वरदान पाना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय बोला कि हे महामुने, वैशंपायनजी! जिस समय महात्मा पाण्डव उक्त प्रकार से वन में मुनियों की चित्र विचित्र कथायें सुनते थे और सूर्य के दिये हुए पात्र जिसमें बनाया हुआ अन्न द्रौपदी के भोजन करने के समय तक अक्षय बना रहता था और वन के मृगों के मांस से ब्राह्मणों को तृप्त करते थे, उस समय धृतराष्ट्र के पापी और दुरात्मा पुत्र, दुःशासन, कर्ण और शकुनि की सलाह में रहनेवाले दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ कैसा बर्ताव किया। हे भगवन्! कृपा करके यह सब वृत्तान्त वर्णन कीजिये १।५ वैशंपायनजी बोले कि महाराज! बहुत अच्छा, सुनिये। दुर्योधन पाण्डवों की वृत्ति नगरवासियों की सी होने को सुनकर कर्ण और दुःशासन की सलाहपूर्वक पाण्डवों के साथ पाप करना विचारने लगा। इसी अवसर में उसके पास महातपस्वी और तेजस्वी दुर्वासाऋषि दशसहस्र शिष्यों को साथ लिये हुए आन पहुँचे। उन परम कोपशाली मुनि को देखकर ६।८ दुर्योधन ने भाइयों सहित बड़ी नम्रता से उनका निमन्त्रण किया और उनके समीप किंकर के समान रहकर उनकी सब प्रकार से पूजा की। दुर्वासाजी ने वहां कई दिन वास किया और दुर्योधन शाप के भय से निरालस्य होकर दिन रात्रि उनकी सेवा में बना रहा ९।११ वे महात्मा कभी यह कहकर स्नान करने को चले जाते थे कि मैं बहुत भूखा हूँ जल्दी अन्न लाओ और देर में लौटकर आते थे और कभी यह कहकर अन्तर्धान हो जाते थे कि अब मुझे क्षुधा नहीं है, मैं भोजन नहीं करूंगा और फिर अकस्मात् आकर कहने लगते थे कि हमारे लिये जल्दी भोजन लाओ और कभी आधीरात को उठ बैठते और पहिले के समान रसोई करवाते और भोजन न करते। इस प्रकार से दुर्वासाजी छल से परीक्षा करते रहे परंतु जब उन्होंने दुर्योधन के मन में किसी प्रकार का विकार अथवा क्रोध न पाया तब वे प्रसन्न हुए और दुर्योधन से बोले कि हे भरतवंशिन्! जो तेरी इच्छा हो सो मांग ले। मेरे प्रसन्न होने पर तुझे कोई पदार्थ अलभ्य नहीं रह सकता है १२।१६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्योधन ने दुर्वासाजी के उक्त वचनों को सुनकर अपने को जीता हुआ समझा और कर्ण, दुःशासन आदि की सलाह से जो उन्होंने पहिले ही से करली थी, उस दुर्बुद्धि ने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रसन्न होकर यह वरदान मांगा कि महाराज! जैसे आप शिष्यों सहित मेरे यहां अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार से राजा युधिष्ठिर के यहां भी, जो हमारे कुल में बड़ा धर्मात्मा गुणी और शीलसंपन्न है और अपने भाइयों सहित वन में रहता है, उस समय जाकर अतिथि हूजिये जब राजपुत्री द्रौपदी अतिथियों को भोजन कराके और आप भी भोजन पाकर सुख से बैठी होवे १७। २२ यह सुनकर दुर्वासाजी यह कहकर चल दिये कि तेरी प्रीति के कारण से मैं ऐसा ही करूंगा। दुर्योधन उसको सुनकर अपने को सिद्धार्थ समझने लगा २३। २४ और कर्ण का हाथ अपने हाथ से पकड़कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उस समय कर्ण ने भी आनन्द से उससे कहा २५ कि तेरी कामना प्रारब्ध से पूरी हुई, प्रारब्ध से तुम्हारी वृद्धि हुई और प्रारब्ध ही से तुम्हारे शत्रु दुस्तर व्यसनार्णव में डूबे २६ अब वे पाण्डव दुर्वासा की क्रोधरूपी अग्नि में पड़कर अपने पापों से दुस्तर नरक में पड़ेंगे २७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकार से वे सब छली और पापी आपस में हँसते हुए दुर्योधन आदि अपने-अपने स्थानों को चले गये॥ २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६१॥

दोसौ बासठवाँ अध्याय।

दुर्वासा का पाण्डवों के पास जाना तथा श्रीकृष्णजी का पाण्डव-रक्षार्थ आना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे एक समय दुर्वासा ऋषि पाण्डवों को सुख से बैठे हुए और द्रौपदी को भोजन करके स्थित जानकर दश सहस्र शिष्य साथ लिये हुए काम्यकवन में जा पहुँचे। उनको देखकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उनको लिवा लाया और अच्छे आसन पर उनको बैठाकर और विधिवत् पूजा करके उनका निमन्त्रण किया और कहा कि महाराज! आह्निक कर्म अर्थात् स्नान संध्या आदि करके शीघ्र आ जाइये १।४ यह सुनकर दुर्वासा इस बात को विना शोचे विचारे कि यह मुझको शिष्यों सहित कैसे भोजन करावेगा, स्नान करने चले गये ५ और जल में स्नान करने लगे। उस समय पतिव्रता द्रौपदी अन्न के लिये बहुतसी चिन्ता करने लगी परंतु जब उसको अन्न मिलने की कोई राह न जान पड़ी तब वह कंस के मारनेवाले श्रीकृष्णजी का ध्यान करके विनय करनेलगी कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे देवकीनन्दन! हे अविनाशिन्! ६। ८

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हे वासुदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तार्तिनाशन, हे विश्वात्मन्, हे विश्वजनक, हे विश्वकर्त्तः, हे प्रभो, हे अव्यय, हे शरणागतपालक, हे गोपाल, हे प्रजापाल, हे परात्पर, हे चित्तवृत्तिप्रवर्त्तक ! तुमको मैं नमस्कार करती हूं ! ९ । १० तुम श्रेष्ठ हो, वरदाता हो, अनन्त हो, अगतियों की गति हो, पुराणपुरुष हो, अचिन्त्य हो, अगोचर हो, सर्वाध्यक्ष हो, पराध्यक्ष हो, मैं तुम्हारी शरण हूं । हे शरणागतवत्सल ! अपनी कृपा से मेरी रक्षा करो ११ । १२ तुम्हारा वर्ण नीले कमल के समान है, नेत्र तुम्हारे कमलगर्भ के तुल्य अरुण हैं और तुम पीताम्बर और कौस्तुभमणि धारण किये हुए प्रकाशमान हो, सब जीवों के आदि, अन्त तुम्हीं हो, तुम्हीं जीवों के परायण और परसे भी परतर, ज्योतीरूप विश्वात्मा हो और सर्वतोमुख हो १३ । १४ हे देवेश ! तुम्हीं को जगत् का परमबीज और सब सम्पत्तियों का निधान कहते हैं । तुम ऐसे नाथ के होने से मुझको किसी आपत्ति से भय नहीं लगती है १५ हे नाथ ! जैसे आपने पहिले मुझे दुःशासन के हाथ से सभा में छुटाया था उसी प्रकारसे अब भी मेरा उद्धार कीजिये १६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी की उक्त स्तुति को सुनकर देवदेवेश भक्तवत्सल श्रीकृष्णजी उसके संकट को जानकर रुक्मिणीजी को जो उनके पास शय्या पर सो रही थी छोड़कर वहां चले आये १७ । १८ द्रौपदी उनको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने प्रणाम करके उनसे दुर्वासा ऋषि के आने का वृत्तान्त कहा १९ यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्रौपदि ! मुझे भूख बहुत लगी हुई है, जल्दी से मुझे कुछ भोजन करने को दे, पीछे और काम कीजियो २० यह सुनकर द्रौपदी लज्जित होकर बोली कि महाराज ! सूर्य की दी हुई स्थाली में उसी समयतक अन्न रहता है जबतक मैं भोजन नहीं कर लेती हूं २१ सो मैं भोजन करचुकी, अब अन्न का लेशमात्र नहीं है । तब श्रीकृष्णजी बोले कि अयि कृष्णे ! मैं मार्गश्रम और क्षुधा से बहुत पीड़ित हूं, यह समय हँसी का नहीं है, जल्दी से उस स्थाली को मेरे पास लाकर मुझे दिखला २२ । २३ इसके पीछे क्लेशविनाशक महाबाहु श्रीकृष्णजी ने हठ से वह स्थाली मँगवाई और उसके कण्ठ में जो कुछ शाक लगा हुआ था उसे खालिया । उस समय श्रीकृष्णजी ने कहा कि भक्तभयहारी, ईश्वर, विश्वात्मा, यज्ञभोक्ता पुरुष इस अन्न से प्रसन्न और तृप्त होजावें २४।२५ इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी ने सहदेव से कहा कि तुम जाकर दुर्वासाजी को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भोजन करने के लिये शीघ्र बुला लाओ। यह सुनकर सहदेव उन मुनियों को बुलाने को चल दिये परंतु सहदेव के पहुँचने के पहिले जब वे मुनि नदी में जाकर स्नान करने लगे तब उनको अन्न के रस को साथ लिये हुए डकारें आने लगीं, वे उन डकारों को देखकर जल के बाहर निकल और परस्पर एक दूसरे को देखकर दुर्वासा से कहने लगे कि महाराज! आप अन्न तय्यार करने को कहकर स्नान करने को यहां आये हैं परंतु हमारा उदर कण्ठाग्र तक भरा हुआ है हमलोग क्या भोजन करेंगे? आपने वृथा भोजन तय्यार कराये हैं २६। ३० दुर्वासाजी बोले कि वृथा भोजन तय्यार कराने से हमने राजऋषि युधिष्ठिर का बड़ा अपराध किया, वह क्रूरदृष्टि से देखकर हमको भस्म कर डालेगा। हे शिष्यो! मुझको राजा अम्बरीष का वृत्तान्त याद है, इससे मैं हरि के पादाश्रित जनों से बहुत डरता हूं। ये पाण्डव भी बड़े महात्मा, धर्मात्मा, शूरवीर, विद्यावान्, व्रती, तपस्वी, सदाचारी और वासुदेवजी के परमभक्त हैं। निश्चय क्रोध करने पर वे हमलोगों को इस प्रकार से भस्म कर डालेंगे जैसे अग्नि रुई के ढेर को दग्ध कर डालती है। यह सुनकर दुर्वासा के सब शिष्य गुरुसहित भयभीत होकर पाण्डवों से विना कहे सुने भाग गये ३१। ३५ वैशंपायनजी बोले कि श्रीमान् गुरु मुनिनायक दुर्वासाजी से कहे हुए वे सब ब्राह्मणलोग पाण्डवों से अत्यन्त भयभीत होकर दशो दिशाओं को पलायित हो गये ३६ जब सहदेव वहां पहुँचा और उस देवनदी पर उसको दुर्वासाजी शिष्यों सहित न मिले तब वह उनको वहां ढूंढ़ने लगा ३७ परंतु उसको उनका कुछ पता नहीं मिला। इसके उपरान्त उस वन में रहनेवाले तपस्वियों ने उनके चलेजाने का वृत्तान्त सहदेव से कहा और उसने सब हाल युधिष्ठिर से आकर कह सुनाया ३८ उसको सुनकर पाण्डव कुछ कालतक उनके लौटने की बाट देखते रहे, उपरान्त कहने लगे कि दुर्वासाजी आधीरात के समय अकस्मात् हमलोगों को आकर छलेंगे, हमलोग इस दैवरचित कष्ट के पार कैसे जावें? इस प्रकार से पाण्डवों को श्वास ले लेकर चिन्ता करते हुए देखकर श्रीकृष्णजी ने प्रत्यक्ष होकर कहा ३९। ४१ कि हे पाण्डवो! मैं उस परमक्रोधी ऋषि के आने की आपत्ति को जानकर द्रौपदी का बुलाया हुआ शीघ्र यहां आया हूं ४२ तुम उस ऋषि से किंचित भय मत करो। वह तुम्हारे तेज से भयभीत होकर पहिले ही से भाग गया है ४३ सदा धर्म करनेवालों को कभी पीड़ा नहीं होती है। अब मैं जाया चाहता

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हूं, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे ४४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पाण्डव द्रौपदीसहित श्रीकृष्णजी के वचन को सुनकर स्वस्थचित्त होगये और कहने लगे ४५ हे समर्थ! हे गोविन्द! तुम ऐसे नाथ के द्वारा हम इस बड़ी आपत्ति से इस प्रकार से बच गये जैसे समुद्र में डूबता हुआ मनुष्य नौका पाकर बच जाता है ४६ आपका कल्याण हो। इस प्रकार से श्रीकृष्णजी पाण्डवों से बिदा होकर चले गये और पाण्डव द्रौपदीसहित प्रसन्न होकर एक वन से दूसरे वन में विहार करने लगे। इस प्रकार से दुर्योधन आदि दुरात्माओं ने पाण्डवों से छल किया और वह छल उनका व्यर्थ हो गया। हे राजा जनमेजय! जो तुमने हमसे पूछा था वह उक्त प्रकार से हम कहचुके ॥ ४७। ४८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

दोसौ तिरसठवाँ अध्याय।

पाण्डवों के स्थान में आकर राजा जयद्रथ का दूत द्वारा द्रौपदी का हाल पूछना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भरतसत्तम, महारथी, पाण्डव उस काम्यकवन में घूम घूमकर देवताओं के तुल्य विहार करने लगे। उस वन में मृग बहुत से थे, पाण्डव उनकी अहेर खेलते थे और ऋतुकाल के अनुसार फूले फले हुए वन की रम्य पंक्तियों को देखते हुए वन में विहार करते थे। इस प्रकार से पाण्डवों ने कुछ काल वास किया। उपरान्त वे पांचों भाई ब्राह्मणों के लिये अहेर मारने के लिये एक ही साथ चारों दिशाओं को चले गये और अपने पुरोहित धौम्यऋषि की आज्ञा से द्रौपदी को तृणबिन्दुऋषि के आश्रम में छोड़ गये १। ५ उनके चले जाने पर सिन्धुदेश का राजा जयद्रथ, जिसके बाप का नाम बृहद्रथ था और जो अपना विवाह करने के लिये शाल्वदेश को जाता था, बहुत से राजा और सेना आदि को साथ लिये हुए काम्यकवन में आ पहुँचा और उसने उस निर्जन वन में आश्रम के द्वार पर स्थित पाण्डवों की प्रियभार्या यशस्विनी द्रौपदी को देखा जो अपने प्रकाश और अत्यन्त सुन्दरस्वरूप से उस वन के उद्देश को इस प्रकार से प्रकाशित कर रही थी मानों श्यामघटा में बिजली चमक रही है। उसको देखकर सब लोग उसके हाथ जोड़कर बिचारने लगे कि यह कोई अप्सरा है, अथवा देवकन्या है, या देवताओं की रची हुई माया है ६। १० इसके पीछे वह दुष्टचित्त राजा जयद्रथ उस निर्दोष अङ्गवाली बाला को देखकर कामासक्त हो गया और कोटिकास्य नामी क्षत्रिय को बुलाकर कहा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कि यह सुन्दरी किसकी कन्या अथवा भार्या है, मुझे तो यह मानुषी नहीं जान पड़ती है। जो यह सुन्दरी मुझको मिल जाय तो फिर मैं विवाह से कुछ प्रयोजन न रक्खूं इसीको लेकर अपनी राजधानी को चला जाऊँ ११ । १३ सो हे सौम्य, कोटिकास्य! तुम जाकर इससे पूछो कि तू किसकी बेटी है, इस कण्टक वन में किस लिये और कहां से आई है १४ कदापि यह पतली कमर रखनेवाली सुन्दरी मुझको चाहे तो मैं इस श्रेष्ठ स्त्री को पाकर पूर्णकाम हो जाऊंगा। जाओ इसके स्वामी को पूछ आवो १५ । १६ यह सुनकर वह कुण्डलधारी कोटिकास्य रथ से उतरकर द्रौपदी के पास गया और उससे इस प्रकार से पूछने लगा मानों गीदड़ व्याघ्र की वधू से पूछता है ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥

दोसौ चौंसठवाँ अध्याय।

दूत का द्रौपदी के पास जाकर उसके पति और पिता का नाम पूछना।

कोटिकास्य बोला हे सुन्दरि! तू कौन है जो इस वन में अकेली कदम्ब की शाखा को नवाये हुए इस आश्रम को इस प्रकार से प्रकाशित कर रही है मानों रात्रि के समय में अत्यन्त जलती हुई अग्नि की शिखा वायु से कम्पित हो रही है १ तेरा स्वरूप बड़ा सुन्दर है, तुझको इस वन में अकेले में डर नहीं लगता है, सत्य कह तू कौन है। देवी है, या यक्षी है, या दानवी है, या अप्सरा है, या दैत्य की वरांगना है, या सर्पों के राजा की कन्या है, या वनचारी राक्षस की स्त्री है अथवा राजा वरुण, यमराज, चन्द्रमा, कुवेर, धाता, विधाता, सूर्य और विष्णु आदि किसी देवता की पत्नी है। हे भद्रे! मैं न जानने के कारण से तेरा मान बड़ाकर तुझसे पुछता हूं कि तू किसकी बेटी है और तेरा स्वामी कौन है? कृपा करके अपने बान्धव, पति और कुल का वृत्तान्त और यहां आने और रहने का प्रयोजन मुझसे कह २ । ५ मैं राजा सुरथ का पुत्र हूं, नाम मेरा कोटिकास्य है और वह जो सुनहरे रथ पर इस प्रकार से विराजमान है जैसे वेदी पर होमी हुई अग्नि, वह त्रिगर्त्त देश के राजा का बेटा है जिसके लोचन चौड़े कमलसम प्रतीत होते हैं। उसका नाम क्षेमकर है और उसके पास ही वह धनुष लिये हुए राजा कुलिन्द का पुत्र है ६ । ७ जिसकी आंखें लम्बी लम्बी हैं और तेरी ओर देख रहा है। यह सदैव फूले हुए पर्वत पर रहता है और जो वह श्यामवर्ण युवा पुरुष पुष्करिणी के पास खड़ा हुआ है वह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इक्ष्वाकुवंशी राजा सुबल का पुत्र है और जिसके पीछे अङ्गारक, कुञ्जर, गुप्तक, शत्रुञ्जय, संजय, सुप्रवृद्ध, भयङ्कर, भ्रमर, रवि, शूर, प्रताप और कुनह आदि बारह-सौ ध्वजाधारी वीरक राजपुत्र लाल घोड़ों के रथ में अग्नि के समान बैठकर चलते हैं और जिसके साथ छह सहस्र रथ, हाथी, घोड़े और पयादे हैं, वह जयद्रथनामी सौवीरदेश का राजा है। हे सुभगे! तुमने भी उसका नाम सुना होगा, उसके भाई बलाहक, अनीक और विदारण आदि हैं ८। १२ ये वीर भी राजा जयद्रथ के पीछे चलते हैं और राजा इनसे रक्षित होकर इस प्रकार से जाता है जैसे इन्द्र मरुद्गणों से रक्षित होकर गमन करता है। सो हे सुन्दरि! हम सब न जाननेवाले तेरे पति और पिता के नाम को जानना चाहते हैं॥ १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६४॥

दोसौ पैंसठवाँ अध्याय।

द्रौपदी का कोटिकास्य दूत से अपने कुल का वृत्तान्त कह उन सबका निमन्त्रण करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजपुत्री द्रौपदी ने कोटिकास्य के उक्त वचनों को सुनकर उसकी ओर मन्द दृष्टि से देखा और शाखा छोड़कर कौशिक वस्त्र से अपने शरीर को ढककर श्वास लेकर बोली १ कि हे राजपुत्र! मैं बुद्धि से जानती हूं कि मुझको तुमसे बातचीत करना उचित नहीं है परंतु तेरे वाक्य का उत्तर देनेवाला यहां कोई स्त्री अथवा पुरुष नहीं है, मैं ही अकेली हूं इससे तुमसे इतना कहती हूं कि मैं अपने धर्म में निरत रहकर अकेली इस वन में तुम अकेले से क्यों कर बात करूं परंतु मैं जानती हूं कि तुम सुरथ के पुत्र हो और नाम तुम्हारा कोटिकास्य है, इससे मैं अपने बांधव और विख्यातकुल का वृत्तान्त तुमसे कहती हूं २। ४ हे शैव्य! सुनो, मैं राजा द्रुपद की बेटी हूं, नाम मेरा कृष्णा कहते हैं, मैंने अपना विवाह पांच पुरुषों से किया है जो खाण्डवप्रस्थ में रहते थे तुमने भी उनको सुना होगा। नाम उनके ये हैं युधिष्ठिर १ भीमसेन २ अर्जुन ३ नकुल ४ और सहदेव ५ वे पांचो पाण्डव अहेर खेलने को गये हैं और मुझे यहां छोड़ गये हैं ५। ६ युधिष्ठिर पूर्व दिशा को गये हैं, भीमसेन दक्षिण की ओर हैं और अर्जुन पश्चिम दिशा और नकुल, सहदेव उत्तर दिशा में अहेर खेलने गये हैं। मैं जानती हूं कि वे अब आने ही वाले हैं ७ तुम लोग अपनी अपनी सवारियों को खोलकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यहां ठहर जावो। राजा युधिष्ठिर अतिथि का बड़ा आदर करते हैं, तुमको देखकर प्रसन्न होंगे सो तुम उनके आने पर सत्कार सहित जहां इच्छा हो चले जाना ८ यह कहकर चन्द्रमुखी द्रौपदी उन सबको अतिथि विचारकर पर्णशाला के भीतर चली गई॥ ६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६५॥

दोसौ छांछठवाँ अध्याय।

जयद्रथ का द्रौपदी के पास जाकर अपनी भार्या होने के लिये प्रार्थना करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कोटिकास्य चला गया और उसने उन सब राजाओं से सब वृत्तान्त कहा उसको सुनकर जयद्रथ बोला कि हे कोटिकास्य! तू क्यों चला आया जिस समय वह सुन्दरी तुझसे बात कर रही थी उस समय मेरा मन उसमें रम गया उसको देखकर और स्त्रियां मुझे शाखामृगों की स्त्रियों के तुल्य दिखाई देती हैं, हे महाबाहो! यह तुमसे मैं सत्य कहता हूं, उस सुन्दरी ने मेरा मन दर्शनमात्र ही से हर लिया जो वह स्त्री मानुषी होय तो हे शैव्य! तू फिर जाकर उससे मेरा हाल कह यह सुनकर कोटिकास्य बोला कि यह यशस्विनी राजपुत्री द्रौपदी पांचों पाण्डवों की पटरानी है आप उसको लेकर सौवीरदेश को चले चलिये १। ६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर दुष्टचित्त जयद्रथ बोला कि मैं जाकर द्रौपदी को देखता हूं ७ यह कहकर वह अपने छहों भाइयों सहित वहां चला गया और सिंह-सभा में भेड़िया के समान उस पवित्र आश्रम के भीतर जाकर द्रौपदी से बोला ८ कि हे वरारोहे! तुम अपने पतियों सहित कुशल हो? द्रौपदी बोली कि हां, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर और उसके भाई और मैं और जिस किसी और को तुम पूछते हो सब कुशल हैं कहो तुम्हारे राज्य, देश, कोष और सेना आदि में कुशल है? और तुम अकेले शिबि, आढ्य, सौवीर, और सिन्धु आदि देशों को अच्छी तरह पालन करते हो? इस पाद्य को ग्रहण करके आसन पर बैठ जाओ, मैं तुमको प्रातःकाल भोजन करने के लिये पांच सौ मृग देती हूं, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुमको पृषत, न्यंकु, हरिण, शरभ, शश, ऋक्ष, रुरु, शंबर, गवय, वराह, महिष और अन्य अन्य जाति के जितने मृग हैं, देंगे ६। १५ यह सुनकर जयद्रथ बोला कि हमको प्रातःकाल के लिये भोजन की आवश्यकता नहीं है, तेरा दिया सब कुछ है, अब तू मेरे रथ पर सवार होकर मेरे साथ चली चल, और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सुन्दर सुख भोग १६ तुझको इन कृपण अचेत वनवासी लक्ष्मी और राज्य से हीन पाण्डवों के पास रहना उचित नहीं है १७ जो स्त्रियां ज्ञानी होती हैं, वे दरिद्री पति के पास नहीं रहती हैं, सेवा करना धनवान् की ही उचित है, अब तू पाण्डवों की भक्ति करके क्लेश मत सहे, ये पाण्डव राज्य और लक्ष्मी से भ्रष्ट होकर बहुत वर्षों से नष्ट होगये हैं इससे अब तू इनको छोड़कर मेरी भार्या हो जा और मेरे साथ सब सुख और सिन्धु और सौवीर देशों के राज्य को भोग १८।२० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी जयद्रथ के हृदयकंपन वचनों को सुनकर भौंहें चढ़ाकर अलग जा बैठी और उसकी बात की निन्दा करके कहने लगी कि हे जयद्रथ! ऐसी बात न कह, थोड़ी तो लज्जाकर २१।२२ इसके पीछे द्रौपदी ने अपने भर्ताओं से मिलने की इच्छा से उस अपने शत्रु जयद्रथ को बातों से लुभाया ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

दोसौ सरसठवाँ अध्याय ।

जयद्रथ का द्रौपदी को हर ले जाना और धौम्य पुरोहित का उसके पीछे पीछे जाना ।

वैशंपायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे द्रौपदी ने क्रोध से लाल लाल नेत्र करके और भृकुटी को चढ़ाय फटकारकर जयद्रथ से कहा कि हे मूढ़ ! तुझको यशस्वी, महेन्द्रतुल्य, स्वकर्मनिरत, धर्मात्मा यक्ष राक्षसों के जीतनेवाले और महारथी पाण्डवों को निरादर कर ऐसी बात कहते लज्जा नहीं आती है, जो लोग सन्त, तपस्वी, विद्यावान्, गृहस्थी और वानप्रस्थ हैं वे स्तुति-योग्य मनुष्य के विषय में अपने मुख से कोई बुरी बात नहीं निकालते हैं। हां, तुझ से खोटे मनुष्य कुत्ते की भाँति भूँका ही करते हैं १ । ३ मैं जानती हूं कि क्षत्रियों की समाज में ऐसा कोई नहीं है जो तुझको हाथ पकड़कर मुख के बल गिरने से रोक सकै ४ तू पहाड़ की शिखर के समान मतवाले हाथी को इस प्रकार से हटाना चाहता है जैसे कोई हाथ में दण्डा लेकर मनुष्यों के इतने बड़े२ झुंडों को हटावे जो धर्मराज को भी जीतने की इच्छा रखते हों ५ और महाबली सिंह को बालकपने से सोता हुआ जानकर उसके पलकों को अपने मुख से उखाड़ना चाहता है परंतु जब तू भीमसेन को देखेगा तब भाग जायगा ६ और मैं यह भी जानती हूं कि तू महावीर अर्जुन से लड़ना नहीं चाहता है किंतु पर्वत की कन्दरा में सोते हुए महा पराक्रमी और उग्ररूप सिंह के लात मारता है और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जो तेरी इच्छा दोनों छोटे पाण्डव अर्थात् नकुल और सहदेव से लड़ने की है, वे भी इस प्रकार से हैं जैसे कोई काल से प्रेरित होकर दो जीभ रखनेवाले काले सर्पों को अपने पांव से दबाना चाहता हो ७।८ और उन वीरों से रक्षित होने पर तू मुझको पकड़कर अपनी गति कर्कटी जलजीव की सी कराना चाहता है जो गर्भधारण करके मर जाती है और इस प्रकार से अपनी वृद्धि चाहता है जैसे बांस, केला और नल केवल अपना नाश करने के लिये फल देते हैं ९ यह सुनकर जयद्रथ बोला कि हे कृष्णे! मुझको सब विदित है मैं उन नरदेव-पुत्रों को जैसे हैं जानता हूं मैं तेरे भयभीत वचनों से डरता नहीं हूं १० हम सब श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न हुए हैं और सत्रह गुण रखते हैं और पाण्डव छः गुण न रखने के कारण से हमसे न्यून और गुणहीन हैं ११ इससे तू जल्दी से मेरे साथ हाथी या रथ पर सवार होकर चली चल, केवल बातों से ही मैं तुझको नहीं छोड़ सकता हूं। हां, जो तू दीन वचनों से मेरी प्रार्थना करे और दया चाहे तो कदाचित् छोड़ भी दूं १२ द्रौपदी बोली कि तू बड़ा बल रखनेवाली मुझको दुर्बल समझ रहा है मैं आदर योग्य हूं अपने पकड़े जाने के भय से कभी तेरे सामने दीन वचन नहीं कहूंगी १३ क्योंकि जिसकी सहायता पर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथ पर सवार हों उसको इन्द्र भी किसी प्रकार से हर नहीं सक्ता है दूसरे दीन मनुष्यों की किनमें गिनती है १४ वह किरीटधारी अर्जुन मेरे निमित्त रथ में बैठकर और तेरी सेना में घुस कर इस प्रकार से सबको मार कर नाश कर देगा जैसे गर्मी की ऋतु में अग्नि सूखे हुए वन में लगकर सबको भस्म कर देती है १५ और जब अन्धक और वृष्णिवंशियों को साथ लेकर श्रीकृष्णजी और कैकयदेश के राजपुत्र मुझको ढूंढ़ेंगे और अर्जुन के गाण्डीव धनुष् से बड़े भयानक और वेगवान् बाण बादल के समान संसनाहट का शब्द करते हुए पतङ्ग के समूहों के तुल्य छूटेंगे तब उनको देखकर तू अपनी बुद्धि की निन्दा करेगा १६। १८ और जब वह गाण्डीवधनुषधारी शंखध्वनि करके तेरी छाती में बारम्बार बाण मारेगा तब तेरी गति कैसी होगी १९ हे अधम! जब तू भीमसेन को हाथ में गदा लिये हुए और क्रोधरूपी विषको उगलते और चारों ओर दौड़ते हुए नकुल और सहदेव को देखेगा तब तुझको देर तक बड़ा दुःख रहेगा २० जो मेरे पातिव्रत्यधर्म मन, वाणी और कर्म से सत्य होगा, तो पाण्डव तुझको अपने वश

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

में करके खैंचेंगे और उस समय में तेरा स्वरूप देखूंगी २१ मुझको इसका कुछ भय नहीं है कि तू निर्दयी मुझको खींचकर ले जायगा क्योंकि मैं पाण्डवों से मिलने पर फिर काम्यक वन में ही आ जाऊंगी २२ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे जब जयद्रथ आदि ने द्रौपदी को पकड़ना चाहा तब वह उनको घुड़ककर बोली कि मुझमें हाथ मत लगाओ और धौम्य पुरोहित को पुकारने लगी २३ तब जयद्रथ ने द्रौपदी का डुपट्टा पकड़ लिया। द्रौपदी ने उसे ऐसा धक्का दिया कि वह पापी निर्मूल हुए वृक्ष के सदृश गिर पड़ा २४ इसके पीछे जयद्रथ उसको पकड़कर खींच कर ले गया और वह धौम्य पुरोहित को दण्डवत् करके रथ पर सवार होगई २५ उस समय धौम्य पुरोहित ने कहा कि हे जयद्रथ! तुझको क्षत्रियों के सनातन धर्म को विचारना उचित है, पाण्डवों को विना जीते इसे ले जाना क्षत्रियों के धर्म से विपरीत है २६ जिस समय युधिष्ठिर आदि वीर पाण्डव तुझको मिलेंगे उस समय निस्संदेह तुझको इस नीचकर्म करने का फल मिलेगा २७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर धौम्य ऋषि राजा जयद्रथ के पीछे पीछे पैदल मनुष्यों के साथ हो लिये॥ २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६७॥

दोसौ अरसठवाँ अध्याय।

अहेर से लौटते हुए पाण्डवों का द्रौपदी-हरण का हाल सुन जयद्रथ से युद्ध करने जाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डव चारों दिशाओं में विहार करके और मृग, वाराह और भैंसाओं का अहेर करके इकट्ठे हुए उस समय युधिष्ठिर ने उस वन में मृग और पक्षियों के झुण्डों को इकट्ठा होकर बोलते हुए देखकर अपने भाइयों से कहा कि ये मृग पक्षी चारों दिशाओं में इकट्ठे हो होकर क्रूर वाणी बोलते हैं इससे यह जान पड़ता है कि इस वन में कोई शत्रु आया है और उससे कोई उग्र दुःख होनेवाला है १। ३ इससे अब मृगों के अहेर से अपने को तृप्त मानकर लौट चलो मेरे मनको पीड़ा हो रही है और प्राण मेरा बुद्धि को मोहित करके कांपने लगा है ४ इस समय मुझको काम्यक वन ऐसा उजाड़ सा दीखता है जैसे वह सरोवर जिस पर से गरुड़जी सर्प को हर ले गये हों अथवा जैसा वह राज्य जिसमें कोई राजा न हो और जिसकी लक्ष्मी हर ली गई हो या जैसा वह कुम्भ जिसमें से हाथी पानी पी चुके हों ५

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यह सुनकर वे वीर वायु के सदृश शीघ्रता से वहां से अपने आश्रम को लौट पड़े जो सिन्धुदेशी घोड़े और बड़े २ रथों से युक्त था ६ लौटते समय उनके बाईं ओर गीदड़ बड़े शब्द से बोला उसको सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन से कहा ७ कि इस कुशकुन से ऐसा जान पड़ता है कि पापी कुरुवंशियों ने हमारा अपमान करके कुछ बलात्कार किया है। आगे बढ़कर उनको द्रौपदी के दास की भार्या रोती हुई मिली, उसको देखकर इन्द्रसेन जल्दी से रथ से कूद-कर उसके पास चला गया और उससे बोला ८। १० कि तू पृथ्वी पर पड़ी हुई क्यों रो रही है क्यों तेरा मुख मलीन हो गया है किसी दयाहीन पापी पुरुष ने राजपुत्री द्रौपदी का कुछ तिरस्कार तो नहीं किया ११ वह विशाल-नेत्रा और अचिन्त्यरूपा द्रौपदी पाण्डवों को प्राण के तुल्य प्यारी है इससे जो वह पृथ्वी अथवा स्वर्ग या समुद्र में भी चली गई होगी तो भी पाण्डव उसका खोज लगा लावेंगे उसीके कारण से युधिष्ठिर सन्ताप कर रहे हैं, इन अरि-मर्दन और अपराजित पाण्डवों की प्राणप्यारी स्त्री को ऐसा कौन मूढ़ होगा, जो ले जाना चाहेगा क्योंकि मूढ़ पुरुष उत्तम रत्न को नहीं पा सकता है और जो किसी ने ऐसा किया भी होगा तो वह यह नहीं जानता होगा कि द्रौपदी के नाथ स्थित हैं और वह उनको ऐसी प्यारी है कि दो देह और एक प्राण है १२। १४ तू द्रौपदी का शोच मत करे सब बता, वह कौन है जिसके शरीर को फोड़कर पाण्डवों के बाण पृथ्वी में प्रवेश होंगे अभी द्रौपदी आई जाती है, पाण्डव शत्रुओं को मारकर उसको ले आवेंगे, यह सुन कर वह धात्रेयी अपने सुन्दर मुख को पोंछ कर इन्द्रसेन से बोली कि राजा जयद्रथ इन्द्र के समान पाण्डवों का निरादर करके बल से द्रौपदी को हरकर इस नवीन मार्ग से जिसमें आगे टूटा हुआ वृक्ष पड़ा है ले गया है १५। १७ अभी वह दूर नहीं गया होगा पाण्डवों से कह दो कि जल्दी से कवच धनुष् और बाणों को लेकर इसी ओर चले जायँ ऐसा न हो कि द्रौपदी भय और मोह से अपना शरीर किसी अयोग्य पुरुष को दे दे अथवा उस सुन्दरी चन्द्रमुखी को, कोई कुकर्मी पुरुष इस प्रकार से स्पर्श न करे, जैसे वेदपाठियों के मोहित हो जाने पर कुत्ता यज्ञ के अमृत को चाट जाता है और गीदड़ अहेर के समय कमलिनी को मँझाकर चला जाता है और श्मशान में जाने पर माला त्याग दी जाती है और वे कुकर्मी उस द्रौपदी के साथ कोई ऐसा अयोग्य कर्म न करें जैसे फूस की अग्नि में होम करना और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

घृत से भरा हुआ पात्र धूलि में रखना अनुचित है पाण्डवों को शीघ्र ही भेज दो यहां काल गँवाना उचित नहीं है १८। २२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला हे धात्रि! यहां से दूर हो और अपने मुख को बन्दकर हमारे सामने ऐसे परुष वचन मत कहे, ऐसे वचनों से बलवान् राजपुत्रों के चित्त की वृत्ति और ही हो जाती है २३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर पाण्डवों ने अपने रथ उसी ओर को हँकवा दिये और श्वास लेते हुए और धनुषों को टंकोरते हुए जयद्रथ के पीछे दौड़े, थोड़ी दूर चलकर उनको घोड़ों की टाप से उड़ी हुई धूलि दिखाई दी और आगे बढ़कर उन्होंने पैदल आदमियों के साथ जाते हुए धौम्य पुरोहित को देखा, जो यह पुकार रहे थे कि भीमसेन जल्दी से दौड़ कर आओ २४। २५ उनको देखकर पाण्डवों ने कहा कि आप घबड़ाइये नहीं, यहीं ठहर जाइये यह कहकर पाण्डवों ने अपने रथ सेना के पीछे इस प्रकार से दौड़ाये जैसे मांस की इच्छा से श्येन अर्थात् बाज पक्षी दौड़कर जाता है २६ आगे बढ़कर उन्होंने जयद्रथ और द्रौपदी को रथ में बैठे हुए देखा, उनको देखकर और द्रौपदी के पराभव को विचारकर उन महा इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पाण्डवों का क्रोध अग्नि के समान प्रज्वलित हो गया और उन्हों ने जयद्रथ को इस प्रकार से पुकारा जिससे शत्रु मोहित हो गये॥ २७। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टषष्ठ्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६८॥

दोसौ उनहत्तरवाँ अध्याय।

द्रौपदी का जयद्रथ से पांचों पाण्डवों का वृत्तान्त कहना और पाण्डवों का जयद्रथ की सेना को घेर लेना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जयद्रथ के साथी क्षत्रिय लोग अर्जुन और भीमसेन को देखकर क्रोध से बड़ा शब्द करने लगे और वह दुरात्मा और नष्टतेज जयद्रथ भी पाण्डवों की ध्वजा को देखकर तेजस्विनी द्रौपदी से कहने लगा १। २ कि हे सुन्दरि! ये जो पांचों महारथी आ रहे हैं, मैं जानता हूं यही तेरे पति हैं, मैं इनको जानता नहीं हूं, तू भिन्न भिन्न इनको मुझे बता ३ द्रौपदी बोली कि हे मूढ़! तैंने तो यह घोर कर्म करके मृत्यु का सरंजाम किया है; तुझको इन स्वजातीय धनुषधारियों से क्या प्रयोजन है, ये पांचों मेरे वीर पति इकट्ठे हो गये हैं अब युद्ध में यहां कोई जीता न बचेगा ४ तू मरना चाहता है इससे मेरा धर्म है कि मैं तेरे प्रश्न का उत्तर दूं अब भाइयों सहित युधिष्ठिर को देखकर मेरा सब दुःख और तेरी ओर का भय जाता रहा ५ जिसकी ध्वजा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के आगे नन्द और उपनन्द नामी मृदङ्ग बज रहे हैं और पीछे जिसके धर्म और अर्थ के निश्चय को जाननेवाले मनुष्य आ रहे हैं और वर्ण जिसका जाम्बूनद सुवर्ण के तुल्य आंखें बड़ी बड़ी नाक लम्बी और शरीर लटा हुआ है वह युधिष्ठिर नामी मेरा पति है ६ । ७ वह बड़ा धर्मात्मा और शरणागत शत्रु का प्राणदाता है जो तुझको अपना ऐश्वर्य रखना हो तो शीघ्रता से शस्त्र लेकर हाथ जोड़े हुए उसकी शरण जा ८ और जिसकी भुजा शाल के वृक्ष के समान भौंहें चढ़ी हुई और होठ फड़क रहे हैं, वह मेरा पति भीमसेन नामी है ९ उसके रथ में महा पराक्रमी और सुशिक्षित आजानेय प्रकार के घोड़े जुते हुए हैं काम उसके मनुष्यों के से नहीं हैं और नाम उसका भीम, भीम शब्द होने से पृथ्वी पर विख्यात हुआ है १० जो कोई इसका अपराध करता है वह जीता नहीं बचता है यह वैर को भूलता नहीं है और जबतक वैर का अन्त अर्थात् शत्रु को नहीं मार लेता है तबतक हटता भी नहीं है और अन्त करने पर भी यह शान्त नहीं होता है अर्थात् शत्रु को मारकर उसके पुत्र मित्रादिकों को भी शेष नहीं छोड़ता है ११ और वह जो दूसरा रथ में बैठा है वह युधिष्ठिर का छोटा भाई और शिष्य है और मेरा तीसरा पति है। यह बड़ा धनुषधारी धृतिमान्, यशस्वी, जितेन्द्रिय, वृद्धों की सेवा करनेवाला और शूरवीर है। काम, भय और लोभ से यह धर्म को कभी नहीं छोड़ता है न हिंसा करता है और अग्नि के समान तेजस्वी और शत्रुओं का नाश करनेवाला है १२ । १३ और वह नकुलनामी मेरा पति है जो भाइयों का आज्ञाकारी और प्राणों के समान प्यारा है और धर्म अर्थ के निश्चय को जाननेवाला भयभीत दुःखी मनुष्यों के भय का हर्ता बुद्धिमान् और बड़ा स्वरूपवान् है। वह दूसरा नकुल से छोटा सहदेव नामी मेरा पति है जो तलवार को अनेक प्रकार से जल्दी जल्दी चलाकर युद्ध करता है अब तुझको उसके युद्ध की निपुणता जान पड़ेगी उसका युद्ध ऐसा है जैसे इन्द्र का युद्ध दैत्य की सेना में हो और वह बुद्धिमान् अस्त्रों का ज्ञाता युधिष्ठिर का प्रिय करनेवाला सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी है सब भाई इस पर बड़ी प्रीति रखते हैं इसके सदृश बुद्धिमान् दूसरा मनुष्य नहीं है, यह सत्पुरुषों में बातचीत करता है और बात के निश्चय को तत्काल पहुँच जाता है महा शूरवीर क्रोधी और ज्ञानी है और धर्म पर इसका ऐसा निश्चय है कि यह चाहे प्राण छोड़ दे और अग्नि में प्रवेश हो जाय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

परंतु धर्म के विपरीत काम कभी नहीं करेगा १४। १८ और क्षत्रियों के धर्म पर चलनेवाला और कुन्ती का प्राणों से भी अधिक प्यारा पुत्र है हे मूढ़! अब तू अपनी इस सेना को पाण्डवों के हाथ से क्षोभित की हुई इस प्रकार से देखेगा, जैसे समुद्र में मगर की पीठ पर आ जाने से नाव डिगमिगाती है, पाँचों पाण्डव ये ही हैं जिनका अपमान करके तूने मुझको हरण किया है जब तू इनके हाथ से बच जाय तब तू अपना दूसरा जन्म समझेगा १६। २० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पाँचों पाण्डवों ने भयभीत और हाथ जोड़नेवाले पैदल मनुष्यों को छोड़कर जयद्रथ की सेना को घेर लिया और ऐसी बाण-वर्षा की कि अंधेरा हो गया॥ २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६९॥

दोसौ सत्तरवाँ अध्याय।

पाण्डवों के युद्ध से जयद्रथ का भागना व भीमसेन का उसका पीछा करना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा जयद्रथ ने पाण्डवों को देखकर सब राजाओं से कहा कि पाण्डवों पर धावा करो और रण में ठहर कर प्रहार करो १ उस समय जयद्रथ की सेना के लोग पाण्डवों को देखकर बड़ा शब्द करने लगे २ और उन व्याघ्रतुल्य बल से मतवाले पुरुषोत्तमों के युद्ध को अवलोकन करके शिबि, सौवीर और सिन्धुदेशी राजपुत्र भी घबरा गये ३ उस समय भीमसेन ने सुवर्ण से चित्ती हुई लोहे की लम्बी और भारी गदा ले ली और वह जयद्रथ के सम्मुख दौड़ा ४ तब कोटिकास्य क्षत्री बहुत से रथों को लेकर जयद्रथ के आगे आ गया और उन रथों से भीमसेन को घेर लिया ५ परंतु भीमसेन उन वीर क्षत्रियों के मारे हुए नाराच, तोमर और शक्ति आदि शस्त्रों से ढक जाने पर भी कंपित नहीं हुआ ६ और उसने अपनी गदा से सेना के चौदह पियादे और एक हाथी को सवार-सहित उस ओर मारकर गिरा दिया जिधर राजा जयद्रथ का रथ था ७ और उसी समय सेना के मुख पर अर्जुन ने जयद्रथ को पकड़ने की इच्छा से पाँच-सौ महारथी और पहाड़ी शूरवीरों को मारकर यमलोक में पहुँचा दिया ८ और राजा युधिष्ठिर ने एक निमेष में सौ शूरवीर मारकर गिरा दिये ९ और नकुल रथ से ढाल तलवार लेकर कूद पड़ा और पैदल मनुष्यों के शिर को काट काटकर पृथ्वी पर बीज-सा बोने लगा १० और सहदेव ने रथ पर बैठकर नाराच बाणों से हाथी पर बैठ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कर युद्ध करनेवाले योद्धाओं को इस प्रकार से मार मारकर गिरा दिया, जैसे कोई वृक्ष पर बैठे हुए मोरों को मारकर गिरा दे ११ इसके पीछे राजा त्रिगर्त रथ से उतरकर धनुष् हाथ में लिये हुए चला आया और उसने युधिष्ठिर के रथ के चारों घोड़े मार डाले १२ उस समय युधिष्ठिर ने उस राजा की छाती में एक अर्द्धचन्द्र बाण मारा १३ उससे वह राजा रुधिर की वमन करके युधिष्ठिर के सामने इस प्रकार से गिर पड़ा जैसे जड़ कटा हुआ वृक्ष आन पड़ता है १४ तब युधिष्ठिर अपने रथ पर से उतर कर इन्द्रसेन-सहित सहदेव के रथ पर चला गया १५ इसके पीछे क्षेमकर और महामुख बाण बर्षाते हुए नकुल के सम्मुख चले आये और दोनों नकुल को दोनों ओर से बाण मारने लगे १६ और तोमरों की वृष्टि बादल की वर्षा के समान करने लगे। नकुल ने उन दोनों को एक २ विपाठनामी बाण करके मार डाला १७ तब सुरथनामी त्रिगर्त देश के राजा ने जो नकुल के रथ के धुरे के पास हाथी पर सवार हो आगया था नकुल का रथ अपने हाथी से तुड़वा डाला १८ तब नकुल उस रथ से कूदकर ढाल तलवार लिये हुए पहाड़ के समान अचल और निर्भय खड़ा हो गया १९ तब सुरथ ने अपने हाथी को जो क्रोध से ऊँचे को सूँड़ किये हुए था नकुल के मारने को बढ़ाया २० नकुल ने उस हाथी की सूँड़ को दाँतों सहित तलवार से काट डाला २१ और वह हाथी चिग्घार कर मुँह के बल गिर पड़ा उसके गिरने से बहुत से सवार दब कर मर गये २२ उसको मारकर नकुल भीमसेन के रथ पर जा बैठा और प्रसन्न हुआ २३ इसी अवसर में राजा कोटिकास्य ने अपना रथ सारथी से भीमसेन की ओर बढ़वाया। भीमसेन ने उस सारथी का शिर क्षुरबाण से काट डाला २४ परंतु कोटिकास्य को उसके शिर कटने का हाल नहीं जान पड़ा और उसके रथ के घोड़े रथ को लिए हुए विना सारथी के जहाँ तहाँ घूमने लगे २५ उस समय भीमसेन उसके पास चला गया और उसको मुकों से मार-कर गिरा दिया २६ उस युद्ध में अर्जुन ने सब बारह-सौ शूरवीरों के शिर और धनुष् भल्लों से काट काटकर गिरा दिये २७ और शिबि, त्रिगर्त, सिन्धुदेशी और इक्ष्वाकुवंशी जो जो राजा लोग उसके धनुष् की सीध पर आये उनको भी उसने मारा २८ और पताकासहित हाथी और ध्वजासहित रथ भी बहुधा मार डाले और तोड़ डाले २९ वहाँ की पृथ्वी रुण्ड मुण्डों से ढक गई और मांस और रक्त से कुत्ते, गिद्ध, कंक, काकोल, भास, गीदड़ और काक आदिकों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ने अपना पेट भरा ३० । ३१ उन वीरों के मारे जाने पर जयद्रथ ने द्रौपदी को रथ से उतार दिया और आप वन की ओर भागा ३२ । ३३ युधिष्ठिर ने द्रौपदी को देखकर जिसके आगे धौम्य ऋषि थे नकुल सहित रथ पर चढ़ा लिया ३४ जयद्रथ के भागने पर उसकी सब सेना भाग चली, भीमसेन उस सेना को नाराच बाणों से अपना नाम सुना सुना कर मारने लगा। उस समय अर्जुन ने जयद्रथ को भागा हुआ जानकर भीमसेन को सेना के मनुष्यों को मारने से रोक दिया ३५ । ३६ और कहा कि जिसके कुकर्म से हम लोगों को यह क्लेश प्राप्त हुआ है, वह जयद्रथ यहाँ मुझको दिखाई नहीं देता है ३७ उसी को चलकर ढूँढ़िये, इन बिचारे योद्धाओं को मारने से हमारा क्या प्रयोजन निकलेगा, इनको अब मारना अनुचित है, आगे जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये ३८ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा ३९ कि महाराज ! आप द्रौपदी को लेकर लौट जाइये अब इस सेना के सब अधिपति रण छोड़ छोड़कर भाग गये आप धौम्य, नकुल और सहदेव के साथ आश्रम में जाकर द्रौपदी को धैर्य दीजिये मेरे जीते हुए राजा जयद्रथ इन्द्र के सारथी होने और पाताल लोक में जाने पर भी जीता न बचेगा ४० । ४२ तब युधिष्ठिर बोला कि हे भीमसेन ! दुःशला और गांधारी के स्मरण से जयद्रथ को जान से मारना उचित नहीं है ४३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर द्रौपदी ने लज्जित और व्याकुल होकर अर्जुन और भीमसेन से कहा कि जो तुम दोनों मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उस नीच अधम पापी दुर्मति और कुलकलङ्की जयद्रथ को अवश्य मार डालना ४४ । ४५ क्योंकि जो शत्रु स्त्री अथवा राज्य को हर ले उसको याचना करने पर भी किसी रीति से छोड़ना उचित नहीं है ४६ यह सुनकर अर्जुन और भीमसेन जयद्रथ को ढूँढ़ने के लिये चल दिये और युधिष्ठिर, पुरोहित और नकुल सहदेव द्रौपदी के साथ अपने स्थान को लौट आया ४७ वहाँ पहुँचने पर उन्होंने उस आश्रम में मार्कण्डेय आदि बहुत से ब्राह्मण बैठे हुए पाये ४८ युधिष्ठिर उन सब ब्राह्मणों से जो द्रौपदी का शोच कर रहे थे यथायोग्य मिला और द्रौपदी सहित भाइयों के मध्य में बैठ गया ४९ वे ब्राह्मण युधिष्ठिर को सिन्धु आदि देशों के राजा को जीतकर द्रौपदी को लाया हुआ देखकर प्रसन्न हुए ५० इसके पीछे युधिष्ठिर वहीं ब्राह्मणों में बैठा रहा और द्रौपदी, नकुल और सहदेव के साथ आश्रम के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भीतर चली गई ५१ और भीमसेन और अर्जुन यह सुनकर कि राजा जयद्रथ एक कोस रणभूमि से भागकर निकल गया अपने रथों के घोड़ों को हँकवाकर उसके पीछे दौड़े ५२ और अर्जुन ने उस समय यह अद्भुत कर्म किया कि जयद्रथ के रथ के घोड़ों को कोस भर की दूरी से मारकर गिरा दिया ५३ और उस अस्त्रज्ञ ने यह कर्म अनुमन्त्रित बाणों से किया, इसके पीछे वे दोनों वीर रथों को दौड़ाते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुँचे जो भयभीत और व्याकुल हो रहा था। जयद्रथ उनको देखकर और अपने घोड़ों को मरा हुआ जानकर वन की ओर भागा उसको भागते हुए देखकर अर्जुन उसके पीछे पीछे हो लिया और बोला कि बस इसी बल भरोसे पर तुम पराई स्त्री को लेना चाहते थे ५४। ५८ लौट तुझको भागना उचित नहीं है तेरा वह पराक्रम अब कहाँ गया जो अपनी सेना को छोड़कर शत्रुओं के सम्मुख से भागा जाता है ५६ यह सुनकर भी जयद्रथ लौटा नहीं, तब भीमसेन यह कहता हुआ उसके पीछे दौड़ा, खड़ा रह, खड़ा रह, उस समय अर्जुन ने दया करके भीमसेन से कहा कि इसको जान से मत मारना ॥ ६० । ६१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७० ॥

दोसौ इकहत्तरवाँ अध्याय।

भीमग्रस्त जयद्रथ का युधिष्ठिर से निर्मुक्त होकर हरिद्वार में जा शिव से बरदान पाना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा जयद्रथ अपनी जान बचाने के लिये अर्जुन और भीमसेन को देखकर बड़ा दुःखित होता हुआ सावधान होकर तुरन्त भागा उस समय महाबली भीमसेन क्रोधित होकर रथ से उतर पड़ा और उसने दौड़कर उसके बाल पकड़ लिये १। २ और उसे पृथ्वी पर डाल कर रगड़ने और उसका शिर पकड़कर मारने लगा ३ तब जयद्रथ विलाप करने लगा और महाबाहु भीमसेन ने उसके शिर पर एक लात मारी और जाँघ को अपने घोंटू से दबा दिया और घूँसे से मारा तब राजा जयद्रथ उस भारी प्रहार से मोहित होगया ४। ५ उस समय अर्जुन ने भीमसेन के क्रोध को यह कहकर रोक दिया कि भाई! तुमको वह बात याद करनी चाहिए जो राजा युधिष्ठिर ने दुःशला के कारण से कही थी ६ भीमसेन बोला कि यह पापी इस योग्य नहीं है, द्रौपदी को दुःख देकर इसका मेरे हाथ से बचना ठीक नहीं है ७ परंतु मैं क्या कर सकता हूँ, राजा तो सदैव ही दयायुक्त रहता है और तुम्हारी भी बड़ी छोटी सी बुद्धि है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जिसके कारण से मुझको सदा पीड़ा होती है ८ यह कहकर भीमसेन ने अर्द्ध-चन्द्रबाण से जयद्रथ का शिर मूँड़कर पाँच चोटियाँ रख दीं और युधिष्ठिर के विषय में कठोर वचन कहकर जयद्रथ से बोला कि हे मूढ़! जो तू अपने को जीवित चाहता है तो यह बात अङ्गीकार कर कि सभ्य और सत्पुरुषों में मैं अपने को दास बताऊँगा ऐसा जो तू कहेगा तो मैं तुझे जीवदान देऊँगा यह विधि युद्ध जीतने की है ६। ११ यह सुनकर राजा जयद्रथ उस समरशोभी, पुरुषसत्तम भीम से बोला कि बहुत अच्छा, मैं यही कहूँगा १२ इसके पीछे भीमसेन उस अचेत धूलि भरे जयद्रथ को रथ में बैठालकर अर्जुन-सहित युधिष्ठिर के पास चला आया १३। १४ और उसने जयद्रथ को राजा युधिष्ठिर को दिखलाया उसे देखकर युधिष्ठिर बहुत हँसा और बोला कि अब इसे छोड़ दो १५ भीमसेन बोला कि आप द्रौपदी से कह दीजिए कि यह पापी आज से पाण्डवों का दास होगया १६ युधिष्ठिर बोला कि जो तुझको हमारा कहना प्रमाण है, तो इस अधमाचारी को छोड़ दे १७ तब द्रौपदी युधिष्ठिर की ओर देखकर बोली कि तुमने इसके पाँच चोटियाँ रख ही दी हैं यह आज से राजा का दास हुआ, अब तुम इसे छोड़ दो १८ हे राजन्! यह सुनकर भीमसेन ने उसे छोड़ दिया और उसने युधिष्ठिर को प्रणाम करके मुनियों को दण्डवत् की। उस समय धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर ने दया करके उससे कहा कि जा, तू अदास और मुक्त हुआ, फिर ऐसा मत कीजियो तुझ परस्त्री चाहनेवाले को धिक्कार है, सिवाय तेरे और कौन ऐसा नीच अथवा नीचों का सत्सङ्गी होगा जो ऐसा खोटा काम करेगा, जैसा तूने किया है, अब हे जयद्रथ! तू कल्याणपूर्वक अपने घोड़े, हाथी और पैदल मनुष्यों-सहित जा, आज से अपना चित्त धर्म में रख और अधर्म के करने को कभी मन भी न कर। यह सुनकर जयद्रथ चुप होकर नीचे को मुख किये हुए १६। २४ लज्जा और दुःख से पीड़ित होकर चल दिया। हे भरतवंशिन्! वह घर को न जाकर हरिद्वार को चला गया और वहाँ जाकर उसने उमापति विरूपाक्ष देवता की बड़ी तपस्या की। उस तपस्या से वृषभध्वज, त्रिलोचन शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके उपहार को ग्रहण करके उससे कहा कि तू हमसे वरदान माँग, तब जयद्रथ बोला कि महाराज! मैं चाहता हूँ कि पाण्डवों को युद्ध में रथ-सहित जय करूँ। शिवजी बोले कि सिवाय अर्जुन के जो नरनामी देवता होकर देवताओं का ईश्वर और बदरिकाश्रम में तपस्या करनेवाले नारायण

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को अपना सहायक रखता है, शेष सब पाण्डवों को तू विजय करेगा २५।२६ क्योंकि मैंने उस अर्जुन को अजित, दुरासद और अप्रतिम पाशुपतनामी दिव्य अस्त्र दिया है ३० और लोकपाल देवताओं से भी उसने वज्र आदि अस्त्र पाये हैं और उसके साथी नारायणजी देवताओं के देवता, अनन्त आत्मा, देवताओं के गुरु, प्रधान पुरुष, अव्यक्त, विश्वात्मा और विश्वमूर्ति हैं ३१ वे ही नारायण प्रलयकाल के प्राप्त होने पर कालाग्निरूप धारण करके नागलोक, पाताललोक, पृथ्वी, समुद्र और पर्वतवासी सब जीवों को भस्म कर डालते हैं। उनके भस्म हो जाने पर चारों ओर से बादलों की बड़ी बड़ी घटाएँ उठती हैं, बिजली बड़ी चञ्चलता से चमकती है और बादल बड़े शब्द से गरजते और बरसते हैं। उन बादलों के बरसाये हुए जल से वह कालाग्नि, जिसको संवर्तक अग्नि भी कहते हैं, बुझ जाती है और फिर मूसलाधार पानी पड़ने लगता है। उससे सब पृथ्वी आदि नष्ट होकर केवल जल ही जल रह जाता है ३२।३५ यह महाप्रलय सहस्र चौकड़ी युगों के व्यतीत होने के पीछे होता है। उस समय सब विश्व के एकरस होने और सब चराचर जीव और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा आदि के नष्ट होने पर वह नारायण जिसके सहस्र नेत्र, सहस्र चरण और सहस्र शिर होते हैं, उसी जल में शेषजी के ऊपर सो जाते हैं, जो अपने सहस्र फण और सहस्र सूर्यों के तुल्य प्रभा और चन्द्रमा, कुन्दपुष्प, मोती, गोदुग्ध और मृणाल कुमुद के समान उज्ज्वलता से अत्यन्त शोभायमान हैं। उनके सोने पर रात्रिरूप महा अन्धकार हो जाता है ३६। ४० उस देवता का नाम नारायण होने का यह कारण है कि नार नाम जल का है, वही जल उस देवता के रहने का स्थान है, इससे उसे नारायण कहते हैं। वह नारायण जब सत्त्वगुण के आविर्भाव से जगते हैं और लोक को शून्य देखते हैं, तब ध्यानमात्र से उनकी नाभि में एक कमल उत्पन्न हो जाता है। उस कमल से प्रजा को उत्पन्न करने के लिये चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न हो जाते हैं और ब्रह्माजी जगत् को शून्य देखकर मरीचि आदि नौ ऋषियों को उत्पन्न करते हैं। फिर वे ऋषि सब जड़ चैतन्य जीव, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, उरग और मनुष्यों को उत्पन्न करते हैं ४१।४६ वही नारायण ब्रह्मारूप से जगत् को उत्पन्न करता है विष्णुरूप से सबकी रक्षा करता है और रुद्ररूप से जगत् का नाश करता है। ये तीनों अवस्थाएँ उसी प्रजापति नारायण की हैं ४७ हे जयद्रथ! तुमने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अभी उन कथाओं को नहीं सुना है जो वेदपारग ब्राह्मण और मुनि लोग विष्णु भगवान् के विषय में कहते हैं ४८ प्रथम जब महाप्रलय होने पर सब विश्व एकरस हो गया, तब जगत् को फिर रचने के लिये विष्णु भगवान् उस जल में पृथ्वी को इस प्रकार से घूम-घूमकर ढूँढ़ने लगे, जैसे वर्षाकाल में खद्योत फिरते हैं। जब पृथ्वी को उन्होंने जल में डूबी हुई देखा, तब विचार किया कि किस रूप से इस पृथ्वी को उठाकर जल के ऊपर ले जाऊँ। फिर अपनी दिव्य दृष्टि से जानकर उन्होंने वाराहरूप धारण किया, जिसको जल में क्रीड़ा करने से बड़ी प्रीति होती है। भगवान् का वह स्वरूप जो कि वेदमय होकर यज्ञरूप था, वह दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा था उसकी डाढ़ें बड़ी तीक्ष्ण और शरीर पर्वत के समान ऊँचा अति प्रभावान् और नीले बादल का सा वर्ण रखनेवाला था ४६।५४ उस स्वरूप को धारण करके भगवान् शूकरजी जल में घुस गये और उन्होंने पृथ्वी को एक डाढ़ पर उठाकर उसे अपने स्थान पर स्थापित कर दिया ५५ इसके पीछे उस महाबाहु सर्वशक्तिमान् भगवान् ने आश्चर्यदायक नृसिंहरूप धारण किया; जिनका आधा शरीर मनुष्य का-सा और आधा सिंह का-सा था। उसी स्वरूप से उस हिरण्यकशिपु नाम दैत्येन्द्र की सभा में चले गये जो दैत्यों का आदि पुरुष और देवताओं का वैरी तथा दिति का पुत्र था। वह उनके उस अद्भुत शरीर को देखकर चकित हो गया और क्रोध से, हाथ से हाथ मलकर और आँखें लाल लाल निकालकर मालाधारी शूल हाथ में लिये हुए मेघ के समान गरजता हुआ नृसिंहजी के सम्मुख दौड़ा ५६। ५८ और उनसे जा भिड़ा। नृसिंहजी ने उसका पेट अपने नखों से फाड़ डाला ६० इसके उपरान्त भगवान् ने उस दैत्य को मारकर संसार के हित के लिये कश्यपजी के यहाँ अदिति के गर्भ में जन्म लिया और सहस्र वर्ष पीछे वामनरूप होकर गर्भ से प्रकट हुए। उस स्वरूप का वर्ण श्यामघटा के सदृश था, आँखें दीप्त थीं, छाती पर श्रीवत्स का चिह्न था और जटा, यज्ञोपवीत, दण्ड और कमण्डलु धारण किये हुए थे। भगवान् उस स्वरूप से बृहस्पतिजी के साथ दैत्येन्द्र बलि के यज्ञ में गये। उन वामनजी को देखकर बलि ने प्रसन्न होकर कहा ६१। ६५ कि हे वेदपाठिन्! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, कहिये आपको क्या दूं? यह सुनकर वामन भगवान् ने मन्द मन्द मुसकराकर कहा कि हे दानवपते! हमको तीन पैग पृथ्वी दीजिए, आपका कल्याण होगा ६६।६७ बलि ने प्रसन्न होकर तीन पैग पृथ्वी अपार तेजस्वी विप्ररूपधारी वामनजी को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दान कर दी। तब पृथ्वी को नापने के समय वामनजी ने अपना स्वरूप बड़ा दिव्य और अद्भुत बना लिया और उस स्वरूप से तीन ही पैंग में त्रिलोकी को नाप लिया और उन्होंने वे तीनों लोक इन्द्र को दे दिये। यह वामन अवतार की कथा है। इसी अवतार से संसार वैष्णव कहलाता है ६८। ७० अब उसी विष्णु भगवान् ने धर्म की रक्षा और नीचों का निग्रह करने के लिये पृथ्वी पर यादवों के घर में जन्म लिया है और उसको सब लोग श्रीकृष्ण नाम से पुकारते हैं और ज्ञानी लोग उस अजन्मा आदि-अन्त-हीन प्रकाशमान और सर्वलोक-वन्दित प्रभु के चरित्रों को गाते हैं। वह श्रीकृष्ण शंख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीवत्सचिह्न और पीताम्बरधारी साक्षात् विष्णु अजित और अतुल पराक्रमी हैं। वे अर्जुन को रथ में बैठाकर उसकी सहायता युद्ध में करेंगे, इस कारण से उस अस्त्रज्ञ और असह्य अर्जुन को जीतना देवताओं को भी असंभव है, मनुष्य उसको क्योंकर जीत सकता है ७१। ७६ सो हे जयद्रथ! एक अर्जुन को छोड़कर तू सब पाण्डवों और युधिष्ठिर की सेना को एक दिन रोकेगा ७७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उमापतिजी जो सब पापों के हरनेवाले पशुपति और दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर त्रिपुर दैत्य के मारनेवाले हैं, जयद्रथ से यह कहकर पार्वती और उन अपने पार्षदों सहित, जो कुब्ज और विकट रूपी उग्र कान, उग्र स्वरूप और अनेक अस्त्र धारण किए हुए थे, वहीं अन्तर्धान होगये ७८। ८० और मन्दात्मा जयद्रथ अपने घर को चला आया और पाण्डव उसी काम्यक वन में रहा किए॥ ८१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७१॥

दोसौ बहत्तरवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का मार्कण्डेयजी से अपने मन्दभाग्य के विषय में पूछना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय ने पूछा कि हे वैशंपायनजी! नरोत्तम पाण्डवों ने द्रौपदी के हरे जाने से महाक्लेश पाने के पीछे काम्यक वन में रहकर क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि जयद्रथ को जीतने और द्रौपदी को छुटाने के पीछे युधिष्ठिर ने उन सब मुनियों के बीच में जो शोच-सा कर रहे थे मार्कण्डेयजी से पूछा २। ३ कि हे भगवन्, महाराज! आप देवऋषियों में सब भूत और भविष्य बातों के जाननेवाले हैं। कृपा करके आप मेरे हृदय के संदेह को दूर कीजिए ४ संदेह यह है कि यह द्रौपदी राजा द्रुपद की पुत्री

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और महात्मा पाण्डु की पुत्रबधू है, और योनि से उत्पन्न नहीं हुई है किन्तु यज्ञ की अग्नि से प्रकट हुई है, सो मैं जानता हूं कि काल बड़ा समर्थ है और होनहार कर्म के आधीन और अवश्य भवितव्य है, क्योंकि जो ऐसा न होता तो इस धर्मज्ञ और हमारी धर्मचारिणी पत्नी को जिसने ब्राह्मणों की बड़ी सेवा की है, और आजतक कोई किसी प्रकार का पाप अथवा निन्दित कर्म नहीं किया है, ऐसा भाव क्योंकर प्राप्त होता। तथापि जो जयद्रथ इसको बल से हर ले गया और ऐसा करने के कारण से उसका शिर मूड़ा गया और उसका संग्राम में पराजय हुआ और हमलोगों ने उसकी सेना को मारा, यह सब हमको महा क्लेश प्राप्त हुआ। इससे वनवास में अहेर करके जीविका उत्पन्न करना बड़ा भारी दुःख है ५।११ और वन में रहकर वनवासी जीवों को मारना, देश से निकाला जाना और तपस्वियों का मिथ्या वेष धारण करके हिंसा करना बड़े मन्द भाग्य का कारण है, सो आप कृपा करके यह कहिये कि आपने भी कोई मुझसा मन्दभाग्य मनुष्य देखा या सुना है॥ १२। १३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७२॥

दोसौ तिहत्तरवाँ अध्याय।

रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और सीता तथा वैश्रवण के जन्म की कथा।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! श्रीरामचन्द्रजी ने भी महा दुःख पाया था। उनकी स्त्री जानकीजी को भी बली दुरात्मा राक्षसेन्द्र रावण संन्यास वेष धारणकर जटायु गृध्र को मारकर आश्रम से हर ले गया था १। २ उस समय रामचन्द्रजी सुग्रीव की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधकर और लङ्का को तीक्ष्ण बाणों से जलाकर सीता को लाये थे ३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि महाराज! रामचन्द्रजी किस कुल में उत्पन्न हुए थे, पराक्रम और प्रभाव उनका कैसा था? और वह रावण किसका पुत्र था, और उससे और रामचन्द्र का वैर क्यों कर हुआ था, ४ कृपा करके यह सब कथा विस्तारपूर्वक कहिये, मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र सुनना चाहता हूं ५ मार्कण्डेयजी बोले बहुत अच्छा, सुनिये। इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ एक अज नामी बड़ा राजा था। उसके पुत्र का नाम दशरथ था। वह बड़ा पवित्र और वेदपाठी था ६ उसके चार पुत्र बड़े पराक्रमी और अर्थ-धर्म में पण्डित थे। रामचन्द्र १, भरत २, लक्ष्मण ३ और शत्रुघ्न ४। इनमें से रामचन्द्र कौशल्या रानी से,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भरत कैकेयी रानी से और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सुमित्रा से उत्पन्न हुए थे ७। ८ हे विभो ! विदेह देश के राजा जनक की पुत्री सीता नामी, जिसको प्रजापति ने आप उत्पन्न किया था, वह रामचन्द्रजी की प्यारी पटरानी थी ९ यह कथा तो रामचंद्र और सीता के उत्पन्न होने की है। अब रावण के जन्म का भी वृत्तान्त सुनो १० रावण के पितामह अर्थात् बाबा साक्षात् देवरूप ब्रह्माजी हैं, जो सब लोकों के उत्पन्न करनेवाले प्रजापति और स्वयंभू हैं ११ ब्रह्माजी के प्यारे पुलस्त्य नामी मानसी पुत्र उत्पन्न हुए और उनके गो नामी स्त्री से वैश्रवण नामी पुत्र उत्पन्न हुआ १२ हे राजन्! वह अपने पिता को छोड़कर ब्रह्माजी के पास रहने लगा, तब उसके पिता ने क्रोध से अपने आधे शरीर से विश्रवा नामी ब्राह्मण को वैश्रवण के दण्ड देने के लिये उत्पन्न किया १३। १४ तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को अमर कर दिया और धन का ईश्वर बनाकर उसे लोकपाल की पदवी दे दी १५ और उसकी मित्रता रुद्रजी से कराकर उसे नलकूबर नामी पुत्र और रहने को लङ्का राजधानी दी जो कि राक्षसगणों से संयुक्त रहती थी १६ और वह पुष्पकविमान भी, जो इच्छा के अनुसार चल सकता है, देकर यक्षों का राजा बना दिया और उसे राजत्वपद भी दे दिया ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

दोसौ चौहत्तरवाँ अध्याय ।

रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर और शूर्पणखा का तपस्या करने और वरदान पाने की कथा ।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! पुलस्त्यजी के क्रोध से जो आधी देह से विश्रवानामी मुनि हुआ था वह वैश्रवण अर्थात् कुबेर को क्रोधकी दृष्टि से देखने लगा १ तब कुबेरजी ने अपने पिता विश्रवा को अपने ऊपर क्रोधित जानकर उनको प्रसन्न करने के लिये लङ्का में पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका नामी तीन राक्षसी, जो नाचने-गाने में बड़ी चतुर थीं, नियत करदीं और वे तीनों परस्पर ईर्ष्या करके अपना अपना कल्याण चाहने के लिये विश्रवाजी की सेवा करने लगीं। विश्रवाजी ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन प्रत्येक को वरदान दिया कि तुम्हारे तुम्हारी इच्छा के अनुसार लोकपालों के सदृश पुत्र उत्पन्न होंगे। उस वरदान के प्रभाव से पुष्पोत्कटा के दो पुत्र बड़े पराक्रमी और राक्षसों के ईश्वर उत्पन्न हुए जो रावण और कुम्भकर्ण नाम से विख्यात हैं २।७ और मालिनी के एक पुत्र विभीषण नामी हुआ और राका के खर नामी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एक पुत्र और शूर्पणखा नामी एक पुत्री उत्पन्न हुई ८ इनमें से विभीषण बड़ा स्वरूपवान्, महाभाग्यवान्, क्रियावान् और धर्म की रक्षा करनेवाला था ९ और रावण सब भाइयों में श्रेष्ठ, सब राक्षसों में उत्तम, महोत्साही, बड़ा बलवान् और बुद्धिमान् था १० और कुम्भकर्ण सब भाइयों में अधिक बलवान्, माया से युद्ध करने में निपुण और भयंकर था ११ और खर राक्षस धनुषविद्या में सबसे पराक्रमी, ब्रह्मकुल का द्रोही और मांसभक्षी था और उसकी बहिन शूर्पणखा सिद्धों का विघ्न करनेवाली और बड़ी रौद्ररूपा थी १२ इसके पीछे ये सब शूरवीर वेद पढ़कर पिता विश्रवाजी के साथ प्रीति रखकर गन्धमादन पर्वत पर रहने लगे १३ एक समय उन चारों भाइयों ने कुबेरजी को बड़े ऐश्वर्य के साथ अपने पिता के पास बैठा हुआ देखा। उनको देखकर वे बड़े क्रोध से ब्रह्माजी की उग्र तपस्या करने लगे। रावण ने वायुभक्षी हो एक पाँव से खड़े होकर पञ्चाग्नि तापकर बड़ी सावधानी से एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की १४। १६ कुम्भकर्ण ने यताहार और यतव्रत होकर तप किया और शय्या पर सोना छोड़ दिया। उसी समय विभीषण भी एक शीर्ण पत्ते का भोजन करके उपवास सहित तीव्र तप करने लगा और खर और शूर्पणखा ये दोनों मन में प्रसन्न होकर अपने तीनों तपस्वी भाइयों की सेवा और रक्षा करते रहे १७। १९ जब रावण को तपस्या करते हुए सहस्र वर्ष व्यतीत होगये, तब उसने अपना शिर काटकर अग्नि में होम दिया। ब्रह्माजी उससे प्रसन्न हुए और उन्होंने उन तीनों को वरदान का लोभ देकर तप से निवृत्त कर दिया २०। २१ और उनसे यह कहा कि हे पुत्रो ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं सिवाय अमरत्व के और जिस वरदान की इच्छा हो, सो मांगलो २२ रावण श्रेष्ठ पद चाहने की इच्छा से अपने शिर काट-काट कर होमे हैं इससे उसके वे शिर उसकी इच्छा के अनुसार देह में हो जायँगे और उनसे उसका स्वरूप बुरा न दीखेगा और वह कामरूपधारी और शत्रुप्रहारी होगा। यह सुनकर रावण बोला कि मैं चाहता हूं कि देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर और भूत आदि कोई मुझको न मार सकें। ब्रह्माजी बोले कि अच्छा, ऐसाही हो, इनमें से कोई तुझको पीड़ा न दे सकेगा, परंतु मनुष्य से तुझे भय रहेगा, मैंने ऐसाही रचा है २३। २६ मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! यह वरदान पाकर दशग्रीव रावण बड़ा प्रसन्न हुआ और मनुष्यों का अपमान करने लगा २७ इसके पीछे ब्रह्माजी ने कुम्भकर्ण

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से वरदान मांगने को कहा। उस अज्ञानी ने कहा कि मुझे निद्रा बहुत आवे २८ ब्रह्माजी बोले, अच्छा, ऐसा ही होगा। फिर ब्रह्माजी ने विभीषण से कहा कि तू भी वरदान मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हूं २९ विभीषण बोला कि हे भगवन्, महाराज! परम आपदा पड़ने पर भी मेरी बुद्धि अधर्म करने की इच्छा न करे और ब्रह्मअस्त्र मुझे विना सीखे हुए आजावे ३० ब्रह्माजी बोले कि हे अमित्रकर्शन! यद्यपि तू राक्षसकुल में उत्पन्न हुआ है परंतु अधर्म में बुद्धि न होने का वरदान मांगने के कारण से मैं तुझे अमर किये देता हूं ३१ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इस प्रकार से रावण ने वरदान पाकर कुबेरजी को युद्ध में जीत लिया और लङ्का से निकाल दिया ३२ तब भगवान् कुबेरजी गन्धर्व, यक्ष और किंपुरुषों सहित लङ्का छोड़कर गन्धमादन पर्वत पर आकर रहने लगे ३३ इसके पीछे रावण ने बल से कुबेरजी का पुष्पक विमान भी छीन लिया। तब कुबेरजी ने शाप दिया कि इस विमान में तू नहीं चढ़ने पावेगा, किन्तु इसमें वह सवार होगा जो तुझे मारेगा और तू मुझ गुरु का अपमान करने के कारण से शीघ्र माराजायगा ३४।३५ इसके उपरान्त विभीषण सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने लगा और अपने भाई कुबेरजी के पास गया। कुबेरजी ने प्रसन्न होकर उसे यक्ष और राक्षसों की सेना के अधिपति का अधिकार दे दिया ३६।३७ तदनन्तर राक्षस और पिशाचों ने मिलकर रावणका राज्याभिषेक किया ३८ और उस बलोन्मत्त इच्छारूपी और आकाशचारी दशानन ने अपने बल से सब दैत्य और देवताओं के रत्न हर लिये ३९ उसका नाम रावण इस कारण से हुआ था कि उसने लोकों को वध आदि उपाधियों से रुलाया था। उसके इच्छानुसार बल होजाने को देखकर सब देवता भयभीत होगये ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥

दोसौ पचहत्तरवाँ अध्याय।

रावणार्दित देवताओं का ब्रह्माजी की आज्ञा से रीछ और वानरों में अवतार लेना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे सब ब्रह्मऋषि, सिद्ध और देवऋषि, अग्निदेव को आगे करके ब्रह्माजी के पास गये और अग्नि ने उनसे कहा कि महाराज! आपने विश्रवा के पुत्र महाबली रावण को वरदान देकर अवध्य कर दिया है। वह अब सब प्रजाओं को बड़ा दुःख देरहा है, सो आपही उससे हमलोगों की रक्षा कीजिये आपके सिवाय दूसरा रक्षक नहीं है १।२

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ब्रह्माजी बोले कि हे अग्ने ! देवता और असुर उस रावण को विजय नहीं कर सके हैं, इस हेतु से उसका निग्रह करने के लिये हमने और उपाय रचा है। वह यह है कि हमारी प्रेरणा से चतुर्भुज विष्णु ने अवतार लिया है, वे उसको मारेंगे। तुम लोग भी अपने अपने अंश से रीछ और वानरों में अवतार लेकर ऐसे पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो जो विष्णु भगवान् की सहायता करें। यह सुनकर सब देवता, गन्धर्व और दानव पृथ्वी पर शीघ्र अवतार लेने का मन्त्र करने लगे ४।८ उसी समय ब्रह्माजी ने सब देवताओं के सामने दुन्दुभी नाम गन्धर्वी को आज्ञा दी कि तू भी कार्य सिद्ध करने के लिये पृथ्वी पर जाकर अवतार ले। वह यह सुनकर मनुष्यलोक में चली आई और मन्थरानाम कुबड़ी बनकर कैकेयी रानी के यहाँ दासी कर्म करने लगी ९।१० तब इन्द्रआदि देवताओं ने भी रीछ और वानरों की स्त्रियों के गर्भ में अपने अपने अंश से अवतार लिया और उन रीछनी और वानरियों के बड़े बलवान् पुत्र अपने अपने पिताओं के अनुरूप उत्पन्न हुए। वे रीछ और वानर ऐसे पराक्रमी थे कि पर्वतों की चोटियों को भी तोड़ सकते थे और शाल, तालवृक्ष और शलाका आदि आयुध रखते थे ११।१२ सबके अङ्ग वज्र के समान दृढ़ थे और सबके सब बड़े चतुर, दश दश सहस्र हाथियों का बल और वायुका सा वेग रखनेवाले होकर जहाँ इच्छा होती थी वहाँ रहते थे। इसके पीछे ब्रह्माजी ने मन्थरा को वे सब काम, जो उसे करने थे, बतादिये और वह मनके वेग के तुल्य इधर उधर डोलने फिरने और शत्रुता का मूल जमाने का यत्न करने लगी॥ १३। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७५॥

दोसौ छिहत्तरवाँ अध्याय।

राम-वनवास, भरतशोक, शूर्पणखा के कारण खर-दूषणादि वध।

उक्त कथा को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मार्कण्डेयजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! महाराज आपने रामचन्द्र आदि के जन्म का वृत्तान्त तो कहा, परन्तु अब मैं रामचन्द्र, लक्ष्मण और यशस्विनी सीता के वनवास होने का कारण जानना चाहता हूं १।२ मार्कण्डेयजी बोले कि राजा दशरथ, जो क्रियावान् धर्मात्मा और वृद्धों की सेवा करनेवाले थे, पुत्रों के उत्पन्न होने से बहुत प्रसन्न हुए। वे पुत्र क्रमपूर्वक बड़े हुए और रहस्यों सहित वेद और धनुर्वेद में पारग होगये ३।४ इसके पीछे उन पुत्रों के विवाह हुए और जब वे ब्रह्मचर्य से निवृत्त हुए तब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

राजा दशरथ उनको देखकर प्रसन्न हुए ५ इन चारों पुत्रों में रामचन्द्रजी सबसे बड़े थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमानी और मनोहरता से सब प्रजाको आनन्दमङ्गल से युक्त करदिया ६ इसके पीछे राजा दशरथ ने अपनी आयु अधिक देखकर रामचन्द्रजी का यौवराज्य अभिषेक करने के लिये अपने मन्त्री और पुरोहित से सलाह की। उन सबोंने कहा कि महाराज ! अब रामचन्द्रजी को युवराज करने का समय आगया है, अवश्य उनका अभिषेक कराइये ७। ८ हे कुरुनन्दन ! रामचन्द्रजी बड़े गुणवान् और स्वरूपवान् थे। नेत्र उनके लाल लाल, चाल मतवाले हाथी कीसी, बाँहें लम्बी लम्बी, छाती चौड़ी और बाल नीले और घूँघरवाले थे। ऐसी शोभा से उनकी छवि बड़ी अद्भुत और दीप्यमान थी। इसके सिवा रामचन्द्रजी बड़े वीर, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, सब विद्याओं के जाननेवाले, बुद्धि में बृहस्पति के समान, बड़े चतुर, सब प्रजा के प्यारे, जितेन्द्रिय, शत्रुओं की दृष्टि और मनको हरनेवाले, नीच पुरुषों को दण्ड देनेवाले, धर्मात्माओं के रक्षक, अपराजित, जयकर्ता और अनाधृष्य थे। उनको इन गुण और लक्षणों से युक्त देखकर राजा दशरथ उनपर बड़ी प्रीति करने लगे ६। १३ कुछ काल के पीछे उन्होंने प्रसन्न होकर अपने पुरोहित वशिष्ठजी से कहा कि आज रात्रि को पुष्य नक्षत्र पवित्र योग पर आवेगा, इससे आप सामग्री इकट्ठी करवाकर रामचन्द्रजी को यौवराज अभिषेक करा दीजिये १४।१५ उस समय कैकेयी रानीकी मन्थरा दासी ने राजा के वचनों को सुनकर समय पाकर कैकेयी से कहा १६ कि हे रानी ! राजा ने कपट करके तेरा बड़ा दुर्भाग्य विचारा है, इससे तो तुझे कोई विषधर सर्प डसले तो अच्छा है १७ कौशल्या बड़ी भाग्यवान् है। आज उसके पुत्र राम का यौवराज अभिषेक होगा और तेरा भाग्य बड़ा मन्द है, जिससे तेरा पुत्र राज्य न पावेगा १८ यह सुनकर कैकेयी, जो बड़ी स्वरूपवान् थी, अपना शृङ्गार सब गहने और वस्त्रों से करके राजा के पास एकान्त में गई और बड़ी प्रीति प्रकाशित करके हँसकर मधुर बोली से राजा से कहने लगी १६। २० कि महाराज ! आप सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपने मुझ को एक वरदान देने को कहा था। अब वह वरदान मुझको दीजिये २१ राजा दशरथ बोले कि, अच्छा मैं वरदान देता हूं। मांग क्या मांगती है। जिसको कहे उसको मरवा डालूं और जिसको कहे छोड़ दूं २२ ब्राह्मणों के धन के सिवाय जो कुछ धन मेरे पास है, उसे जिसको तू कहे देदूं अथवा जिसका

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धन तू कहे उसका हरलूं २३ आज मैं पृथ्वी पर सब राजाओं का राजा और चारों वर्णों का रक्षक हूं। जो कुछ तेरी इच्छा हो सो हे कल्याणि ! शीघ्र मांग ले २४ यह सुनकर कैकेयी यह समझकर कि इस समय राजा मेरे वश में हैं, कहने लगी कि, मैं यह वरदान मांगती हूं कि रामचन्द्र को वनवास हो और भरत का यौवराज अभिषेक किया जाय २५। २६ हे भरतश्रेष्ठ ! इस अप्रिय और दारुण वचन को सुनकर राजा दशरथ बड़े दुःखी हुए और उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया २७ इसके पीछे धर्मात्मा महा बलवान् रामचन्द्रजी ने सुना कि कैकेयी ने पिता से हमारे वनवास जाने का वरदान मांगा है। यह सुनकर वे इस प्रयोजन से वन को चल दिये कि हमारे पिता की प्रतिज्ञा झूठी न होवे २८ उनके साथ धनुषधारी लक्ष्मणजी और वैदेही सीताजी भी होलीं २६ उनके चले जाने पर राजा दशरथ ने अपने प्राण छोड़ दिये ३० इसके पीछे कैकेयी ने दशरथ को मरा हुआ और रामचन्द्रजी को वन में गया हुआ जानकर भरतजी को बुलाकर कहा ३१ कि राजा दशरथ तो स्वर्गवासी हुए और राम लक्ष्मण वन को चले गये, अब तू निष्कण्टक होकर राज्य कर ३२ यह सुनकर धर्मात्मा भरतजी ने कहा कि बड़े दुःख की बात है कि तैंने धन के लोभ से अपने पति को मारकर हमारा कुल नष्ट किया और हिंसात्मक कर्म के करने की भागी हुई ३३ तू मेरी माता है, परंतु कुलकलङ्किनी है। तैंने यह अयश मेरे माथे पर डाल कर अपने को सकाम हुआ माना है, यह कहकर भरतजी रोने लगे ३४ और उन्होंने चरित्र का शोधन किया अर्थात् प्रजाओं को यह प्रतीत कराया कि इस कर्म में मेरी सलाह नहीं थी, कैकेयी ने अपने ही मत से किया है। इसके उपरान्त भरतजी बहुत दुःखी होकर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, शत्रुघ्न, वशिष्ठ, वामदेव और अन्य सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासी और देशवासी मनुष्यों सहित रामचन्द्रजी को लौटाकर लाने की इच्छा से अनेक सवारियों में बैठकर वन में गये और उन्होंने चित्रकूट पर्वत पर जाकर धनुषधारी रामचन्द्रजी को तपस्वियों कासा वेष धारण किये हुए लक्ष्मण सहित देखा ३५।३८ वहां उन्होंने रामचन्द्रजी को लौटाने के लिये अनेक यत्न किये, परंतु रामचन्द्रजी पिता का वचन सत्य करने की इच्छा से वन से नहीं लौटे। तब भरतजी रामचन्द्रजी की पादुका लेकर लौट आये और नन्दिग्राम में बसकर पादुकाओं का पूजन करके राज्य करने लगे ३६ इसके पीछे रामचन्द्रजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पुरवासी और देशवासियों के आने की शंका से चित्रकूट छोड़कर बड़े वन में चले गये और शरभङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुँचे ४० वहां उन्होंने शरभङ्ग ऋषि का सत्कार किया और वहां से दण्डक वन में जाकर गोदावरी नदी के रमणीक तट पर रहने लगे ४१ वहां शूर्पणखा के कारण से खर नामी राक्षस से उनका बड़ा वैर होगया और उन्होंने तपस्वियों की रक्षा के लिये चौदह सहस्र राक्षसों का वध किया और महाबली खर और दूषण दैत्यों को भी मारकर वह वन क्षेमरूप कर दिया ४२।४४ उनके मारेजाने पर शूर्पणखा राक्षसी, जिसके कान और नाक काट लीगई थी, लङ्का में रावण के पास गई ४५ और दुःख से मूर्च्छित होकर उसके पैरों पर गिरपड़ी। रावण उसके कुरूप को देखकर क्रोध से मूर्च्छित सा होकर अपने दाँतों को पीसता हुआ आसन से उठ खड़ा हुआ ४६। ४७ और अपने मन्त्रियों को हटाकर एकान्त में उससे पूछा कि मेरा भय न मानकर तेरा ऐसा स्वरूप किसने कर दिया है ४८ वह कौनहै जो तीक्ष्ण त्रिशूल को अपने हाथ से अपनी देह में मारकर अग्नि को शिर पर रखकर विश्वास के साथ सो रहा है और बड़े विषधर सर्पको पाँव से छूकर और सिंह की डाढ़को पकड़कर बैठा हुआ है ४९।५० उस समय रावण के शरीर के छिद्रों से क्रोध की ज्वाला ऐसी निकलने लगी मानों रात्रि में वृक्ष के गुद्दे जलरहे हैं ५१ तब शूर्पणखा ने रामचन्द्रजी के पराक्रम और खर दूषण के मारेजाने का वृत्तान्त रावण से कहा ५२ वह उसको सुनकर और कर्तव्य का निश्चय करके आकाशमार्गी हुआ और चलते समय अपनी बहिन को धैर्य देकर नगर की रक्षा का प्रबंध करगया ५३ लङ्का से चलकर रावण चित्रकूट और कालपर्वतों को नांघकर गंभीर जल रखनेवाले समुद्र के तटपर पहुँचा और वहां से समुद्र को नांघकर गोकर्णतीर्थ में गया जो शिवजी का प्रिय और अव्यग्र स्थान है ५४।५५ और वहां वह अपने पहले मन्त्री मारीच नामी के पास पहुँचा जो रामचन्द्रजी के भय से तपस्वियों का वेष धारण किये हुए रहता था॥ ५६॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७६॥

दोसौ सतहत्तरवाँ अध्याय।

रावणप्रेरित काञ्चनमृगरूपधारी मारीच का बध और सीताहरण की कथा।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! मारीच ने रावण की फल मूल आदि से पूजा की और बड़ा सत्कार करके उससे पूछा कि आपका वर्ण आज स्वाभाविक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नहीं दीखता है कहिये क्या कारण है। प्रजालोग आपकी आज्ञा पूर्ववत् मानते हैं या नहीं और आपके घर में सब क्षेम कुशल से हैं। आपका यहां आना किस कारणसे हुआहै उस कामको मुझसे कहिये। यदि वह काम दुःख से करने के योग्य भी होगा तो भी आप उसे किया हुआ ही समझिये ३। ४ तब रावण ने क्रोध से रामचन्द्रजी का सब चेष्टित वृत्तान्त कहा और जो काम उसने करना विचारा था उसे भी संक्षेप करके कह सुनाया ५ उसको सुनकर मारीच बोला कि रामचन्द्रजी के पराक्रम को मैं अच्छी तरह से जानता हूं। आप उनके निकट न जाइये। उनके बाणवेग को कोई नहीं सह सकता है। मेरे भी तपस्वी हो जाने का कारण वही पुरुषोत्तम हैं ६। ७ आपको यह नाश करनेवाला उपदेश किस दुरात्मा ने दिया है तब रावण क्रोधित होकर और मारीच को घुड़क कर बोला कि जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तो मैं तुझको मार डालूंगा। उस समय मारीच ने विचार किया कि श्रेष्ठ के हाथ से मरना अच्छा है। मरना तो अवश्य ही है इससे इसका काम भी कर दीजिये और श्रेष्ठ के हाथ से मरिये। यह विचार कर बोला ८। १० कि कहिये मैं आपकी क्या सहायता करूं। रावण बोला कि तू मेरे साथ चल और अपना स्वरूप रत्नजटित सुवर्ण के मृग का सा बनाकर सीता को लुभा तेरे उस स्वरूप को देखकर सीता रामचन्द्र को मृग मारने की प्रेरणा करेगी। उस समय रामचन्द्र के चले जाने पर मैं सीता को हरकर दूर ले जाऊंगा तब वह दुर्बुद्धि रामचन्द्र भार्या के वियोग में दुःखी होकर मर जायगा। यह सहायता तू हमारी कर। यह सुनकर मारीच ने अपना ऊर्ध्वदैहिक कर्म किया और दुःखी होकर रावण के साथ हो लिया। वे दोनों वहां से चलकर रामचन्द्रजी के आश्रम के निकट पहुँचे और वहां रावण ने अपना स्वरूप दण्डकमण्डलुधारी यती का सा बना लिया और मारीच रत्नजटित सुवर्ण का मृग बन गया। इसके पीछे वे दोनों रामचन्द्रजी के आश्रम पर गये और मृगरूपी मारीच सीताजी के सम्मुख होकर निकला ११। १७ दैव इच्छा से सीताजी ने उसे देखकर रामचन्द्रजी से उसे मारकर लाने को कहा। रामचन्द्रजी सीताजी का प्रिय करने की इच्छा से तरकस और तलवार लेकर और हाथों में गोधांगुलि त्राण अर्थात् चर्म के दस्ताने चढ़ाकर उस मृग के पीछे इस प्रकार से हो लिये जैसे मृग नक्षत्र के पीछे प्रजापति दौड़े थे और लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिये छोड़ गये। वह मृग भागता हुआ कभी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अन्तर्धान होता और कभी प्रकट होता, रामचन्द्रजी को दूर लेगया। तब बुद्धिमान् रामचन्द्रजी जान गये कि यह राक्षस है और उन्होंने अमोघ बाण उस राक्षस के मारा। उस बाण से पीड़ित होकर वह दैत्य रामचन्द्रजी की-सी बोली बनाकर बड़े ऊंचे स्वर से पुकारने लगा हा सीता! हा लक्ष्मण! उस करुणा-विलाप को सुनकर सीताजी उस ओर दौड़ीं जिधर से वह रोने का शब्द आता था। उस समय लक्ष्मण ने सीता से कहा कि तुम क्यों शङ्का करती हो रामचन्द्रजी पर प्रहार करनेवाला कोई नहीं है १८। २४ अभी मुहूर्त्तमात्र में रामचन्द्रजी आते हैं। यह सुनकर सीता ने जो रो रही थी लक्ष्मण की ओर से शङ्का की २५ और स्त्रीस्वभाव से इस प्रकार से परुष वचन कहनेलगी कि हे मूढ़! तैंने जो कामना अपने मन में विचारी है वह किसी प्रकार से नहीं हो सकती है। मैं चाहे अपने को शस्त्र से काट डालूंगी अथवा पर्वत के शिखर से गिर कर मर जाऊंगी या अग्नि में गिरकर जल जाऊँगी पर अपने पति रामचन्द्र के सिवाय तुझ हीनगुण की सेवा नहीं करूंगी जैसे शार्दूली गीदड़ की सेवा कभी नहीं करती है। यह सुनकर लक्ष्मणजी २६। २६ अपने कानों को बन्द करके उसी राह से जिससे रामचन्द्र गये थे खोज देखते हुए और सीताजी की ओर भी दृष्टि करते हुए चल दिए। उनके चले जाने पर वह अशुचिरूप रावण अपने को संन्यासी के रूप में इस प्रकार से ढके हुए जैसे राख में अग्नि छिपी रहती है वहां आया ३०। ३२ उसको देखकर धर्मज्ञ सीता फल और मूल उसे देने लगी परंतु उसने उनको नहीं लिया और अपने राक्षसस्वरूप को प्रकट करके कहने लगा कि हे सीते! मैं रावणनामी राक्षसों का राजा हूं। मेरी पुरी लङ्कानामी महासमुद्र के पास है ३३। ३५ वहां तू मेरे साथ चली चल और मेरी भार्या होकर नर और नारियों के बीच में आनन्दपूर्वक रह और इस तपस्वी रामचन्द्र को छोड़ दे। यह सुनकर सीता ने अपने दोनों कानों को बन्द कर लिया और कहने लगी कि यह नहीं हो सकता है, चाहे स्वर्ग नक्षत्रों सहित गिर पड़े, पृथ्वी फटकर दो टूक होजाय और अग्नि ठण्ढी पड़ जाय परंतु मैं रामचन्द्रजी को नहीं छोड़ सकती हूं ३६। ३८ यह क्योंकर हो सकता है कि हथिनी कमलों के वन में विहार करनेवाले हाथी को छोड़कर शूकर की उपासना करे ३६ हां, ऐसा कर्म चाहे वह स्त्री करे जो मधुपुष्पों की बनाई हुई मद्य अथवा मधु या माधवी को पीकर कांजी पीना चाहे ४० यह कहकर सीता

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जिसके होंठ और हाथ क्रोध से कांपने लगे थे आश्रम के भीतर चली गई ४१
तब रावण ने सीता के पास जाकर उसे आश्रम के भीतर जाने से रोका और
उस अचेत हुई को घुड़क कर उसके शिर के बाल पकड़ लिये और आकाश-
मार्ग से चल दिया। उस समय उस राम २ पुकारती और रोती हुई सीता को
जटायु नाम पर्वतनिवासी गृध्र ने देखा॥ ४२ । ४३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥

दोसौ अठत्तरवाँ अध्याय।

रावण-मारित जटायु से सीताहरण का हाल सुन लक्ष्मण-समेत राम का दक्षिण दिशा में जाकर कबन्ध को मारना।

मार्कण्डेयजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह महावीर गृध्रराज जटायु अरुण का पुत्र और सम्पाति गृध्र का सहोदर भाई था और राजा दशरथ से उसकी मित्रता थी १ वह गृध्र पुत्रवधू सीता को रावण की गोद में देखकर बड़ा क्रोधित हुआ और दौड़कर रावण के सम्मुख गया और कहने लगा २ कि हे निशाचर! सीता को छोड़ दे २ मेरे जीते हुए तू इसे हरकर नहीं ले जासकता है ३ और जो तू इसे छोड़ेगा नहीं तो जीता न बचेगा। यह मेरी पुत्रवधू है। यह कहकर जटायु ने रावण को अपने तीक्ष्ण नखों से घायल कर दिया ४ और चोंच और पैरों के प्रहार से उसका शरीर जर्जर कर दिया। उससे रावण के शरीर से लोहू इस प्रकार से गिरने लगा जैसे पर्वत में झरना झरते हैं ५ तब रावण ने उस राम-चन्द्र का हित चाहनेवाले गृध्र से वध्यमान होकर तलवार से उसके दोनों पर जो अभ्रक की शिखर के तुल्य थे काटकर गिरा दिये और सीता को फिर गोद में उठाकर आकाशमार्ग से चल दिया ६। ७ सीताजी जहां जहां आश्रम, सरोवर अथवा नदी देखती थीं तहां तहां आभूषण गिराती जाती थीं ८ आगे जाकर सीता ने एक पहाड़ पर पांच श्रेष्ठ वानरों को बैठा हुआ देखा। वहां उसने अपना वस्त्र डाल दिया ९ और वह पीताम्बर वस्त्र बिजली के समान चमकता हुआ उन पांचों वानरों के बीच में आन पड़ा १० इसके पीछे रावण उस आकाशमार्ग से थोड़े ही काल में रमणीक लङ्कापुरी में आन पहुँचा जो विश्वकर्मा की बनाई हुई और बहुत से द्वार, कोट और दुर्गों से शोभित और दुर्गम थी ११।१२ इसके उपरान्त रामचन्द्रजी उस सुवर्ण के मृग को मारकर लौटे और मार्ग में उनको लक्ष्मणजी मिले। उनको देखकर रामचन्द्रजी ने निन्दा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करके कहा कि तू इस राक्षसों से सेवित वन में सीता को अकेली छोड़कर क्यों चला आया है १३। १४ यह कहकर रामचन्द्रजी अपने मृगरूपी राक्षस के पीछे दूर जाने और लक्ष्मण के चले आने को शोचकर दुःखी होगये और लक्ष्मणजी के पास जाकर बोले कि सीता न जाने जीती है या नहीं १५।१६ तब लक्ष्मण ने रामचन्द्रजी से सीता के कहे हुए सब अयोग्य वचन कहे १७ उसको सुनकर रामचन्द्रजी दुःखी होकर आश्रम की ओर शीघ्रता से चले। मार्ग में उन्होंने पर्वत के तुल्य पड़े हुए गृध्र को देखा १८ और उसे राक्षस अनुमान कर दोनों भाई धनुष् चढ़ाकर उसके सम्मुख दौड़े १९ उनको देखकर गृध्र बोला कि मैं गृध्रों का राजा और राजा दशरथ का सखा हूं २० उसको सुनकर उन्होंने अपने धनुष उतार लिये और कहने लगे कि यह कौन है, जिसने हमारे पिता का नाम लिया है २१ तब वे दोनों उस पर कटे हुए गृध्र के पास गये। उसने सीता के निमित्त रावण के हाथ से अपने मारे जाने का सब वृत्तान्त उन दोनों से कहा २२ तब रामचन्द्रजी ने उससे पूछा कि रावण किस दिशा को गया है। उसने शिर हिलाकर रामचन्द्रजी को उत्तर दिया और मर गया २३ रामचन्द्रजी उस संकेत से जान गये कि दक्षिण दिशा को गया है फिर रामचन्द्रजी ने उसे अपने पिता का सखा जानकर उसका संस्कार अर्थात् प्रेतक्रिया की और अपने आश्रम को शून्य देखकर, जिसमें सैकड़ों गीदड़ आन बैठे थे और आसन आदि तितर बितर पड़े हुए और घड़े टूटे पड़े थे, सीता के हरे जाने के दुःख और शोक से आविष्ट होकर दण्डकवन में दक्षिण दिशा को चल दिये २४।२६ आगे बढ़कर उन दोनों ने मृगों के झुंडों को भागते हुए अपनी ओर आते देखा और वन के जीवों का महा घोर शब्द सुना जिससे यह प्रतीत होता था कि वन में दावाग्नि लगी है। थोड़ी देर में उनके सामने कबन्धनामी घोरदर्शन राक्षस आ निकला २७।२८ जिसका शरीर पर्वत के समान, कन्धे शाल वृक्ष के सदृश, भुजा बड़ी बड़ी छाती पर एक आंख और बड़े भारी पेट पर बड़ा सा मुख था २९ दैवइच्छा से उस राक्षस ने शीघ्र आकर लक्ष्मणजी का हाथ पकड़ लिया। लक्ष्मणजी को उससे बड़ा कष्ट हुआ ३० इसके पीछे जब उस राक्षस ने लक्ष्मणजी को अपने मुख की ओर भक्षण करने को खींचा, तब लक्ष्मणजी ने व्याकुल होकर रामचन्द्रजी से कहा कि मेरी इस अवस्था को देखिये ३१ क्या दैवयोग है कि इधर सीता हरी गई और मेरी यह दशा हुई और उधर आप राज्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से भ्रष्ट हुए और पिताजी स्वर्गवासी हुए ३२ अब मुझको यह आशा नहीं है कि मैं आपका सीता से मिलाप और अयोध्या में लौटकर आपको बाप दादों के राज्य पर स्थित देखूँ ३३ वे लोग धन्य होंगे जो आपके चन्द्रमारूपी मुख को उस समय देखेंगे, जिससमय आपका राज्याभिषेक कुश और लाजा आदि सामग्री से किया जायगा ३४ इसप्रकार से लक्ष्मण ने विलाप करके अनेक बातें कहीं। तब रामचन्द्रजी, जिनको भय के स्थान पर भी भय नहीं लगता था, बोले ३५ कि तुम घबराओ मत, मेरे होते हुए यह राक्षस तुम्हारा कुछ नहीं करसक्ता है। मैं इसकी बाईं भुजा को काटे डालता हूँ। तुम दाहिनी बांह को काट डालो ३६ यह कहकर रामचन्द्रजी ने तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षस की बाईं भुजा काट डाली। तब लक्ष्मणजी ने भी उसकी दाहिनी भुजा काटकर गिरा दी ३७।३८ और उसके पार्श्व पर एक तलवार मारी। उसके लगने से वह कबन्ध राक्षस निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ३९ और उसकी देह से एक दिव्य दर्शनीय पुरुष निकलकर सूर्य के समान चमकता हुआ आकाश में स्थित होगया ४० उसको देखकर रामचन्द्रजी ने पूछा कि तू कौन है और यह क्या अद्भुत बात है। तुझे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ४१ वह बोला कि मैं विश्वावसु गन्धर्व हूं ब्राह्मण के शाप से राक्षस होगया था ४२ सीता को लङ्कावासी रावण हर ले गया है। तुम सुग्रीव के पास जाओ, वह तुम से मित्रता करेगा ४३ ऋष्यमूक पर्वत के पास पम्पानाम सरोवर बड़ा आनन्दरूपी जल रखनेवाला जहां हंस आदि पक्षी रहते हैं ४४ वहीं वानरों के राजा बालि का भाई सुग्रीवनामी सुवर्ण की माला पहिरे हुए अपने चारों मन्त्रियों सहित रहता है ४५ तुम उससे मिलो और अपना दुःख कहो। वह भी तुम्हारे ही समान शील स्वभाव रखनेवाला है। अवश्य तुम्हारी सहायता करेगा ४६ बस, हम इतना ही तुमसे कहते हैं कि तुम सीता से फिर मिलोगे। वह वानरों का राजा सुग्रीव रावण का स्थान जानता है ४७ यह कहकर वह पुरुष अन्तर्धान होगया और राम लक्ष्मण बड़ा आश्चर्य करने लगे॥४८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७८॥

दोसौ उनासीवाँ अध्याय।

राम सुग्रीवकी मित्रता, बालिबध तथा त्रिजटा का स्वप्न सुनाकर सीता को धैर्य देना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे रामचन्द्रजी पम्पापुष्करिणी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के निकट पहुँचे, जो पासही थी, अनेक प्रकार के कमल उस पुष्करिणी में खिल रहे थे और अमृतरूपी सुगन्धित वायु बह रही थी, राजा रामचन्द्र उस शोभित और रमणीक वन को देखकर कामबाण से संतप्त होते हुए सीता के वियोग से विलाप करने लगे, उस समय लक्ष्मण ने उनको समझाया कि १। ३ हे मानदायक! आपको इस प्रकार का भाव कदापि स्पर्श नहीं कर सकता है, जैसे कि आत्मा के जाननेवाले और वृद्धों का-सा स्वभाव रखनेवाले पुरुष को व्याधियाँ नहीं सताती हैं ४ आपको रावण से सीता के हरे जाने का वृत्तान्त विदित हो ही गया है, उसके पास से सीता के लाने का उपाय बुद्धि से कीजिये ५ चलिये शैलस्थायी, कपीश सुग्रीव के पास चलें आप मुझे अपना दास और शिष्य जान कर मुझ पर विश्वास कीजिये ६ यह सुनकर रामचन्द्रजी का चित्त स्वस्थ हुआ और वे दोनों भाई पम्पापुष्करिणी में स्नान और तर्पण करके चल दिये ७। ८ और उस ऋष्यमूकपर्वत के समीप पहुँचकर, जिस पर बहुत से फूले-फले हुए वृक्ष लगे हुए थे, उन्होंने पांच वानर बैठे हुए देखे ९ तब सुग्रीव ने अपने हनुमान् नामी बुद्धिमान् मन्त्री को, जिसका शरीर हिमवान् पर्वत के समान था, उन दोनों के पास भेजा १० हे नृपाल! उन्होंने प्रथम हनुमान्जी से बातचीत की उपरान्त दोनों भाई सुग्रीव के पास गये और वहां जाकर रामचन्द्रजी ने वानरेश सुग्रीव से मित्रता की ११ इसके पीछे जब एक दूसरे ने अपना २ कार्य कहा तब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी को वह वस्त्र दे दिया जो रावण से हरे जाने पर सीता ने फेंक दिया था १२ हे नरेश! उसको देखकर रामचन्द्रजी को सुग्रीव का विश्वास हुआ और उन्होंने बालि को मारकर उसे वानरों का राजा बनाने का प्रण किया। तब सुग्रीव ने भी सीता के फिर लाने की प्रतिज्ञा की १३। १४ इस प्रकार से सुग्रीव और रामचन्द्र दोनों एक दूसरे के साथ नियम करके और विश्वास देकर सब समाज सहित किष्किन्धा को युद्ध की इच्छा से गये १५ वहां जाकर सुग्रीव बड़े शब्द से गर्जा, उसका भाई बालि उसकी गर्जना को न सह सका और युद्ध करने को चलने लगा, तब उसकी स्त्री तारा ने उसे निषेध करके कहा कि आप युद्ध करने न जाइये। सुग्रीव बल पर नहीं गर्जता है, किन्तु दूसरे की सहायता पाकर आया है १६। १७ यह सुनकर उस वानरों में श्रेष्ठ बालि ने, जो सुवर्ण की माला पहिरे हुए था,

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अपनी चन्द्रमुखी स्त्री तारा से कहा १८ कि तू सब प्राणियों की बोली जानती है, अपनी बुद्धि से विचार कर कह कि सुग्रीव किसके बल पर मुझसे लड़ने आया है १६ यह सुनकर उस चन्द्रमुखी ने एक मुहूर्त भर विचार करके कहा कि दशरथ के पुत्र रामचन्द्र से, जो बड़े धनुधारी हैं और जिनकी स्त्री को रावण हर ले गया है, उनसे सुग्रीव ने ऐसी मित्रता की है कि जिनके शत्रु मित्र परस्पर तुल्य हैं २०। २१ और रामचन्द्र का भाई लक्ष्मण, जो सुमित्रा से उत्पन्न है, जो महाबाहु बुद्धिमान् और अपराजित है, वह भी दोनों के काम को सिद्ध करने में तत्पर है २२ और मयंद, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान् नामी सुग्रीव के मन्त्री भी स्थित हैं। ये सब रामचन्द्रजी का बल पाकर तुमको मार सकते हैं २३। २४ यह सुनकर उस ईर्षी कपीश्वर ने उसके वचन को न माना और समझा कि तारा का चित्त सुग्रीव में लगा हुआ है २५ यह समझकर वह गुफा से निकल कर तारा को परुष वचन कहता हुआ चला आया और अपने सम्मुख सुग्रीव को पर्वत के समान खड़ा हुआ देखकर बोला २६ कि पूर्वकाल में मैंने तुझको कई बार जीत जीत कर भाई जानकर छोड़ छोड़ दिया और तू भी अपना जीव बचाकर भाग भाग गया, अब मरने के लिये क्यों शीघ्रता कर रहा है २७ यह सुनकर सुग्रीव रामचन्द्रजी को सम्बोधन करके काल के अनुसार अपने भाई से बोला कि आपने मेरी स्त्री और राज्य हर लिया है, मुझे अब जीने से क्या है इस जीने से तो लड़ मरना ही अच्छा है २८। २६ इस प्रकार से वे दोनों वीर अनेक बातें कहकर शाल और तालवृक्ष और शिला ले लेकर युद्ध करने लगे ३० कभी दोनों पृथ्वी पर लड़ते २ गिर पड़ते, कभी एक दूसरे पर प्रहार करने लगते कभी अद्भुत २ बातें करने लगते, और कभी परस्पर घूंसे लगा २ कर युद्ध करने लगते, ३१ थोड़ी देर में दोनों जने नख और दांतों के लगने से घायल होगये और उनके शरीर फूले हुए टेसू के वृक्ष के समान दीखने लगे ३२ जब उन दोनों में से कोई न्यूनाधिक नहीं जानपड़ा, तब हनुमान्जी ने सुग्रीव को एक माला पहिराय दी और वह उस माला से ऐसा शोभायमान दीखने लगा मानों मेघमाला से घिरा हुआ मलयाचल पर्वत है ३३। ३४ तब रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को चिह्नित देख कर धनुष् चढ़ा लिया और बालि पर लक्ष्य अर्थात् निशाना बाँधकर बाण छोड़

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दिया। वह बाण बालि के हृदय में घुस गया और बालि उससे कंपित होकर रुधिर उगलने लगा। इसके पीछे बालि राम लक्ष्मण को देखकर और उनकी निन्दा करता हुआ पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और मरगया और उस तेजस्वी को पृथ्वी पर पड़ाहुआ तारा ने भी देखा, इसके उपरान्त रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दे दिया और सुग्रीव वहां तारा सहित आनन्दपूर्वक रहने लगा ३५। ३६ और चातुर्मास के कारण से रामचन्द्रजी ने भी सुग्रीव-सहित माल्यवान् पर्वत पर वास किया ४० और रावण ने कामदेव से विकल होकर सीता को अशोक वन में नन्दनवन के तुल्य भवन में ठहरा दिया और वह तपस्विनी फल मूल का आहार और व्रत रखकर तापसीरूप से राम राम स्मरण करती हुई वहां रहने लगी ४१। ४२ रावण ने उसकी रक्षा के लिये अनेक राक्षसी नियत कर दीं उनमें से किसी के एक आंख किसी के दो आंख किसी के माथे में आंख किसीके बड़ी जीभ किसी के जीभ ही नहीं किसी के तीन स्तन किसी के एक पाँव और किसी के तीन जटा थीं और किसी किसी राक्षसी के बाल ऊँट के से थे ये राक्षसी खड्ग, शूल, फरसा, मुद्गर और आलात आदि अनेक शस्त्र लिये हुए विना निद्रा सीता की रक्षा करती थीं और रौद्ररूप से भयानक बोलियां बना बनाकर कहती थीं कि इसको फार डालो, खा लो और तिल के समान टुकड़े कर डालो क्योंकि यह हमारे पति का अपमान करके जीती बैठी है ४४। ४८ उस समय सीता ने पति के वियोग से दुःखी होकर और उन राक्षसियों के भयभीत वचनों को सुनकर कहा कि हे श्रेष्ठ राक्षसियो! मुझको शीघ्र ही खा लो विना उस पुण्डरीकाक्ष और नील कुञ्चि-तकेश रखनेवाले अपने पति के मैं जीना नहीं चाहती हूं ४६। ५० ताल में पड़ी हुई सर्पिणी के समान मैं भी जीवित के आनन्द से रहित होकर निरा-हार रहकर अपनी देह सुखा दूंगी ५१ मेरी यही सत्य प्रतिज्ञा है कि मैं राम-चन्द्रजी के सिवाय दूसरे पुरुष से नहीं बोलूंगी तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो ५२ यह सुनकर वे गधे की सी बोली बोलनेवाली राक्षसियां रावण के पास गईं और उससे सीता के कहे हुए वाक्य कह सुनाये ५३ उनके चले जाने पर त्रिजटानाम प्रियवादिनी और धर्म को जाननेवाली राक्षसी ने सीता से कहा कि हे सखि! मैं तुझसे कुछ कहना चाहती हूं तू मुझ पर विश्वास कर और हे वामोरु! भय को छोड़कर मेरी बात सुन ५४। ५५ यहां अविन्ध्य नामक एक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बुद्धिमान् वृद्ध राक्षस है वह रामचन्द्रजी का हितान्वेषी है उसने यह कहा है कि तू सीता से जाकर कह दे कि तेरे पति रामचन्द्र लक्ष्मणजी-सहित कुशल हैं उन्होंने इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानरों के राजा से मित्रता करली है और तेरे छुटाने का यत्न कररहे हैं ५६।५८ तू इस लोकनिन्दित रावण से भय मत करे, पूर्वकाल में इसने रम्भानामी अपनी पुत्रवधू को स्पर्श किया था उस समय इसको नलकूबर ने शाप दिया था उस शाप के कारण से यह रावण किसी स्त्री के साथ बरबस कुकर्म नहीं कर सक्ता है ५९।६० तेरा पति सुग्रीवसे रक्षित होकर लक्ष्मण समेत शीघ्र ही यहां आवेगा और तुझे यहांसे छुटा ले जायगा ६१ इसके सिवाय मैंने बहुत से अनिष्टदर्शन स्वप्न भी देखे हैं उनसे भी यह प्रतीत होता है कि अब इस पौलस्त्यकुलघाती दुर्बुद्धि रावण का नाश होगा ६२ यह राक्षस भयानक, दुष्टात्मा और क्षुद्रकर्मा है और शील न होने के कारण से सबके भय का बढ़ानेवाला है ६३ सब देवताओं से भी यह ईर्ष्या रखता है सो यह काल का मारा हुआ है मैंने इसके नाश होनेवाले ये चिह्न स्वप्न में देखे हैं ६४ कि यह रावण तेल में डूबा हुआ और शिर मुड़ा हुआ और अंग में कीच लपेटे हुए गधों के रथ पर नाचता हुआ सा बैठा हुआ है ६५ और कुम्भकर्ण आदिक योधा शिर मुड़ाये हुए नंगी देह और लाल माला पहिरे हुए दक्षिण दिशा को जा रहे हैं ६६ और विभीषण श्वेत छत्र, श्वेत पगड़ी, श्वेत माला और श्वेत चन्दन धारण किये हुए श्वेत पर्वत पर चढ़ा हुआ है ६७ और उसके चार मन्त्री भी श्वेत चन्दन और श्वेत माला धारण किये हुए उसी श्वेत पर्वत पर चढ़े हुए हैं और हम लोगों को बड़े भय से छुटा रहे हैं ६८ और तेरे पति के छोड़े हुए अस्त्र से सब पृथ्वी व्याप्त हो रही है और उसका यश सब पृथ्वी में छा गया है ६९ और लक्ष्मण अस्त्रों के समूह पर चढ़ा हुआ मिठाई और खीर खा रहा है और सब दिशाओं को जलाना चाहता है ७० और तू रुधिर में भरी हुई और रोती हुई चारोंओर व्याघ्रों से रक्षित उत्तर दिशा को जा रही है ७१ सो हे सीते! अब तू थोड़े ही काल में भाई-सहित अपने पति से मिलकर प्रसन्न होगी ७२ यह सुनकर मृगनयनी सीता को पति के मिलने की आशा हुई और फिर वे रौद्ररूपा राक्षसियाँ जो रावण के पास गई थीं आ गईं और उन्होंने सीता को त्रिजटा के पास बैठी हुई देखा ॥ ७३ । ७४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ अस्सीवाँ अध्याय।

भार्या होने की प्रार्थना करते हुए रावण का सीता के कठिन उत्तर देने से अन्तर्धान होजाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! इसके पीछे एक समय सीताजी दीन होकर अपने पति के वियोग में मैले वस्त्र पहिरे हुए शिला पर बैठी हुई राक्षसियों से चारों ओर घिरी हुई रो रही थीं उसी समय कामबाण से पीड़ित वह रावण जिसको देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व और किंपुरुष कोई नहीं जीत सकता था अशोकवाटिका में सीताजी के समीप गया उस समय वह दिव्यवस्त्र, दिव्यमणि, दिव्यकुण्डल, विचित्रमाला और सुन्दर मुकुट धारण किये हुए वसन्त की सी मूर्ति बना हुआ था और यद्यपि कल्पवृक्ष के समान भूषित था, परंतु श्मशान के चैत्यवृक्ष के समान भयंकर दीखता था १।५ और सीता के समीप गया हुआ ऐसा जान पड़ता था मानों शनैश्चर रोहिणी नक्षत्र के पास गया है ६ उससमय रावण ने अबला सीता से कहा कि तैंने अपने पति पर बड़ा अनुग्रह किया बस इतनी ही कृपा बहुत है अब तू मुझ पर कृपाकर और बहुत मोल के सुन्दर वस्त्र और गहने धारण करके मेरी भार्या होकर रह तुझको मैं अपनी सब स्त्रियों में उत्तम समझूंगा ७। ८ मेरे पास देवकन्या, गन्धर्व और दैत्यों की स्त्रियाँ और दानवों की कन्या भी हैं वे सब तेरी सेवा करेंगी १० और चौदह कोटि पिशाच मेरे आज्ञाकारी हैं और उनसे दुगने नरभक्षी राक्षस और उनसे तिगुने मेरे वचन को करनेवाले यक्ष मेरे पास हैं और कुछ यक्ष मेरे भाई कुवेर के पास हैं ११। १२ और गन्धर्व अप्सरा मेरे पास भी कुवेरजी के सदृश आते हैं और मैं विश्रवा ब्रह्मऋषि का पुत्र हूं और संसार में पांचवाँ लोकपाल गिना जाता हूं १३। १४ और मेरे पास सब भक्ष्य और भोज्य पदार्थ उसी प्रकार से हैं जैसे इन्द्र के पास हैं १५ यह समझकर तू मेरी भार्या होजा ऐसा करने से वनवास का सब दुःख तेरा जाता रहेगा मैं तुझको मन्दोदरी के समान समझता हूं १६ यह सुनकर वह पतिव्रता सीता रोने लगी और मुख फेरकर तिनके की ओट करके रावण से बोली कि हे राक्षसेश्वर ! मुझ दुखिया और अभागी ने तेरे ये वाक्य कई बेर सुने अब तू अपना मन मेरी ओर से हटा ले इसी में तेरा कल्याण होगा १७। २० मैं पराई स्त्री दीनस्वरूप पतिव्रता और मानुषी हूं तुझसे मिलने के योग्य नहीं हूं २१ तू मुझे विवश करके धर्षणा से प्रीति चाहता है अरे पापी ! अपने पिता की ओर देख जो वेदपाठी और प्रजा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पति के समान है २२ तू धर्म को तो समझता ही नहीं है फिर अपने को लोकपाल के समान कैसे बताता है और अपने को कुवेरजी का भाई कहते हुए जो शिवजी के प्यारे मित्र हैं तुझे लज्जा नहीं आती है यह कहकर वह सूक्ष्म शरीर सीता शिर और मुख को ढककर पृथ्वी की ओर देखती हुई हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी उस समय उसके कुच आदि अंग रोने से हिलने लगे और उसके शिर पर बँधी हुई लम्बी वेणी काली और चिकनी सर्पिणी के सदृश दीखने लगी उसके कहे हुए कठोर वचनों को सुनकर २३। २६ रावण बोला कि हे सीते! चाहे मुझको कामदेव कितना ही सतावे, परंतु मैं तुझ सुन्दरी से विना तेरी कामवृत्ति के नहीं मिलूंगा तू मेरा क्या कर सकती है जो अभीतक तू हमारे आहाररूपी मनुष्य रामचन्द्र को चाह रही है २७। २९ यह कहकर वह राक्षसाधिप वहीं अन्तर्धान होगया और अपनी इच्छा के अनुसार मनमानती दिशा को चला गया और सीता शोक से पीड़ित होकर उन्हीं राक्षसियों की रक्षा में त्रिजटा-सहित रहा की ॥ ३०। ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥

दोसौ इक्यासीवाँ अध्याय।

सुग्रीवप्रेषित हनुमान्जी का सीता की खबर लाकर रामचन्द्रजी से सब वृत्तान्त कहना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! रामचन्द्रजी सुग्रीव की रक्षा में लक्ष्मणजी सहित माल्यवान् पर्वत पर वास करते रहे जब वर्षाऋतु व्यतीत हो गई और आकाश के निर्मल होने से चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र और तारागणों सहित प्रभायुक्त उदय हुआ, तब रामचन्द्रजी को पर्वत पर कुमुद, उत्पल और पद्मजाति के कमलों की सुन्दर गन्ध उड़ने और शीतल वायु के चलने से अकस्मात् सीता की याद आगई जो राक्षस के घर में रुकी हुई थी और उन्होंने प्रातःकाल बीर लक्ष्मण से कहा १। ४ कि हे लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा में जाकर उस स्वार्थी, कृतघ्नी और मैथुनादिक ग्राम्यधर्मों में प्रमत्त कपीश्वर सुग्रीव को देखो ५ उस कुलकलङ्की के लिये मैंने तुम्हारे साथ किष्किन्धा में जाकर बालि को मारा और उसका राज्याभिषेक कराया जिसके कारण से अब उसकी आज्ञा में सब वानर और रीछ रहते हैं ऐसा उपकार करने पर भी जो वह नीच वानर मेरी अवस्था को नहीं देखता है तो मैं उसको कृतघ्नी समझता हूं और जानता हूं कि वह अपनी अल्पबुद्धि के कारण से यह नहीं जानता है कि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इन्होंने मेरा उपकार किया है मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहिए सो तुम यहां से जाकर उस सुग्रीव को देखो जो वह हमारे कार्य का कुछ उद्योग न करता हो और सुख पाकर सोता हो तो उसे भी उसी मार्ग में भेज दो जिस मार्ग से बालि गया है और जो वह हमारे कार्यसिद्धि के लिये यत्न करता हो तो हे काकुत्स्थ! उसको शीघ्र यहां लिवा लाओ ९। ११ यह सुन कर लक्ष्मणजी गुरु के वचन और हित में तत्पर होकर धनुषबाण लेकर चल दिये और किष्किन्धा के द्वार पर पहुँचकर विना रोके हुए भीतर घुस गये सुग्रीव उनको क्रोधित देखकर उनके सम्मुख चला गया १२। १३ और प्रसन्नता से विनीत होकर अपनी स्त्री-सहित उनको लिवा लाया और उनकी उचित पूजा की १४ तब लक्ष्मणजी ने निर्भय होकर रामचन्द्रजी ने जो कुछ कहा था कह सुनाया उसको सुग्रीव अपनी स्त्री और नौकरों-सहित सुनकर प्रसन्नता और नम्रता से हाथ जोड़कर नरोत्तम लक्ष्मण से बोला १५। १६ कि हे लक्ष्मणजी! मैं कृतघ्नी नहीं हूं न दयाहीन हूं और मेरी बुद्धि भी नष्ट नहीं हुई है मैंने सीता के ढूंढ़ने के लिये जो यत्न किया है उसको सुनो १७ मैंने चारों दिशाओं में वानर एक महीने में लौटने का काल नियत ठहराकर यह शिक्षा करके भेज दिये हैं कि तुमलोग इस सागररूपी वस्त्र रखनेवाली पृथ्वी पर वन, पर्वत, नगर, ग्राम आदि सब स्थानों में जाकर सीता का पता लेकर चले आवो सो अब उस महीने के व्यतीत होने में केवल पांच रात्रि रह गई हैं इन रात्रियों के पीछे तुम रामचन्द्रजी सहित बड़ी प्यारी बात सुनोगे १८। २० यह सुनकर लक्ष्मणजी ने क्रोध छोड़कर सुग्रीव की प्रशंसा की और उसे माल्यवान् पर्वत पर रामचन्द्रजी के पास ले जाकर संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया २१। २२ इसके पीछे महीना भर पूरा होने पर तीन दिशाओं से सब वानर लौटकर आ गये परन्तु जो वानर दक्षिण की ओर गये थे वे नहीं आये २३ तब सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से उनके लौटने का हाल कहकर कहा कि महाराज! तीन दिशाओं में तो रावण और सीता का पता नहीं है २४ तब रामचन्द्रजी ने दक्षिण दिशा को गये हुए वानरों से सीता की खबर पाने की आशा रखकर अपने प्राणों को स्वस्थ किया २५ तदनन्तर दो महीने पीछे कुछ वानरों ने सुग्रीव से यह आकर कहा २६ कि महाराज! जिस मधुवन की बालि ने रक्षा किया था और आप भी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जिसकी रक्षा करते हैं उसके फलों को आज वायुपुत्र हनुमान् और अङ्गद आदि अनेक वानर जिनको आपने दक्षिण दिशा को भेजा था खा रहे हैं २७ । २८ यह सुनकर सुग्रीव ने समझा कि कार्य हो गया क्योंकि नौकर लोग ऐसा काम जभी करते हैं जब कार्य सिद्ध कर लाते हैं। ऐसा अनुमान करके उसने सब वृत्तान्त रामचन्द्रजी से कहा उन्होंने भी यही अनुमान किया कि ये वानर सीता को देखकर आये हैं २९ । ३० हे भरतवंशिन्! इसके पीछे वे हनुमान् आदिक सब वानर सुग्रीव के पास उसी स्थान पर आये जहां रामचन्द्र और लक्ष्मणजी थे उस समय रामचन्द्र ने हनुमान् के मुख के वर्ण को देखकर निश्चय किया कि निस्संदेह ये सीता को देखकर आये हैं ३१ । ३२ इसके पीछे उन हनुमान् आदि वानरों ने वहां आकर राम लक्ष्मण और सुग्रीव को विधिवत् प्रणाम किया ३३ तब रामचन्द्रजी ने धनुष्बाण को लेकर वानरों से कहा कि मुझको अब प्रिय सँदेशा सुनाकर सजीव करो और तुम सब भी सिद्ध अर्थ हो जावो ३४ मैं शत्रु को मारकर और सीता को फिर लाकर अयोध्या में जाकर राज्य करूंगा ३५ नहीं तो विना ऐसा किये मैं जीना नहीं चाहता हूं यह सुनकर वायुपुत्र हनुमान्जी बोले कि महाराज! आपको प्रिय सँदेशा मैं सुनाता हूं मैं सीता को देख आया हूं ३६ । ३७ हम सब यहां से वन और पर्वतों को ढूँढ़ते हुए दक्षिण दिशा को चले गये बहुत दूर जाने पर हमारे आने का नियत काल व्यतीत हो गया, परंतु हमको सीता का पता नहीं लगा। उपरान्त एक दिन हम सब थके हुए एक गुफा के पास जा निकले जिसमें अँधेरे के कारण से कुछ सुझाई नहीं देता था वह गुफा कई योजन लम्बी और कीड़े मकोड़ों से भरी थी और आदमी का वहां नाम न था हम सबलोग उस गुफा में घुस गये और बहुत दूर पर हमको सूर्य का प्रकाश और एक सुन्दर भवन मिला ३८ । ४० हे राघव! वह भवन मयदैत्य का था और वहां प्रभावती नाम तापसी तापस्या कररही थी ४१ उसने हमलोगोंको नानाप्रकार के भोज्य दिये हमलोग उनको खाकर बलवान् होगये और वहां से उस तापसी के बताये हुए मार्ग से चलकर सह्य, मलय और दर्दुरनाम पर्वतों पर पहुँचे जो समुद्र के तट पर हैं ४२ । ४३ वहां मलयागिरि पर से हमलोगों ने खारी समुद्र देखा उसे देखकर हम सब व्याकुल और खिन्नचित्त होगये और सबने अपने जीवित की आशा छोड़ दी ४४ और सबके सब बैठकर उस सैकड़ों

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

योजन लम्बे समुद्र की चिन्ता करने लगे और दुःखी हुए ४५ इसके पीछे हम लोगों ने भोजन न करने का संकल्प कर लिया और वहां बैठकर कुछ कथा कहने लगे उसमें जटायु का भी संवाद आगया उसी समय हमलोगों ने एक पर्वत के तुल्य बड़ा भयानक और गरुड़जी के सदृश पक्षी देखा वह पक्षी हम सबको भक्षण करने के विचार से हमारे पास आया, परंतु जब उसने हमारे मुख से जटायु का नाम सुना तब वह बोला कि मेरे भाई जटायु की कथा कौन कह रहा है ४६। ४८ मैं जटायु से बड़ा हूं नाम मेरा संपाति है पूर्वसमय में हम दोनों भाई परस्पर ईर्ष्या करके सूर्यलोक को गये थे वह सूर्य का तेज न सहने के कारण से मार्ग ही से लौट आया परंतु मैं ऊपर को चला गया इससे मेरे पर जल गये और मैं इस पर्वत पर गिर पड़ा तबसे मैं यहीं रहता हूं मैंने अपने प्यारे भाई जटायु को बहुत दिनों से नहीं देखा है यह सुनकर हमलोगों ने उस से जटायु के मारे जाने का वृत्तान्त कह सुनाया और आपके दुःख का हाल भी संक्षेप से वर्णन कर दिया उस अप्रिय को सुन कर ४९। ५२ हे शत्रुसंघातिन्! संपाति व्याकुल हो गया और हमलोगों से बोला कि रामचन्द्र कौनहैं सीता कैसी हैं और जटायु किस प्रकार से मारा गया? मैं यह सब वृत्तान्त यथावत् सुना चाहता हूं तब हमलोगों ने आपके दुःख और वन में आने और अपने अनशन व्रत लेने का हाल विस्तारपूर्वक कहा उसको सुनकर उसने हम सबको उठाया और कहा कि तुमलोग इस व्रत को छोड़ दो ५३। ५५ मैं रावण को जानता हूंउसकी लङ्कापुरी मैंने त्रिकूट पर्वतकी कन्दरा में देखी है सीता भी वहीं होगी इसमें कोई बात विचार करने की नहीं है ५६ यह सुनकर हम सबलोग शीघ्र उठबैठे और समुद्रको नाँघनेका मन्त्र करनेलगे ५७ हे शत्रुसंतापदायिन्! जब किसी ने समुद्र नांघने की अपनी सामर्थ्य नहीं देखी तब मैं अपने पिता वायुमें प्रवेश होकर और जलराक्षसी को मारकर शतयोजन समुद्र को नाँघकर लङ्कामें चलागया और वहां मैंने रावणके महल में उन सीताजीको देखा ५८।५९ जो जटा रखाये हुए लटी दुबली सी महादुःखी तप और व्रत का स्वभाव रखकर आपके दर्शनों की लालसा में बैठी हुई थी ६० मैंने अनेक निमित्तों से उसे पहिंचाना और जब मैंने उसे अकेला पाया तब मैं उसके पास चला गया और मैंने कहा कि हे सीते! मैं हनुमान्-नामी वायुपुत्र वानरहूं और रामचन्द्रजीका दूत हूं तेरे दर्शनों की इच्छा से आकाशमार्ग से आया हूं ६१। ६२ राम और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

लक्ष्मण दोनों भाई कुशल हैं और सुग्रीव की रक्षा में हैं उन दोनों भाई और रामचन्द्रजी का सखा होने से सुग्रीव ने तेरी कुशल पूछी है ६३।६४ तेरा पति वानरों की सेना लेकर बहुत शीघ्र यहां आवेगा तू चिन्ता मत करे हे देवि! मेरा विश्वास कर मैं वानर हूं राक्षस नहीं हूं ६५ यह सुनकर सीता ने एक मुहूर्त ध्यान करके मुझसे कहा कि मैं तेरा हाल अविन्ध्यराक्षस से सुन चुकी हूं मैं जानती हूं कि तू हनुमान् है ६६ वह अविन्ध्यराक्षस वृद्धों का सम्मत है उसने तुझसे मन्त्रियों से युक्त सुग्रीव का भी हाल मुझसे कहा था ६७ यह कहकर सीताजी ने मुझसे कहा कि अब तू जा और मुझको यह मणि दी। इसीसे सीताजी अबतक जीती रहीं ६८ इसके पीछे सीताजी ने विश्वास के लिये मुझसे वह कथा कही, जिसमें आपने चित्रकूट पर्वत पर एक काग के सींक का बाण मारा था, इसके पीछे मैंने अपने आपको वहां पकड़वा दिया, तब मैं उस लङ्कापुरी को जलाकर यहां चला आया यह सुनकर रामचन्द्रजी ने प्रियवादी हनुमान्जी की बहुत प्रशंसा की ॥ ६९ । ७१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥

दोसौ बयासीवाँ अध्याय।

वानरी सेना समेत रामचन्द्रजी का चलना, सेतु बँधवाकर समुद्र के पार उतरना और वहीं विभीषण का आकर मिलना।

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! हनुमान्जी के उक्त वृत्तान्त कहने के उपरान्त सुग्रीव की आज्ञा से वहां बहुत से श्रेष्ठ वानर आ पहुँचे १ संख्या उनकी यह है बालिवानर का श्वसुर सुषेणनामी वानर अपने साथ सहस्र कोटि वानर लेकर रामचन्द्रजी के पास आया २ और गज और गवय नामी महापराक्रमी वानरेन्द्र शत शत कोटि वानर लेकर आये ३ हे महाराज! गवाक्षनामी गोलांगूल जाति का वानर साठि सहस्रकोटि वानरों की सेना लेकर आया ४ और गन्धमादनपर्वतनिवासी गन्धमादननामी वानर लाखों कोटि वानरों की सेना को इकट्ठा करके लाया ५ और पनसनामी बुद्धिमान् वानर ने सत्तावन कोटि वानर इकट्ठे किये ६ और श्रीमान् दधिमुखनामी वृद्ध और पराक्रमी वानर भी भयानक वानरों की बड़ी भारी सेना लेकर आया ७ और जाम्बवान्नामी रीछ शतसहस्रकोटि काले रीछों को जिनके ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्रनाम चिह्न था लेकर आया ८ इनके सिवाय और और भी वानरों के

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

राजा वानरों की बड़ी बड़ी सेना लेकर रामचन्द्रजी के कार्य के लिये वहां इकट्ठे हुए ९ उन वानरों के शरीर पर्वतों की शिखर के तुल्य थे और उनके दौड़ने और सिंह के समान गर्जने का बड़ा शब्द होता था १० उनमें बहुत से वानर पर्वत के समान, बहुत से भैंसे के सदृश, बहुत से शरदृऋतु के बादल का सा वर्ण रखनेवाले और बहुत से रक्तमुख थे ११ और वे उछलते-कूदते और धूल उड़ाते हुए वहां आकर स्थित होगये १२ उस पूर्णसागर के सदृश वानरों की सेना ने सुग्रीव की आज्ञा से वास किया १३ इसके उपरान्त उत्तम मुहूर्त और शुभ तिथि नक्षत्र के आने पर रामचन्द्रजी वहां से सुग्रीव आदि सब वानरेन्द्रों के साथ सब सेना को लिये हुए दक्षिणदिशा को चल दिये १४ । १५ वायुपुत्र हनुमान्जी उस सेना के आगे आगे हो लिये और लक्ष्मणजी उस सेना के व्यूह के जयस्थान की रक्षा करते हुए चले इस प्रकार से वे दोनों रघुवंशी राम-लक्ष्मण वानररूपी मन्त्रियों-सहित इस प्रकार से चले मानों सूर्य और चन्द्रमा सब ग्रहों के साथ जा रहे हैं १६ । १७ उस सेना के सब वानर शाल, तालवृक्ष और शिलारूपी आयुध लिये हुए थे, उस समय वह सेना ऐसी शोभित दीखती थी जैसे सूर्य के उदय होने पर बड़ा भारी शालिभवन दर्शनीय दीखता है १८ उस सेना के रक्षक नल, नील, अंगद, किरात, मयन्द और द्विविदनामी वानर थे और वह सेना उन वानरों से रक्षित होकर मधुमास के सुन्दर फल मूलों को खाती, निर्मल जल को पीती, पर्वत और वनों में वास करती हुई, खारी समुद्र के पास जा पहुँची १९ । २१ और वहां वेलावन में बसी और बहुत लम्बे चौड़े स्थान में बसने से और ध्वजाओं से शोभित होने से वह सेना दूसरे समुद्र के सदृश दीखती थी २२ इसके पीछे रामचन्द्रजी ने समय के अनुसार सुग्रीव से कहा २३ कि आपलोगों ने समुद्र के पार जाने का क्या उपाय सोचा है। हमारी सेना तो बहुत है और सब सेना को समुद्र के पार ले जाना कठिन है २४ तब बहुत से मानी वानरों ने कहा कि हम लोग कूदकर समुद्र के पार जा सकते हैं, परंतु सब सेना का जाना कठिन है २५ बहुत से बोले कि नावों पर चढ़कर चले चलिये और किसी किसीने कहा कि प्लव के द्वारा भी सेना समुद्र के पार जा सकती है परंतु रामचन्द्रजी ने उन सबके वचनों को सुनकर उत्तर दिया कि इनमें से कोई उपाय ठीक नहीं है २६ इस शतयोजन चौड़े समुद्र के पार सब वानर इनमें से एक उपाय से भी नहीं जा सकते हैं २७ क्योंकि हमारे पास बहुत सी नावें

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नहीं हैं और व्यापारियों का सा कर्म हम सरीखे पुरुष से हो नहीं सकता है और यह भी संदेह है कि हमारा शत्रु सेना के थोड़े थोड़े जाने से छिद्र पाकर सब सेना को मार डालें इससे नाव, प्लव और उडुप के द्वारा समुद्र के पार जाना ठीक नहीं है २८। २९ इससे मैं समुद्र का आराधन करके व्रत करूंगा और पृथ्वी पर सोऊंगा ऐसा करने से समुद्र मुझको अपने दर्शन देगा ३० तब मैं उससे राह देने को कहूंगा जो वह राह न देगा तो मैं अग्निरूपी अमोघ अस्त्रों से समुद्र को सुखा डालूंगा ३१ यह कहकर राम लक्ष्मण ने स्नान आचमन करके समुद्र का आराधन किया और रात्रि को कुश के आसन पर सो गये ३२ स्वप्न में नदीपति समुद्र ने रामचन्द्रजी को अपना दर्शन दिया और हे कौशल्या के पुत्र! ऐसे पुकारकर मधुर वाणी से कहा ३३। ३४ कि कहिये मैं आपकी क्या सहायता करूं यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि मैं इक्ष्वाकुवंशी हूं तुमसे मार्ग चाहता हूं जिसके द्वारा मैं लङ्का में सेनासहित जाकर पुलस्त्यकुल-कलङ्की रावण को मारूं ३५। ३६ और जो आप मुझको मार्ग न देंगे तो मैं दिव्य अस्त्रों से तुम्हारा जल शुष्क कर दूंगा ३७ यह सुनकर समुद्र बहुत दुःखी हुआ और हाथ जोड़कर बोला कि ३८ महाराज! मैं आपका विघ्न करना नहीं चाहता हूं परंतु जैसा मैं कहूं वैसा कीजिये जो मैं आपको अब मार्ग दे दूंगा तो कोई दूसरा धनुर्धारी भी मुझको मार्ग देने की आज्ञा देगा इससे आपकी सेना में जो नलनामी वानर है वह शिल्पविद्या में बड़ा निपुण है और विश्वकर्मा का पुत्र है उससे आप कह दीजिये कि वह सेतु बांधे जो कुछ पत्थर या तृण लकड़ी वह डाल देगा उस सबको मैं धारण किये रहूंगा आप उस सेतु पर होकर सेनासहित उतरे चले जाइयेगा यह कहकर समुद्र अन्तर्धान होगया और रामचन्द्रजी ने नल वानर को बुलाकर कहा ३९। ४२ कि तुम सेतु बांधो इस काम को तुम कर सकते हो यह सुनकर उसने उसी प्रकार से किया और रामचन्द्रजी की आज्ञा से दश योजन चौड़ा और शत योजन लम्बा सेतु बँधकर तैयार होगया वह सेतु नल के नाम से अद्यापि पृथ्वी पर विख्यात है ४३। ४४ उस सेतु से वानरों की सब सेना रामचन्द्रजी की आज्ञा से पार उतर गई और वहां रावण का विभीषण-नामी भाई अपने चारों मन्त्रियों सहित आ मिला। रामचन्द्रजी ने उसका बड़ा आदर किया ४५। ४६ परंतु सुग्रीव ने शङ्का की कि यह कोई छली दूत न हो किन्तु जब रामचन्द्रजी का

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मन उसकी चेष्टा और शुश्रूषा से भर गया तब रामचन्द्रजी ने उसकी पूजा करके उसे लङ्केश बनाया ४७।४८ और उसको अपना मन्त्री बनाकर लक्ष्मणजी से उसकी सुहृदता करा दी इसके पीछे रामचन्द्रजी विभीषण की राय से एक महीने में उस सेतु से सेना-सहित उतरकर लङ्का में पहुँचे और वहां उन्होंने लङ्का के बड़े बड़े उद्यान अर्थात् बागों को उजड़वा दिया वहीं रावण के शुक और सारणनामी दो मन्त्री वानरों का रूप बनाये हुए फिर रहे थे विभीषण ने उनको पकड़ लिया पकड़े जाने पर उन राक्षसों ने अपना राक्षसीरूप धारणकर लिया और रामचन्द्रजी ने उनको सेना को दिखलाकर छुड़वा दिया ४९।५३ इसके उपरान्त रामचन्द्रजी ने वहां एक उपवन में वास किया और अङ्गदनामी वानर को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

दोसौ तिरासीवाँ अध्याय।

रावण का दुर्ग रचना और रामचन्द्रजी का लङ्का पर चढ़ाई कर युद्ध करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! रामचन्द्रजी ने सेना को उस वन में जिसमें अन्न, जल, फल और मूल बाहुल्यता से मिलते थे ठहरा दिया और चारों ओर से रक्षा करने को वानर नियत कर दिये और रावण ने भी शास्त्र की रीति से लङ्का में दुर्गरचना की। सातों खाइयों में जल छुड़वाकर गहरी करा दीं ये खाइयाँ स्वाभाविक दुराधर्ष और बड़ी दृढ़ बनी हुई थीं और मीन, मकर आदि जलजीवों से युक्त थीं उनके चारों ओर बड़ा दृढ़ प्राकार अर्थात् परकोटा खिंचा हुआ था और उसमें से आने जाने के द्वारों में बड़े दृढ़ कपाट लगे हुए थे जिनमें उनके खोलने और बंद करने के यन्त्र बने हुए थे रावण ने उनके चारों ओर मुशल, अलात, नाराच, तोमर, खड्ग, फरसा और शतघ्नी आदि शस्त्र और यन्त्र रखवा दिये और मद्य पीने के स्थान भी नियत कर दिये और नगर के सब द्वारों पर घोड़े हाथी और रथों सहित घूमनेवाले और स्थित रहनेवाले बहुत से योद्धा नियत कर दिये १। ६ इसके पीछे अङ्गद लङ्का के द्वार पर पहुँचा और निर्भय होकर भीतर चला गया ७ उसके चारों ओर लाखों राक्षस जुड़ आये और वह उनके बीच में ऐसा दीखने लगा मानों श्यामघटा में सूर्य उदय हुआ है ८ वहां से वह उस रावण के पास गया जो मन्त्रियों सहित बैठा था और उससे रामचन्द्रजी का सँदेशा इस प्रकार से कहा ९ कि कोशलेश

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रामचन्द्रजी ने तुमको यह कहला भेजा है कि जो राजा अनीति करता है और जिसका अन्तःकरण अशुद्ध होता है उसका देश और नगर नाश हो जाता है तू सीता को बल से हर लाया है इससे तुझ अकेले ही ने मेरा अपराध किया है परंतु तेरे अपराध के कारण से तेरे सब साथी भी जो अपराधी नहीं हैं मारे जायँगे १० । १२ और जो तैंने पूर्वकाल में वनवासी ऋषि, राजऋषि और रोती हुई स्त्रियां मारी हैं और देवताओं का अपमान किया है उस सब अनीति का फल अब तुझको मिलेगा मैं तुझको मन्त्रियोंसहित मारकर यमलोक में पहुँचाऊंगा इससे तू पुरुष होकर मेरे साथ युद्धकर और मुझ मनुष्य के धनुष् के पराक्रम को देख १३ । १५ अब तू जानकी को छोड़ने पर भी मेरे हाथ से नहीं बचेगा क्योंकि मैं तीक्ष्ण बाणों से इस संसार को राक्षसरहित किया चाहता हूं १६ इन परुषवचनों को सुनकर रावण क्रोध से मूर्च्छित हो गया और उसके संकेत से चार राक्षसों ने अङ्गद को चार जगह से इस प्रकार से पकड़ लिया जैसे चार पक्षी शार्दूल को पकड़ लें १७ । १८ तब अङ्गद उन राक्षसों को पकड़कर उछला और प्रासाद पर अर्थात् छत पर जा बैठा १९ उस समय वे राक्षस अङ्गद के उछलने से पृथ्वी पर टकराते हुए जा पड़े और उनके बड़ी चोट आई फिर अङ्गद वहाँ से लङ्का को नांघकर रामचन्द्रजी के पास आ गया और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया रामचन्द्रजी ने उसकी प्रशंसा की और उसने विश्राम किया २० । २२ इसके पीछे रामचन्द्रजी ने वानरों की सब सेना ले जाकर लङ्का पर चढ़ाई की और वानर उसके परकोटे को जहां तहां से फोड़ने लगे उसी समय लक्ष्मणजी जाम्बवान् और विभीषण को साथ लेकर लङ्का के दक्षिण ओर के कठिन द्वार पर चले गये और उस द्वार को घेर लिया २३।२४ उस समय जिन वानरों ने लङ्का पर चढ़ाई की थी उनका वर्ण छोटी उँगली की मणि के समान श्वेतारुण था और संख्या उनकी दश अर्ब थी २५ और रीछ भी तीन कोटि थे वर्ण रीछों का धूंयें का सा था और बांहें लम्बी लम्बी छाती चौड़ी और जांघें मोटी मोटी थीं २६ उस समय वानरों के उछलने कूदने से ऐसी धूलि उड़ी कि सूर्य की प्रभा जाती रही और सूर्य न दीखने लगा २७ और लङ्का का प्राकार अर्थात् परकोटा उन साल और सिरस के पुष्पों का सा वर्ण रखनेवाले वानरों के चारों ओर से चढ़ जाने से वानररूप दीखने लगा उस आश्चर्य को देखकर सब राक्षस स्त्रियोंसहित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

विस्मित हो गये २८। २९ तब वानरों ने मणिजटित खम्भों को तोड़ तोड़कर सब अट्टारिका गिरा दीं और परकोटे को भी तोड़ तोड़कर सब यन्त्र उठा उठा कर फेंक दिये ३० और शतघ्नियों को चक्र आदि सब अङ्गोंसहित उठा उठा कर लङ्का के बीच में डाल दिया ३१ तब जो राक्षस परकोटे पर नियत किये गये थे वे सब भयभीत होकर भाग गये ३२ इसके पीछे रावण की आज्ञा से सहस्रों विकृताकार राक्षस बाहर निकल आये ३३ और वे शस्त्रों की वर्षा कर वानरों को भगाके परकोटे पर स्थित होके पराक्रम से लड़ने लगे ३४ थोड़ी देर में उन्होंने सब वानरों को भगा दिया और उन भयानक दर्शनों से वह परकोटा माष की राशि के सदृश दीखने लगा ३५ उस समय बहुत से वानर शूल से घायल हो होकर गिर पड़े और बहुत से राक्षस भी स्तम्भ आदि से पीड़ित हो होकर मर गये ३६ फिर वानर और राक्षस एक दूसरे के बाल पकड़ पकड़कर नख और दांतों से युद्ध करने लगे ३७ और वे दोनों परस्पर लड़ते लड़ते चिल्लाते थे और गिर पड़ते थे परंतु एक दूसरे को छोड़ता न था ३८ तदनन्तर रामचन्द्रजी ने बाणों की वर्षा करके लङ्का पर बाणों का जाल रच दिया और उन बाणों से राक्षस मारे गये और लक्ष्मणजी ने भी लक्ष्य अर्थात् निशाना बांध बांधकर दुर्ग के ऊपर रक्षा करनेवाले राक्षसों को मार मारकर गिरा दिया ३९। ४० इसके पीछे सब वानर रामचन्द्रजी की आज्ञा से लौट कर अपने शिबिर अर्थात् सेना के ठहरने के स्थान को चले आये और सब जीत की आशा करने लगे ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

दोसौ चौरासीवाँ अध्याय।

रामचन्द्र से रावण का, लक्ष्मण से इन्द्रजीत का और वानरों से राक्षसों का परस्पर युद्ध होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! जब वानर शिबिर को गये तब उनके साथ बहुत से राक्षस और पिशाच भी रावण की आज्ञा से चले गये १ उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम ये हैं पर्वण १ पतन २ जम्भ ३ खर ४ क्रोधवश ५ हरि ६ प्ररुज ७ अरुज ८ और प्रघस ९। २ ये राक्षस अन्तर्द्धान होकर आये थे विभीषण उनको जान गया और उसने उनकी अन्तर्द्धान होने की शक्ति को नष्ट कर दिया ३ तब वे राक्षस वानरों को दिखाई देने लगे और वानरों ने उन्हें मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया ४ इसके पीछे क्षमाहीन रावण राक्षस और पिशाचों की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

घोरसेना लेकर लङ्का के बाहर निकला और इनसे व्यूह अर्थात् शुक्रसम्बन्धी व्यूह रचकर उसने वानरों को घेर लिया तदनन्तर रामचन्द्रजी ने बार्हस्पत्य व्यूह अर्थात् बृहस्पतिसम्बन्धी व्यूह अपनी सेना में रचकर रावण का सामना किया ५।७ उस समय रावण रामचन्द्रजी से और इन्द्रजीत रावण का पुत्र लक्ष्मणजी से युद्ध करने लगा ८ और विरूपाक्ष राक्षस सुग्रीव से, तार राक्षस निखर्ब वानर से, तुण्डराक्षस नल वानर से, पटुश राक्षस पनस वानर से और अन्य अन्य राक्षस अन्य अन्य वानरों से जिसने जिसको अपने तुल्य समझा था अपने अपने बल के अनुसार युद्ध करने लगे ६।१० तब उनका युद्ध ऐसा हुआ जैसा पहिले समय में देवता और दानवों का हुआ था जिसके देखने से डरपोकनों के भय से रोम खड़े हो जाते थे ११ रावण ने शक्ति, शूल और खड्ग आदि अस्त्रों की वर्षा करके रामचन्द्रजी को पीड़ित किया और रामचन्द्रजी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से रावण को विदीर्ण कर दिया १२ इसी प्रकार से लक्ष्मण और इन्द्रजीत ने भी परस्पर मर्मभेदी बाण मार मारकर एक दूसरे के शरीर को घायल कर दिया १३ उसी समय विभीषण और प्रहस्त ने भी एक दूसरे पर खगपत्र बाणों की वर्षा की १४ निदान दोनों ओर से ऐसा भयंकर युद्ध हुआ कि त्रिलोकी के सब चर और अचर जीव पीड़ित हो गये ॥ १५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥

दोसौ पचासीवाँ अध्याय।

प्रहस्त और धूम्राक्ष का वध तथा कुम्भकर्ण का युद्धार्थ संग्राम में आना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे रणकर्कश प्रहस्त ने अकस्मात् गर्जकर विभीषण के एक गदा मारी १ परंतु वह महाबाहु विभीषण उस महा भयंकर वेगवाली गदा से कम्पित नहीं हुआ किन्तु हिमालय पर्वत के समान अचल खड़ा रहा २ और फिर उसने सौ घण्टे रखनेवाली महाशक्ति को लेकर अभिमन्त्रित किया और प्रहस्त के ऊपर छोड़ दिया ३ उस वज्रतुल्य शक्ति से उस राक्षस का शिर कट गया और वह वायु से उखाड़े हुए वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ४ तब धूम्राक्षनामी राक्षस प्रहस्त को मरा हुआ देखकर बड़े वेग से दौड़कर वानरों के सम्मुख आया ५ और उसके साथ उसकी सेना भी श्यामघटा के समान उमड़ी हुई चली आई उसको देखकर वानर तितर-बितर हो गये ६ उस समय मारुतनन्दन कपीश हनुमान्जी उन वानरों की यह दशा देखकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

निकल आये ७ हे राजन्! उनको देखकर फिर सब वानर तुरन्त युद्ध के लिये इकट्ठे हो गये ८ और वानर और राक्षसों की सेना परस्पर झपट झपट और गर्ज गर्जकर युद्ध करने लगी ९ और चारों ओर से रुधिर की कीच हो गई। उस समय धूम्राक्ष राक्षसने अपने बाणों से वानरोंकी सेना को मारकर भगा दिया १० तब वैरिजेता वायुपुत्र हनुमान्जी ने उस राक्षसनायक को पकड़ लिया ११ और वे दोनों इस प्रकार से घोरयुद्ध करने लगे जैसे पहिले इन्द्र और प्रह्लाद का युद्ध हुआ था १२ वह राक्षस हनुमान्जी पर गदा और परिघ से प्रहार करता था और हनुमान्जी उसको गुद्दोंसहित वृक्ष से मारते थे १३ थोड़ी देर में वायुपुत्र ने क्रोधित होकर उस राक्षस को घोड़े, रथ और सारथीसहित मार डाला १४ तब वानर निर्भय होकर शत्रुसेना के सम्मुख जाकर राक्षसों को मारने लगे १५ वे राक्षस उनसे वध्यमान और भग्नसंकल्प होकर लङ्का की ओर भागे १६ और जो मरते मरते वहां जा पहुँचे उन्होंने अपने राजा रावण से सब वृत्तान्त कह सुनाया १७ रावण उन राक्षसों से बड़े धनुष्धारी प्रहस्त और धूम्राक्ष के सेनासहित मारे जाने का हाल सुनकर बड़ी लम्बी लम्बी श्वासें भरने लगा और अपने आसन से उठकर बोला कि यह समय कुम्भकर्ण के पराक्रम का आ गया है १८।१९ यह कहकर उसने बड़े शब्दायमान नाना प्रकार के बाजे बजवाकर उस निद्रालु कुम्भकर्ण को जगाया २० जब वह निद्रारहित होकर स्वस्थता से बैठ गया तब रावण ने भययुक्त होकर उससे कहा कि तू धन्य है जो तेरी ऐसी निद्रा है कि तू अभी तक हमारे दारुण भय को नहीं जानता है मैं रामचन्द्रजी की सीता स्त्री को हरकर ले आया था सो वह रामचन्द्र बड़ी भारी वानरों की सेना लेकर समुद्र में सेतु बांधकर और हम सबका अपमान करके सीता को लेने की इच्छा से यहां आयाहै और बड़ा नाश कर रहाहै प्रहस्त आदि हमारे सब शूरवीर स्वजन उसके हाथसे मारे गये हैं सो सिवाय तेरे उसको मारनेवाला दूसरा कोई नहीं है इससे तू अब कवच आदि धारण करके चल और रामचन्द्र आदि सब शत्रुओं को मार डाल दूषणके छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी बड़ी भारी सेना लेकर तेरे साथ जायँगे और पीठकी ओर से तेरी रक्षा करेंगे। यह कहकर रावण ने उन दोनों दूषण के भाइयोंको सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी और वे दोनों 'तथास्तु' कहकर और सेना सजाकर सेना के आगे कुम्भकर्ण को करके नगर के बाहर निकले ॥ २१।२९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ छियासीवाँ अध्याय।

कुम्भकर्ण और दूषणबन्धुओं का वध।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! कुम्भकर्ण ने सेनासहित नगर से निकलकर अपने आगे वानरों की सेना खड़ी हुई देखी १ श्रीरामचन्द्रजी के दर्शनों की लालसा से वह उस सेना में चारों ओर देखने लगा और उसने हाथ में धनुष् लिये खड़े हुए लक्ष्मणजी को देखा २ इसी अवसर में वानरों ने उसे घेर लिया और वृक्ष, पत्थर, लात, घूंसा और नाना भयानक प्रहारों से उसे निर्भय होकर मारने का उद्योग किया तब कुम्भकर्ण हँस हँसकर उन वानरों को भक्षण करने लगा यह देखकर बलचण्ड, बलवज्र और तार आदि वानर भयभीत होकर चिल्लाने पुकारने लगे उन सेनाधिकारी और सेना के आर्तशब्दों को सुनकर सुग्रीव दौड़कर कुम्भकर्ण के सम्मुख गया ३। ७ और उसके माथे पर एक शाल का पेड़ उखाड़कर मारा कुम्भकर्ण को उससे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हुई और उसने गर्जकर दोनों हाथों से अकस्मात् सुग्रीव को पकड़कर कांख में दबा लिया ८। १० यह देखकर मित्र को प्रसन्न करनेवाले लक्ष्मणजी कुम्भकर्ण के सम्मुख गये ११ और वेग से उसके सुनहरी पर लगे हुए तीक्ष्ण बाण मारे १२ वे बाण कुम्भकर्ण के कवच को काटकर देही के पार हो गये और रुधिर में भरे हुए पृथ्वी में घुस गये १३ तब महाधनुर्धारी कुम्भकर्ण सुग्रीव को छोड़कर बड़ी शिला हाथ में लिये हुए लक्ष्मणजी की ओर दौड़ा १४। १५ तब लक्ष्मणजी ने तीक्ष्णधार रखनेवाले क्षुराबाणों से कुम्भकर्ण के दोनों हाथ काट डाले तब उसके चारभुजा शिला लियेहुये हो गईं लक्ष्मणजीने अपनी अस्त्र चलाने की शीघ्रता दिखलाकर क्षुराबाणों से उन भुजाओं को भी काटकर गिरा दिया १६। १७ तब उस कुम्भकर्णका शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा होगया और उसमें बहुतसे पांव, शिर और भुजा निकलआईं लक्ष्मणजीने उस काले पर्वताकारशरीर को ब्रह्मास्त्र से टुकड़े २ करडाला १८ और वह महाबलशाली उस दिव्य अस्त्र से मरकर इस प्रकार से गिर पड़ा जैसे पर्वत का शिखर वज्र के प्रहारसे गिर पड़ता है १९ उस वृत्रासुर के तुल्य वेगवान् कुम्भकर्ण के मरने पर सब राक्षस भागने लगे २० उस समय दूषण के भाइयों ने उन भागते हुए राक्षसों को रोक और क्रोध से परिपूर्ण होकर दोनों जने लक्ष्मणजी के सम्मुख गये २१ तब हे कुन्तीनन्दन! लक्ष्मणजीने उन दोनोंको वज्रवेग के सदृश आते हुए देखकर गर्जकर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बाणों से रोक दिया और उनमें परस्पर तुमुल और लोमहर्षण युद्ध होने लगा २२। २३ उन दोनों वीरों ने उनके ऊपर क्रोध करके बाणों की वर्षा की २४ और एक मुहूर्त्त तक उनमें बड़ा दारुण युद्ध हुआ किया २५ तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्जी ने एक पर्वत का शिखर मारकर वज्रवेग राक्षस को मार डाला २६ और महाबली नील वानर ने बड़ी भारी शिला से प्रमाथी को यमलोक में पहुँचा दिया २७ तदनन्तर राम और रावण की सेना परस्पर दौड़ दौड़कर बड़ा भयानक युद्ध करने लगी उसमें वानरों ने सैकड़ों राक्षसों को मार डाला और राक्षसों ने भी बहुत से वानर मार डाले परंतु राक्षस बहुत से मारे गये और वानर थोड़े ही से मारे गये॥ २७। २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

दोसौ सत्तासीवाँ अध्याय।

मेघनाद के समर में नागपाश से बँधे हुए रामलक्ष्मण का पृथ्वी पर गिर पड़ना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! रावण ने कुम्भकर्ण के साथियोंसहित मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर अपने वीरपुत्र इन्द्रजीत से कहा कि तू जाकर राम और सुग्रीव को लक्ष्मणसहित मार डाल। पाहिले तैंने वज्रधारी सहस्राक्ष शचीपति इन्द्र को जीतकर संसार में मेरा यश दीप्त कर दिया था १। ३ अब इन मेरे शत्रुओं को भी अन्तर्धान अथवा प्रकट होकर जैसे हो सके बरदान में पाये हुए बाणों से मार डाल ४ हे निष्पाप! वे राम लक्ष्मण और सुग्रीव तेरे बाणों को स्पर्श करने की भी सामर्थ्य नहीं रखते हैं इससे तू उनको मार-कर उस वैर का बदला ले जो प्रहस्त और कुम्भकर्ण नहीं ले सके ५। ६ हे पुत्र! जाओ और तीक्ष्णबाणों से शत्रु को सेनासहित मारकर मुझको उसी प्रकार से प्रसन्न करो जैसे पहिले इन्द्र को जीतकर मुझे आनन्द दिया था ७ हे राजन्! यह सुनकर इन्द्रजीत बहुत अच्छा कहकर कवच धारण किये हुए रथ में बैठकर रणभूमि में चला गया ८ और उसने अपना नाम सुनाकर लक्ष्मणजी को युद्ध के लिये बुलाया ९ लक्ष्मणजी उसके आह्वान को सुनकर धनुष् की टंकोर से उसे इस प्रकार से डराते हुए मानो सिंह किसी छोटे मृग को भयभीत कर रहा है दौड़कर उसके सम्मुख गये १० और जय की ईर्ष्या से परस्पर दिव्य अस्त्रों से बड़ा तीव्र युद्ध करने लगे ११ परंतु जब महाबलशाली इन्द्रजीत बाणों से लक्ष्मणजी को न जीत सका तब उसने यत्न से तोमर चलाना प्रारम्भ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

किया लक्ष्मणजी ने उन तोमरों को तीव्र बाणों से काट डाला १२। १३ और वे तोमर टुकड़े २ होकर पृथ्वी पर गिर पड़े इसी अवसर में बालिपुत्र अङ्गद एक वृक्ष को उखाड़कर इन्द्रजीत के सम्मुख गया और उस वृक्ष को उसने घुमाकर इन्द्रजीत के माथे पर मारा तब इन्द्रजीत ने निर्भयता से प्रास हाथ में लेकर चाहा कि अङ्गद की छाती पर मारूँ परंतु लक्ष्मणजी ने उस प्रास को काट डाला फिर इन्द्रजीत ने गदा लेकर उस वानरोत्तम अङ्गद के पार्श्व में मारी अङ्गद ने उसके प्रहार को कुछ न गिना और क्रोधित होकर उसने एक बड़े गुद्दे रखनेवाले वृक्ष को उखाड़कर इन्द्रजीत के मारा उससे इन्द्रजीत का रथ और रथ के घोड़े सारथी नष्ट हो गये उस समय इन्द्रजीत रथ से कूद पड़ा १४। १६ और माया से उसी स्थान पर अन्तर्धान होगया रामचन्द्रजी उसको अन्तर्धान हुआ देखकर वहां चले आये और अपनी सेना की चारों ओर से रक्षा करने लगे इसी अवसर में इन्द्रजीत गुप्त रहकर वर में पाये हुए बाणों से रामचन्द्र और लक्ष्मण को छेदने लगा और वे दोनों वीर उस मायावी और अन्तर्धान हुए राक्षस से बाणों से युद्ध करते रहे फिर इन्द्रजीत ने उसी अवस्था में रहकर सहस्रों बाण राम लक्ष्मण के मारे यह देखकर वानर बड़ी बड़ी शिला लेकर उस अन्तर्धान राक्षस को आकाश में ढूंढ़ने लगे और उस राक्षस ने उन वानर और दोनों वीर राम लक्ष्मण को बाणों से विदीर्ण कर दिया २०। २५ तब वे दोनों वीर उन बाणों से महापीड़ित होकर पृथ्वी पर इस प्रकार से गिर पड़े मानो सूर्य और चन्द्रमा आकाश से गिरे हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥

दोसौ अट्ठासीवाँ अध्याय।

मेघनाद का वध सुनकर रावण का युद्ध करने को तैयार होना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इन्द्रजीत ने राम लक्ष्मण को पृथ्वी पर पड़ाहुआ देखकर वर में मिलेहुए बाणों से बांध लिया और वे दोनों वीर बाणों से बँधे हुए रणभूमि में ऐसे दीखने लगे मानो दो पक्षी पिंजरे में बंद हैं १। २ इसके पीछे सुग्रीव उन दोनों भाइयों को बाणों में बँधा हुआ और सहस्रों बाणों से चिताहुआ देखकर सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनुमान्, नल, नील और तार आदि वानरों सहित उनको चारों ओर से घेरकर खड़ा होगया ३। ४ उस समय कृतकर्मा विभीषण ने वहां आकर प्रज्ञाअस्त्र से उन दोनों वीरों को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सचेत किया ५ और सुग्रीव ने विशल्यनाम औषधी अभिमन्त्रित करके उन दोनों को दी उससे वे दोनों महारथी शल्यहीन श्रम और तन्द्रारहित होकर क्षणभर में खड़े हो गये ६। ७ तब हे पार्थ! विभीषण ने इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्रजी को ज्वरहीन देखकर हाथ जोड़कर कहा ८ कि महाराज! कुबेरजी का भेजा हुआ एक गुह्यक श्वेतपर्वत से यह जल लेकर आया है कुबेरजी ने यह जल इस प्रयोजन से आप के पास भेजा है कि आप अथवा और कोई जिसको आप आज्ञा दें इस जल से अपनी आँखें धोने से सब अन्तर्धान हुए प्राणियों को देख सकता है यह सुनकर रामचन्द्रजीने कहा बहुत अच्छा वह जल लाओ, तब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील और अन्य अन्य बहुत से वानरों ने अपने अपने नेत्र उस जल से धो डाले धोते ही उन सबके नेत्र खुल से गये और वे सब अन्तर्धान प्राणियों को देखने लगे और जो कुछ विभीषण ने कहा था सब सच हुआ ६।१४ इसी अवसर में इन्द्रजीत अपने पिता से अपना सब कर्म कहकर फिर रणभूमि पर आया १५ लक्ष्मणजी उसे देखकर विभीषणकी सलाह के अनुसार फिर उससे युद्ध करनेके लिये उसके सम्मुख गये १६ विभीषणने कहा कि जब तक यह राक्षस आह्निक कर्म न करे तब तक ही मर सक्ता है। यह समझकर लक्ष्मणजी ने क्रोधित होकर उस राक्षस इन्द्रजीत के बाण मारे १७ फिर उन दोनों में परस्पर जीतने की इच्छा से ऐसा आश्चर्ययुक्त युद्ध हुआ, जैसा पहिले इन्द्र और प्रह्लाद का हुआ था १८ इन्द्रजीत ने लक्ष्मणजी के मर्मभेदी बाण मारे और लक्ष्मणजी ने अग्निसमान बाण मारकर इन्द्रजीत को विदीर्ण कर दिया १६ तब इन्द्रजीत ने उन बाणों के लगने से मूर्च्छित और क्रोधयुक्त होकर सर्प के समान आठ बाण लक्ष्मणजी के ऊपर छोड़े २० इसके पीछे लक्ष्मणजी ने तीन अग्निसदृश तीव्र बाण इन्द्रजीत के मारे। एक से उसकी वह भुजा काट दी जिसमें धनुष् था, दूसरे से वह भुजा काटी जिसमें नाराच था और तीसरे से उसका शिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया २१। २३ फिर महाबलशाली लक्ष्मणजी ने उसके धड़को भी टुकड़े टुकड़ेकरके उसके सारथी को भी मारकर गिरादिया २४ इसके पीछे घोड़े उसके रथ को लङ्का में ले गये। उसे रावण पुत्रहीन देखकर भय से व्याकुल हो गया और पुत्र के शोक में पीड़ित होकर सीता के मारने को उद्यत हुआ २५। २६ और खड्ग लेकर अशोक वन में जा पहुँचा, जहां

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सीता रामचन्द्रजी के दर्शनों की लालसा से बैठी हुई थी २७ उस समय विन्ध्य राक्षस ने उसके क्रोध को अनेक बातों से शान्त किया और उससे कहा कि हे रावण! तुम ऐसे प्रतापी राजा को स्त्री पर शस्त्र उठाना उचित नहीं है, यह विचारी तुम्हारे यहां बन्धन में पड़ी हुई मरी हुई ही है २८। २९ जो इसको तुम मार डालोगे तो इसका मरना ठीक न होगा। हां, जो तुम इसके पति को मार डालोगे तो अवश्य यह भी मरी हुई सी हो जायगी ३० तुम बड़े बलवान् हो इन्द्र भी तुम्हारे समान नहीं है क्योंकि तुमने इन्द्रादिक सब देवताओं को युद्ध में कई बार भयभीत किया है ३१ इस प्रकार से विन्ध्य दैत्य के अनेक वाक्यों को सुनकर रावण का क्रोध शान्त हो गया और उसने विन्ध्य दैत्यका कहना अङ्गीकार किया ३२ तदनन्तर उस रावण ने अपना खड्ग उठा लिया और युद्ध में जाने की इच्छा से रथ तैयार करने की आज्ञादी ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥

दोसौ नवासीवाँ अध्याय।

रामचन्द्र और रावण का युद्ध होना, उसमें रावण का मारा जाना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे प्यारे पुत्र इन्द्रजित् के मारे जाने पर रावण क्रोधित होकर रत्न जटित सुनहरे रथ में बैठकर नगर के बाहर निकला १ और अनेकायुधधारी भयकारी राक्षसों को साथ लिये हुए अनेक आयुधों करके वानरों से लड़ता हुआ रामचन्द्रजी के सम्मुख दौड़ा २ उस समय मैन्द, नील, नल, अङ्गद, हनुमान् और जाम्बवान् ने उस क्रोधित रावण को चारों ओर से रोका ३ और उसकी सेना को उसके सामने वृक्षों से मार मारकर विध्वंस कर दिया ४ तब राक्षसाधिप मायावी रावण ने सेना को मरी हुई देखकर माया करना आरम्भ किया ५ और उसके शरीर से सैकड़ों राक्षस हाथ में बाण और शक्ति लिये हुए निकलते हुए दिखाई देने लगे ६ रामचन्द्रजी ने उन सब राक्षसों को दिव्य अस्त्र से मार डाला तब रावण रामचन्द्र और लक्ष्मण का रूप धारण करके राम लक्ष्मण के सम्मुख दौड़ा और राक्षस भी उन मायावी राम लक्ष्मण की स्तुति करते हुए उनके साथ साथ दौड़े ७। ८ उस समय लक्ष्मणजी ने निर्भय होकर रामचन्द्रजी से कहा कि ये आपका सा स्वरूप धारण करनेवाले पापी राक्षस हैं, आप इनको मारिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी उनको और दूसरे राक्षसों को मारने लगे १०। ११ उसी समय इन्द्र का सारथी मातलि सूर्य के समान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रभावान् रथ को लेकर रामचन्द्रजी के पास आया १२ और कहने लगा कि महाराज! यह जैत्ररथ जिसमें हर जाति के घोड़े जुते हुए हैं इन्द्र का है। हे काकुत्स्थ! उसने इसी रथ पर बैठकर युद्ध में सैकड़ों दैत्य और दानवों को मारा है, आप भी इस रथ पर बैठकर रावण को वेग ही मारिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी यह शङ्का करने लगे कि यह कोई राक्षस न हो तब विभीषण ने रामचन्द्रजी से कहा कि महाराज! यह दुरात्मा रावण की माया नहीं है १३। १६ यह इन्द्र का ही रथ है, आप शीघ्र इस पर सवार हूजिये। यह सुनकर रामचन्द्रजी (तथास्तु) कहकर उस रथ पर बैठ गये और रथ रावण के सम्मुख बढ़वाया। रामचन्द्र के इस प्रकार सम्मुख जाने पर बड़ा हाहाकार हुआ और स्वर्ग में सिंहनाद करने और पटह के बजने का शब्द होने लगा। इसके पीछे राम रावण का भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ और ऐसा युद्ध हुआ कि उसकी उपमा नहीं दी जासकती है। रावण ने रामचन्द्रजी के ऊपर एक महाघोर शूल छोड़ा १७। २० वह शूल इन्द्रवज्र के तुल्य और ब्रह्मदण्ड के समान था। रामचन्द्रजी ने उसको तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर वेग ही गिरा दिया २१ उस दुष्कर कर्म को देखकर रावण भयभीत हो गया और क्रोधित होकर सहस्रों बाण और भुशुण्डी, शूल, मूशल, फरसा, शक्ति, शतघ्नी, क्षुरा आदि अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा रामचन्द्रजी पर करने लगा। रावण की उस भयानक माया को देखकर सब वानर भयभीत होकर चारों दिशाओं को भाग चले, तब रामचन्द्रजी ने सुन्दर मुख और पत्रवाला बाण तर्कस से निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके रावण पर छोड़ दिया। उस बाण ने रावण को बाणवर्षा से ढक दिया, देवता उसको देखकर यह विचारकर प्रसन्न हुए कि अब रावण की बहुत थोड़ी आयु रह गई है। इसके पीछे रामचन्द्रजी ने रावण का नाश करने की इच्छा से ब्रह्मदण्ड के समान अप्रतिम तेज रखनेवाला बाण लेकर अभिमन्त्रित किया और कान तक खींचकर छोड़ दिया, छोड़ते ही रावण रथ, घोड़े और सारथी-सहित जलने लगा २२। ३० इस प्रकार से रावण को मरा हुआ देखकर सब देवता और गंधर्व बहुत प्रसन्न हुए ३१ और ब्रह्मास्त्र ने रावण के मांस आदि सब धातुओं को जलाकर ऐसा कर दिया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं रही ॥ ३२। ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ नब्बेवाँ अध्याय।

विभीषण को राज्य दे, श्रीराम का अयोध्या में आ राज्य करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! वह रामचन्द्रजी उस देवशत्रु रावण को मारकर लक्ष्मण और सुहृद्जनोंसहित प्रसन्न हुए १ और देवता और ऋषियों ने रामचन्द्रजी को जय होने का आशीर्वाद दिया २ और गन्धर्वों ने फूलों की वर्षा की। इसके पीछे देवता और गन्धर्व रामचन्द्रजी को पूजकर चले गये और आकाश ऐसा दीखने लगा, मानो वहां कोई उत्सव है ३। ४ फिर रामचन्द्रजी ने विभीषण को लङ्का के राज्य का तिलक दिया ५ इसके पीछे अविन्ध्यनामी बड़ा बुद्धिमान् वृद्ध अमात्य सीताजी को विभीषणसहित आगे आगे करके रामचन्द्रजी के पास आया और बोला कि हे महात्मन्! इस सद्वृत्तदेवी जानकी को ग्रहण कीजिये ६।७ यह सुनकर इक्ष्वाकुनन्दन रामचन्द्रजी रथ से उतर पड़े और उन्होंने उस रोती हुई सीता को देखा जो परम सुंदररूप को धारण किये हुए शोक से कर्शित, मल से लिप्त अङ्ग और जटा रखाये मलिन वस्त्र धारण किये हुए थी ८। ९ उसको देखकर रामचन्द्रजी ने दूसरे पुरुष से स्पर्श किये जाने की शङ्का करके सीताजी से कहा कि हे सीते! अब जहां तेरी इच्छा हो वहां तू जा, मैंने तुझे त्याग किया और जो कुछ मुझको करना था सो मैं करचुका। मैंने इस निमित्त से इस राक्षस को मारा है कि तू मुझसा पति कर राक्षस के घर में जरा अवस्था को प्राप्त न हो, मैं धर्म के निश्चय को जाननेवाला हूं। इससे मुझ सा पुरुष परहस्तगता स्त्री को एक मुहूर्त भी अङ्गीकार नहीं करसकता इससे तू चाहे सुवृत्त अथवा असुवृत्त कैसी ही हो परन्तु मेरे काम की इस प्रकार से नहीं है जैसे कुत्ते की खाई हुई हवि हवन के योग्य नहीं रहती है १०। १३ इस दारुण वचन को सुनकर सीता कटे हुए केले के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी १४ और उसके मुख का वर्ण पलटकर इस प्रकार से मलिन हो गया जैसे मुख के भाप से दर्पण मलिन हो जाता है १५ और सब वानर और लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी के उक्त वचनों को सुनकर निश्चेष्ट व निर्जीव से हो गये १६ उसी समय पद्मयोनि विशुद्ध आत्मा चतुर्मुख जगत् के रचयिता ब्रह्माजी विमान पर बैठे हुए वहां आये और उन्होंने रामचन्द्रजी को अपने दर्शन दिये १७ और इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर और सप्तऋषि भी अपने अपने विमानों पर चढ़े हुए वहां प्राप्त हुए और राजा दशरथ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भी दिव्य शरीर धारण किये हुए हंसयुक्त विमान में बैठकर आये। उस समय उन सब देवता और गंधर्वों से परिपूर्ण होने के कारण से आकाश की शोभा ऐसी हो गई जैसी शरदृऋतु में निर्मल तारागणों के उदय से हो जाती है १८। २० इसके पीछे उन सब देवताओं के बीच में कल्याणी यशस्विनी सीता ने उठकर विशाल वक्षस्थलवाले रामचन्द्रजी से कहा २१ कि हे राजपुत्र, महाराज! मैं आपको किसी प्रकार का दोष नहीं देती हूँ आप स्त्री और पुरुषों की गति को जानते हैं परंतु जो कुछ मैं कहती हूं उसको सुनिये २२ वायु देवता सदैव चलकर सब प्राणियों के भीतर घूमा करता है वह मुझे निर्जीव कर दे जो मैंने किसी प्रकार का पाप किया हो २३ अथवा अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश मुझको पञ्चत्व को प्राप्त करें जो मैं पापकर्म जानती होऊं २४ और जो मैंने आपके सिवाय किसी दूसरे पुरुष को स्वप्न में भी ध्यान न किया हो तो इन देवताओं के कहने पर विश्वास करके आप ही मेरे पति हूजियेगा २५ यह सुनकर आकाशवाणी हुई जिसको सुनकर सब वानर बहुत प्रसन्न हुए २६ प्रथम वायु देवता बोले कि हे राजन्, रामचन्द्र! मैं वायु हूं और सब स्थानों में मेरी गति सर्वकाल रहती है निश्चय सीता निष्पाप है, तुम उसके साथ मिलो २७ इसके पीछे अग्निदेव बोले कि हे राम! मैं सब प्राणियों के भीतर रहनेवाला हूं मैं जानता हूं कि सीता ने थोड़ा भी अपराध नहीं किया है २८ तदनन्तर वरुण देवता बोले कि हे रामचन्द्र! प्राणियों के शरीर में सब रस मुझसे ही उत्पन्न होते हैं मैं आप तुमसे कहता हूं कितुम सीता को ग्रहण करो २९ तब ब्रह्माजी ने कहा कि हे काकुत्स्थ, सद्वृत्त, पुत्र! तू राजऋषि और साधु है तैंने जो सीता के त्याग करने का नियम किया है वह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु मेरी बात भी सुन ३० यह जो रावण तुम ने मारा है सब देवता, गन्धर्व, सर्प, यक्ष, दानव और महाऋषियों का शत्रु था और मेरी कृपा के कारण से उसको कोई मार नहीं सकता था। उस दुरात्मा ने अपने बध के लिये सीता हरी थी परंतु उसके हरे जाने के पहिले से मैंने सीता की रक्षा के लिये उसे नलकूबर से यह शाप दिलवा दिया था कि जो तू किसी दूसरी अकामा स्त्री से बरबस भोग करेगा तो तेरा मस्तक फटकर सौ टुकड़े हो जायगा ३१।३४ इससे हे महातेजस्विन्! तुम अपने संदेह को निवृत्तकरके सीता को ग्रहण करो तुमने देवताओं का बड़ा काम किया है ३५ इसके पीछे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दशरथने कहा कि हेपुत्र, हे पुरुषोत्तम! मैं तेरा पिता दशरथ हूं मैं तुझसे प्रसन्न हूं और तुझको आज्ञा देता हूं कि अब तू जाकर राज्य कर ३६ यह सुनकर रामचन्द्रजी बोले कि हे राजेन्द्र! जो आप मेरे पिता हैं तो मैं आपको दण्डवत् करता हूं आपकी आज्ञा से अब मैं अयोध्या में जाकर राज्य करूंगा ३७ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर दशरथ ने प्रसन्न होकर फिर उन रक्तान्तलोचन राम को अयोध्या जाने और राज्य करनेकी आज्ञा दी ३८ और कहा कि हेपुत्र! तुझको वनवास करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। इसके पीछे रामचन्द्र सब देवताओं को नमस्कार करके सीताजी से मिले और मिलते समय ऐसे दीखे मानो इन्द्र इन्द्राणी से मिल रहा है, तदनन्तर शत्रुहन्ता रामचन्द्र ने अविन्ध्य राक्षस को अभीष्ट वरदान और त्रिजटाराक्षसी को धन और सत्कार पाने का वरदान दिया। इसके पीछे ब्रह्माजी ने सब देवताओंसहित रामचन्द्रजी से कहा कि ३६। ४१ हे कौशल्यानन्दन! मैं तुझको क्या क्या वरदान दूं। रामचन्द्र बोले मैं तीन वरदान चाहता हूं, प्रथम तो धर्म में स्थित रहना, दूसरा शत्रु से न हारना और तीसरा राक्षसों से मारे हुए वानरों का जी जाना। यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि ऐसा ही होगा उसी क्षण हे महाराज! सब मरे हुए वानर जीकर उठ खड़े हुए। इसके उपरान्त सीताजी ने हनुमान्जी को यह वरदान दिया ४२। ४४ कि हे पुत्र! संसार में जब तक रामचन्द्रजी की कीर्ति रहेगी, तब तक हे हरिलोचन, हनुमन्! तू जीता रहेगा और मेरी कृपा से तेरे पास सब दिव्य भोग बने रहेंगे। इसके अनन्तर उन सबके देखते देखते इन्द्रादिक सब देवता अन्तर्धान होगये और मातलि ने रामचन्द्र और सीताका मिलाप देखकर परम प्रसन्नता से कहा कि हे सत्यपराक्रमिन्! तुमने देवता, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, असुर और सर्पों का बड़ा भारी दुःख दूर किया ये सब लोग और त्रिलोकी के और सब जीव भी तुम्हारा यश उस समय तक गाया करेंगे जब तक पृथ्वी पर जीवमात्र स्थित हैं। यह कहकर सर्वशस्त्रधारियों में वरिष्ठ रामचन्द्रजी से आज्ञा लेकर मातलि सूर्यसमान प्रभावान् रथ में बैठकर स्वर्ग को चला गया। इसके पीछे रामचन्द्रजी लङ्का का राज्य विभीषण को देकर लक्ष्मण, सुग्रीव, सीता, विभीषण और अन्य मुख्य मुख्य वानरोंसहित पुष्पक विमान में सवार होकर समुद्र के पार आये और सब वानर, भालु उसी सेतु पर से उतर कर पार आये और उन सबों ने उस स्थान पर वास किया जहां पहिले रामचन्द्रजी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सोये थे ४५। ५४ फिर रामचन्द्रजी ने सब वानरों को बुलाकर आदर सत्कार किया और सबको रत्न दे देकर बिदा किया। जब वे सब वानर और रीछ चले गये तब रामचन्द्रजी सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण, सीता और हनुमान् आदि मुख्य वानरोंसहित पुष्पक विमान में बैठकर सीता को वन की शोभा दिखाते हुए किष्किन्धा में पहुँचे। वहां रामचन्द्रजी ने अङ्गद का यौवराज्य अभिषेक कराया और वहां से सब समाजसहित उसी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या-पुरी के निकट आये। वहां उन्होंनें विमान को ठहराकर वायुपुत्र हनुमान्जी को भरतजी के पास भेजा। हनुमान्जी वहां गये और भरतजी के हृद्गत भाव को देखकर लौट आये, तब रामचन्द्रजी सब समाजसहित नन्दिग्राम में गये और वहां उन्होंने भरतजी को फटे हुए चीर पहिरे हुए मलिन अङ्गसे अपनी दी हुई दोनों खड़ाउओं को आगे रखकर आसन पर बैठा हुआ देखा, तब रामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित पुष्पक विमान से उतरकर भरत और शत्रुघ्न से मिले और बहुत प्रसन्न हुए। इसके पीछे भरत शत्रुघ्न भी रामचन्द्रजी से मिल कर और सीताजी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय भरतजी ने आनन्दपूर्वक बड़े सत्कार से सब राज्य ज्यों का त्यों रामचन्द्रजी के अर्पण कर दिया ५५। ६५ इसके पीछे वामदेव और वशिष्ठऋषि ने शुभ मुहूर्त में रामचन्द्र का राज्या-भिषेक कराया ६६ तदनन्तर रामचन्द्रजी ने पुलस्त्यवंशी विभीषण और कपि-श्रेष्ठ सुग्रीव को अपने अपने साथियों सहित अपने अपने देश को जाने की आज्ञा दी ६७ और दोनों को बड़ी प्रीति से नाना प्रकार के पदार्थ देकर और करने के योग्य बात का उपदेश करके बड़ी कठिनता से बिदा किया ६८ और वह पुष्पक विमान कुबेरजी को दे दिया। इसके पीछे रामचन्द्र ने गोमतीनदी के किनारे तिगुने दक्षिणावाले दश अश्वमेध यज्ञ किये और उन यज्ञों में अन्न चाहनेवालों के लिये सदैव द्वार खुला रहा ॥ ६९। ७० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥

दोसौ इक्यानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयजी का युधिष्ठिर को समझाकर उसका शोच दूर करना।

मार्कण्डेयजी बोले हे महाबाहो, युधिष्ठिर! पूर्वकाल में अपार तेजस्वी रामचन्द्रजी को उक्त उग्रव्यसन वनवास प्राप्त हुआ था १ इससे हे पुरुषोत्तम! तुम क्षत्रिय होकर किसी प्रकार का शोच मत करो, तुम तो बाहुबल के आश्रितमार्ग में

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बर्तते हो जो प्रत्यक्ष फल का देनेवाला है २ तुमने थोड़ा सा भी पाप नहीं किया है तुम्हारा सा आचरण करना देवता और दानवों को भी कठिन है ३ देखो वज्रधारी इन्द्र ने मरुद्गणों की सहायता से वृत्रासुर, नमुचि, दैत्य और दीर्घजिह्वा राक्षसी को मारा था ४ सो सहायता रखनेवाले के पास सब धन और ऐश्वर्य तत्काल आ जाते हैं। जिसके भाई अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव से हों उसको क्या पदार्थ जीतना दुर्लभ है। ये ऐसे शूरवीर हैं कि वज्रधारी इन्द्र को भी मरुद्गणों सहित जीत सकते हैं। फिर हे परंतप! तुम न जाने क्यों विषाद करते हो ५।७ हे भरतसत्तम! तुम इन देवरूपी, महाधनुर्धारी वीरों की सहायता से रण में सब शत्रुओं को विजय करोगे ८ यही देख लो कि तुम्हारे महात्मा भाई बलोन्मत्त जयद्रथ से हरी हुई इस द्रौपदी को कैसा दुष्कर कर्म करके लाये हैं ९। १० सो हे राजन्! सहायक होना बड़ी बात है। देखो, बुद्धि से विचारो कि रामचन्द्रजी रीछ और वानरों की सहायता से जो अपनी जाति के न थे बड़े पराक्रमी रावण को मारकर हरी हुई सीता को लाये थे ११।१२ इससे हे कुरुश्रेष्ठ, भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! तुम भी शोच मत करो, तुम सरीखे महात्मा को शोच करना अनुचित है १३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मार्कण्डेयजी की उक्त शिक्षा को सुनकर युधिष्ठिर शोचरहित होकर मार्कण्डेयजी से फिर कहने लगे ॥ १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

दोसौ बानबे का अध्याय।

राजा अश्वपति का संतानार्थ यज्ञ, सावित्री उत्पत्ति तथा सावित्री का पति ढूँढ़ने निकलना।

युधिष्ठिर बोले हे महामुनिनायक, मार्कण्डेयजी! मुझको अपना और इन भाइयों का और राज्य के हरे जाने का शोच नहीं है, परंतु द्रौपदी का शोच अवश्य है। देखिये इसने हम लोगों को जूए में दुरात्मा लोगों से क्लेशित होने पर तारा था और अब इस वन में जयद्रथ इसको बरबस हरकर ले गया यह कुछ अपनी इच्छा से नहीं गई थी। इससे मैं आपसे पूछता हूं कि आपने कोई और भी ऐसी पतिव्रत्य स्त्री देखी या सुनी है १। २ यह सुनकर मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! हम कुलीन स्त्रियों का माहात्म्य वर्णन करते हैं उसको सुनो और राजकन्या सावित्री के पातिव्रता धर्म पाने की कथा कहते हैं ४ मद्रदेश में अश्वपतिनामी एक राजा बड़ा धर्मात्मा, ब्रह्मण्य, महात्मा, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, यज्ञकर्त्ता, दानी, चतुर, सबका प्यारा, सबका हित करनेवाला और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

क्षमावान् था। उसके कोई सन्तान न थी इससे वृद्धावस्था के आने पर उसको बड़ा सन्ताप रहने लगा ५।७ तब उस राजा ने सन्तान होने के लिये तीव्र नियम लिया और उस नियम में वह ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और नियत आहार करके रहने लगा ८ हे राजसत्तम! सावित्री देवी के मन्त्र की सहस्र आहुति अग्नि में देकर दिन के छठे भाग में भोजन करता था ९ राजा ने यही नियम अठारह वर्ष तक कर रक्खा उपरान्त सावित्री देवी उसके नियम से प्रसन्न हुई और उसने अग्निहोत्र से प्रकट होकर राजा को दर्शन दिया और कहा कि हे राजन्, मद्रराज, अश्वपतिजी! मैं तेरे शुद्ध ब्रह्मचर्य दम के नियम और सर्वात्मा भक्ति से प्रसन्न हूं जो कुछ तुझे इच्छा हो सो मुझसे मांग ले तुझे धर्म के विषय में प्रमाद करना उचित नहीं है १०।१३ यह सुनकर राजा अश्वपति बोला कि हे देवि! मैंने धर्म ही की इच्छा से सन्तान होने के लिये यह कर्म किया था। इससे मैं चाहता हूं कि मेरे बहुत से पुत्र उत्पन्न होवें १४ हे देवि! जो तू मुझ पर प्रसन्न है तो यही वरदान दे ब्राह्मणों ने मुझसे कहा है कि सन्तान परम धर्म है १५ सावित्री बोली कि हे राजन्! मैंने तेरे इस अभिप्राय को जानकर पहिले ही से भगवान् ब्रह्माजी से तेरे पुत्र होने के निमित्त कहा था १६ सो हे सौम्य! ब्रह्माजी की कृपा से रची हुई बड़ी तेजस्विनी कन्या तेरे शीघ्र ही उत्पन्न होगी १७ सो अब तू मुझसे और किसी बात की प्रार्थना मत करे यह बात मैंने तुझसे ब्रह्माजी की आज्ञा से कही है १८ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह सुनकर उस राजा ने 'तथास्तु' कहकर सावित्री का वचन अङ्गीकार किया और सावित्री के अन्तर्धान होने पर अपने नगर को चला आया और प्रजा का पालन करके राज्य करने लगा १९।२० हे भरतसत्तम! कुछ काल के व्यतीत होने पर उस नियतव्रत राजा की बड़ी पटरानी के गर्भ रह गया और वह गर्भ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन दिन बढ़ने लगा २१।२२ जब गर्भ का समय पूरा हो गया तब उस राजा के एक कमललोचनी कन्या उत्पन्न हुई। राजा ने उस कन्या की सब क्रिया प्रसन्नता से की और उसका नाम राजा और ब्राह्मणों ने इस कारण से सावित्री रक्खा कि सावित्री का हवन करने से सावित्री ही ने उसको वह कन्या दी थी २३।२४ उस कन्या का स्वरूप लक्ष्मी के सदृश था और वह थोड़े दिनों में बढ़कर युवावस्था को प्राप्त हुई २५ सब लोग उसे देखकर यह कहते थे कि यह देव-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कन्या है परंतु उस कमलपत्राक्षी के प्रज्वलित तेज को देखकर किसी मनुष्य ने अपना विवाह उससे करना न चाहा २६ । २७ एक समय पर्व में उपासी रहकर उस कन्या ने शिर से स्नान करके पर्वत में जाकर अपने इष्टदेव का ध्यान किया और होम करके ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया २८ और इष्ट-देव की दी हुई माला को लेकर अपने पिता के पास आई और पिता के चरणों में नमस्कार करके पिता को वह माला दे दी और हाथ जोड़कर पास बैठ गई २६ । ३० राजा उस देवी का सा रूप रखनेवाली अपनी युवती कन्या को देखकर और यह जानकर कि उसको कोई मनुष्य ब्याहना अङ्गीकार नहीं करता है दुःखी हुआ ३१ राजा सावित्री से बोला कि हे पुत्रि ! तेरे विवाह का समय आ गया है परंतु कोई मनुष्य मेरे पास तुझे विवाह की इच्छा से मांगने को नहीं आता है इससे तू आपही अपने समान पति ढूंढ़ । जब तेरी इच्छा के अनुसार तुझको कोई मनुष्य मिल जाय तब मुझसे कहियो, मैं उसको कन्या-दान कर दूंगा ३२ । ३३ हमने ब्राह्मणों के मुख से कहे हुए धर्मशास्त्र में सुना है कि जो पिता अपनी कन्या का विवाह नहीं करता है और जो पुरुष अपनी स्त्री के पास ऋतुकाल के आने पर नहीं जाता है और पिता के मरने पर जो पुत्र अपनी माता की रक्षा नहीं करता है वह निन्दा के योग्य है ३४ । ३५ इससे तू शीघ्र अपना पति ढूंढ़ जिससे देवता मेरी निन्दा न करें ३६ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह कहकर राजा ने सावित्री के लिये वाहन सजाने की आज्ञा दी और कहा कि हे पुत्रि ! तू बूढ़े मन्त्रियों को साथ लेकर चली जा ३७ यह सुनकर वह कन्या लज्जित सी होकर अपने पिता के चरणों में दण्डवत् करके वृद्ध मन्त्रियों को साथ लेकर सुनहरे रथ में बैठकर विना जाने मार्ग से चल दी और उस वन में पहुँची जहाँ राजऋषि तपस्या करते थे ३८ । ३६ वहां वह मान के योग्य वृद्ध ऋषियों को दण्डवत् करके आगे चल दी और क्रमपूर्वक सब वनों में होती हुई और तीर्थों पर धनदान करती हुई वहां पहुँची जहां मुख्य ब्राह्मण रहते थे ॥ ४० । ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ तिरानबेवाँ अध्याय ।

सावित्री का सत्यवान् को अपना पति बरना तथा नारदजी का सत्यवान् को अल्पायु बता विवाह का निषेध करना और सावित्री का न मानना ।

मार्कण्डेयजी बोले हे भरतवंशिन्, युधिष्ठिर! एक दिन मद्रदेशाधिपति राजा अश्वपति कथाप्रसंग से सभा में नारदजी सहित बैठा हुआ था। उसी समय सावित्री भी तीर्थयात्रा करके और अनेक आश्रमों को देखकर वृद्ध मन्त्रियों सहित वहां आई और अपने पिता और नारदजी को बैठा हुआ देखकर उसने दोनों को दण्डवत् की १।२ उसको देखकर नारदजी ने राजा से पूछा कि हे नृप! तेरी यह कन्या कहां गई थी और कहां से आई और तैंने अभी तक इसका विवाह क्यों नहीं किया है ४ यह सुनकर राजा अश्वपति बोला कि महाराज! मैंने इसको इसी निमित्त से भेजा था और इस प्रयोजन से यह गई थी अभी आई है, अब इससे सुनो कि इसने किसको पति बरा है ५ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसके पीछे वह कन्या पिता की प्रेरणा से बोली ६ कि शाल्वदेश में द्युमत्सेननामी एक बड़ा धर्मात्मा राजा था, वह कुछ काल पीछे अन्धा हो गया था ७ उसके अन्धे होने की अवस्था में उसका राज्य उसके पुत्रों के बालक होने के कारण उसके पूर्व वैरियों ने हर लिया ८ तब वह राजा अपने बालक पुत्र और स्त्रीसहित वन को चला गया और वहां महाव्रत धारण करके तपस्या करने लगा ९ सो मैंने उसके सत्यवान्नामी पुत्र को जो उत्पन्न तो नगर में हुआ था, परंतु बड़ा वन में हुआ है, अपना पति रचा है, वही मेरे योग्य है १० यह सुनकर नारदजी बोले कि हे राजन्! बड़े दुःख की बात है, इस कन्या ने विना जाने बड़ा पाप किया जो उस गुणवान् सत्यवान् को अपना पति बरा है ११ उसके माता और पिता दोनों सत्यवादी हैं। इसी कारण से ब्राह्मणों ने उसके पुत्र का नाम सत्यवान् रक्खा है १२ और उसका नाम चित्राश्व भी है, यह नाम इस कारण से रक्खा गया था कि बालकपन में उसको अश्व अर्थात् घोड़े बड़े प्यारे लगते थे और वह मिट्टी के घोड़े बनवाता था और घोड़ों के चित्र भी लिखता था १३ तब राजा ने पूछा कि महाराज! आप जानते हैं कि वह राजपुत्र सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान्, शूरवीर और पितृवत्सल है या नहीं १४ नारदजी बोले, हां मैं जानता हूं। वह सूर्य के समान तेजस्वी, बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और पृथ्वी के अनुरूप क्षमावान् है १५ तब राजा बोला, भला वह राजकुमार दाता, ब्रह्मरय, स्वरूपवान्, उदार और प्रियदर्शन भी है १६ नारदजी बोले कि हां, वह दान देने में संकृति के पुत्र रन्तिदेव के तुल्य और सत्य में उशीनर के पुत्र राजा शिवि के समान और ब्रह्मरय है। उदारता उसकी राजा ययाति के समान और स्वरूप अश्विनीकुमारों का सा है और वह चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन भी है १७।१८ इसके सिवाय वह तप का क्लेश सहनेवाला, मृदु, शूरवीर, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सबका मित्र, धैर्यवान्, लज्जावान्, दूसरे के गुणों में दोष न लगानेवाला, सीधा और मर्यादा से अचल भी है, ऐसा संक्षेप से शीलवृद्ध तपोवृद्ध लोग कहते हैं १९।२० तब अश्वपति ने पूछा कि महाराज! आपने उसके गुण तो सब कहे, परंतु यह तो कहिये कि उसमें कोई दोष भी है २१ नारदजी बोले कि हां, एक दोष बड़ा भारी है वह सब गुणों के ऊपर है और उसका मिटना बड़े यत्न से भी असंभव है २२ वह यह है कि आज से एक वर्ष पीछे वह मर जायगा २३ यह सुनकर राजा ने सावित्री से कहा कि हे पुत्रि! तू दूसरा मनुष्य देख, उसमें तो एक बड़ा दोष है जो उसके सब गुणों को तिरस्कार किये देता है। नारदजी कहते हैं कि वह एक ही वर्ष पीछे मर जायगा २४।२५ यह सुनकर सावित्री बोली कि वृक्ष एकही बार गिरता है, पहाड़ भी एक ही बार टूटता है, कन्यादान भी एक ही बार होता है और दान भी एक वस्तु का एक ही बार होता है २६ इससे चाहे वह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु और गुणवान् हो या गुणहीन, मैं उसको एक बार बर चुकी, अब दूसरे को क्योंकर बरूं २७ संसार में सब कामों का पहिले मन में विचार किया जाता है फिर मुख से कहा जाता है तब किया जाता है। इससे जो बात मैं मन से विचार चुकी, उससे अन्यथा नहीं कर सकती हूं २८ यह सुनकर नारदजी राजा से कहने लगे कि तेरी पुत्री की बुद्धि स्थिर है, वह इस धर्म से निवारण नहीं की जा सकती २९ और सत्यवान् के गुण भी असादृश्य हैं। इससे तेरी पुत्री का विवाह उसके साथ होना मेरी सलाहसे अच्छा है ३० राजा बोला कि आप मेरे गुरु हैं, आपका वचन सत्य और सावित्री का वचन अचल है, इससे मैं भी ऐसा ही करूंगा ३१ तब नारदजी बोले कि अब मैं जाऊँगा, ईश्वर करे तेरी पुत्री सावित्री के विवाह में किसी प्रकार का विघ्न न हो ३२ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह कह कर नारदजी स्वर्ग को चले गये और राजा ने पुत्री के विवाह की सामग्री इकट्ठी की ॥३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दोसौ चौरानबेवाँ अध्याय।

सावित्री का सत्यवान् के साथ विवाह होना और उसका सेवा से सबको प्रसन्न करना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर ! जब वह राजा उसी काज को विचारता हुआ कन्यादान के लिये विवाह की सामग्री इकट्ठा कर चुका। तब वृद्ध ब्राह्मण, ऋत्विज् और पुरोहित को बुलाकर कन्यासहित शुभ मुहूर्त में घर से चलकर उस पवित्र वन में पहुँचा, जहां द्युमत्सेन का आश्रम था और उस राजऋषि के पास ब्राह्मणों को साथ लेकर अकेला गया १। ३ वह लोचन-विहीन राजऋषि उस समय एक शाल वृक्ष के पास कुशासन पर बैठा हुआ था ४ राजा ने उसकी यथायोग्य पूजा करके सावधानी से अपने को निवेदन किया ५ तब उस धर्मज्ञ ने राजा अश्वपति को अर्घ्य और आसन देकर पूछा कि आपका आना कैसे हुआ है ६ तब अश्वपति ने अपने अभिप्राय और कर्तव्य को निवेदन करके प्रार्थना की कि हे धर्मज्ञ राजर्षे ! यह मेरी सावित्रीनाम कन्या है, इसको आप अपनी पुत्रवधू करने के लिये स्वधर्म से अङ्गीकार कीजिये ७।८ यह सुनकर द्युमत्सेन बोला कि हमलोग राज्यहीन, वनवासी और तपस्वी हैं, तुम्हारी कन्या वनवास के योग्य न होकर हमारे आश्रम में कैसे रहेगी और क्लेश सहेगी ६ अश्वपति बोला कि हे नृप ! मेरी पुत्री और मैं दोनों उत्पत्ति और विनाशात्मक सुख और दुःख को जानते हैं। ऐसी अवस्था में आपको ऐसी बात कहने की आवश्यकता नहीं है, मैं आपके पास बड़े निश्चय से आया हूं १० आपको मुझ प्रेम से आनेवाले की आशा तोड़ना और उत्तर देना उचित नहीं है ११ आप मेरे योग्य और मैं आपके योग्य हूं इससे आप मेरी कन्या को अपने पुत्र सत्यवान् से विवाह करने के लिये ग्रहण कर लीजिये १२ यह सुनकर द्युमत्सेन बोला कि तुम्हारे साथ सम्बन्ध करने की मुझे पहिले ही से अभिलाषा थी, परंतु मैंने राज्यभ्रष्ट होने के कारण से उक्त उत्तर दिया था। अब मैं भी चाहता हूं कि मेरी वह अभिलाषा अभी पूरी हो १३।१४ यह कहकर उन दोनों राजाओं ने सब आश्रमवासी ब्राह्मणों को बुलाकर विधिपूर्वक विवाह करवाया १५ और राजा अश्वपति कन्या को दान-दहेज के साथ देकर प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चला गया १६ और सत्यवान् उस सर्वगुणसम्पन्न स्त्री को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सावित्री भी अपने मन के अभीष्ट पति को पाकर सुखी हुई १७ जब सावित्री का पिता चला गया, तब उसने सब

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आभरण उतार डाले और बल्कल और काषायवस्त्र धारण कर लिये और अपने सेवाशील और स्नेहयुक्त स्वभाव और सबके इष्ट सम्पादन से सबको प्रसन्न किया १८। १६ वह अपनी सासु को स्नान कराने और वस्त्र पहिराने से प्रसन्न रखती थी और श्वशुर को देवताओं के समान सत्कार-वचन के संयम से सानुकूल रखती थी और पति को प्यारी बोली बोलने से और चतुराई जितेन्द्रियता और एकान्त में सेवा करने से तृप्त रखती थी २०। २१ हे भरतवंशिन्! इस प्रकार से उसी आश्रम में तप करते हुए उन सत्पुरुषों का कुछ काल व्यतीत हुआ २२ परंतु नारदजी का कहा हुआ वाक्य उस म्लायमान सावित्री के चित्त में खटकता रहता था ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि चतुर्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥

दोसौ पंचानबेवाँ अध्याय।

सावित्री का पति के मरने को जानकर व्रत करना और उसी अवस्था में पति के साथ वन को जाना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर! इसके पीछे बहुत दिनों में वह समय आया कि जिसमें सत्यवान् की मृत्यु निर्मित थी १ सावित्री एक एक दिन गिनती जाती थी और ज्यों ज्यों वह समय निकट आता जाता था, त्यों त्यों उसके हृदय में नारदजी का वाक्य सदैव खटकता था २ जब उसके मरने के चार दिन रह गये तब उस भामिनी ने तीन रात्रि के व्रत का संकल्प किया और दिनरात्रि अपने पति के पास बनी रही ३ उसके उस नियम को सुनकर उसका श्वशुर दुःखित होकर उसके पास गया और उसको सान्त्वन करके बोला ४ कि हे राजपुत्रि! तैंने यह बड़ा तीव्र व्रत लिया है, तीन रात्रि दिन भोजन न करना बड़ा कठिन है ५ तब सावित्री बोली कि हे तात! आप इसका सन्ताप न कीजिये, मैं इस व्रत को पूरा करूंगी, यह एक उद्योग है और कारण से किया जाता है ६ द्युमत्सेन बोला कि मैं तुझसे क्योंकर कहूं कि तू इस व्रत को पूरा कर, मेरी समझ में तो यह व्रत कठिन है। तू इसको त्याग दे ७ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! द्युमत्सेन उक्त प्रकार से कहकर चुप हो रहा और सावित्री ध्यान में बैठी हुई काष्ठरूप हो गई ८ और अपने पति की मृत्यु प्रातःकाल समझकर वह रात्रि उसकी बड़े कष्ट से व्यतीत हुई ६ प्रातःकाल उसने यह जानकर कि आज मेरे पति के मरने का दिन है, चार हाथ सूर्य चढ़े

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तक उसने पूर्वाह्निक क्रिया की और अग्नि को प्रज्वलित करके होम किया १० अपनी सास, श्वशुर और वृद्ध ब्राह्मणों को दण्डवत् करके वहीं बैठी रही ११ तब उन वनवासी तपस्वियों ने उसको सौभाग्य बना रहने का शुभ आशीर्वाद दिया १२ सावित्री ने ध्यानपरायण होकर उन आशीर्वादों को मन में अङ्गीकार करके कहा कि ऐसा ही होवे १३ और नारदजी के कहने के अनुसार वह उस काल और मुहूर्त की चिन्ता में महादुःखी हो गई १४ हे भरत-सत्तम! इसके पीछे सास और श्वशुर ने उस एकान्त में बैठी हुई पुत्रवधू से प्रीति-पूर्वक कहा १५ कि तैंने उपदेश के अनुसार अपना व्रत पूरा किया, अब भोजन का समय आ गया है सो व्रत का पारणकर १६ सावित्री बोली कि सूर्यास्त होने पर मैं भोजन करूंगी। यही नियम और संकल्प मैंने किया था १७ मार्कण्डेय-जी बोले हे युधिष्ठिर! इसके पीछे सत्यवान् फरसा कांधे पर रखकर वन को चलने लगा १८ उसको देखकर सावित्री बोली कि आप अकेले वन को न जाइये, मैं भी आपके साथ चलूंगी। मैं आपको अकेला छोड़ना नहीं चाहती हूं १९ सत्य-वान् बोला कि हे भामिनि! वन का मार्ग दुःखरूपी है और तुझे वन में चलने का अभ्यास नहीं है। इस पर भी तू व्रत के कारण से दुर्बल हो रही है। ऐसी अवस्था में तू वन में पैदल क्योंकर जा सकेगी २० सावित्री बोली कि मुझको उपवास का कुछ दुःख नहीं है। न मैं वन जाने में कोई परिश्रम जानती हूं। मेरा मन वन में आपके साथ चलने को चाहता है। इससे आपको मुझे निषेध करना उचित नहीं है २१ सत्यवान् बोला अच्छा, जो तेरा मन चलने को है तो मैं तुझे ले चलूंगा, परंतु तू माता-पिता की आज्ञा लेले जिससे मेरे ऊपर दोष न आवे २२ मार्कण्डेयजी बोले, यह सुनकर सावित्री अपनी सास और श्वशुर के पास गई और दण्डवत करके उनसे बोली कि मेरा पति फल लेने की इच्छा से वन को जाता है २३ सो मैं उसके साथ वन में जाने के लिये आप दोनों से आज्ञा मांगती हूं, क्योंकि मैं पति के विरह को सह नहीं सकती हूं २४ जो वह और किसी काम को जाता तो उसको रोक भी दिया जाता, परंतु वह अग्निहोत्र के लिये लकड़ी और आपके लिये फल लेने जाता है इससे उसको वन जाने से रोकना उचित नहीं है २५ मुझे यहां आये कुछ कम एक वर्ष हो गया, परंतु मैं घर से बाहर नहीं गई अब मेरी इच्छा है कि मैं पुष्पितवन को देखूं २६ द्युमत्सेन बोला कि जब से तू हमारे घर में आई है तब से तैंने हमसे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अपनी कोई अभिलाषा नहीं कही इससे हम तुझे अपने पति के साथ वन को जाने की आज्ञा देते हैं २७। २८ यह सुनकर सावित्री हँसती हुई, परंतु हृदय में महादुःखी अपने पति के साथ हो ली २९ और विचित्र रमणीक और मयूरों के गणों से सेवित वन को देखती हुई चली गई ३० और सत्यवान् उसको मधुर वाणी से नदी और पुष्पित वृक्षों को दिखाता हुआ चला गया ३१ उस समय उसका हृदय दो प्रकार का होगया। एक तो पति के साथ में रहकर मधुर-वाणी से पति से बात करती जाती थी और दूसरे नारदजी के वचन को याद करके पति के मरने के समय को निकट आया हुआ देखकर हृदय में अत्यन्त दुःखी होती जाती थी ॥ ३२। ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

दोसौ छानबेवाँ अध्याय।

सत्यवान् का शिरपीड़ावश सावित्री की गोद में सो जाना, यमराज का उसके प्राण निकाल ले जाना और सावित्री का उनके पीछे जा, यम को प्रसन्नकर पाँच वरदान लेना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसके पीछे भार्यासहायक बलवान् सत्यवान् ने फल तोड़ तोड़कर डलिया भर ली और लकड़ी काटने लगा १ उस समय लकड़ी काटते हुए उसके शरीर में पसीना हो आया और अङ्ग में हड़फूटन और शीश में पीड़ा होने लगी तब उसने अपनी प्रिया के पास जाकर कहा २ कि आज परिश्रम से मेरे शिर में दर्द हो आया है ३ और मेरे अङ्ग अङ्ग और हृदय में पीड़ा होती है, इससे हे सावित्रि! मेरा चित्त बहुत व्याकुल है ४ और शिर में ऐसा जान पड़ता है मानो कोई शूल छेद रहा है। अब मेरी सामर्थ्य खड़े रहने की नहीं है इसस मैं सोना चाहता हूं यह सुनकर सावित्री उसका शिर गोद में रखकर पृथ्वी पर बैठ गई और वह तपस्विनी नारदजी के कहे हुए वचन को स्मरण करके उस मुहूर्त क्षण दिन और समय का विचार करने लगी ५। ७ एक मुहूर्त के पीछे उसको एक पुरुष दिखाई दिया जो लाल कपड़े पहिरे हुए शरीरी शिरसे चिकुर बांधे लाल लाल आंखें निकाले हुए श्याम श्वेतवर्णवाले परम तेजस्वी हाथ में पाश लिये हुए भयदायक सत्यवान् की बग़ल में खड़ा हुआ सत्यवान् को देख रहा था। उसको देखकर सावित्री धीरे से अपने पति का शिर पृथ्वी पर रखकर उठ खड़ी हुई और बड़ी पीड़ा से कांपती हुई दोनों हाथ जोड़कर बोली ८। १० कि हे देवेश! मैं जानती हूं आप देवता हैं और आपका दिव्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शरीर है, कृपा करके मुझको बतलाइये कि आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं ११ यमराज बोले कि हे सावित्रि! तू पतिव्रता और तपस्विनी है इससे तुझको बताता हूं कि मैं यमराज हूं १२ यह राजपुत्र तेरा पति सत्यवान् क्षीणआयु होगया है इससे मैं इसको बांधकर ले जाऊंगा। यही मैं करना चाहता हूं १३ सावित्री बोली कि हे भगवन्, महाराज! मैंने सुना है कि आपके दूत मनुष्यों के प्राणों को हरकर ले जाते हैं हे प्रभुजी! इस मेरे पतिके प्राण हरने के लिये आप स्वयं क्यों आये हैं १४ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! यह सुनकर भगवान् धर्मराज ने सावित्री के प्रिय करने के लिये समग्र अपने करने का इष्ट कहने को यथार्थता से आरम्भ किया १५ धर्मराज बोले कि हे सावित्रि! यह राजपुत्र सत्यवान् धर्मवान्, गुणवान् और रूपवान् है। मेरे दूतों से ले जाने के योग्य न था इससे मैं स्वयं इसको लेने आया हूं १६ यह कहकर यमराज ने सत्यवान् के शरीर से एक अंगुष्ठमात्र शरीर बल से निकालकर पाश से बांध लिया और उसे लेकर दक्षिण की ओर चल दिये। उसके प्राण के निकलने पर सत्यवान् का स्थूल शरीर चेष्टाहीन श्वासरहित और बुरा दीखने लगा। उस समय वह बड़भागिनी पतिव्रता सावित्री दुःख से पीड़ित होकर यमराज ही के पीछे पीछे हो ली १७। १८ थोड़ी दूर जाने पर यमराज ने उससे कहा कि हे सावित्रि! अब तू लौट जा इस अपने पति की और्ध्वदैहिक क्रिया कर। तू अपने पति से अनृण हुई, बस यहीं तक चलना बहुत है २० यह सुनकर सावित्री बोली कि महाराज! जहां मेरा पति जलाया जाय अथवा जहां वह स्वयं जायँ तहां ही मुझको भी जाना उचित है, यह सनातन धर्म है २१ तप, गुरुभक्ति, पति का स्नेह, व्रत और आपकी कृपा से मेरी गति रुक नहीं सकती है २२ तत्त्वदर्शी ज्ञानियों ने कहा है कि सप्तपद साथ जाना मित्रता का धर्म है, सो मैं उसी मित्रता को आगे करके आपसे कुछ कहती हूं, उसको आप सुनिये २३ जो आत्मज्ञानी लोग वन में रहते हैं और वह धर्म कर्म करते हैं। जिनमें कर्मफल का त्याग है, वे धर्म को विज्ञान के अर्थ बताते हैं। इससे सन्त लोग धर्म को प्रधान कहते हैं २४ सत्पुरुषों का माना हुआ एक ही धर्म ऐसा है जिससे परम सन्मार्ग प्राप्त हो सकता है। सन्त लोग उस धर्म को छोड़कर और दूसरे अथवा तीसरे धर्म की इच्छा नहीं करते हैं। इससे सन्तों ने धर्म को ही प्रधान कहा है २५ यह सुनकर यमराज ने कहा कि हे सावित्रि! मैं तेरी यह निर्दोष वाणी सुन-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कर बहुत प्रसन्न हुआ। सिवाय इस अपने पति के जीवित के और जो कुछ तुझे इच्छा हो सो मांग ले और चली जा २६ सावित्री बोली कि जो मेरा श्वशुर राज्य से भ्रष्ट होकर वन में रहता है और अन्धा है वह आपकी कृपा से नेत्र पाकर बलवान्, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी हो जाय। यमराज बोले कि हे वरारोहे! अच्छा ऐसा ही होगा। यह तेरी इच्छा पूरी होगी, परंतु अब तू लौट जा तेरा शरीर लटा हुआ है, दूर जाने से तू थक जायगी २७। २८ सावित्री बोली कि हे सुरेश! पति के साथ में चलने से मैं कदापि न थकूंगी, मेरी गति भी वहीं होगी जहां मेरा पति होगा। उसको जहां आप ले जायँगे वहीं मैं भी जाऊंगी और जो कुछ मैं कहती हूं उसे भी सुनिये २९ मनुष्य सत्पुरुषों के एक बार के मिलाप से ही परम मित्रता को पाता है वह मिलाप निष्फल नहीं होता है। इससे सत्पुरुषों के बीच में रहना उचित है ३० यमराज बोले हे सावित्रि! तेरा कहना मनभावन ज्ञानी की बुद्धि को बढ़ानेवाला और हिताश्रय है, इससे इस सत्यवान् के जीवित को छोड़कर और जो इच्छा हो सो वर मांग ३१ सावित्री बोली कि मुझे दो वर दीजिये। एक तो मेरा श्वशुर जो कि बड़ा बुद्धिमान् है अपने गये हुए राज्य को पावे और दूसरे वह धर्म को न छोड़े ३२ यमराज बोले तेरे श्वशुर को शीघ्र ही राज्य मिल जायगा और धर्म को भी कभी न छोड़ेगा। अब तू मेरा कहना मान और लौट जा, क्यों नाहक को श्रम उठाती है ३३ सावित्री बोली कि प्रजा आपसे दण्ड पाकर शुद्ध हो जाती है और आप प्रजा को दण्ड देकर सुकर्म का फल भी देते हैं। इसी कारण से आपका नाम यमराज है। मेरी थोड़ी सी और भी प्रार्थना है उसको भी सुनिये ३४ मन, कर्म और वाणी से किसी प्राणी के साथ द्रोह न करना सब पर अनुग्रह करना और दान करना ये तीनों लक्षण सत्पुरुषों के सनातन धर्म कहे हैं ३५ इस बात को समझकर बहुधा संसार शक्तिहीन अर्थात् उक्त धर्म पर न चलनेवाले मनुष्यों से भरा है, परंतु सन्त लोग उन पर ही नहीं, किन्तु शत्रु भी मिल जाय तो उस पर भी दया करते हैं ३६ यमराज बोले, हे सावित्रि! तेरे ये वाक्य प्यासे की प्यास को बुझाने के लिये जलरूपी हैं। इससे सिवाय सत्यवान् के जीवित के और जो इच्छा हो सो वर मांग ३७ सावित्री बोली कि मेरे पिता के कोई पुत्र नहीं है। इससे मैं चाहती हूं कि उसके सौ औरस पुत्र कुल के बढ़ानेवाले होवें। यह तीसरा वर मांगती हूँ ३८

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यमराज बोले, अच्छा तेरे पिता के बड़े तेजस्वी और कुल के बढ़ानेवाले सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। अब तू वर पाकर लौट जा, बहुत दूर आ गई है ३९ सावित्री बोली कि पति के साथ रहकर मैं सब मार्गों को निकट ही समझती हूं परंतु मेरा मन दूर तक दौड़ता है। इस मार्ग में मुझको एक और बात याद आगई है, उसको भी आप सुनिये ४० आप बड़े प्रतापी हैं और विवस्वान् जगदात्मा सूर्य के पुत्र हैं। इसीसे ज्ञानीलोग आपको वैवस्वत नाम से विख्यात करते हैं और आपके धर्म को देखकर आपके शासन से सब प्रजा धर्म करती है, इससे आपका नाम धर्मराज भी है ४१ मनुष्य को जितना विश्वास सत्पुरुषों पर होता है, उतना अपनी आत्मा पर भी नहीं होता है। इससे मनुष्य विशेष करके सब मनोरथों के मिलने के लिये सत्पुरुषों की संगति करता है ४२ और सत्पुरुषों पर विश्वास करने का यह कारण है कि सत्पुरुष सब पर प्रीति करते हैं और प्रीति ही से विश्वास होता है ४३ यमराज बोले कि हे सावित्रि! इस समय तैंने ऐसी बात कही है कि यह बात दूसरे से सुनने में नहीं आई थी इससे मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, अपने पति के जीवित को छोड़ कर और जो वरदान चाहे सो मांग ले ४४ सावित्री बोली कि महाराज! सत्यवान् से मेरे सौ पराक्रमी औरस पुत्र उत्पन्न होवें यह चौथा वरदान मुझको दीजिये ४५ यमराज बोले कि तेरे सौ पुत्र पराक्रमी और तुझको प्रसन्न करनेवाले उत्पन्न होंगे अब तू परिश्रम मत करे, लौट जा बहुत दूर चली आई है ४६ सावित्री बोली कि महाराज! सन्तों की सदा की वृत्ति सनातन धर्म ही है वे सन्त न दुःखी होते हैं, न पीड़ा पाते हैं और उनका आपस का मिलाप भी निष्फल नहीं होता है और न उनको परस्पर किसीसे भय रहता है ४७ सन्तों ही के सत्य से सूर्य चलता है, सन्तों ही के तप से पृथ्वी स्थित है, भूत और भविष्य की गति भी सन्त ही हैं और सन्तों में रहकर सन्तों को पीड़ा नहीं होती है ४८ यह चलन सन्तों का सनातन से चला आया है। अच्छे पुरुष ही इस चलन को चलते हैं और दूसरे पुरुष की कामना को पूर्ण करने पर उपकार, प्रत्युपकार का कुछ ध्यान नहीं करते हैं ४९ सत्पुरुषों का प्रसाद निष्फल नहीं जाता है और न कभी ऐसा होता है कि सत्पुरुष अर्थ अर्थात् मनोकामना का पूरा करना और मान अर्थात् आदर-सत्कार करना भूल जाते हों। इस कारण इन तीनों बातों के होने से सत्पुरुष त्राता अर्थात् रक्षक गिने जाते

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हैं ५० यमराज बोले कि हे पतिव्रते! तू जैसे जैसे मेरे मन के अनुकूल धर्मयुक्त, गूढ़ अर्थ रखनेवाले वाक्य कहती है तैसे ही तैसे मेरे हृदय में तेरी ओर से प्रीति होती चली जाती है। इससे तू अब अप्रतिम वर मांग ले अर्थात् वह वर मांग ले जिससे अच्छा तू दूसरा वर न समझती हो ५१ सावित्री बोली कि मैं चाहती हूं कि मेरा पति सत्यवान् सजीव होजाय जिससे आपके वचन से मेरे सौ पुत्र दूसरे पति से धर्म के विपरीत न होवें, मैं विना पति के मृतक के समान हूँ और पति के विना सुख, स्वर्ग, लक्ष्मी और जीवन आदि कुछ नहीं चाहती हूँ ५२।५३ आपने मुझको सौ पुत्र होने का वरदान दिया है और पति मेरा हर लिया है इससे मैं चाहती हूँ कि मेरा पति जी जाय और आपका दिया हुआ वरदान सत्य होय ५४ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! तब यमराज ने प्रसन्न होकर पाश खोल डाली और सावित्री से कहा कि हे भद्रे, कुलनन्दिनि! ले, मैं तेरे पति को छोड़े देता हूँ अब यह आरोग्य रहकर चार सौ वर्ष तक जीवेगा और सिद्धार्थ होकर तेरा कहना मानेगा और धर्मपूर्वक यज्ञ करके संसार में विख्यात होगा ५५। ५७ और उससे तेरे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और उन सबके भी पुत्र पौत्रादिक होंगे और वे तेरे नाम से सावित्र विख्यात होंगे और तेरे पिता के भी तेरी माता से सौ पुत्र होंगे ५८। ५९ और तेरी माता का मालवी नाम होने से वे तेरे भाई मालव कहलावेंगे और पुत्र, पौत्रादि से युक्त क्षात्रधर्मी होकर देवताओं के समान होते हुए संसार में विख्यात होंगे ६० मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! प्रतापी धर्मराज सावित्री को उक्त प्रकार से वरदान देकर और उसे लौटाकर अपने स्थान को चले गये ६१ और सावित्री वहां से उस स्थान पर चली आई, जहां उसके पति का मृतक शरीर पड़ा हुआ था। वहां आकर पृथ्वी में भर्ता को देखकर पास जाकर वह अपने पति का शिर पहिले की भांति गोद में रखकर बैठ गई ६२। ६३ उस समय वह चैतन्य हो गया और सावित्री की ओर इस प्रकार से प्रीतिपूर्वक देखकर मानो परदेश से बहुत दिनों में आया है, उससे कहने लगा ६४ कि बड़े दुःख की बात है कि मुझे सोते सोते बड़ा विलम्ब हो गया है तैंने जगाय क्यों न दिया, वह काला मनुष्य जिसने मुझे खींचा था, कहां है ६५ सावित्री बोली हां, प्राणपते! आज आप मेरी गोद में बहुत देरतक सोते रहे, वह काला पुरुष प्रजा के दण्ड देनेवाले भगवान् यमराज थे। अब अपने स्थान को चले गये ६६ हे महाभाग, राजपुत्र! यदि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आपकी थकावट उतर गई हो और निद्रा जाती रही हो, तो उठ बैठिये, देखिये कैसी अँधेरी रात्रि है ६७ मार्कण्डेयजी बोले हे युधिष्ठिर! यह सुनकर सत्यवान् उठ बैठा और वनमें चारों ओर देखकर बोला ६८ कि हे प्राणप्यारी! मुझे स्मरण होता है कि मैं तेरे साथ फल लेने को आया था और यहां लकड़ी काटने के समय मेरे शिर में बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी थी, मैं उस पीड़ा को न सह सका और तेरी गोद में सो गया, तेरी रक्षा के कारण से मुझे नींद आगई और उस निद्रा की अवस्था में मुझे बड़ा अन्धकार और एक तेजस्वी पुरुष दिखाई दिया; परंतु मैं यह नहीं कह सकता हूं कि वह स्वप्न था या सत्य ही कुछ था। हे सुमध्यमे! जो तू उसको जानती हो तो कह ६६। ७२ सावित्री बोली कि हे राजपुत्र! अभी रात्रि है प्रातःकाल सब वृत्तान्त कहूँगी ७३ तुम्हारा कल्याण हो, अब आप उठिये और चलकर माता-पिता के दर्शन कीजिये सूर्य, अस्त हो गया और अँधेरी झुक आई है ७४ वन में निशाचर घूमने और क्रूर वाणी बोलने लगे, मृगों के दौड़ने से पत्ते खड़खड़ाने लगे और गीदड़ी दक्षिण और पश्चिम की ओर भयानक शब्द करने लगी हैं। इस समय यहां रहने से मेरा हृदय कांपता है ७५। ७६ सत्यवान् बोला कि हे प्राणप्यारी! इस समय बादलों के झुकने और रात्रि के अँधेरे से वन बड़ा भयानक हो रहा है, अब वन में तुझको राह जान न पड़ेगी और न तू चल सकेगी ७७ सावित्री बोली महाराज! कहीं कहीं सूखे वृक्षों में लगी हुई अग्नि वायु के कारण से चमकती हुई, दिखाई दे रही है, मैं उसको लिये आती हूँ। लकड़ियाँ यहाँ हैं, मैं इस स्थान पर चारों ओर अग्नि जला दूंगी, आप संताप छोड़ दीजिये ७८। ७६ हे निष्पाप! आज की रात्रि यहीं बसिये, प्रातःकाल जब वन के मार्ग दीखने लगें, तब अपनी इच्छानुसार चलियेगा। मैं भी जानती हूँ कि अँधेरे के कारण वन में मार्ग सुझाई न देगा और इसके सिवाय मैं जानती हूँ कि आपको पीड़ा भी है जो आपकी इच्छा चलने की नहीं है ८०। ८१ सत्यवान् बोला कि मेरे शिर की पीड़ा जाती रही है और अङ्ग भी मेरे स्वस्थ हैं इससे मैं तेरी कृपा से माता-पिता को देखना चाहता हूँ ८२ ऐसा श्रम जैसा आज हुआ है, मुझको कभी नहीं हुआ था और संध्या होने के पीछे मेरी माता मुझको बाहर कभी नहीं जाने देती ८३ और दिन में जब कभी मैं दूर निकल जाता था, तब मेरी माता और मेरे पिता दोनों मेरी ओर से बड़ी चिन्ता करते थे और आश्रमवा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सियों को साथ लेकर मुझको ढूंढ़ने निकल जाते थे ८४ सो देर से घर आने के कारण मेरे माता-पिता पहिले दुःखी होकर कई बार मेरी निन्दा कर चुके हैं ८५ इससे अब मुझको यह चिन्ता है कि न जानें मेरे घर न पहुँचने के कारण उनकी क्या गति हुई होगी, मैं जानता हूँ कि वे महादुःखी होंगे ८६ एकबार पाहिले भी मुझको रात्रिहो गई थी तब भी उन दोनों वृद्धों ने मुझसे रोकर बड़ी प्रीति के साथ कहा था कि हे पुत्र! तेरे विना हम एक क्षणभर भी नहीं जी सकते हैं ८७। ८८ हम दोनों बूढ़े और अन्धों का वंश तेरे ही आश्रय है। इससे जबतक तू जीता है तभी तक हमको भी तू जीता समझ, तू ही हम दोनों की सन्तान है, तुझी से हमारी कीर्ति है, और तू ही हमको पिण्ड देनेवाला है, सो हे सावित्रि! उन दोनों वृद्धों की मैं लाठी हूं, हाय रात्रि में मुझको न देखकर उनकी क्या गति हुई होगी ८९। ९० मैं अपनी नींद की निन्दा करता हूँ, जिसके कारण मेरे माता-पिता और मुझको यह संशय प्राप्त हुआ। मैं भी विना माता-पिता के नहीं जीऊँगा ९१। ९२ इस समय मेरा अन्धा पिता व्याकुल होकर प्रत्येक आश्रमवासी से मेरा हाल पूछता होगा। सो हे सावित्रि! मुझे अपना शोच इतना नहीं है, जितना अपने पिता का है और अपने पति की आज्ञाकारी दुर्बल माता का शोच भी मुझे मारे डालता है। निश्चय मेरे माता-पिता दोनों मेरे कारण से महादुःखी होंगे, सो मैं भी उसी समय तक अपने प्राण रक्खूंगा, जबतक उन दोनों के प्राण रहेंगे, मुझे उनका पालन और प्रिय करना उचित है ९३। ९५ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! वह माता-पिता की भक्ति रखनेवाला सत्यवान् उक्त प्रकार से कहकर दोनों बाहुओं को उठाकर डीक मारकर रोने लगा। उस समय सावित्री अपने पति की ऐसी दशा देखकर उसके नेत्रों के आंसुओं को पोछकर कहने लगी कि जो कुछ मैंने तपस्या की है और दान दिया है और होम किया है उसके कारण मेरा पति और मेरी सास और श्वशुर आज की रात्रि सुखपूर्वक रहें, पहिले स्वतन्त्र अवस्था में मैंने कभी झूंठ नहीं बोला है ९६। ९९ मेरे उस सत्य से मेरे सास-श्वशुर जीते रहें। तब सत्यवान् बोला कि हे सावित्रि! मैं माता-पिता के दर्शन चाहता हूँ, इससे अब देर मत करे, जल्दी चल १०० हे वरारोहे! जो मेरा अप्रिय हो जायगा अर्थात् माता-पिता मर जायँगे तो मैं जीता नहीं रहूंगा, मैं अपनी शपथ करके कहता हूँ, तू भी जो मेरा जीवित और प्रिय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चाहती है तो शीघ्र आश्रम को चल १। २ मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! यह सुनकर सावित्री ने उठकर अपने शिर के बाल बांध लिये और सत्यवान् को दोनों हाथों से उठाकर खड़ा किया ३ तब सत्यवान् ने चारों ओर देखकर अपने शरीर की धूल झाड़ी और फल से भरी हुई डलिया की ओर देखने लगा ४ तब सावित्री ने कहा कि फलों को कल ले जायँगे, इस आपके फरसे को मैं लिये चलती हूँ ५ यह कहकर गजगामिनी वामोरू सावित्री ने फल से भरी हुई डलिया को वृक्ष की डाली पर लटका दिया और फरसा लेकर पति के पास चली आई और उसकी बाँह को अपने बाएँ कन्धे पर रखकर और अपने दाहिने हाथ से उसे पकड़ कर वहां से चल दी ६।७ उस समय सत्यवान् बोला कि चलने के अभ्यास से मैं सब मार्गों को जानता हूँ और वृक्षों के बीच में से जो चन्द्रमा का प्रकाश दीखता है, उससे भी मुझे मार्ग जान पड़ता है ८ सो हे सावित्रि! जिस मार्ग से हम दोनों फल तोड़ते हुए आये थे, उसी मार्ग से चली चल, विचार मत करे ९ यह आगे पलाशखण्ड दिखाई देता है, इसमें से दो मार्ग गये हैं, तू उत्तर के मार्ग से जल्दी जल्दी चल १० मैं सावधान बलवान् और माता-पिता के दर्शनों का इच्छावान् हूँ। इस प्रकार से सत्यवान् बातें करता हुआ अपने आश्रम के निकट आन पहुँचा ॥ १११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९६ ॥

दोसौ सत्तानबेवाँ अध्याय।

सत्यवान् के न आने से व्याकुल हुए द्युमत्सेन को ऋषियों का समझाना फिर सत्यवान् का आ जाना और सावित्री का यमराज से वरदान पाने का हाल कहना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! इसी अवसर में महाबलशाली द्युमत्सेन की आँखें खुल गईं और वह अपनी शुद्ध दृष्टि से सबको देखने लगा और पुत्र के न आने के कारण से महादुःखी होकर अपनी शैव्या रानी सहित आश्रम आश्रम में पुत्र को ढूंढ़ने लगा १। २ और उसी रात्रि में वे दोनों स्त्री-पुरुष नदी, वन, सरोवर और आश्रमों पर पुत्र को पूछते और ढूंढ़ते हुए भ्रमण करने लगे ३ जहां कहीं कोई शब्द उनको सुनाई देता, वहां ही वे दोनों ऊपर को मुख करके कहने लगते कि सत्यवान् ही सावित्री सहित आ रहा है ४ इस प्रकार से उन्मत्त के समान चारों ओर वन में दौड़ते फिरते थे और उनके अङ्ग कुशा और कांटों से लोहूलुहान हो गये ५ उस समय सब आश्रमवासी ब्राह्मण उनके पास गये और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उनको घेरकर और धैर्य देकर उनके आश्रम में लिवा लाये ६ पहिले उन दोनों को तपोधन वृद्ध ऋषियों ने अनेक राजाओं की चित्र विचित्र कथायें सुनाकर धैर्य दिया ७ परंतु पीछे वे दोनों उस पुत्र के बालचरित्रों को स्मरण करके महादुःखी हो गये और शोक से पीड़ित होकर हा पुत्र! कहां है हा पुत्रवधू! कहां है, ऐसा कह कहकर रोने लगे। उस समय सुवर्चा ऋषि ने कहा कि सत्यवान् की स्त्री तपस्विनी, जितेन्द्रिय और आचार से रहनेवाली है इससे सत्यवान् जीता है ८।१० तदनन्तर गौतमनामी ऋषि ने कहा कि मैंने वेदों को अङ्गोंसहित पढ़ा है और तपस्या भी बड़ी की है और ब्रह्मचर्य से रहा हूँ, गुरु और अग्नि को भी मैंने तृप्त किया है। इसके सिवाय मैंने सब व्रत और सब उपवास भी किये हैं, जिनमें केवल वायु ही भक्षण करके रहा हूं, इससे मैं दूसरे मनुष्य की सब चिकीर्षा को जान सकता हूँ। यह कहना सत्य है कि सत्यवान् अभी तक सजीव है ११।१३ तब गौतम के शिष्य ने कहा कि मेरे गुरु का कहना कदापि मिथ्या नहीं हो सकता है, सत्यवान् निश्चय जीता है १४ यह सुनकर सब ऋषियों ने कहा कि सत्यवान् की स्त्री सौभाग्य के लक्षणों से युक्त है, इससे सत्यवान् के जीवित में कुछ संदेह नहीं है १५ फिर भरद्वाज ऋषि ने कहा कि सावित्री तपस्विनी, जितेन्द्रिय और आचारयुक्त है, इससे सत्यवान् के जीवित में सन्देह नहीं है १६ तब दालभ्यऋषि ने कहा कि हे राजन्! तेरे दोनों नेत्र खुल गये हैं और सावित्री व्रत करके विना आहार किये हुए गई, इससे ऐसा जान पड़ता है कि सत्यवान् के जीवित को किसी प्रकार की बाधा नहीं है १७ आपस्तम्बऋषि ने कहा कि मृग और पक्षी सब शान्त दिशाओं में बोल रहे हैं और आपका धर्म राज्य पाने के योग्य है, इससे सत्यवान् के जीने में कुछ संदेह नहीं है १८ तब धौम्यऋषि बोले कि सत्यवान् सबका प्यारा आयुष्मान् और गुणवान् है, इससे वह अवश्य जीता है १९ मार्कण्डेयजी बोले, हे राजा युधिष्ठिर! द्युमत्सेन का चित्त ऋषियों के उक्त वाक्य को सुनकर स्थिर हुआ २० एक मुहूर्त के पीछे सावित्री अपने पति के साथ आश्रम में बड़ी प्रसन्नता से आ पहुँची २१ उस समय ब्राह्मणों ने कहा कि हे द्युमत्सेन! हम लोगों ने जो कहा था, सो हुआ। अब तुमको हम सब नेत्रवान् और पुत्र और पुत्रवधू से मिला हुआ देखकर आशीर्वाद देते हैं, तुम्हारी ईश्वर ने वृद्धि की। अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारे ऐश्वर्य की वृद्धि भी हो जायगी २२।२४ इसके पीछे सब ब्राह्मण अग्नि जलाकर द्युमत्सेन के पास

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बैठ गये और शैब्या, सावित्री और सत्यवान् एक ओर खड़े हो रहे और फिर उन सब से आज्ञा पाकर शोकरहित होकर बैठ गये २५। २६ तदनन्तर सब वनवासियों ने जिनको एक आश्चर्य सा हो गया था, सत्यवान् से पूछा २७ कि हे सत्यवान्! आज तुम वन से सिदौसी क्यों नहीं चले आये, इतनी रात्रि किस कारण से हो गई २८ हे राजपुत्र! तुम्हारे माता-पिता और हम सबको बड़ा कष्ट हुआ, इसके कारण को यथावत् कहो २९ सत्यवान् बोला कि मैं पिता से आज्ञा पाकर सावित्रीसहित वन को गया था, वहां लकड़ी काटते में मेरे शिर में बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी ३० उसके कारण से मैं वहां सो गया और इतना सोया कि पहिले इतना कभी नहीं सोया था, सो इस कारण से वन से रात्रि में आना हुआ। आप लोग किसी प्रकार का संताप न कीजिये, इसके सिवाय और कुछ कारण नहीं है ३१। ३२ तब गौतम ऋषि ने कहा कि तुम्हारे पिता की आँखें अकस्मात् खुल गईं, तुमको इसका कारण विदित नहीं है, सावित्री जानती होगी, वह कहेगी ३३ हे सावित्रि! तू पर और अपरब्रह्म की जाननेवाली है, मैं तुझको सावित्री देवी के समान जानता हूँ तू अपने श्वशुर के नेत्र पाने के कारण को जानती है जो उसके कहने में कोई बात रहस्य की न हो तो कह, हम सब सुनना चाहते हैं ३४। ३५ यह सुनकर सावित्री बोली आप सत्य कहते हैं, मुझे कारण विदित है और उसमें कोई छिपाने की बात नहीं है जो कुछ सत्य सत्य वृत्तान्त है, उसको सुनिये ३६ महात्मा नारदजी ने मुझसे कहा था कि तेरे पति की मृत्यु फलाने दिन होगी सो वह दिन आज था। इसी कारण से मैंने पति को अकेला नहीं छोड़ा, वन में भी साथ गई, वहां जब शिर में पीड़ा होने से यह सो गया, तब यमराज आप वहां आये और इसको बांधकर दक्षिण दिशा को ले चले ३७। ३८ तब मैंने उस समर्थ देवता की सत्यवचन से स्तुति की और उसने मुझको पांच वरदान दिये ३९ एक तो मेरे श्वशुर का नेत्रवान् होना, दूसरा राज्य पाना, तीसरा मेरे पिता के सौ पुत्र होना, चौथा मेरे सौ पुत्र होना और पांचवाँ मेरे पति की चारसौ वर्ष की आयु होना। हे ऋषियो! मैंने व्रत भी अपने पति के जीवित के अर्थ ही किया था यही कारण दुःख सुखरूपी है इसके सिवाय और कोई बात नहीं है ४०। ४२ यह सुनकर सब ऋषि बोले कि हे सुन्दरि! तू कुलीन, शीलवान् और व्रतों से पवित्र शरीरिणी है तैंने इस राजा के अन्धकाररूपी तालाब में डूबते हुए और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

व्यसन से दबे हुए कुल का उद्धार अच्छे प्रकार से किया ४३ मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर! इसके पीछे वे सब ऋषि सावित्री की प्रशंसा और पूजा करके राजा से पूछकर आनन्दपूर्वक अपने अपने आश्रमों को चले गये॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९७॥

दोसौ अट्ठानबेवाँ अध्याय।

राज्यप्राप्त द्युमत्सेन का वृत्तान्त सुन राजा युधिष्ठिर का शोकरहित होकर काम्यकवन में बसना।

मार्कण्डेयजी बोले, हे युधिष्ठिर! जब वह रात्रि व्यतीत हो गई और सूर्यमण्डल उदय हुआ, तब सब ऋषि संध्यावन्दन से निवृत्त होकर, द्युमत्सेन के पास आये और उससे सावित्री का माहात्म्य बार बार कह कह कर तृप्त नहीं हुए १।२ इसी अवसर में शाल्वदेश के प्रजालोग भी राजा द्युमत्सेन के पास आये और उन्होंने कहा कि महाराज! आपके मन्त्री ने आपके शत्रु को सहायक और भाई बान्धवोंसहित मार डाला है और उसकी सब सेना भी भाग गई है ३।४ अब सब लोगों की यह सलाह है कि जो राजा पहिले हमारे देश में था, वही राज्य करे, चाहे वह अन्धा हो या नहीं ५ सो हे नरपाल! हम सबको उन लोगों ने आपके लेने के लिये भेजा है। आपकी सब चतुरङ्गिणी सेना और सवारियाँ यहां आई हैं ६ सो हे राजन्! आप शीघ्र चलिये और बाप दादों के स्थानों को बहुत दिनों पीछे देखिये, नगर में आपकी जय घोषित करा दी गई है ७ इसके पीछे वे सब लोग राजा को नेत्रवान् देखकर अचम्भे में आ गये और फूले हुए लोचनोंवाले होकर माथे से दण्डवत् करने लगे ८ तदनन्तर द्युमत्सेन उन आश्रमवासी वृद्ध ब्राह्मणों को दण्डवत् करके और उनसे पूजित होकर अपने नगर को चल दिया ९ और शैव्या, सावित्री और सत्यवान्सहित पालकी में सवार होकर सेना से आवृत अपने नगर में पहुँचा। पुरोहितों ने प्रीति से द्युमत्सेन का राज्याभिषेक और सत्यवान् का यौवराज्याभिषेक कराया १०।११ बहुत दिनों के पीछे सावित्री के बड़े शूरवीर और युद्ध में विमुख न होनेवाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए १२ और उसके पिता अश्वपति के भी मद्रदेश में मालवी रानी से सौ पुत्र उत्पन्न हुए १३ इस प्रकार से सावित्री ने माता, पिता, सास, श्वशुर और अपना और अपने पति का कुल कष्ट से उद्धार किया १४ इसी प्रकार से हे युधिष्ठिर! यह कल्याणी द्रौपदी भी तुम सबको तारेगी १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसप्रकार से समझाने पर राजा युधिष्ठिर

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भाइयोंसहित शोक छोड़कर काम्यकवन में रहने लगा १६ जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक सावित्री के इस उत्तम आख्यान को सुनेगा वह सुख पावेगा और उसकी सब मनोकामनाएँ पूरी होंगी और दुःख उसके निकट न जायगा॥ १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणयष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥

दोसौ निन्नानबेवाँ अध्याय।

इन्द्र का कर्ण के कुण्डल और कवच भिक्षा में मांगने का विचार करना, सूर्य का उसको जानकर कर्ण को समझाना और कर्ण का कुण्डल देने का आग्रह करना।

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि हे ब्रह्मन्, महाराज! लोमशऋषि ने इन्द्र के पास से आकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर से जो यह कहा था कि इन्द्र ने कहला भेजा है कि तुझको जो बड़ा भारी भय है और जिसको तू किसी से नहीं कहता है उस भय को भी मैं अर्जुन के यहां से चले जाने पर दूर करूंगा। सो हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! कर्ण की ओर से वह क्या भय था, जिसको धर्मात्मा युधिष्ठिर ने किसी से नहीं कहा था १। २ वैशंपायनजी बोले कि हे राजाधिराज! उस कथा को सुनिये मैं वर्णन करता हूं। जब पाण्डवों को वन में बसते हुए, बारह वर्ष बीत गये और तेरहवाँ वर्ष लगा, तब इन्द्र ने पाण्डवों का हित करने के लिये कर्ण से भिक्षा मांगने का विचार किया ४। ५ हे महाराज! सूर्य देवता महेन्द्र के इस अभिप्राय को जान गये कि इन्द्र कर्ण के कवच और कुण्डल हरने को जाना चाहता है और उन्होंने पुत्रस्नेह से कर्ण के पास जाकर जो सत्यवादी और बड़ा ब्रह्मण्य था और रात्रि को बड़े मोल के बिछौनों पर सो रहा था, वेदपाठी ब्राह्मण के रूप से स्वप्न में प्रीतिपूर्वक कहा ६। ६ कि हे पुत्र! हे सत्यधारियों में श्रेष्ठ! हे महाबाहो, कर्ण! मैं प्रीति से तेरे हित के लिये कुछ कहना चाहता हूं, उसको तू सुन १० इन्द्र पाण्डवों के हित के लिये ब्राह्मण का रूप धरकर, तेरे पास कवच और कुण्डल हरने के लिये आवेगा ११ उसको तथा सब जगत् को तेरा यह नियम विदित है कि कोई ब्राह्मण अथवा सत्पुरुष तुझसे आकर जो कुछ धन आदि पदार्थ मांगता है, उसको तुम तत्काल वही दे देते हो, किसी को नाहीं नहीं करते हो, इससे इन्द्र भी ब्राह्मणरूप से आकर तुमसे कवच और कुण्डल मांगेगा १२। १४ सो तुम उसको अनेक बातों से समझा देना; परंतु दोनों कुण्डल मत देना, तुम्हारा कल्याण होगा १५ उससे हे तात! तुम अनेक कारण कहकर यह कहना कि स्त्री, रत्न, गौ और अन्य जो जो धन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हमारे पास है, सब ले लीजिये, परंतु कुण्डल न लीजिये। कुण्डलों के लिये जैसे बने उससे नाहीं ही कर देना, नहीं तो तेरी आयुक्षय हो जायगी और तू मृत्यु के वश में हो जायगा। ये कुण्डल कवच तेरी देह के साथ उत्पन्न हुए हैं और दोनों अमृत से उत्पन्न हैं। जब तक ये तेरे पास रहेंगे, तब तक तुझको कोई शत्रु युद्ध में मार नहीं सकता है, इससे जो तुझको अपना जीवन प्यारा है, तो हे कर्ण! इन कवच और कुण्डलों की रक्षा अच्छी तरह से करियो और किसी को न दीजियो १६। २० यह सुनकर कर्ण बोला कि हे भगवन्! आप ब्राह्मण का वेष बनाये हुए कौन हैं जो मुझको ऐसा हितोपदेश करते हैं २१ सूर्य बोले कि हे तात! मैं सहस्र किरणों का स्वामी सूर्य हूं, तुझको अपना दर्शन देता हूँ, तू मेरे उपदेश के अनुसार करियो। इसमें तेरा परम कल्याण होगा २२ कर्ण बोला कि जिसके उपदेशकर्त्ता और हित चाहनेवाले आप हैं, उसका कल्याण होने में क्या संदेह है; परंतु मेरी यह प्रार्थना है २३ कि जो आप मुझ पर स्नेह करते हैं, तो हे विभावसो! मुझको इस व्रत के करने से निषेध न कीजिये २४ संसार में मेरी यह कीर्ति हो रही है कि मैं ब्राह्मणों के लिये प्राण भी दे सकता हूँ २५ इससे हे सुरो-त्तम! जो स्वर्ग का राजा इन्द्र ब्राह्मणरूप से आकर मुझसे भिक्षा मांगेगा, तो मैं दोनों कुण्डल और कवच उसको दे दूंगा। ऐसा करने से संसार में मेरी कीर्ति सदैव बनी रहेगी २६। २७ मुझसे मनुष्य का अपयश के साथ जीना अच्छा नहीं है इससे यश पाकर मरना ही उत्तम है २८ इस कारण हे देव! जो इन्द्र मुझसे पाण्डवों के हित के लिये कवच और कुण्डल मांगने आवेगा, तो मैं उससे नाहीं नहीं करूंगा, क्योंकि ऐसा कर्म करने से मेरी कीर्ति और इन्द्र की अकीर्ति होगी २९। ३० हे भानुमन्! मैं कीर्ति को जीवन से भी अधिक समझता हूं, क्योंकि कीर्तिमान् पुरुष स्वर्गवासी होता है और नष्ट कीर्ति मनुष्य का नाश हो जाता है ३१ संसार में कीर्ति माता के समान मनुष्य को जीता रखती है और अकीर्तिमान् मनुष्य जीता हुआ भी मरे हुए के तुल्य है ३२ देखिये, ब्रह्माजी ने स्वयं यह श्लोक कहा है जिससे यह प्रतीत होता है कि कीर्ति ही मनुष्य की आयु है॥ ३३॥

दो० शुद्ध सुयश यहि लोक में, करत आयु अवदात।
होत परायण पुरुष को, परलोकहु में तात॥ ३४॥

इससे मैं इस शरीर के साथ उत्पन्न होनेवाले कुण्डलों को देकर सनातन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रहनेवाली कीर्ति पाऊंगा और इस प्रकार से ब्राह्मणों को दान देकर संग्राम में अपना कठिन कर्म दिखलाकर, शरीर होमकर और शत्रुओं को मारकर बड़ा सुयश प्राप्त करूंगा ३५। ३६ और रण के समय जीवित रखने की इच्छा रखनेवाले भयभीत बालक, वृद्ध और ब्राह्मणों को निर्भय करके इस लोक में यश और परलोक में स्वर्गवास पाऊंगा। मेरा यही व्रत है, मुझको अपने जीवन से कीर्ति का होना अधिक प्रिय है ३७। ३८ मैं कपटरूपी इन्द्र को यह उत्तम भिक्षा देकर लोक में परम गति पाऊंगा॥ ३९॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकोनशताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९९॥

तीनसौवाँ अध्याय।

सूर्य का कर्ण से अनेक बातें कहकर यह उपदेश करना कि तू इन्द्र को कवच-कुण्डल मत दीजियो।

कर्ण के उत्तर को सुनकर सूर्य देवता ने कहा कि तू अपना और अपने सुहृद्, माता, पिता और पुत्रों का अहित मत करे १ हे प्राणधारियों में श्रेष्ठ! यशकी प्राप्ति और स्वर्ग की अचल कीर्त्ति प्राणियों को देह को रक्षित रखने पर चाहना उचित है २ परंतु तू प्राणों से विरोध मानकर अपनी सनातनी कीर्ति चाहता है तो वह कीर्त्ति निस्संदेह तेरे प्राणों को लेकर जावेगी ३ हे पुरुषसत्तम! पिता, माता, पुत्र और भाई बान्धवों को जीते हुए पुत्रसे सुख मिलता है ४ हे महातेजस्विन्! राजा लोग भी पौरुष ही से अपना यश बढ़ाते हैं परंतु जीते हुए मनुष्य की ही कीर्त्ति होना उत्तम है ५ मरने पर भस्मीभूत प्राणी का कीर्त्ति से क्या प्रयोजन रहता है। मृतक मनुष्य कीर्त्ति को नहीं जानता है और जीता हुआ कीर्त्ति को भले प्रकार से भोगता है ६ मरे हुए का यश ऐसा है जैसे आयुहीन पुरुष की माला। तू मेरा भक्त है इससे मैंने तुझको यह हितोपदेश किया है ७ क्योंकि भक्तों का हित करना इस कारण से मुझे उचित है कि मेरा भक्त मुझको बड़ी प्रीति से ध्यान करता है और उससे मुझे भी प्रीति हो जाती है। इस कारण को जानकर हे महाभुज! तू मेरा कहना मान और उसको शङ्का छोड़ करके कर क्योंकि दैव का रचा हुआ कुछ और ही है तू उस देवगुह्य बात को जान नहीं सकता है। हां, समय के आने पर अपने आप जान जायगा ८।१० अब मैं तुझसे दुबारा कहता हूं कि हे राधेय! तू इन्द्र को कुण्डल मत दीजियो इन कुण्डलों से तेरी शोभा ऐसी हो रही है मानो विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा उदय हुआ है ११।१२ जीते हुए पुरुष ही की कीर्त्ति होना उत्तम है। इससे हे तात! तू इन्द्र

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को कुण्डल मांगने पर उत्तर ही दे दीजो १३ और हे निष्पाप! अनेक प्रकार के हेतु दिखाकर ऐसी बातें कहियो जिनसे देवराज कुण्डल न ले सके १४ हे कर्ण! मधुरवाणी से ऐसे ऐसे बनावट के वचन कहियो जिससे वह तुझसे कुण्डल न मांगे १५ क्योंकि हे नरोत्तम! तू अर्जुन से ईर्ष्या रखता है और उस शूरवीर से तेरा युद्ध अवश्य होगा १६ इसलिये जो तू कुण्डलोंसमेत बना रहेगा तो तुझे अर्जुन इन्द्र को भी अपना सहायक बनाकर लावे तो भी जीत नहीं सकता है १७ इससे जो तेरी इच्छा अर्जुन को जीतने की है तो तू इन्द्र को कुण्डल मत दीजियो ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥

तीनसौ एकवाँ अध्याय।

कर्ण का सूर्य से कहना कि मैं इन्द्र को भिक्षा मांगनेपर अपने प्राण भी दे सकता हूं, तब सूर्य का कहना कि इन्द्र को कवच-कुण्डल दो, तो उससे शक्ति ले लेना।

सूर्य के उक्त वचनों को सुनकर कर्ण ने कहा कि हे भगवन्! निःसंदेह मैं आपका भक्त हूं, हे गोपते! जैसा आप जानते हैं और मैं किसी पदार्थ को अदेय नहीं जानता हूं, हे भास्कर! आप मेरे इष्टदेव हैं आपके समान मुझको स्त्री, पुत्र, आत्मा और सुहृद् प्यारे नहीं हैं और आपने भी कृपा करके मेरे हित की बात यही समझकर कही है कि कर्ण के समान मेरा दूसरा भक्त नहीं है परंतु आप यह समझिये कि महात्मा लोग अपने इष्ट भक्तों की इष्ट प्रीति करते हैं। इससे मैं आपको शिर से बारम्बार नमस्कार करके याचना करता हूं और कहता हूं कि आप मेरे ऊपर क्षमा कीजिये १। ५ मुझको जितना डर झूठ का है उतना मृत्यु का भी नहीं है और सत्पुरुष ब्राह्मणों के निमित्त दान करने में मुझको अपने जीवित का भी विचार नहीं है और जो आपने अर्जुन के विषय में कहा सो आप अपने मानसी दुःख को दूर कीजिये मैं युद्ध में अर्जुन को जीतूंगा ६। ८ क्योंकि हे देव! आप मेरे अस्त्रविद्या के बल को भी जानते हैं जो अस्त्रविद्या मैंने महात्मा द्रोणाचार्य और जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी से पाई है ९ हे सुरोत्तम! मेरा यह व्रत है कि जो इन्द्र आकर मुझसे भिक्षा मांगेगा तो मैं उसको अपने प्राण भी देने में निषेध न करूंगा १० यह सुनकर सूर्य बोले कि हे कर्ण! इन कुण्डलों से तुझे कोई जीव मार नहीं सकता है इससे इन्द्र तुझे अर्जुन के हाथ से रण में मरवाने के लिये तेरे दोनों कुण्डल हरना चाहता है सो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यदि तुम उसको कुण्डल दो भी तो इस नियम से देना कि आप मुझको अमोघ शक्ति दीजिये और मैं आपको कुण्डल और कवच दे दूंगा। इस अमोघ शक्ति को प्रार्थना करके अवश्य ले लेना ऐसा करने से तुम उस इन्द्र की दी हुई शक्ति से शत्रुओं को मारोगे ११ । १६ वह शक्ति ऐसी है कि सहस्रों शत्रुओं को मारकर फिर हाथ में आ जाती है १७ वैशम्पायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! यह कहकर सूर्य देवता अकस्मात् अन्तर्द्धान होगये। दूसरे दिन कर्ण ने जप करने के पीछे स्वप्न का सब वृत्तान्त सूर्य देवता से कहा १८ । १६ सूर्य उसको सुनकर मुसकराकर बोले कि हां यह बात ऐसी ही है २० इसके पीछे कर्ण शक्ति लेने की इच्छा से इन्द्र की बाट देखने लगा ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥

तीनसौ दोवाँ अध्याय।

राजा कुन्तिभोज के पास एक ब्राह्मण का आना, राजा का पृथा को उसकी सेवा में नियुक्त करना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा कि महाराज! वह कौन सी गुप्त बात थी जो सूर्य ने कर्ण से नहीं कही और कर्ण के पास जो कुण्डल और कवच थे वे कैसे थे और कहां से आये थे कृपा करके इस सब वृत्तान्त को विस्तारसहित कहिये १ । २ वैशम्पायनजी बोले बहुत अच्छा, मैं कहता हूं सुनिये ३ अगले समय में एक समय राजा कुन्तिभोज के पास एक महातेजस्वी ब्राह्मण जो दाढ़ी, मूछ और जटा रखाये व दण्ड धारण किये हुए निर्दोष, अंग दर्शनीय, पिङ्गलवर्ण, मधुरभाषी, वेदपाठी और तपस्वी था आया और उस महातपस्वी ब्राह्मण ने राजा कुन्तिभोज से कहा कि हे परसन्तापरहित! मैं तेरे घर में कुछ काल भिक्षा भोजन पाकर इस नियम से रहना चाहता हूं कि तू या तेरे अनुगामी मेरा अप्रिय न करें ४ । ७ मैं जहां मेरी इच्छा होगी तहां जाऊंगा और जब चाहे तब आऊंगा, हे राजन्! शय्या पर अथवा आसन पर बैठते उठते मेरा कोई मनुष्य अपराध न करने पावे ८ यह सुनकर राजा कुन्तिभोजने कहा कि ऐसा ही किया जायगा, हे महाप्राज्ञ! मेरी पृथानाम कन्या जो बड़ी शीलव्रता, सावधान और साध्वी है वह विना अपमान किए हुए आपके पास रहेगी और आपकी सेवा करेगी। आप उसके शील और व्रत से प्रसन्न होंगे ६ । १० यह कहकर राजा ने उस वेदपाठी ब्राह्मण की विधिवत् पूजा की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और अपनी कमललोचनी पृथा नाम कन्या से कहा १२ कि हे पृथे! यह महाभाग ब्राह्मण मेरे घर में वास करना चाहता है, मैंने तेरे ऊपर विश्वास करके इससे वास करने की प्रतिज्ञा कर दी है। इससे तू इसको जो जो पदार्थ यह मांगे विना विचार किए दे दीजो और मेरी प्रतिज्ञा को सत्य कीजियो। ब्राह्मण परम तेज-रूप है और ब्राह्मण ही की सेवा परम तप है। सूर्य देवता भी आकाश में ब्राह्मणों के नमस्कारों से विराजमान हैं १३। १६ देख, मान-योग्य ब्राह्मणों का अपमान करने से वातापी और तालजंघ नामी असुर ब्रह्मदण्ड से मारे गये १७ इससे हे पुत्रि! तू इस परम तेजस्वी ऋषि के पास रहकर इसका आराधन कर १८ मैं तेरे चित्त की एकाग्रता को तेरे बालापन से जानता हूं। तू माता, पिता, ब्राह्मण, गुरु और नौकर, चाकर सब का यथायोग्य आदर सत्कार करती है। तेरे आचरण से तेरा कोई सेवक अथवा महल के भीतर और बाहर के मनुष्य अप्रसन्न नहीं हैं १६। २१ मैंने तुझको बाला और अपनी पुत्री समझकर क्रोधी ब्राह्मण की सेवा करने के योग्य समझा है २२ तू वृष्णिकुल में उत्पन्न शूर की प्यारी पुत्री है। जब तू बालक थी तब तेरे पिता ने तुझे मुझको प्रीतिपूर्वक दिया था २३ वसुदेव की तू बहिन है, मैं तुझको अपनी सब पुत्रियों से अधिक प्रिय जानता हूं। तेरे पिता शूर ने मुझ से यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे जो सन्तान पहिले पहिल होगी वह मैं तुमको दूंगा। इस कारण तू मेरी पुत्री है २४ तू ह्रद से ह्रद में आई है अर्थात् जैसे कुल में तू उत्पन्न हुई थी, वैसे ही कुल में बड़ी हुई है। खोटे कुल में उत्पन्न होनेवाली स्त्रियां हठ से बालकपन से ही दुष्टता करती हैं, परंतु तू राजा के कुल में उत्पन्न हुई है। रूप भी तेरा अद्भुत है और सब गुण भी तुझमें हैं २५। २७ सो जो तू इस वर दाता ब्राह्मण का आराधन दर्प, दम्भ और मान छोड़कर करेगी, तो तेरा कल्याण होगा नहीं, तो अपमान से कुपित होकर यह ब्राह्मण मेरे कुल को भस्म कर डालेगा ॥ २८। २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥

तीनसौ तीन का अध्याय।

पृथा का ब्राह्मण की सेवा अङ्गीकार कर, अपनी सेवा से ब्राह्मण को प्रसन्न करना।

उक्त वचनों को सुनकर पृथा बोली कि हे राजेन्द्र! मैं आपकी प्रतिज्ञा के नुसार नियमपूर्वक इस ब्राह्मण के पास रहकर इसकी सेवा करूंगी, यह मैं थ्या नहीं कहती हूं १ मेरा तो स्वभाव ही ब्राह्मणों की पूजा करने का

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

है, इस पर भी आपका प्रिय करना मेरा धर्म है। इससे मैं अपने परम कल्याण के लिए इसकी सेवा बड़ी सावधानी से करूंगी। सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि अथवा अर्द्धरात्रि जब यह आवेगा, तभी मैं इसकी सेवा में स्थित रहूंगी और इसे क्रोधित न होने दूंगी। हे राजेन्द्र! आपके उपदेश के अनुसार आपका हित करूंगी २। ४ आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये, मैं सत्य कहती हूं कि जबतक यह आपके यहां रहेगा तबतक मैं इसका अप्रिय न होने दूंगी ५ हे निष्पाप! आप अपने मन के संदेह को दूर कीजिये, मैं वही काम करूंगी जिसमें आपका हित और इस ब्राह्मण का प्रिय होगा ६ हे महीपते! ब्राह्मण पूजा पाने से तार सकता और अपमान से मार सकता है ७ मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूं। इससे मैं इसे अपनी सेवा से तृप्त करूंगी, मेरे कारण से आपको इस ब्राह्मण की ओर से कोई व्यथा न होने पावेगी ८ ब्राह्मणों का अपराध करने से ब्राह्मण राजाओं का अकल्याण करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, जैसे पहिले सुकन्या के कारण से च्यवनऋषि राजा का अपकार करने लगे थे ९ सो मैं आपके उपदेश के अनुसार बड़े यत्न से रहकर इस ब्राह्मण की सेवा करूंगी १० यह सुनकर राजा ने पृथा का बहुत प्यार करके फिर उपदेश किया ११ कि हे कल्याणि! तुझे शंकारहित होकर अपने, मेरे और कुल के हित के लिये ये बातें करना उचित हैं १२ यह कहकर महायशस्वी राजा कुन्तिभोज पृथा को उस ब्राह्मण के पास ले गया और उससे कहा कि महाराज! मेरी यह पुत्री आपकी सेवा करेगी, यह अभी बालक है इससे यदि कोई अपराध बन पड़े, तो आप उसको हृदय में न राखियेगा १३। १४ महाभाग ब्राह्मण लोग वृद्ध, बालक और तपस्वियों पर हमेशा अपराध करने पर भी क्रोध नहीं करते हैं १५ हे द्विजोत्तम! ब्राह्मणों को तो बड़ा अपराध भी क्षमा करके यथाशक्ति और उत्साह में दी हुई पूजा को ग्रहण करना उचित है १६ यह सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा ऐसा ही होगा। तब राजा ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को चन्द्रमा की किरणों के समान दीप्त स्थान में ठहरा दिया १७ और वहीं अग्निहोत्रशाला बनवा कर उसमें बहुत सुन्दर आसन बिछवा दिया और आहार आदि के लिये सब सामग्री वहीं रखवा दीं १८ इसके पीछे वह राजपुत्री पृथा बड़े यत्नसे आलस्य और मान को छोड़कर उस ब्राह्मण की सेवा करने लगी १९ और उसने उस पूजने योग्य ब्राह्मण को देवता के समान पूजकर तृप्त किया ॥ २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तीनसौ चार का अध्याय।

दुर्वासा का पृथा की सेवा से प्रसन्न होकर उसे देवताओं को बुलाने का मन्त्र देना।

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पृथा कठिन व्रत रखकर शुद्ध मन से उस संशितव्रत ब्राह्मण की सेवा करने लगी। हे राजेन्द्र! कभी वह ब्राह्मण प्रातः-काल आने का नियम करके चला जाता और फिर कभी रात्रि को और कभी सायंकाल को आता था, परंतु पृथा जिस समय वह आता था उसी समय सुन्दर भोजन और आसन और शय्या आदि देकर उसकी सदैव सेवा करती थी १। ३ इस प्रकार से वह सेवा में अपनी भक्ति दिन दिन बढ़ाती गई और यहांतक अपना शील स्वभाव कर लिया कि उस ब्राह्मण के धिक्कार देने अथवा अप्रिय बोलने या अपवाद करने पर भी कभी उसके मन के विपरीत काम नहीं करती थी ४। ५ कभी वह ब्राह्मण जिस समय पर आने को कह जाता उसी समय आ जाता था, कभी आता ही न था और कभी आकर यह कहता था कि मुझको ऐसा अन्न बनाकर भोजन करा जो दुर्लभ हो ६ परंतु पृथा बड़ी साव-धानी से उसी समय पर वैसा ही पदार्थ बनाकर उसके सामने शिष्य, बहिन और पुत्र की भांति परोस देती थी ७ हे राजेन्द्र! इस प्रकार से उस अनिन्दिता कन्या ने उस दुर्वासा ब्राह्मण को तृप्त किया और वह भी उसके शील, स्वभाव, व्रत और चित्त की एकाग्रता से प्रसन्न हुआ और उसने अपनी समाधि के बीतने पर पृथा का कल्याणकारी यत्न किया ८। ९ हे भरतसत्तम! कभी कभी राजा कुन्तिभोज प्रातःकाल अथवा सायंकाल को पृथा से पूछता कि हे पुत्रि! यह ब्राह्मण तेरी सेवा से प्रसन्न है या नहीं और जब वह यशस्विनी यह उत्तर देती कि हां बहुत प्रसन्न है, तब वह महामनस्वी बड़ा हर्षित होता था १०। ११ इसके पीछे जब इसी प्रकार से सेवा करते हुए एक वर्ष होगया और उसने कोई अपराध नहीं किया, तब उस जप करनेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मण ने पृथा से प्रसन्न होकर कहा कि हे भद्रे! मैं तेरी सेवा से बड़ा प्रसन्न हुआ। अब तू जो इच्छा हो, सो वरदान मुझसे मांग, मैं तुझको वह वरदान भी दूंगा जो इस लोक में मनुष्यों को मिलना कठिन है और जिस वरदान के कारण से तू सब सीमन्तिनी स्त्रियों में श्रेष्ठ गिनी जाय १२। १४ तब कुन्ती बोली कि आपका और मेरे पिता का मुझ पर प्रसन्न होना ही मेरे लिये सब कुछ है, सब वरदान इसी में मुझको मिल गये १५ यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि जो तू मुझसे कोई वरदान नहीं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तीनसौ छठवाँ अध्याय।

सूर्य का कुन्ती को कुण्डल या कवच सहित बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होने और पुत्र के होने के पीछे फिर कन्या हो जाने का वरदान देकर कुन्ती के साथ संगम करना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे उस मनस्विनी कुन्ती ने बहुत से मधुर वचन कहे, परन्तु वह सूर्य को समझा न सकी। हे राजन्! जब बाला कुन्ती सूर्यजी को निरादर करने के लिये न समर्थ हुई, तब शाप के भय से बहुत देर तक कुछ उत्तर न देकर ध्यान-सा करती रही और विचारने लगी कि अब क्या ऐसा उपाय किया जाय जिससे सूर्य मेरे कारण से अनपराधी मेरे पिता और ब्राह्मण को शाप न दें, जिन्होंने पाप को विनष्ट कर दिया है। उन सूर्यादि और दुर्वासा आदिकों को बड़े मोह से बाल्यावस्थावाले साधु को विनाश नहीं कराना चाहिये। सो मैं आज बहुत डरी हुई हाथ में दृढ़ता से पकड़कर अपना प्रदानरूपी अशुभ कार्य अपने आप कैसे कर लूं १। ५ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कुन्ती सूर्य और बान्धवों के शाप से भयभीत, मोहित और चिंतायुक्त होकर लज्जा से विह्वल हो गई और मन्द मन्द मुसकराती हुई सूर्य से बोली ६। ७ कि हे देव, महाराज! मेरे माता और पिता तथा भाई बन्धु सब सजीव हैं, उनके जीते हुए होने से मैं विधि का लोप कैसे करूं ८ ऐसा करने में मेरे कारण से इस कुल की कीर्ति संसार में नष्ट हो जायगी ९ इससे मैं बान्धवों की ओर से विवाह किये हुए विना दूसरे प्रकार से आपके साथ संगम क्योंकर करूं और जो आप इसको धर्म समझते हैं, तो मुझको ऐसा वरदान दीजिये कि मैं आपको अपना प्रदान करने के पीछे फिर ज्यों की त्यों सती हो जाऊं, आप सब देहधारियों के आयु, कीर्ति, यश और धर्म के देनेवाले और साक्षी हैं १०। ११ सूर्य बोले हे सुन्दरि! तेरे पिता, माता और गुरु तेरे स्वामी नहीं हो सकते हैं। किन्तु तू स्वतन्त्र है, क्योंकि कन्या अपनी सब कामनाओं को, कमधातु से सम्बन्ध रखने के कारण करती है १२। १३ इससे हे भाविनि! मेरे साथ संगम करने में कोई अधर्म नहीं है और मैं भी लोक का भला करनेवाला होकर काम के वश से अधर्म क्योंकर कर सकता हूँ १४ हे सुन्दरि! ऐसा कहा है कि संसार में सब स्त्रियां और पुरुष अनावृत हैं अर्थात् किसी की रोक किसी के साथ नहीं है, क्योंकि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यह संसार का स्वभाव है और विवाह व नियम आदि दूसरी बातें करना सब विकाररूप हैं १५ तू मेरे साथ संगम करने के पीछे फिर कन्या की कन्या ही हो जायगी और तेरे महाबाहु और बड़ा यशस्वी पुत्र होगा १६ तब कुन्ती ने कहा कि हे अन्धकारविनाशिन्! बहुत अच्छा, परंतु आपसे जो पुत्र मेरे उत्पन्न हो, वह महाबाहु, शूरवीर और कुण्डल तथा कवचधारी हो १७ सूर्य बोले, हे भद्रे! तेरा पुत्र महाभुजशाली, कुण्डली तथा दिव्य वर्मधारी ऐसा ही होगा और उसके कुण्डल तथा कवच ये दोनों अभेद्य और अमृतमय अर्थात् शरीर के साथ उत्पन्न होंगे १८ कुन्ती बोली कि जो आपसे उत्पन्न मेरे पुत्र के कवच और कुण्डल अमृतमय होयँ, तो आप मेरे साथ संगम कीजिये, परंतु वह पुत्र आपके तुल्य पराक्रमी, रूपवान्, बुद्धिमान्, बलवान्, तेजस्वी और धर्मात्मा होवे १९।२० सूर्य बोले कि हे वरारोहे! मेरी अदिति माता ने मुझे दो कुण्डल दिये थे, मैं उन दोनों कुण्डलों को और इस कवच को तेरे पुत्र को दूँगा २१ कुन्ती बोली कि हे गोपते! यह बात बहुत श्रेष्ठ है, मैं आपके साथ संगम, ऐसा ही पुत्र जैसा आप कहते हैं, उत्पन्न होने के नियम से करूँगी २२ वैशंपायनजी बोले यह सुनकर राहुविरोधी योगात्मा सूर्य ने (तथास्तु) कहकर कुन्ती के साथ संगम किया और वह कन्या देवी सूर्य के तेज से विह्वल और अचेत होकर शय्या पर गिर पड़ी २३। २४ तब सूर्य ने कुन्ती से कहा कि हे सुश्रोणि! अब मैं जाता हूँ, तेरे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा और उसके उत्पन्न होने के पीछे फिर तू कन्या ही हो जायगी २५ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! यह सुनकर कुन्ती ने लज्जित होकर सूर्य से कहा कि ऐसा ही होय २६ तदनन्तर सूर्य के समझाने पर कुन्ती टूटी हुई लता की भांति उस श्रेष्ठ शय्या पर गिर पड़ी। इस प्रकार से सूर्य ने तेज से उसे मोहित करके योग से उसके गर्भ में वास किया अर्थात् मनुष्यों के सदृश मैथुन नहीं किया और उसको दूषण नहीं लगाया। इसके पीछे सूर्य के चले जाने पर कुन्ती सचेत हो गई॥२७।२८॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि षडधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३०६॥

तीनसौ सातवाँ अध्याय।

कुन्ती के पुत्र उत्पन्न होना और कुन्ती का उसको एक मञ्जूषा में रखकर बड़ा विलाप करके अश्वनदी में बहा देना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे माघशुक्ला प्रतिपदा को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुन्ती के चन्द्रमा के सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ १ वह सुश्रोणी बाला कुन्ती उस गर्भ को बान्धवों के भय से छिपाये हुए धारण किये रही और उसका हाल किसी मनुष्य ने नहीं जाना और सिवाय कन्यापुर में प्राप्त, रक्षा करने में चतुर धात्री के, किसी स्त्री को भी उसका वृत्तान्त विदित नहीं हुआ २। ३ जब गर्भ का समय पूरा हो गया, तब उसी देवता की प्रसन्नता से उसके देवतुल्य पुत्र कुण्डल कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ। आंखें उसकी सिंह की सी और कन्धे वृषभ के समान थे और वह अपने पिता के समान स्वरूपवान् था ४। ५ कुन्ती उसको देखकर रोने लगी और धात्री से सलाह करके उसने उस बालक को एक मञ्जूषा में, जो चारों ओर से मोम से लिपी हुई और सचिक्कण थी और ढकना रखती थी, बिछौना बिछवाकर बैठा दिया और ढकने से बन्द करके उसे अश्वनामी नदी में छोड़ दिया ६। ७ छोड़ते समय कुन्ती ने पुत्रस्नेह से विलाप किया और यह कहा कि हे पुत्र! जलचर, भूचर, खेचर और स्वर्ग-वासी सब तेरा कल्याण करें ८। १० मार्ग में तू कल्याणपूर्वक जाय, तेरे शत्रु न होयँ और मार्ग में कोई शत्रु मिले भी, तो वह तेरे साथ द्रोह न करे ११ जल का ईश्वर वरुण, तेरी रक्षा जल में करे। वायु देवता, जो कि सर्वगामी होकर आकाशस्थायी बना रहता है, आकाश में तेरी रक्षा करे १२ और तपनेवालों में श्रेष्ठ तेरा पिता सूर्य सब स्थानों में तेरी रक्षा करे, जिसने दिव्य विधि से तुझे मुझको दिया है १३ और बारहों सूर्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, साध्यगण, विश्वेदेवा, महाइन्द्र, मरुद्गण, दिशाओं के ईश्वर और सब देवता तेरी रक्षा सम और विषम स्थानों में करें। मैं कवच के कारण तू जहां रहेगा वहीं तुझको पहिचान लूंगी १४। १५ हे पुत्र! तेरा तेजस्वी पिता सूर्य धन्य है, जो तुझको नदी में पड़ा हुआ अपनी आंखों से देख रहा है १६ और वह स्त्री धन्य होगी जो तुझको दूध पिलावेगी और तुझको अपना पुत्र कल्पना करेगी १७ आज उस स्त्री ने कौन सा स्वप्न देखा होगा, जो तुझसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी, दिव्य कुण्डल कवच धारण करनेवाले और कमललोचन, सुन्दर ललाट और मनोहर केशान्त रखनेवाले बालक को पुत्र बनावेगी १८। १९ वे स्त्रियां धन्य होंगी, जो तुझको घोटुओं से चलते हुए और धूलि में भरे हुए अङ्ग से तोतली बातें करते हुए देखेंगी २० और वे भी धन्य होंगी जो केशरी-सिंह के तुल्य तेरे युवास्वरूप को देखेंगी २१ इस प्रकार से कुन्ती ने बहुत

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

विलाप करके मञ्जूषा को अश्वनदी के जल में छोड़ दिया २२ और अर्द्ध-रात्रि को यह काम करके पुत्र-शोक से रोती हुई पिता के ज्ञात हो जाने के भय से शीघ्र राजभवन में चली आई २३। २४ वह मञ्जूषा बहती हुई अश्वनदी से चर्मण्वती नदी में पहुँची, चर्मण्वती से यमुना में गई और यमुना से गङ्गा में पहुँची। गङ्गा में बहती बहती तरङ्गों से चम्पापुरी के किनारे जा निकली जहाँ सूत रहता था २५। २६ मार्ग में उस देवता से उत्पन्न बालक की रक्षा उस कुण्डल समेत दिव्य कवच ने की जो अमृत से उत्पन्न हुआ था ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥

तीनसौ आठवाँ अध्याय।

धृतराष्ट्र के सूत अधिरथ का स्त्री-सहित गङ्गा-स्नान को जाना, वहां उनको वह मञ्जूषा मिलनी, उसमें से कर्ण को निकालकर पुत्र-भाव से पालना और कर्ण का बड़ा होकर अस्त्र-विद्या सीखना और महादानी होना।

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसी समय पर धृतराष्ट्र का सखा सूत अधिरथ अपनी स्त्रीसहित गङ्गास्नान को गया था १ उसकी स्त्री का नाम राधा था। वह ऐसी स्वरूपवती थी कि अपने समान दूसरी स्त्री न रखती थी। उसके कोई पुत्र नहीं था २ उसने सन्तान होने के लिये अनेक यत्न किये थे। दैव इच्छा से जिस समय वे गंगास्नान करने को गये, उसी समय वह मञ्जूषा बहती हुई, गंगा की तरङ्गों से उसके पास आ निकली। उसने उसे पकड़ कर जल से बाहर निकाला और अपने पति अधिरथ के समीप ले गई ३। ५ जब वह मञ्जूषा अर्थात् पिटारीदार संदूक खोला गया, तब उसमें उन्होंने वह सूर्यतुल्य अति सुन्दर बालक कवच और कुण्डल धारण किये हुए देखा ६। ७ अधिरथ ने आश्चर्य करके बड़ी प्रसन्नता से उस बालक को गोद में उठा लिया और अपनी स्त्री से कहा ८ कि हे भामिनि ! मैं जब से उत्पन्न हुआ हूँ, तब से मैंने ऐसा अद्भुत बालक आज ही देखा है, मेरी समझ में यह कोई देवकुमार है ९ देवताओं ने मुझ अपुत्र को यह पुत्र दिया है। यह कहकर उस सूत ने वह पुत्र राधा को दे दिया १० राधा ने उस अत्यन्त सुन्दर देवकुमार को विधिपूर्वक गोद में ले लिया ११ और उसको पालकर बड़ा किया। उसके पीछे उस सूत के और भी औरस पुत्र उत्पन्न हुए १२ ब्राह्मणों ने उस सुनहरी कवच और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुण्डल धारण करनेवाले बालक का नाम वसुषेण रक्खा १३ इस प्रकार से वह अमितपराक्रमी कर्ण सूत-पुत्र कहलाया और वसुषेण तथा वृषनाम से प्रसिद्ध हुआ १४ उस सूत के जो अङ्गनामी देश थे, उनमें वह बड़ा हुआ और पृथा को भी उसका हाल दूत के द्वारा विदित हो गया १५ जब वह बड़ा हो गया, तब अधिरथ ने उसे हस्तिनापुर में भेज दिया १६ और वहां वह बाण और अस्त्र-विद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य के पास रहने लगा और वहीं उसकी मित्रता दुर्योधन से हो गई १७ उसने धनुर्विद्या आदि चारों विद्याएँ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और परशुरामजी से सीखीं और अस्त्र-विद्या को पाकर संसार में बड़ा धनुर्धारी विख्यात हो गया १८ और दुर्योधन से मिलाप रखने के कारण पाण्डवों का सदा अप्रिय चेता करता था और अर्जुन से युद्ध करना सदैव चाहता था १९ वह वीर अर्जुन से सदैव ईर्ष्या रखता था और अर्जुन उससे ईर्ष्या रखता था २० सो हे जनमेजय! सूर्य की गुप्त बात यही थी, जिसके कारण, कर्ण कुन्ती से उत्पन्न होकर सूत-कुल में गिना गया २१ और युधिष्ठिर को यही गुप्त दुःख था कि कर्ण कवच और कुण्डल धारण करने के कारण अवध्य है २२ हे राजेन्द्र! वह कर्ण जब मध्याह्न के समय जल में खड़ा होकर हाथ जोड़े हुए सूर्य की स्तुति करता था, उस समय ब्राह्मण लोग उसके पास धन मांगने को आजाते थे, और जो कुछ वे मांगते थे सोई कर्ण उनको दे देता था २३। २४ इन्द्र भी ब्राह्मण का रूप धारण करके उसके पास गया और उससे कहा कि मुझको भीख दे। उसे देखकर राधा-नन्दन कर्ण ने कहा कि आप बहुत अच्छे आये ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्यष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥

तीनसौ नवाँ अध्याय।

कर्ण का इन्द्र को कुण्डल-कवच दे अमोघशक्ति लेना और पाण्डवों का द्वैतवन को जाना।

वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! कर्ण ने कपटवेषधारी विप्ररूप से आये हुए इन्द्र को देखकर उक्त प्रकार से कहा कि आप का आना बहुत अच्छा हुआ, परन्तु उसके मन के भावको न जानकर उससेकहा कि कहिये आपको क्या दूं। आप सोने की माला पहिरे हुए बहुत सी स्त्रियां चाहते हैं, या ऐसे ग्राम चाहते हैं, जिनमें बहुत सी गायें रहती हों १। २ यह सुनकर वह आप स्वर्ग को इन्द्र बोला कि मुझको इन दोनों में से कुछ नहीं चाहिये।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इनको जो कोई चाहता हो उसे दीजिये ३ हे निष्पाप! मैं तो तुम्हारे शरीर के साथ उत्पन्न होनेवाले कवच और कुण्डलों को चाहता हूं। जो तुम सत्यव्रत हो, तो इनको अपने शरीर से उखाड़कर दे डालो ४ हे परंतप! यही शीघ्रता से तुम्हारा दिया हुआ दान मैं चाहता हूं, इसी को संसार में सब लाभों से श्रेष्ठ लाभ जानता हूं ५ कर्ण बोला कि हे विप्र! गृह, भूमि, स्त्री, क्षेत्र और जो कुछ चाहिये सो आप ले लीजिये, परंतु ये कवच कुण्डल मैं नहीं दे सकता हूं ६ वैशंपायनजी बोले, हे भरतसत्तम, जनमेजय! कर्ण ने उस ब्राह्मण से बहुत सी बातें कहीं और उत्तमप्रकार से उसकी स्तुति करके अनेक प्रार्थनाएँ कीं, परन्तु उस ब्राह्मण ने कवच और कुण्डल के सिवाय दूसरी वस्तु लेना स्वीकार नहीं किया। तब कर्ण ने हँसकर उससे कहा कि ७। ८ हे ब्राह्मण! ये, मेरे कवच और कुण्डल अमृतमय हैं और मेरे शरीर के साथ उत्पन्न हुए हैं। जब तक ये मेरे शरीर में हैं, तब तक मुझको कोई मार नहीं सकता है इससे मैं इनको नहीं दे सकता हूं १० हे विप्रवर्य! इसके बदले में आप मुझसे पृथ्वी लीजिये और निष्कण्टक राज्य करिये ११ जो इनको मैं आपको दे दूंगा, तो मैं युद्ध में शत्रुओं का वध्य हो जाऊंगा १२ वैशंपायनजी बोले कि हे जनमेजय! इस पर भी जब इन्द्र ने दूसरा पदार्थ लेना अङ्गीकार न किया, तब कर्ण ने हँसकर फिर कहा १३ कि हे देवदेवेश! आपके आने का हाल मुझको पहिले से विदित है कि आप इन्द्र हैं और देवताओं के ईश्वर तथा जीवों के धारणकरनेवाले हैं। आपसे मुझे वर मिलना उचित है और मुझे आपको विना नियम के वर देना योग्य नहीं है, क्योंकि जो मैं आपको कुण्डल और कवच दे दूंगा, तो मैं वध्य हो जाऊंगा और आपकी हँसी होगी १४। १६ इससे आप नियम के साथ मुझसे कवच और कुण्डल ले लीजिये, विना नियम के मैं आपको नहीं दे सकता हूं १७ यह सुनकर इन्द्र बोला कि मेरे आने का हाल सूर्य को विदित था, उसी ने तुझसे कहा होगा १८ अच्छा, अब जो तेरी इच्छा हो, सो तू कवच और कुण्डलों के बदले में मुझसे मांग ले, मैं वज्र के सिवाय जो तू मांगेगा सोई दूंगा १९ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! यह सुनकर हर्षित होते हुए कर्ण ने इन्द्र से कहा कि कवच और कुण्डलों के बदले में आप मुझको अपनी अमोघशक्ति दे दीजिये, जो सेना में शत्रुओं के समूहों को मारनेवाली है २०। २१ यह सुनकर इन्द्र ने एक आप [illegible]

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करके यह कहा २२ कि हे कर्ण! तू मुझको अपने शरीर के साथ उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलों को दे दे और मुझसे वह शक्ति ले ले, परंतु वह मेरे हाथ से छोड़ी हुई सैकड़ों शत्रुओं को मारकर फिर मेरे ही हाथ में आ जाती है, और तेरे हाथ से छोड़े जाने पर वह एक गर्जते हुए महापराक्रमी तेरे शत्रु को मारकर फिर तेरे पास न जायगी, मेरे पास ही चली आवेगी २३। २५ कर्ण ने कहा कि मैं युद्ध में एक ही शत्रु को जिससे मुझे भय होगा, मारना चाहता हूं २६ इन्द्र ने कहा कि निःसंदेह तू इस शक्ति से बड़े बली एक शत्रु को मार सकेगा। परंतु जिसको तू मारना चाहताहै, वहउन महात्मा श्रीकृष्णजी से रक्षित है, जिनको वेद के ज्ञाता, अचिन्त्य, अपराजित, वाराह और नारायण कहते हैं २७। २८ कर्णने कहा कि बहुत अच्छा, वह शक्ति एक ही शत्रु को मारकर मेरे पास न रहे, परंतु मुझको अमोघशक्ति दीजिए। जिससे कैसा ही प्रतापी शत्रुहो, बच न सके २९ और दूसरा यह वरदान भी दीजिये कि अङ्गों को काटकर कवच और कुण्डल देने से मेरा शरीर कुरूप न हो जाय ३० इन्द्र बोला कि हे कर्ण! जो तू झूठ बोलना नहीं चाहताहै, तो तेरा स्वरूप किसी अवस्था में कुरूप न होगा और न शरीर में व्रण होंगे किन्तु तुम्हारा शरीर तुम्हारे पिता के समान फिर सुन्दर और तेजयुक्त हो जायगा ३१। ३२ एक बात और भी कहता हूं कि जो तू इस शक्ति को अपने पास शस्त्रों के होते हुए विना संशय पाये छोड़ेगा, तो यह तेरे ही ऊपर गिरेगी ३३ कर्ण बोला कि हे शक्र! मैं आपके कहने के अनुसार ही करूंगा और उस समय इसको छोडूंगा जब मुझको परम संशय होगा ३४ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कर्ण ने वह प्रज्वलित शक्ति इन्द्र से ले ली और पैना शस्त्र लेकर अपने अङ्ग से कवच और कुण्डल काटना प्रारम्भ किया! काटते समय मन में कुछ भी विकार न लाया, सब देवता, मनुष्य और दानव उसको शरीर काटते हुए देखकर सिंहनाद करने लगे ३५। ३६ और उसको अङ्ग कटने पर भी मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखकर देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और फूलों की वर्षा की ३७ तदनन्तर कर्णने कुण्डल और कवच शरीर से काटकर गीले ही इन्द्र को दे दिये और उसी समय से उसका नाम कर्ण हो गया ३८ इस प्रकार से इन्द्र ने हँस हँसकर कर्ण को ठगा और पाण्डवों का कार्य सिद्ध करके [illegible] चला गया ३९ धृतराष्ट्र के पुत्र उस वृत्तान्त को सुनकर बड़े

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दुःखी और गर्वहीन हुए और पाण्डवों को बड़ा हर्ष हुआ ४० यह सुनकर जनमेजय बोला कि हे वैशंपायनजी ! पाण्डव उस समय पर कहां थे, जो उन्होंने यह वृत्तान्त सुना और उन्होंने बारहवाँ वर्ष बीतने पर क्या किया ४१ वैशम्पायनजी बोले कि पाण्डव मार्कण्डेयजी से देवऋषियों के चरित्र की अनेक कथाएँ सुनकर द्रौपदी को लाने और जयद्रथ को भगाने के पीछे सब समाज और साथियों-सहित काम्यकवन से चलकर द्वैतवन में जा बसे थे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥

तीनसौ दशवाँ अध्याय।

मृग के सींग में अरणी काष्ठ का उलझकर चला जाना और पाण्डवों का उस मृग के मारने को जाना।

उक्त कथा को सुनकर जनमेजय बोले कि हे वैशंपायनजी ! पाण्डवों ने स्त्री के हरे जाने के क्लेश को पाकर फिर क्या किया १ वैशंपायनजी बोले कि पाण्डव भार्याहरण के क्लेश को पाकर काम्यकवन से उस द्वैतवन को चले आये जिसमें चित्रविचित्र वृक्ष और बड़े स्वादिष्ठ फल थे। उसी द्वैतवन में भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव समेत कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर; ये सब पाण्डव व्रत रखकर फलाहारी तथा मितभोजी होकर अपनी भार्या कृष्णा-सहित रहने लगे २। ४ और वहां बसते हुए उन धर्मात्मा और परम तपस्वियों ने ब्राह्मणों के लिये पराक्रम का काम करने में बड़ा भारी क्लेश पाया जो आगे उनको सुखदायी हुआ ५। ६ उस क्लेश पाने का वृत्तान्त इस प्रकार से है कि वहां के तपस्वी ब्राह्मणों का अरणी-काष्ठ का दण्ड एक वृक्षपर टँगा हुआ था। एक दिन एक मृग उस वृक्ष से अपने सींगों को घिसने लगा, घिसने में वह दण्ड उस मृग के सींगों में उलझ गया और वह मृग उसको लिये हुए छलांग मारकर दूर चला गया ७। ६ यह देखकर वह ब्राह्मण अग्निहोत्र करने की इच्छा से शीघ्र दौड़कर युधिष्ठिर के पास आया, जो भाइयों सहित बैठे हुए थे और उनसे बोला १०। ११ कि हे महाराज ! हमारा अरणी-काष्ठ का दण्ड वृक्ष पर टँगा हुआ था। एक मृग उस वृक्ष से अपना शिर रगड़ने लगा। रगड़ते में वह दण्ड उस मृग के सींग में उलझ गया और वह मृग उसको लिये हुए छलांग मारता हुआ दूर निकल गया १२। १३ सो हे राजन् ! आप उसका [illegible]ज लगाकर हमारा वह दण्ड ला दीजिए जिससे अग्निहोत्र का [illegible]ोप न हो [illegible]४

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यह सुनकर युधिष्ठिर दुःखी होकर भाइयों सहित धनुष् चढ़ाकर व कवच पहन-कर शीघ्र चल दिया १५। १६ और पांचों भाई ब्राह्मण का काम करने के लिये कर्णि, नालीक और नाराच नामी बाणों को छोड़ते हुए उस मृग के पीछे दौड़े १७ और आश्रम के आस-पास उसे ढूंढ़ने लगे, परंतु उस मृग का पता नहीं मिला १८ तब वे थककर और दुःखी होकर इस गहन वन में भूखे-प्यासे एक शीतल छायावाले वृक्ष के नीचे बैठ गये। उस समय नकुल ने क्रोधित होकर युधिष्ठिर से कहा १९। २० कि हे राजन्! इस वंश में न तो कभी धर्म का लोप हुआ, न आलस्य से धर्म और अर्थ का नाश हुआ, और जब कभी किसी प्राणी का कैसा ही काम हुआ, तब कामवाले को उत्तर भी कभी नहीं दिया गया अर्थात् उसका काम कर ही दिया, फिर क्या कारण है कि हमको आज संशय प्राप्त हुआ है॥ २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वणि दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३१०॥

तीनसौ ग्यारहवाँ अध्याय।

पाण्डवों का भूख-प्यास के मारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाना, वहां से चारों छोटे भाइयों का बारी बारी से पानी लेने जाना व उनका पानी पीकर मर जाना, फिर युधिष्ठिर का वहां जाना।

युधिष्ठिर बोले कि भाई! आपत्तिकाल में न मर्यादा रहती है, न निमित्त-फल मिलता है, धर्म ही पाप और पुण्य-कर्मों के फल को यथायोग्य देता है १ भीमसेन बोला कि हमारे संशय पाने का कारण यह है कि प्रतिकामी सभा में द्रौपदी को दासी की भांति खींचकर लाया और वह मेरे हाथ से मारा नहीं गया २ अर्जुन बोला कि कर्ण ने हमसे हाड़ों को भेदन करनेवाले तीक्ष्ण वचन कहे थे और हमने उन वचनों को सहा, इस कारण से हमको संशय प्राप्त हुआ है ३ सहदेव बोला कि जिस समय शकुनि ने आपको जूए में अधर्म से जीता था, उस समय मैंने उसको मार नहीं डाला, इस कारण से हमने यह संशय पाया है ४ वैशंपायनजी बोले, हे राजा, जनमेजय! इसके पीछे युधि-ष्ठिर ने नकुल से कहा कि तुम वृक्ष पर चढ़कर चारों ओर को देखो कि कहीं आस-पास जल ऐसे स्थान पर है, जहां वृक्ष भी हो। तुम्हारे ये सब भाई प्यासे हैं ५। ६ यह सुनकर नकुल 'तथास्तु' कहकर वृक्ष पर चढ़ गया और चारों ओरकारो देखकर जेठे भाई से बोला ७ कि महाराज! उस स्थान पर बहुत से वृक्ष हुए हैं, पक्षियों का शब्द वहां हो रहाहै, मैं जानता हूँ कि वहां निःसं-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

देह जल होगा ८ यह सुनकर सत्य धारणावाले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरजी बोले
कि अच्छा, वहां चले जाओ और तर्कसों में जल भरकर ले आओ। यह सुनकर
नकुल शीघ्र चल दिया और वहां जा पहुंचा ९। १० और वहां सारसों से
युक्त निर्मल जलको देखकर उसने पीने की इच्छा की कि इतने में एक यक्ष
से कही हुई यह आकाशवाणी हुई ११ कि हे तात! साहस मत करे, पहिले
मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, फिर जलपान कीजियो और ले जाइयो १२ नकुल ने
प्यास के मारे उस आकाशवाणी को न माना और जल पीलिया, पीते ही वह
अचेत होकर गिर पड़ा १३ जब बहुत देर होगई और वह न आया, तब कुन्ती-
पुत्र युधिष्ठिर ने वीर भाई शत्रुहन्ता सहदेव से कहा, भाई तू जाकर नकुल को
लिवा ला और पानी भी लेता आ, उसको गये बहुत देर हो गई १४। १५ यह
सुनकर सहदेव उसी ओर गया और उस जल के किनारे अपने भाई नकुल को
निर्जीव पड़ा हुआ देखकर व्याकुल होगया, परंतु उसको भी ऐसी प्यास लग
रही थी कि यह भी जल पीने को जल की ओर दौड़ा, और ज्योंही उसने जल
पीना चाहा, त्योंही यक्ष ने फिर कहा कि हे तात! साहस मतकरे, मेरे जब प्रश्नों
का उत्तर दे दे, तब इच्छानुसार जल-पान कर जल को लेजा १६। १८ सहदेव
ने भी उस बात को न सुना और प्यास के मारे जल पी लिया, जल पीते ही
वह भी मृतक के समान होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा १९ जब सहदेव भी देर तक
न लौटा, तब युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि हे बीभत्सो, शत्रुमर्दन! तेरे
दोनों छोटे भाइयों को गये हुए देर हुई तू जाकर उन दोनों को लिवा ला, और
जल भी लेता आ, हे तात! तू हम दुःखियों का उपाश्रय है २०। २१ यह
सुनकर श्वेतवाहन अर्जुन धनुष बाण और खड्ग लेकर उस सरोवर पर गया
और वहां दोनों भाइयों को सोते हुए के समान पृथ्वी पर मरे हुए पड़े देख-
कर उसने धनुष हाथ में ले लिया और वन में चारों ओर देखने लगा, परंतु
उसको कोई प्राणी देख न पड़ा, तब वह सव्यसाची प्यास के कारण से जल
की ओर दौड़ा २२। २५ उस समय फिर आकाशवाणी हुई कि क्यों जल की
ओर वृथा दौड़ता है, तू इस जल को बल से नहीं पी सकताहै। हां, जो तू मेरे
प्रश्नोंका उत्तर दे देगा, तो निश्चय जल पीवेगा और ले भी जायगा २६। २७
यह सुनकर अर्जुन बोला कि प्रकट होकर हमको जल पीने से निषेध कर।
जब बाणों से तेरा शरीर खण्ड खण्ड कर दिया जायगा तब तू इस प्रकार
[illegible]
[illegible]धन [illegible]

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से न बोल सकेगा २८ यह कहकर अर्जुन ने शब्दवेधी अस्त्रानुमन्त्रित बाणों की वर्षा चारों दिशाओं में की २९ यद्यपि प्यास से बड़ा दुःखी था परंतु उसने नालीक, नाराच और कर्णिनामी अमोघ बाणों से आकाश को छा दिया ३० उस समय यक्ष ने कहा कि हे अर्जुन! इस यत्न से तुझको कुछ लाभ न होगा, जो जल पीना है, तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, नहीं तो विना उत्तर दिये जो तू पानी पियेगा, तो पीतेही मर जायगा ३१ अर्जुन ने इस बात का कुछ ध्यान न किया और सरोवर पर जाकर जल-पान किया, उसके पीते ही वह भी मृतक होकर गिर पड़ा ३२ इसके पीछे युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि भाई नकुल, सहदेव और अर्जुन को गये हुए बड़ी देर हुई, तुम जाकर उनको लिवा लाओ और जल भी ले आओ। यह सुनकर भीमसेन भी वहीं जा पहुँचा, जहां वे तीनों पुरुषोत्तम मरे हुए पड़े थे। उनको देखकर भीमसेन महादुःखी हुआ और चिन्ता करने लगा कि यह कर्म यक्ष, राक्षसों का है, मुझको भी उनसे युद्ध करना पड़ेगा। इससे पहिले जल पीलूँ, फिर देखा जायगा। यह विचार कर वह प्यास का मारा जल की ओर दौड़ा ३३। ३८ उस समय उस यक्ष ने फिर कहा कि हे तात! देख साहस मत करे, मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पी, और यथेच्छ ले जा ३९ उसको सुनकर भीमसेन ने कुछ उत्तर न दिया और वह भी जल पीकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ४० जब भीमसेन भी देर तक न लौटा, तब कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर बड़ी चिन्ता करता हुआ, म्लान-चित्त होकर उस वन में घुसा, जो मनुष्यों से रहित और मृग वाराह आदि वनजीवों से सेवित भ्रमर आदि पक्षियों से शब्दित और नाना प्रकार के वृक्ष और चित्र विचित्र लताओं से सुशोभित था। वहां जाकर उसने उस मनोहर सरोवर को देखा, जो ऐसा था। मानो विश्वकर्मा ने आपही उसको बनाया है ४१। ४४ और कमलनियों के जाल और सिन्धुवार, सुवेतस, केतक, करवीर और पीपल आदि वृक्षों से युक्त था। युधिष्ठिर श्रम से पीड़ित होकर उस सरोवर के किनारे पर गया और उसको देखकर चकित होगया॥ ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते वनपर्वण्येकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥ ३११॥

तीनसौ बारहवाँ अध्याय।

युधिष्ठिर का विलाप करना और यक्ष से उसका प्रश्नोत्तर होना और पाण्डवों का सजीव होना।

वैशंपायनजी सुनाते कि हे राजा जनमेजय! इसके पीछे युधिष्ठिर ने उस ...खकर ...

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सरोवर के किनारे पर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव उन अपने चारों भाइयों को निर्जीव पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा जो कि इन्द्र का सा गौरव रखते थे और पृथ्वी पर पड़े हुए ऐसे दीखते थे मानो प्रलयकाल आने पर लोकपाल देवता स्वर्ग से गिर पड़े हैं १। २ उनको देखकर महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़ी गरम-गरम श्वासें लेकर चिन्ता में मग्न होकर रोने और महाविलाप करने लगे, हाय भीमसेन! तैंने तो यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्ध में दुर्योधन की जांघ गदा से तोड़ूंगा, अब वह प्रतिज्ञा तेरे गिर जाने पर व्यर्थ हो गई ३। ५ यह क्या कारण है जो तुम लोगों की की हुई प्रतिज्ञा झूंठ हुई। लोगों ने भी तुम लोगों के विषय में झूठी झूठी बातें ही कहीं। हे अर्जुन! तेरे उत्पन्न होने के समय देवताओं ने माता से यह कहा था कि हे कुन्ती! तेरा यह पुत्र इन्द्र के तुल्य होगा और पारियात्र पर्वत पर भी सब लोगों ने यही कहा था कि अर्जुन इस नष्ट हुई लक्ष्मी को फिर लावेगा, रण में इसको कोई न जीत सकेगा और यह सबको युद्ध में जीतेगा ६। ९ सो तू ऐसा महाबली होकर शत्रु के वश में कैसे आ गया जो मेरी सब आशाओं को नष्ट करके इस प्रकार पृथ्वी पर सो रहा है १० हम लोग तो तेरे ही आश्रय से ये सब दुःख सह रहे थे, हाय ये दोनों भीमसेन और अर्जुन सब अस्त्रों से अवध्य और महावीर थे, शत्रु के वश में कैसे प्राप्त हुए ११। १२ मेरा हृदय लोहे का है जो इन नकुल और सहदेव को पृथ्वी पर मरे हुए पड़ा देख फटता नहीं है १३ हे पुरुषोत्तमो! तुम शास्त्रज्ञ और देशकाल के जाननेवाले होकर तपस्वी और क्रियावान् भी हो, तुम अपने योग्य कर्म विना किये व विना घायल हुए क्यों सो रहे हो और धनुषों को डालकर पृथ्वी पर अचेत पड़े हुए हो १४। १५ इस प्रकार से युधिष्ठिर अपने भाइयों को सजीव पर्वत के समान सुखपूर्वक नींद से सोते हुए देखकर महादुःखी हुआ और उसका शरीर पसीनों से चुचुआने लगा १६ इसके पीछे युधिष्ठिर ने बहुत सा विलाप करके व्याकुल और शोकरूपी सागर में डूब कर विचार किया कि यह होनहार तो इसी प्रकार से थी परंतु यह तो देखना चाहिये कि ये मारे क्योंकर गये। इनके शरीर में शस्त्र लगने का कोई चिह्न नहीं है और न यहां किसी जीव के पैरों के चिह्न हैं यह बात क्या है! मैं जानता हूं कि यह काम किसी बड़े प्राणी का है [illegible] आओ जल पी लें और एकाग्र होकर विचार करें कदाचित [illegible] करान [illegible] धन ने कुटिल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

बुद्धि शकुनि से यह काम कराया हो। उस अशुद्ध अन्तःकरण और पापी का कुछ विश्वास नहीं है और जो उस दुरात्मा ने गुप्त मनुष्य भेजकर इसमें विष घुलवा दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि ये मेरे भाई यद्यपि प्राणरहित हो गये हैं परंतु इनकी चेष्टा ज्यों की त्यों है २२। २६ काल आने पर यमराज के सिवाय इन पुरुषोत्तमों से दूसरा जीव सम्मुख होकर युद्ध नहीं कर सकता है २७ यह निश्चय करके युधिष्ठिर उस जल में घुस गया और जल को मँझाने लगा। उस समय आकाशवाणी हुई कि हे राजपुत्र! मैं शैवलनाम मत्स्यभक्षी बगला हूँ मैंने ही ये तेरे चारों भाई मारे हैं जो तू मेरे प्रश्नों का उत्तर न देगा तो तू भी इसी प्रकार से मर जायगा २८। २६ इससे तू साहस छोड़कर पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दे फिर इच्छापूर्वक जल पीजियो और ले जाइयो ३० यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि आप वसुदेवता हैं या रुद्र हैं अथवा मरुद्गणों के प्रधान देवता हैं। ऐसा बड़ा काम पक्षी से होना असंभव है जो आपने हिमालय, पारियात्र, विन्ध्याचल और मलयागिरिनामी चारों पहाड़ों के समान मेरे ये प्रतापी चारों भाई मार डाले हैं ३१। ३२ जिनको युद्ध में देवता गन्धर्व और राक्षस भी सह नहीं सकते हैं। आपने यह बड़ा ही भारी काम किया है मैं नहीं जानता हूं कि आपका ऐसा करने से क्या प्रयोजन है और आप क्या चाहते हैं। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, शिर मेरा घूमने लगा है, चित्त उद्विग्न हो रहा है और मैं बड़ा भयभीत हो रहा हूं, कृपा करके आप कहिये कि आप कौन हैं ३३। ३५ यह सुनकर वह बोला कि मैं जलचारी पक्षी नहीं हूं किन्तु यक्ष हूं, ये तुम्हारे महाबलशाली भाई मेरे ही हाथ से मारे गये हैं ३६ वैशंपायनजी बोले, हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर इस प्रकार से उस यक्ष के अकल्याणरूप और कठोर वचनों को सुनकर उसके पास गया वह यक्ष वृक्ष के ऊपर मेघ की गर्जना के समान गम्भीरवाणी बोलता हुआ बैठा था और पर्वताकार ताल वृक्ष के समान ऊंचा शरीर धारण किए हुए अग्नि और सूर्य के तुल्य तेजस्वी था ३७। ३६ उस समय यक्ष ने कहा कि हे राजन्! [illegible] इन भाइयों ने वारंवार रोंके जाने पर इस सरोवर का पानी बल से पी लिया, [illegible] कारण से मैंने इनको मार डाला है ४० जीवित चाहनेवाले मनुष्य को जल पीना [illegible] नहीं है तुम भी साहस मत करो। मेरा नियम है कि [illegible] देखकर [illegible] दे दे वही जल पान कर सकेगा और जल ले

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जा सकेगा ४१ । ४२ युधिष्ठिर बोले कि हे यक्ष ! तेरा यह नियम ठीक नहीं है । सन्त लोग ऐसी बातों की कभी प्रशंसा नहीं करते हैं परंतु तुम अपने प्रश्नों को कहो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर दूंगा ४३ । ४४ यक्ष बोला कि बताओ सूर्य को कौन उदय करता है और सूर्य के सहचर अर्थात् साथ चलनेवाले कौन हैं कौन सूर्य को अस्त करता है और सूर्य किस पर स्थित है ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर-सूर्य का उदय करनेवाला ब्रह्म है देवता उसके सहचर हैं उसके अस्त होने का कारण धर्म है और स्थिति उसकी सत्य से है ॥ ४६ ॥

यक्ष-मनुष्य श्रोत्रिय और महत् कैसे होता है और वह क्या पदार्थ है जो पुरुष को द्वितीय होता है अर्थात् जो कार्याकार्य में हारकर करना पड़ता है और मनुष्य बुद्धिमान् कैसे होता है ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर-मनुष्य श्रुति के पढ़ने से श्रोत्रिय और तप के करने से महान् हो जाता है, द्वितीय होने का पदार्थ धैर्य है और वृद्धों की सेवा करने से मनुष्य बुद्धिमान् हो जाता है ॥ ४८ ॥

यक्ष-ब्राह्मणों में देवभाव क्या है और वह धर्म कौन सा है जो सत्पुरुषों के समान है और ब्राह्मणों में मनुष्यभाव क्या है और वह कौन सा चलन है जिससे ब्राह्मण असत्पुरुषों के तुल्य हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर-वेद का पाठ करना अथवा जप करना ब्राह्मणों का देवभाव है और तपस्वी होना सत्पुरुषों के समान धर्म है और मरना मनुष्यभाव है और ब्राह्मणों में दूषण होना असत्पुरुषों का सा धर्म है ॥ ५० ॥

यक्ष-क्षत्रियों में क्या देवभाव है और किस धर्म के करने से क्षत्रिय सत्पुरुष गिना जाता है और क्षत्रियों में मनुष्यभाव क्या है और किस चलन से क्षत्रिय असत्पुरुषों के से धर्म करनेवाले समझे जाते हैं ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर-क्षत्रियों का बाणविद्या और अस्त्रविद्या जानना देवभाव है और यज्ञ करना सत्पुरुषों का सा धर्म है और भय करना मनुष्यभाव है और दुःखी मनुष्य के दुःख को दूर न करना असत्पुरुषों का सा चलन है ॥ ५२ ॥

यक्ष-यज्ञसम्बन्धी एक साममन्त्र कौन सा है और इसी प्रकार से य[illegible] ! मैं का यज्ञसम्बन्धी मन्त्र कौन है और वह कौन सी एक [illegible] लें स्वीकार करती है और यज्ञ उल्लंघन कि[illegible] नहीं कर[illegible] धन ने [illegible]टिल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

युधिष्ठिर-यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाला साममन्त्र प्राण है और यजुर्वेद का यज्ञसम्बन्धी मन्त्र मन है और एक मुख्य ऋचा यज्ञ को स्वीकार करती है और यज्ञ उस ऋचा को उल्लंघन नहीं करता है ॥ ५४ ॥

यक्ष-तृप्त करनेवालों में कौन श्रेष्ठ है और पितरों को क्या वस्तु दान देना अच्छा है और प्रतिष्ठा चाहनेवालों को क्या वस्तु श्रेष्ठ है और वंश चाहनेवालों के लिये क्या उत्तम है ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर-तृप्त करनेवालों में जलवर्षा श्रेष्ठ है और बीजदान अर्थात् क्षेत्र और बाग़ आदि का लगाना पितरों को अच्छा है और प्रतिष्ठा चाहनेवालों को गौ रखना और वंश चाहनेवालों के पुत्र होना उत्तम है ॥ ५६ ॥

यक्ष-संसार में ऐसा पुरुष कौन है जो अच्छे अच्छे भोग भोगता है और सबका प्यारा होकर बड़े आदर के साथ संसार में रहता है परंतु वह जीता हुआ मरे हुए के समान है ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिर-जो पुरुष देवता, अतिथि, भृत्य और पितरों को विना दिये खा लेता है वह जीता हुआ भी मृतकतुल्य है ॥ ५८ ॥

यक्ष-पृथ्वी से भारी आकाश से ऊंचा वायु से जल्दी चलनेवाला और घास से अधिक होनेवाला क्या पदार्थ हैं ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिर-पृथ्वी से अधिक भारी माता है, पिता का दर्जा आकाश से भी ऊंचा है, मन वायु से भी शीघ्र चलता है और चिन्ता घास से भी अधिक होनेवाली है ॥ ६० ॥

यक्ष-सोते में पलक कौन नहीं मारता है और उत्पन्न होने पर चलता कौन नहीं है, हृदय किसके नहीं है और वेग से कौन बढ़ जाता है ॥ ६१ ॥

युधिष्ठिर-मछली सोते में पलक नहीं मारती है और अण्डा उत्पन्न होने पर चलता नहीं है, पत्थर के हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ जाती है ॥ ६२ ॥

यक्ष-परदेशी, गृहस्थी, रोगी और मरनेवाले इन चारों के मित्र कौन कौन से हैं ॥ ६३ ॥

युधिष्ठिर-परदेशी का मित्र जनसमूह, गृहस्थी का मित्र स्त्री, रोगी का मित्र वैद्य और मरनेवाले का मित्र दान है ॥ ६४ ॥

यक्ष-हे राजेन्द्र ! सबका अतिथि कौन है और सनातनधर्म क्या है और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

युधिष्ठिर–अग्नि सबका अतिथि है और गौओं का दूध अमृत है और जिस धर्म से मोक्ष मिलती है वह सनातनधर्म है और सब जगत् वायु है क्योंकि विना वायु के जगत की स्थिति नहीं हो सकती है ॥ ६६ ॥

यक्ष–वह कौन है जो अकेला फिरता है और फिर फिर उत्पन्न कौन होता है और हिम की क्या औषध है और द्रव्य रखने का बड़ा पात्र क्या है ॥ ६७ ॥

युधिष्ठिर–सूर्य अकेला फिरता है और चन्द्रमा फिर फिर प्रकाश करता है और प्रभाहीन हो जाता है और हिम की औषध अग्नि है और द्रव्य के रखने का बड़ा पात्र पृथ्वी है ॥ ६८ ॥

यक्ष–धर्मरूपी एकपद क्या है और एकपद का यश क्या है और स्वर्ग का देनेवाला एकपद कौन सा है और एकपद का सुख कौन सा है ॥ ६९ ॥

युधिष्ठिर–चतुराई धर्मरूपी एकपद है और दान एकपद का यश है और स्वर्ग का देनेवाला एकपद सत्य है और शील का होना एकपद सुख है ॥ ७० ॥

यक्ष–मनुष्य की आत्मा और दैव से रचा हुआ मित्र कौन कौन है और कौन मनुष्य को जीविका देता है और अन्त में मनुष्य को सुख देनेवाला क्या है ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिर–पुत्र मनुष्य की आत्मा, स्त्री दैव का रचा हुआ मित्र है, इन्द्र जलवर्षा करके जीविका देता है और दान अन्त समय में सुखदायी होता है ॥ ७२ ॥

यक्ष–धन के दान देनेवालों में क्या बात होना उत्तम होती है और कौन सा धन उत्तम है और मिलना किस वस्तु का अच्छा है और सुख कौन सा श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर–दानी मनुष्य में चतुराई होना श्रेष्ठ है और सब धनों में विद्यारूपी धन उत्तम है और आरोग्यता का मिलना सब लाभों में अच्छा है और संतोष की बराबर सुख नहीं है ॥ ७४ ॥

यक्ष–संसार में श्रेष्ठ धर्म क्या है और कौन सा धर्म सदा फल देनेवाला है और वह क्या पदार्थ है जिसको वश में कर लेनेसे मनुष्य शोच नहीं करता है और मिलाप किसके साथ किया हुआ जीर्ण नहीं होता है ॥ ७५ ॥

युधिष्ठिर–सब प्राणियों को अभय देना अर्थात् सं[illegible] सर्वोत्तम है और त्रयीधर्म अर्थात् तीन मात्रा रखनेवाले प्रणव से [illegible]नेवाला धर्म

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यक्ष-धर्म, अर्थ और काम ये तीनों आपस में विरोध रखते हैं इन तीनों का एक स्थान पर मिलाप होना भी संभव है ॥ १०१ ॥

युधिष्ठिर-जब धर्म और भार्या ये दोनों मनुष्य के वश में हो जाते हैं तब धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का एक स्थान पर संगम हो जाता है ॥ १०२ ॥

यक्ष-हे भरतसत्तम! अक्षय नरक किसको प्राप्त होता है इस प्रश्न को पूछते हुए मुझसे शीघ्र कहिये ॥ १०३ ॥

युधिष्ठिर-जो मनुष्य विना मांगनेवाले किसी ब्राह्मण को धन देने के लिये बुलावे और फिर कह दे कि मैं कुछ नहीं दूँगा तो वह मनुष्य अक्षय नरक में वास करता है १०४ और जो मनुष्य वेद, धर्म, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता और पितरसम्बन्धी कर्मों में झूठ बोलते हैं वे भी अक्षय नरक में वास करते हैं १०५ और जो मनुष्य धनवान् होकर लोभ के कारण से न धनदान करता है न भोगता है किन्तु यह कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं है वह भी अक्षय नरक में वास करता है ॥ १०६ ॥

यक्ष—कुल वृत्त अर्थात् गुरु आदि की सेवा और वेदपाठ और वेदार्थ को जानना इन तीनों में से किससे मनुष्य को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिर-हे यक्ष, तात! इनमें से किसी से भी ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सकता है केवल सुवृत्त से ही ब्राह्मणत्व मिलता है १०८ उस वृत्त का रक्षा करना ब्राह्मण का परमधर्म है जो ब्राह्मण वृत्तयुक्त अर्थात् आचार करनेवाला है वह क्षीण कभी नहीं होता है और जो वृत्त से रहित होता है वह नष्ट हो जाता है १०९ जो मनुष्य क्रियावान् है वही पण्डित है और बाकी जितने शास्त्र के पढ़ने, पढ़ाने और विचारनेवाले हैं वे सब व्यसनी और मूर्ख हैं ११० जो मनुष्य चारों वेद जानता है परंतु उसकी वृत्ति दुष्ट है तो वह शूद्र से भी नीच है। इससे ब्राह्मण वही है जो अग्निहोत्री और जितेन्द्रिय है ॥ १११ ॥

यक्ष-मीठा बोलनेवाला, विचारकर काम करनेवाला, बहुत से मित्र रखने वाला और धर्म में प्रीति रखनेवाला मनुष्य क्या क्या पाता है ॥ ११२ ॥

युधिष्ठिर-मीठा बोलनेवाला सबका प्यारा हो जाता है, विचारकर काम [illegible] है राजन्! [illegible] हती है, जिसके बहुत से मित्र हैं वह सुखपूर्वक [illegible] की शुभ गति होती है ॥ ११३ ॥

अमृत [illegible] यह [illegible] है और [illegible]

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

यक्ष—संसार में आनन्द कौन करता है और आश्चर्य क्या है और ठीक मार्ग कौन सा है और वार्त्ता किसको कहते हैं ॥ ११४ ॥

युधिष्ठिर—हे वारिचर, यक्ष! जो मनुष्य अपने घर में पांचवें अथवा छठे दिन शाक बनाकर खाता है और ऋणी व परदेशी नहीं है वह इस संसार में सुखी रहता है ११५ और मनुष्य दिन रात मरते हुए चले जाते हैं तिस पर भी जो शेष रहते हैं वे अपने को संसार में अचल समझते हैं इससे अधिक क्या आश्चर्य है ११६ और तर्क का निर्णय नहीं है श्रुतियां आपस में विरुद्ध हैं और एक मुनि भी नहीं है जिसके वचन का प्रमाण किया जाय और धर्म का तत्त्व गुहा में रक्खा हुआ है, इससे जिस मार्ग से महान् पुरुष गये हैं वही मार्ग ठीक है ११७ और जो महाकाल मोहरूपी कढ़ाई में महीना और ऋतुरूप करछी से सूर्यरूपी अग्नि के द्वारा दिन और रात्रिरूपी ईंधन को जलाकर सब प्राणियों को पचाता रहता है उसी का नाम वार्त्ता है ॥ ११८ ॥

यक्ष—हे परंतप! तुमने हमारे सब प्रश्नों का उत्तर ठीक ठीक दिया अब यह बताओ कि वह पुरुष कौन सा है जिसका रूप मनुष्य का सा है और सब धन रखता है ॥ ११९ ॥

युधिष्ठिर—जिस मनुष्य के पुण्यकर्मों का शब्द पृथ्वी और [illegible] रहता है और जो प्रिय अप्रिय सुख दुःख और भूत भविष्य, सबको एक सा जानता है वही नररूपी पुरुष है और वही सब धनों का रखनेवाला है ॥ १२०।१२१ ॥

यक्ष—हे राजन्! तुमने पुरुष भी बता दिया और धन रखनेवाले का लक्षण भी कह दिया इससे अब तुम जिस एक अपने भाई को कहो वही जी उठे ॥ १२२ ॥

युधिष्ठिर—हे यक्ष! मेरा नकुलनामी भाई जी जावे जिसके नेत्र लाल लाल हैं और बड़ी भुजायें हैं व जिसकी छाती चौड़ी है और जो शाल के वृक्ष के समान लम्बा है ॥ १२३ ॥

यक्ष—हे युधिष्ठिर! तुझे तो भीमसेन बड़ा प्यारा है और अर्जुन तुम्हारा परायण है फिर कहो तुम सौतेले भाई नकुल का जीना क्यों चाहते हो १२४ यह भीमसेन दश सहस्र हाथी का बल रखता है और तुमको परम प्रिय है और [illegible] अर्जुन बड़ा धनुष्धारी है जिसकी भुजा के बल पर [illegible] मम हे थे इन दोनों को छोड़कर तुम सौतेले भाई [illegible] नेवाला धर्म चाहते हो ॥ १२५।१२७ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor